VED PRKASH
G.K.U. 1978

VED PRKASH
G.K.U. 1978

वेद प्रकाश

वेदोऽखिलो [illegible]-मूलम्



आर्य समाज शताब्दी समारोह पर प्रकाशित

नए प्रकाशन

१. सत्यार्थप्रकाश — सम्पादक पं० भगवद्दत्त २५.००
[आठ परिशिष्ट तथा मोटे अक्षरों में]

२. वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार — प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार २०.००

३. दुनिया में रहना किस तरह ? — म० आनन्द स्वामी सरस्वती ३.५०

४. शिव संकल्प — स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ४.००

५. महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित—राज्यव्यवस्था — डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार ८.००

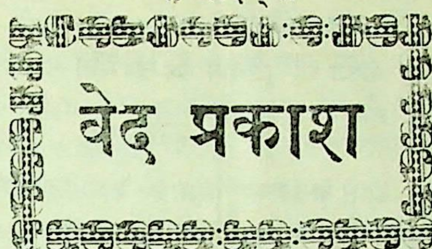
६. आर्यसमाज का परिचय — स्वामी अनुभवानन्द १.५०

७. वेद वाटिका — डॉ० सत्यकाम वर्मा वेदालंकार ५.००

८. महर्षि दयानन्द की देन — संकलन ४.००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

॥ ओ३म् ॥



संस्थापक : स्व० श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष : २५ अंक ७] वार्षिक मूल्य : तीन रुपया [फरवरी १९७६

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा. जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेद-विमर्श

श्री रामप्रकाश एम. एस. सी

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

कभी समस्त संसार में वेद का प्रचार था। पर धीरे-धीरे वैदिक सूर्य को अविद्या के बादलों ने ढक लिया। विश्व में अनेक मत फैल गए। ऐसे अन्धकार मय युग में देव दयानन्द ने वेदों का पुनरूद्धार करते हुए कहा कि 'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है।' ऋषि ने वेद के बारे में जो कार्य किया है वह स्वर्ण अक्षरों में लिखने के योग्य है। परन्तु आज भी अन्य मताबलम्बी वेद विषय में नाना प्रकार की भ्रान्तियां फैला कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। उन भ्रान्तियों को दूर करने के लिये यहाँ हम कुछ आरम्भिक प्रश्नों पर विचार करेंगे।

ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता :—

मनुष्य ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करता है ?—इस प्रश्न पर दार्शनिकों ने खूब विचार किया है। पाश्चात्य विचारकों के अनुसार मनुष्य स्वयमेव ज्ञान प्राप्त कर लेता है। ज्ञान प्राप्ति के लिये उसे किसी सहायक की आवश्यकता नहीं है। इन्हीं विचारकों में से कुछ ज्ञान की प्राप्ति 'अनुभव वाद' (Empiricism) के द्वारा मानते हैं। 'लाक के मन्तव्यानुसार मनुष्य का, मस्तिष्क एक कोरे कागज के समान है तथा ज्ञान प्राप्ति के साधन 'संवेदना' (Sensation) और 'चिन्तन' (reflection) है। श्री वर्कले और ह्यूम ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है।

पर यदि मन को कोरा कागज मान लिया जाए तो वह निष्क्रिय बन जाता है— ऐसा मानना भारी मनो-वैज्ञानिक भूल है क्योंकि मन तो गतिशील है तथा इस में प्रत्येक क्षण कोई न कोई विचार आता रहता है।

डैकार्ट ,स्पिनोजा और लाइबनिज ज्ञान की उत्पत्ति 'बुद्धिवाद' (Rationalism) के द्वारा मानते हैं। परन्तु प्रसिद्ध साहित्यकार आल्डस हक्सले का यह विचार ठीक ही है कि "बुद्धिवाद भी जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में पूर्णतया समर्थ नहीं है।" (Rationalism itself is not a perfect instrument for the understanding of life.")

जर्मन दार्शनिक कान्ट के विचार में ज्ञान की प्राप्ति अकेले अनुभव या बुद्धि से सम्भव नहीं है अपितु बुद्धि और अनुभव दोनों को मिला कर ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

वस्तुत: यह सभी मत केवल कुछ अंश तक ही सत्य है क्योंकि यदि कोई सिखाने वाला न हो तो मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर ही नहीं सकता हम इस विचार की पुष्टि कुछ उदाहरणों के द्वारा करेंगे :—

१. आज का मानव इतना ज्ञान प्राप्त कर चुका है कि चान्द पर ही नहीं मंगल पर भी जाने में अपने को समर्थ पा रहा है, पर दूसरी ओर आज भी अन्डेमान में निगरेटा जाति के लोग बसते हैं जिन्हें पांच तक भी गिनना नहीं आता। दस तक गिनने वाला तो बहुत बड़ा गणितज्ञ समझा जाता है। वहाँ की भूमि खोदने पर भाले आदि लोहे के अस्त्र शस्त्र मिले हैं अत: वे लोग सदा से मूर्ख नहीं हैं कभी वे भी सभ्य थे। आज उनकी यह दशा शिक्षक के अभाव में हो गई है। अत: युग पुरुष दयानन्द ने ठीक लिखा है कि "सृष्टि के आदि में परमात्मा जो वेदों का उपदेश नहीं करता तो आज पर्यन्त किसी मनुष्य को धर्मादि पदार्थों की यथार्थ विद्या नहीं होती।"

२. अनेक भाषाओं के ज्ञाता माता पिता का बच्चा बिना सिखाए एक भाषा भी नहीं सीख सकता। अत: बच्चों को ज्ञान देने के लिए पाठशालाओं का खोलना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि बिना शिक्षक के बच्चा अकेले अनुभव या बुद्धि के आधार पर ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है।

३. आज तक किसी भी अनपढ़ व्यक्ति ने वैज्ञानिक खोज नहीं की क्योंकि बिना शिक्षक के ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है।

४. ए० डब्ल्यू० किंगलेक जब विश्व यात्रा करता हुआ मिश्र के महा—मरुस्थल में से निकल रहा था तो उसे विज्ञान के इस युग में भी 'शेख' नाम के एक सज्जन मिले जिसे यह पता नहीं था कि समय का विभाजन घण्टों, मिन्टों, सैकिण्डो में हो चुका है क्योंकि किसी ने उसे यह बातें नहीं बताई थी।

५. लगभग चालीस वर्ष पूर्व जिला अम्बाला में 'सम्मू' नाम के एक बच्चे ने जन्म लिया। उसे स्कूल से उर्दू पढ़ने के लिये भेजा गया अभी उसने उर्दू वर्णमाला ही सीखी थी (जो उसे आज तक भी याद है) कि उसे लेखक के गांव का एक आदमी नौकर के रूप में अपने पास ले आया। वहाँ उस बच्चे को पशु की तरह रखा गया। उसे हर प्रकार के ज्ञान से वंचित रखकर पशुओं के ढंग से खाना

पीना सिखाया गया। आजकल सम्मू निकट के ही एक और गांव में बीसियों वर्ष से नौकर है। उस परिवार के सदस्य पुलिस और फौज में उच्चाधिकारी है। पर सम्मू को आरम्भ से ही कोई ज्ञान नहीं दिया गया अतः वह नंगा रहता है, जहां सोता है उसी स्थान पर पेशाब आदि कर देता है, उसे अपने स्वामी तथा उस गाँव का नाम तक भी नहीं आता। वह मनुष्य योनि में पशु है। यदि कोई अफ्रीका का हब्शी देखना चाहे तो उसे देख सकता था।

६, सीरिया के सम्राट् असुर वाणीपाल, यूनान के राजा सेमिटिकल सम्राट फ्रेडरिक द्वितीय, स्काट-लैण्ड के जेम्स चतुर्थ, तथा अकबर आदि अपने परीक्षणों के पश्चात इसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि शिक्षक के बिना मानव का प्रथम ज्ञान विकास नहीं हो सकता।

अतः सिद्ध हुआ कि:—

(i) मनुष्य में ज्ञान प्राप्ति की शक्ति है। (नहीं तो सम्मू उर्दू वर्ण माला न सीख सकता)

(ii) आरम्भ में शिक्षक की जरुरत अवश्य पड़ती है।

(iii) हां, कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद उस निजी ज्ञान को अनुभव और बुद्धि के आधार पर बढ़ाया जा सकता है।

आरम्भ में ही ज्ञान का विकास सम्भव नहीं क्योंकि विकास (evolution) एक क्रिया है तथा मनो विज्ञान के अनुसार क्रिया से पूर्व अनुभूति (affection) और 'अनुभूति' से पूर्व ज्ञान की आवश्यकता होती है अतः डाक्टर वालेश अपनी पुस्तक The Social Environment And Moral Progress. में लिखते हैं "There is, therefore, no proof of continuolsy increasing intellectual power."

अर्थात्—'अतः ज्ञान के क्रमिक विकास का कोई भी सबूत नहीं है।"

सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य में तो नैमित्तिक ज्ञान होता नहीं अतः प्रभु स्वयमेव जन कल्याण हेतु निज ज्ञान का प्रकाश करते हैं। जिस प्रकार परमात्मा ने आँख की सहायता के लिये सूर्य बनाया है, उसी प्रकार बुद्धि के लिये ज्ञान रूपी सूर्य प्रदान किया है। जैसे सूर्य के बिना आंख व्यर्थ है, उसी प्रकार ज्ञान के बिना बुद्धि भी बेकार होती है। वैसे भी प्रत्येक कारीगर अपनी बनाई वस्तु के उपयोग का ज्ञान देता है। अतः प्रभु द्वारा आरम्भ में जगत की वस्तुओं के उपयोग का ज्ञान दिया जाना अनिवार्य हैं। परमात्मा न्यायकारी है इस लिये मनुष्य को कर्मानुसार फल देने से पूर्व यह बताया जाना आवश्यक है कि पाप पुण्य क्या है ? इन सभी का ज्ञान आदि सृष्टि में प्रभु अपनी कल्याणी वाणी द्वारा प्रदान करते हैं।

बड़े २ दार्शनिकों ने भी ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता को अनुभव किया है। उदाहरणार्थ अफलातून लिखता है—"धार्मिक कर्मों की शिक्षा, अन्धकारों को दूर करने और जीवन यात्रा को सुगम बनाने के लिए ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है।" सिसरों का कथन है—"वास्तविक सत्य ज्ञान के लिये ईश्वरीय ज्ञान की जरुरत है।" काण्ट के विचारानुसार "धार्मिक और सदाचार सम्बन्धी नियमों के ज्ञानार्थ ईश्वरीय

ज्ञान की आवश्यकता है।" इसी प्रकार फालिण्ट भी स्वीकार करता कि—"मुक्ति के लिये जिस ज्ञान की आवश्यकता है वह आत्मा और प्रकृति से प्राप्त नहीं होता। बुद्धि के गूढ़तम आविष्कारों के साथ २ हमें ईश्वरीय ज्ञान की जरुरत होती है।"

ईश्वरीय ज्ञान की पहचान

सभी मतावलम्बी अपनी पुस्तकों को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। पर कथन मात्र से ही कोई बात सच नहीं हो जाती क्योंकि 'लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः, न तु प्रतिज्ञा मात्रेण।' अतः सच्चाई क्या है ?—यह जानना आवश्यक है। इसका निर्णय करने के लिए विद्वान लोग निम्नलिखित कसौटियों का सहारा लेते रहे हैं —

(क) ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में होना चाहिये

क्योंकि बिना ज्ञान के कोई व्यवस्था नहीं चल सकेगी। वैसे भी यदि परमात्मा अपना ज्ञान कुछ समय बाद दे तो ज्ञान से वंचित रहने वाले प्राणियों के साथ अन्याय होता है अतः जर्मन कवि गेटे 'दीवान' की भूमिका में ठीक ही लिखता है कि "ससार के प्रभात काल में परमात्मा मानव को ज्ञान देता है।" कुरान और बाइबिल की आयु बहुत कम है। वेद ही सब से प्राचीन है—इस तथ्य को अन्य धर्मावलम्बी भी स्वीकार कर चुके हैं। "हम भारत से क्या सीख सकते हैं" नामक पुस्तक में मैक्स मूलर लिखता है—"वेद से पहले का कोई हस्त लिखित ग्रन्थ नहीं मिलता—हम इसे वर्षों में नहीं माप सकते अर्थात् वेद अनादि काल से है।" "What is the Veda ?" शीर्षक व्याख्या में मैक्स मूलर कहता है "आर्य जगत् में वेद निश्चय ही सबसे पुरानी पुस्तक है।" (In the Aryan world. Veda is certainly the oldest book.") 'Sex and Sex-workship' (पृष्ठ ८) में वाल साहब ने स्वीकार किया है कि "हिन्दुओं का धर्म ग्रन्थ ऋग्वेद संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है।" Historical Researches में प्रो० हीरेन कहता है— 'निस्संदेह वेद संस्कृत साहित्य में सब से पुराने हैं।"

("The Vedas are without doubt the oldest works composed in Sanskrit.") इसी सत्य का समर्थन पादरी फिलिप ने इन शब्दों में किया है— "After the latest researches into the history and chronology of old restament, we may safely now call Rig-Veda is the oldest book, not only of the Aryan race but of the whole word."

अर्थात् 'पुराने वसीयत नामे के इतिहास और पुस्तकों के निर्माण कालादि सम्बन्धी अनुसन्धान के बाद, अब हम निस्सदेह ऋग्वेद को न केवल आर्यजाति की अपितु सारे संसार की प्राचीनतम पुस्तक कह सकते हैं।"

(ख) क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान आदि सृष्टि में होता है अतः उसमें इतिहास नहीं हो सकता। पर बाइबिल में पैलस्टाइन के यहूदियों का इतिहास है तथा कुरान अरब देश के दृश्यों और आदम, ईसा मूसा, दाऊद आदि के किस्सों से भरा पड़ा है। केवल

वेद ही ऐसी पुस्तक है जिसमें किसी देश काल, और जाति का इतिहास नहीं है। वेद में विश्वामित्र, विशिष्ठ, उर्वशी आदि शब्द आए हैं। इन्हीं शब्दों को देखकर पाश्चात्य लेखकों ने वेद के गले भी इतिहास मढ़ना चाहा है। बुद्धि का यह अजीर्ण कुछ भारतीय विद्वानों को भी है। पर वास्तविकता यह है कि वेद के शब्दों से ही सभी वस्तुओं के नाम रखे गए हैं। अतः वस्तुओं और विषयों के नाम वेद में देखकर इतिहास की कल्पना नहीं की जा सकती। जैसे वेद में विश्वामित्र शब्द आया है। बाद में एक ऋषि का नाम भी विश्वामित्र रख लिया गया। इसमें वेद का क्या दोष ? इतने मात्र से ही वेद में इतिहास की कल्पना करना तो ऐसा है जैसे कि आज के समय का कोई रामचन्द्र नामक व्यक्ति यूं कहे कि लाखों वर्ष पूर्व दशरथ ने अपने पुत्र का नाम रामचन्द्र मेरे ही नाम को सुनकर रखा था तथा रामायण में मेरी ही चर्चा है। वस्तुतः वेद में आए ये शब्द व्यक्ति विशेष (Proper nouns) सूचक नहीं अपितु सामान्य गुण सूचक है क्योंकि केवल विशेषण के साथ ही 'तर' 'तम' प्रत्यय लग सकते हैं तथा वेद में ऐसे कई शब्दों के साथ इन प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है जैसे कण्वतमः— ऋ १ : ४८ । ४ ॥ १० । १०५ । ५ इन्द्रतमः—ऋ १ । १८२ । २ ॥ ७ । ७९ । ३

यदि कण्व और इन्द्र Proper nouns होते तो इनके साथ superlative degree नहीं लग सकती थी। कुछ शब्द तो भिन्न २ मन्त्रों में अलग २ अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ वशिष्ठ शब्द ले लीजिए। यह वेद में कई स्थानों पर आया है, जैसे :—

शतं या भेषजानि सहस्त्रं संगतानि च।

श्रेष्ठ मास्त्राव भेषजं वसिष्ठ रोगनाशनम् ॥ अथर्व २ । ४४ । २

अर्थात् जितनी सैंकड़ों और हजारों दवाइयां पाई जाती है उनमें चुलाने की औषध वसिष्ठ श्रेष्ठ और रोगनाशक हैं। अतः यहां वसिष्ठ शब्द किसी ऋषि, मनुष्यादि के लिए नहीं आया अपितु यह तो दवाई का नाम है।

१३ । ५४ ।

यजुर्वेद में एक मन्त्र आया है :—

वसिष्ठ ऋषिः प्रजापति गृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः।

यहां वसिष्ठ का अर्थ प्राण है।

यह शब्द शतपथ ब्राह्मण में भी इस अर्थ में प्रयोग किया गया है।

प्राणौ वै वशिष्ठ ऋषि ८ । ११६ ।

अर्थात् प्राण ही वशिष्ठ ऋषि है।

ऋग्वेद के एक मन्त्र (७ । ३३ । ११) में वशिष्ठ शब्द पानी के अर्थ में प्रयोग किया है। इस प्रकार कई शब्द भिन्न २ स्थानों में अलग २ आशय प्रकट करते हैं तथा एक शब्द के अनेक अर्थ होना भाषा का दूषण नहीं अपितु भूषण हैं। अतः ये सभी शब्द लौकिक नहीं अपितु यौगिक हैं और इनके आधार पर वेद में इतिहास सिद्ध नहीं किया जा सकता। और तो और वेदों में इतिहास की दुहाई देने वाला मैक्समूलर

भी अपनी पुस्तक "History of Ancient Sanskrit Literature" में यह मान चुका है कि–'वेदों में अनेक नाम पाए जाते हैं परन्तु वे व्यक्ति-वाचक संज्ञाओं के रूप में नहीं दीख पड़ते ।"

(ग) ईश्वरीय ज्ञान बुद्धि के लिए है अतः बुद्धि और सृष्टि नियमों के अनुकूल हो ।

ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश सृष्टि के रहस्यों को खोलने के लिये किया गया है । अतः उस ज्ञान और सृष्टि के नियमों में भिन्नता नहीं होनी चाहिए क्योंकि भूगोल की वही पुस्तक श्रेष्ठ है जो भूगोल के साथ मिलती हो । पर बाइबल की कितनी बातें बुद्धि तथा सृष्टि के नियमों के प्रतिकूल हैं । इसीलिए सदैव विज्ञान और ईसाइयत में टक्कर रहती है बाइबल की पोल खुलने के भय से ईसा के भक्तों ने वैज्ञानिकों पर जो अत्याचार किए उन्हें पढ़कर कलेजा मुंह को आता है । यहाँ कुछ उदाहरण देना ठीक रहेगा :—

(१) देवी हियोफिया रेखा गणित का प्रचार और अविष्कार करती थी। पर रेखागणित का बाइबिल में कहीं जिकर भी नहीं है अतः बाइबिल विरोधी इस कार्य को रोकने के लिये पादरी सिरिल की आज्ञानुसार सभ्य कहे जाने वाले इन ईसाइयों ने उस देवी को नंगा किया और जान से मार दिया ।

(२) बाइबिल में अमेरिका का नाम तक नहीं आता अतः पुर्तगाल के बादशाह ने अमेरिका की खोज के लिये कोलम्बस आर्थिक सहायता को मांगने पर भी नहीं दी ।

(३) बाइबिल में लिखा हैं कि भूमि खड़ी है और सूर्य घूमता है । पर विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि भूमि घूम रही है । इस सत्य का प्रकाश करने के कारण गैलिलो आदि को कौन सा कष्ट नहीं दिया गया ? बेचारे ब्रूनों को तो जान की बाजी भी लगानी पड़ी ।

गप्पों की इस दौड़ में कुरान भी पीछे नहीं है । उसमें स्पष्ट लिखा है— "अल्लाह वह है जिसने खड़ा किया आसमान को बिना खम्बे के, देखते हो तुम उसको फिर ठहरा ऊपर अर्श के आज्ञा बर्तने वाला किया सूरज और चान्द को ।। और वही है जिसने बिछाया पृथ्वी को । उतारा आसमान से पानी, बस बहे नाले साथ अन्दाज अपने के ।"

क्या खूब बुद्धि संगत वैज्ञानिक तथ्यों का प्रकाश किया गया है !

परन्तु वेद में बुद्धि और सृष्टि नियमों के प्रतिकूल कोई भी बात नहीं है। आधुनिक विज्ञान के पैदा होने से पूर्व ही, आदि सृष्टि में वेद ने यह घोषणा कर दी थी कि भूमि सूर्य के चारों ओर घूमती है ।

आयं गौ पृश्निरक्रमीद सदन्मातरं पुर : पितरं च प्रयन्तस्वः यजुः ३ । ६ ।

अर्थात्—"यह भूगोल जल सहित सूर्य के चारों ओर घूमता है : इसलिए भूमि घूमा करती है ।" (सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम समुल्लास) ऋषि दयानन्द ने इस मन्त्र में गौ' का अर्थ 'भूमि' निरुक्त और निघण्टु के आधार पर किया है क्योंकि—

गौ रिति पृथिव्या नाम धेयम् यद् दूरं गता भवति। यच्चास्यां भूतानि गच्छसि

गोरिति पृथिवी नामसु पठितम् (निघण्टु)

महात्मा देवी चन्द जी इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार करते हैं :—

"The earth revolves in the space, it revolves with its mother, water in its orbit. It moves round its 'ather, the Sun". श्री आचार्य द्विजेन्द्र नाथ जी 'संस्कृत साहित्य विमर्श में इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार करते हैं—"(पृश्निः प्राणियों के प्राणों की पोषिका (गौ) पृथिवी (असदत्) निरन्तर (मातरं) निज मान दण्ड भूत स्व अक्ष पर अक्रमीद् घूमती है और (पितरं) सारे जगत के रक्षक रूप सूर्य के (पुर) सामने द्यु लोक में भ्रमण करती है।

इस प्रकार आचार्य जी इस मन्त्र द्वारा पृथिवी की दोनों गतियों (दैनिक और वार्षिक गति) का निर्देश करते हैं। इस सत्य का प्रतिपादन वेद के और भी कई मन्त्रों में किया गया।

"वर्षेण भूमिः पृथिवी वृताऽवृता" अथर्व १२। १। ५२।

अर्थात् "वर्ष भर में भूमि अपना चक्कर काटकर पूरा करती है।"
(पं० ब्रह्म दत्त जी जिज्ञासु)

अतः Brown अपनी पुस्तक 'Superiority of Vedic Religion' में लिखता है—"It is a thoroughly sciensific religion where science and religion meet hand in hand. Here theology is based upon Science and philosophy."

अर्थात् 'यह एक पूर्णतया वैज्ञानिक धर्म है जहा धर्म और विज्ञान हाथ में हाथ मिलाकर चलते हैं। यहाँ धार्मिक सिद्धान्त विज्ञान और फिलासफी पर आधारित हैं।"

(घ) ईश्वरीय ज्ञान ईश्वर के स्वभाव और गुणों के अनुकूल होना चाहिये :—

देव दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखते हैं—"जैसा ईश्वर पवित्र, सर्व विद्यावत् शुद्ध गुण कर्म स्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुण वाला है वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव के अनुकूल कथन हो वह ईश्वर कृत, अन्य नहीं।" परन्तु कुरान और बाइबिल में ईश्वर के गुणों के प्रतिकूल लिखा है।

कुरान :—

(१) "उनके दिलों में रोग है अल्लाह ने उस रोग को बढ़ा दिया।"
। मं. १। सि. १। सू. २। आ. १०।

कोई इनसे पूछे कि बिना अपराध के रोग बढ़ाने वाला भगवान् दयालु और न्यायकारी कैसे हुआ ? ऋषि दयानन्द ने ठीक लिखा है—"क्या यह शैतान

से बढ़कर शैतान पन का काम नहीं। किसी का रोग बढ़ाना यह खुदा का काम नहीं हो सकता, क्योंकि रोग का बढ़ाना अपने पापों से है।"

(२) "वह कि जिस को चाहेगा क्षमा करेगा जिसको चाहे दण्ड देगा क्योंकि वह सब वस्तु पर बलवान हैं।"

मौलवी जी की बुद्धि की प्रशंसा करनी चाहिये क्योंकि "वह सब वस्तु पर बलवान हैं" कहकर खुदा को अन्याय करने की कमाल की छूट दी है।

(३) "अल्लाह सूर्य को पूर्व से लाता है तू पश्चिम से ले आ।"

भला ऐसी अवैज्ञानिक बातें करने वाला खुदा सर्वज्ञ कैसे हो सकता है?

बाइबिल :—

(१) "और परमेश्वर ने अपना काम जिसे वह करता था सातवें दिन समाप्त किया। और उसने अपने किये हुए काम के सातवें दिन विश्राम किया।" (उत्पति पर्व २ आ. २)

बेचारा छः दिन काम करने से ही इतना थक गया!

(२) ईसा कहता है—"मैं पृथ्वी पर आग लगाने आया हूँ—क्या तुम समझते हो कि मैं पृथ्वी पर मिलाप कराने आया हूं? मैं तुम से कहता हूँ, नहीं, वरन् अलग कराने आया हूँ। ·········पिता पुत्र से, और पुत्र पिता से विरोध रखेगा मां बेटी से और बेटी माँ से, सास बहू से और बहू सास से विरोध रखेगी।" (लूकापर्व १२ आ. ४९ से ५३)

इस प्रकार के उपदेश करने वाला भगवान कल्याणकारी कैसे हो सकता है?

(ड़) धर्म वीर पं० लेखराम जी 'कुल्यात आर्य मुसाफिर' में लिखते हैं—"वह इलहाम (ईश्वरीय ज्ञान) ऐसी जबान में हो जो सब जबानों से मुम्ताज हो क्योंकि परमात्मा अपने 'गुणों' से इन्सानों से मुम्ताज है।

सभी भाषा शास्त्री यह स्वीकार कर चुके हैं कि संस्कृत को छोड़कर शेष भाषाएं अपूर्ण हैं। उनकी लिपियाँ अवैज्ञानिक हैं। इन भाषाओं में लिखा कुछ जाता है और पढ़ते कुछ और हैं। केवल संस्कृत भाषा ही पूर्ण और वैज्ञानिक हैं। मि० बौप (Mr. Bopp) का कथन है—"Sanskrit is more perfect and Copious than Greek and Latin, at one time Sanskrit was the one language spoken all over the world." अर्थात्—"संस्कृत ग्रीक और लैटिन से अधिक पूर्ण है। एक समय संस्कृत सारे विश्व में बोली जाती थी।

वास्तविकता यह है कि संस्कृत से ही सारी भाषाएं पैदा हुई हैं। अमेरिकन विद्वान विल डुरान्ट (Will Durant) ने लिखा है कि :—"India was the mother land of our race, and Sanskrit the mother of Europe's languages."

(Vision of India)

अर्थात्--भारतवर्ष हमारी जाति की माता और संस्कृत सभी यूरोपीय भाषाओं की जननी है।

अतः वेद की भाषा ही सर्वोत्तम और पूर्ण है।

(च) अतः स्वयं भी ईश्वरीय ज्ञान होने की घोषणा करता हैं :—

तस्माद् यज्ञाद् सर्व हुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दां सि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्माद जायत ।।

यजु० ३१। ७ ।।

अर्थात्--उस सर्व पूज्य, सर्वोपास्य, पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उत्पन्न हुए।

देवस्य श्लोकं समितुर्मनामहि ऋ. ७। ८२। १०।

अर्थात् सृष्टि के रचने हारे परमेश्वर की वेद वाणी को आदर से हम मनन करें।

यूं भी 'वेद' 'विद्' धातु से बना है अतः वेद का अर्थ 'ज्ञान' है। पर बाइबिल का धातु अर्थ "पुस्तकों का संग्रह" है।

कुरान तो स्वयं भी ईश्वरीय ज्ञान न होने की घोषणा निम्न शब्दों में करता है :—

"आरम्भ साथ नाम अल्लाह के क्षमा करने वाला दयालु"

मं. १। सि. १। सू. १ ।।

इसकी समीक्षा करते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं—"मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं। कि यह कुरान खुदा का कहा है परन्तु इस वचन से विदित होता है कि इसका बनाने वाला कोई दूसरा है, क्योंकि जो ईश्वर का बनाया होता तो "आरम्भ साथ नाम अल्लाह के" ऐसा न कहता किन्तु 'आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्यों के ऐसा कहता।"

अतः ऊपर लिखित सभी तथ्यों के प्रकाश में यह बात निश्चित है कि :—

(१) सभी मत और उनकी पुस्तकें एक ही बात नहीं कहती अपितु उनमें बहुत मतभेद है।

(२) केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है।

अन्य ग्रन्थों द्वारा वेद का समर्थन

प्रसिद्ध विद्वान नीटसे मनुस्मृति के विषय में लिखता है—"A work which is spiritual and superior beyond comparison, even to name in one breath with the Bible would be a sin." इतने उच्चकोटि के ग्रन्थ मनुस्मृति में स्थान २ पर वेद की प्रशंसा की गई है। उदाहरणार्थः—

"नास्तिको वेद निन्दकः" अर्थात् वेद निन्दक नास्तिक है।

"वेदोऽखिलो धर्म मूलम्" वेद समस्त धर्म का मूल है।

भगवान मन के विचार में तो "श्रुति स्मृति विरोधेतु श्रुतिरेव गरीयसी।"

अर्थात् यदि वेद और स्मृति में विरोध हो तो वेद ही श्रेष्ठ है। इसीलिए देव दयानन्द लिखते हैं—"इन (अन्य ग्रन्थों) में जो जो वेद विरुद्ध प्रतीत हो, उसको छोड़ देना, क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण है।" (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)।

शतपथ ब्राह्मण कहता है

एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निः श्वसितमेतद् यद्
ऋग्वेदों यजुर्वेदः सामवेदो ऽ थर्वा ङ्गिरसः। १४।५।४।१०॥

अर्थात् महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी पण्डिता स्त्री मैत्रेयी को कहते हैं—हे मैत्रेयि! उस महान् परब्रह्म परमेश्वर से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद श्वासप्रश्वास की भान्ति अनायास निःश्वसित अर्थात् प्रकाशित हुए।"

अत्रि स्मृति के अनुसार "नास्ति वेदात्परं शास्त्रं" (वेद से बढ़ कर कोई शास्त्र नहीं है)

यह तो हुई प्राचीन ग्रन्थों की बात। आज के समय में भी गुरु ग्रन्थ साहब में वेद की महिमा गाई गई है :—

ओंकार वेद निरमय।
चार दीवे चहु हथ दीए एका एकी वारी।
असंख ग्रन्थ मुखि वेद पाठ। (जप जी साहब)

तो क्या वेद मन्त्र ऋषियों ने नहीं बनाए ?

कुछ लोग ऋषियों को ही वेद मन्त्रों के बनाने वाले समझते हैं। यह उनकी भारी भूल है। ऋषि मन्त्रों के रचयिता नहीं थे। वे तो उन के अर्थों पर विचार करने वाले थे। यास्काचार्य ने निरूक्त में 'ऋषि' का अर्थ करते हुए लिखा है :—

ऋषियों मन्त्र द्रष्टारः

अर्थात ऋषि मन्त्र के अर्थ जानने वाला होता है।

परन्तु किसी भी वैदिक शब्द कोष के आधार पर 'ऋषि' का अर्थ 'मन्त्र बनाने वाला' नहीं किया जा सकता। यह परम्परा रही है कि जिस जिस ऋषि ने जिस जिस मन्त्र के अर्थों पर विचार किया, उस उस मन्त्र के साथ उस ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है। पर नाम लिखा होने मात्रसे तो ऋषि मन्त्र रचयिता नहीं बन जाते।

बहुत से मन्त्रों के एक से अधिक ऋषि हैं। जैसे ऋग्वेद ६।६६। वाले केवल एक ही सूक्त के एक सौ ऋषि बताए गए हैं। तो क्या इस अकेले सूक्त को सौ ऋषियों ने एक ही समय में एक स्थान पर बैठ कर बनाया? बिल्कुल नहीं। यूं भी एक ही मन्त्र के कुछ ऋषि तो भिन्न भिन्न समय में हुए हैं। अतः वे सभी एक साथ बैठ कर किसी मन्त्र की रचना कैसे कर सकते हैं? क्योंकि ऋषि मन्त्रों पर प्रकाश डालने वाले थे अतः भिन्न भिन्न समय में एक ही मन्त्र के कई ऋषि होना सम्भव और बुद्ध संगत है।

ईश्वरीय ज्ञान का समय समय पर होते रहना असम्भव

एक विचार यह भी है कि जहाँ परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में अपना ज्ञान प्रदान किया, वहाँ ईश्वर बाद में भी समय समय पर आवश्यकता के अनुसार ज्ञान का प्रकाश भिन्न भिन्न मनुष्यों पर बाइबिल, कुरान आदि के रूप में करता रहता है। इस भ्रम ने विश्व का बहुत अहित किया है। इस विचार में निम्नलिखित दोष हैं :—

(१) पूर्ण प्रभु का ज्ञान भी पूर्ण होना चाहिये। समय समय पर ईश्वरीय ज्ञान प्रकट होते रहने का अर्थ है कि आदि सृष्टि में दिए गए ज्ञान में कुछ कमी रह गई थी जिसे बाद में पूरा करना पड़ा। ऐसा मानने से परमात्मा की सर्वज्ञता में दोष आता है। अपने कार्य में सुधार की आवश्यकता तो अल्पज्ञ जीव को हुआ करती है, न कि सर्वज्ञ भगवान को। दीपक का उदाहरण लीजिये। जब मानव ने आरम्भ में मिट्टी का छोटा सा दीपक बनाया था, उस समय उसे न तो भविष्य के लोगों की आवश्यकताओं का पता था और न ही उस में इतनी बुद्धि थी कि एक दोष रहित दीपक बना पाता। पर धीरे धीरे मनुष्य का अनुभव बढ़ता गया और वह आवश्यकतानुसार दीपक में सुधार करता गया। सम्भव है कि बिजली के लैम्प में भी भविष्य में सुधार करना पड़े। परन्तु सर्वज्ञ प्रभु ने आदि सृष्टि में ही जो सूर्य बनाया था, वह आज तक सभी प्रकार की मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करता हुआ, ठीक कार्य कर रहा है। उस में किसी सुधार की आवश्यकता नहीं पड़ी। इसी प्रकार प्रभु को अपने ज्ञान में परिवर्तन करने की आवश्यकता भी नहीं हुआ करती क्योंकि वह सभी समय के सभी मनुष्यों की आवश्यकतानुसार ज्ञान दे दिया करता है। सुधार तो अल्पज्ञ मनुष्य ही अपनी पुस्तकों में किया करता है। वस्तुतः ईश्वरीय ज्ञान अपरिवर्तनशील होता है। वेद भी कहता है :—

'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति'

अथर्व १०। ८। ३२।

अर्थात् परमदेव परमात्मा के काव्य (वेद रूपी ज्ञान) का दर्शन (स्वाध्याय) करो क्योंकि यह ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता, न ही जीर्ण होता है।

२) यदि यह मान ही लिया जाय कि प्रभु अपने ज्ञान में सुधार करता रहता है। तो 'कुरान में बाइबिल से' और 'बाइबिल में वेद' से अधिक ज्ञान होना चाहिये। पर आज तक संसार का कोई भी मौलवी या पादरी एक भी ऐसी सच्चाई नहीं बता सका जो कुरान और बाइबिल में तो हो पर वेद में न हो।

३) 'ईश्वरीय ज्ञान समय समय पर होता रहता है'—यह मिथ्या विचार फ़ैलाकर कुछ लोगों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि की है। इलहाम उतरने का बहाना करके सभ्यता, धर्म और सिद्धान्तों की धज्जियां उड़ाई गई हैं। हम अपने इस कथन की पुष्टि में यहाँ तीन उदाहरण देना ही पर्याप्त समझते हैं :—

क) ब्रह्म समाज के नियमानुसार शादी के समय लड़की की आयु १४ वर्ष तथा लड़के की आयु १८ वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये। परन्तु इन्हीं के प्रसिद्ध नेता केशव चन्द्र सेन ने अपनी १४ वर्ष से कम आयु की पुत्री की शादी महाराज कूच बिहार के सपुत्र (आयु १६ वर्ष के लगभग) के साथ कर दी। बाढ़ ही खेत को खा रही थी। अतः ब्रह्म समाजियों ने इस का विरोध किया। परन्तु श्री केशव चन्द्र सेन ने ईश्वरीय ज्ञान उतरने का बहाना कर के कहा कि—चुप रहो, यह तो मुझे भगवान का आदेश हुआ है।

"Keshub Chander Sen claimed to be guided in the matter by God." "He declared the marriage as an effect of Divine Command." —The Brahma Samaj and Ecelectric Systems.

(ख) मुहम्मद साहब से पूर्व अरब निवासी (मुसलमान) कई-कई पत्नियां रखा करते थे। उन्होंने कभी किसी देवी को पवित्र दृष्टि से नहीं देखा क्योंकि उनके धर्मानुसार किसी भी देवी से शादी की जा सकती है तथा कुरान में स्पष्ट लिखा है— "तुम्हारी बीबियाँ तुम्हारे लिये खेतियाँ हैं बस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेत में।" परन्तु मुहम्मद साहब ने इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। उन्होंने पाबन्दी लगा दी कि कोई भी व्यक्ति एक समय में चार से अधिक पत्नियाँ न रखें।

पर H. G. Weles की पुस्तक 'Out lines of the World History' तथा राहुल साँकृत्यायन द्वारा रचित 'इस्लाम धर्म की रूप रेखा' पढ़ने से पता चलता है कि ५३ वर्ष की आयु में स्वयं मुहम्मद साहब ने अपने दत्तक पुत्र की पत्नी ज़ैनब से शादी कर ली। जैनब वैसे भी मुहम्मद साहब की फूफी उमैया की लड़की थी। महा-पण्डित राहुल के अनुसार मुहम्मद बदनामी से डरता था। अतः कुरान ने आदेश दिया :—"हम (ईश्वर) ने उसे (जैनब को) तुझे ब्याह दिया है। यह इसलिये कि मुसलमानों पर अपनी मौखिक (पुत्रों) की स्त्रियों से ब्याह करने में हरज न हो।" (३३:५:३) इस पुस्तक में राहुल आगे लिखता है—"बाकी विवाह जो मदीना में आने पर ५३ वर्ष के बाद हुए उनकी संख्या ९ से अधिक बतलाई जाती है (पर) प्रेरित मुहम्मद को अपने विवाह के विषय में कुरान की निम्न प्रकार की आज्ञा हैं— 'हे प्रेरित, जिन पत्नियों को तूने स्त्री धन दे दिया जो तेरे दाहिने हाथ की सम्पत्ति हुई, तेरे चचा, फूफी, मामा और मौसी की बेटियाँ, जिन्होंने तेरे साथ प्रवास किया, तथा कोई भी मुसलमान स्त्री जिसने अपने को नबी (प्रेरित) के लिए अर्पण कर दिया और नबी तू उनके साथ ब्याह करना चाहे, यह सब तेरे लिये विहित है।"

३३ : ६ : ९ :

कितने दुख की बात है कि दूसरों को संयम का पाठ पढाने वाले मुहम्मद साहब स्वयं ५३ वर्ष की आयु के बाद भी ९ से अधिक विवाह कराते हैं। बदनामी से बचने के लिए कुरान के रूप में ईश्वरीय ज्ञान उतरने का बहाना बनाया जाता है !

(ग) वर्तमान समय में ब्रह्म कुमारियों का गुरु दादा लेखराज सोलह-सोलह वर्ष की नवयुवती देवियों को अपनी गोद में बिठा लेता है, उनके साथ शतरंज खेलता था और उन की भुजाओं में अपनी भुजाएं डाल कर सैर करता था।

शोक ! महाशोक ! सीता और द्रौपदी के देश में यह निर्लज्जता ! यह व्यभिचार ! मातृ शक्ति का यह अपमान ! इस कुकृत्य के कारण सभ्यता आठ-आठ आँसू रो रही है, लाज को भी लाज आ रही है। पर इससे लेखराज जैसों को क्या ? क्योंकि 'कामातुराणां न भयं न लज्जा।' जब इस का विरोध किया जाता है तो कामातुर लेख राज भी मुहम्मद साहब से स्वर में स्वर मिलाकर कहता है–'चुप रहो यह तो भगवान का आदेश है। इसमें कोई बुराई नहीं।'

अतः यदि यह मान लिया जाए कि आदि सृष्टि में दिया ईश्वरीय ज्ञान अधूरा था और परमात्मा समय-समय पर मनुष्यों पर अपना ज्ञान उतारता रहता है तो चालाक लोग ईश्वर के नाम पर भोली भाली जनता को धोखा देकर सबके सामने हर प्रकार की बुराई करते रहेंगे। इससे व्यभिचार फैलता है।

अतः कुरान, बाइबिल, पुरान आदि मानव कृत पुस्तकें अपूर्ण, अवैज्ञानिक तथा पथ भ्रष्ट करने वाली हैं। सो केवल वेदानुसार जीवन व्यतीत करने में ही हित है। पर यहाँ एक प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या दूसरे ग्रन्थों में कोई भी सच्चाई नहीं है ? और यदि उन में लेशमात्र भी सच्चाई है तो उस सत्य को उन पुस्तकों के द्वारा ग्रहण करने में क्या हानि ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुये ऋषिवर महान् लिखते हैं— "जो-जो उनमें सत्य है सो सो वेदादि सत्य शास्त्रों का है और मिथ्या उनके घर का है। वेदादि सत्य शास्त्रों के स्वीकार में सब सत्य का ग्रहण हो जाता है। जो कोई इन मिथ्या ग्रंथों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले लिपट जावे। इसलिये 'असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति' असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे छोड़ देना चाहिये जैसे विष युक्त अन्न को।" (सत्यार्थ प्रकाश) देव दयानन्द का उतर इतना तर्क पूर्ण और स्पष्ट है कि इस प्रसंग में अधिक लिखना अनुचित होगा।

पवित्र वेद ज्ञान के बारे में कुछ भ्रान्त विचार

तर्क और प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया जा चुका है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वर्तमान युग के भी बड़े-बड़े विद्वानों ने वेद के आगे श्रद्धा से सिर झुकाया है। फ्राँस के महान दार्शनिक वोल्टेयर को जब यजुर्वेद की पुस्तक भेंट की गई थी उसने कहा था "इस सर्वाधिक मूल्यवान भेंट के लिये पश्चिम सदा के लिए पूर्व का ऋणी है।" Mons Leon Delbos के विचार अनुसार। "There is no monument of Greece or Rome more precious than the Rig-Veda." [यूनान अथवा रोम का कोई भी स्मारक ऋग्वेद से अधिक मूल्यवान नहीं है।]

प्रसिद्ध विद्वान Thoreau तो यहाँ तक कह उठा —"What extracts from the Vedas I have read, fall on me like the light of higher and purer luminary which describes a loftier course through a purer stratum free from particulars, simple, universal."

अर्थात्—'मैंने वेदों के जो उदाहरण पढ़े हैं वे मुझ पर एक उच्च और पवित्र ज्योति पुंज के प्रकाश की तरह पड़ते हैं जो एक उत्कृष्ट मार्ग का वर्णन करता है वेदों के उपदेश सरल, देश और जाति विशेष के इतिहास से रहित और सार्वभौम हैं।"

परन्तु इतने पवित्र एवं मानव कल्याण के विचारों से पूर्ण वेदों के विषय में इस समय के कुछ लेखकों के भ्रान्तिपूर्ण विचार पढ़िये :—"ऋग्वेद की ऋचाएं अबोध शिशुओं की अनपढ़ प्रार्थनाएं हैं।"
—फलीडर

"I remind you again that the Vedas contain a great deal of what is childish and foolish thought very little of what is bad and objectionable.

…………many hymns are utterly meaningless and insipid."—Max Muller—"What is the Veda ?" Page 34.

अर्थात्—"मैं आप को फिर याद दिला दूं कि वेद में पर्याप्त मात्रा में बालपन और मूर्खता पूर्ण भाव है, यद्यपि उसमें ऐसे तत्व बहुत कम हैं जो बुरे और आपत्ति जनक हों…कई मन्त्र तो सर्वथा अर्थ रहित और निःसार है।"

"Many Hindus look upon the Vedas as revealed scripture. This seems to me to be peculiarly unfortunate, for thus we miss their real significance, the unfolding of human mind in the earliest stages of thought."

—The Discovery of India

"वेद मनुष्यों की कल्पना मनुष्यों की सृष्टि है, इतिहास प्रेमियों तथा आदिम मानव सभ्यता के जिज्ञासुओं के लिये वह उपयोगी सामग्री प्रदान करते हैं।"

—राहुल कृत वैज्ञानिक भौतिकवाद, पृष्ठ १०४

सारांश यह कि ऋषि दयानन्द के आने से पूर्व वेद को बच्चों की बिलबलाहट और गडरियों के गीत कहा जाता था। आखिर ऐसा क्यों? कारण के बिना तो कार्य होता नहीं। अतः इस का भी कारण तो होगा ही। इस भ्रान्ति का मूल जानना आवश्यक है क्योंकि रोग का निदान बिना कारण जाने नहीं हो सकता। इस मिथ्या विचार की तह में निम्नलिखित कारण दीख पड़ते हैं :—

१. भारतीयों की अरुचि

पिछला कुछ समय विश्व गुरु भारत के पतन का काल रहा है। गुलाम जातियों के देश निज, भाषा, धर्म एवं सभ्यता का प्रेम प्रायः समाप्त हो जाया करता है। अतः हमारा भी अपने धर्म और सभ्यता के स्रोत-वेद-के प्रति अरुचि का होना स्वाभाविक था। वेद पूजा के लिए रह गए थे। उनका पढ़ना बिल्कुल समाप्त हो गया था। ऐसे समय में दूसरों को वेद की ओर प्रेरित करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। कहते हैं—"राजा राम मोहन राय लन्दन में थे। उन्होंने फ्रैडरिक रोजन को ब्रिटेन के संग्रहालय में ऋग्वेद की हस्तलिपि की नकल करने में खूब व्यस्त देखा। राजा हैरान हो गया। उसने रोजन को बताया कि उसे वेद मन्त्रों पर अपना समय बिल्कुल भी नष्ट नहीं करना चाहिये, अपितु उपनिषदों का अध्ययन करना चाहिये।"

The Rigveda and Vedic Religion by Clayton Page 21.

एक ओर तो महात्मा मनु कहते हैं कि—

योऽधीत्य द्विजो वेदमय कुरुते यमम्
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥

अर्थात्—'जो वेद को न पढ़कर अन्यत्र श्रम किया करता है वह अपने पुत्र पौत्र सहित शूद्र भाव को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।' पर दूसरी ओर राजा राम मोहन राय जी 'वेद के अध्ययन' को 'समय नष्ट करना' कहते हैं। हाय रे पतन ! तेरी भी कोई सीमा नहीं।

(२) पाश्चात्य लेखकों का वास्तविक उद्देश्य ईसाई मत का प्रचार करना था अतः उनके द्वारा वेद की निन्दा किया जाना स्वाभाविक है। उन्होंने वेद का अनुवाद वेद को निकृष्ट तथा बाइबिल को सर्वोत्तम पुस्तक सिद्ध करने के लिए किया है। इसी लिए मैक्समूलर अपनी पत्नि के नाम एक पत्र में लिखता है—"मेरा यह संस्करण तथा वेद का अनुवाद आने वाले समय में भारत के भाग्य तथा उस देश के लाखों व्यक्तियों पर दूर तक असर डालेगा। यह उन के धर्म का मूल है और मैं निश्चय पूर्वक अनुभव करता हूं कि उन्हें यह दिखाना कि यह मूल कैसा है, गत तीन हजार साल में इस से उत्पन्न होने वाली बातों को जड़ से उखाड़ने का एक मात्र ढंग है।"

("The edition of mine and the translation of the Veda, will here after tell to a great extent on the fate of India and on the growth of millions of souls in that country. It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure, is the on y way of up-rooting all that has sprung from it, during the last three thousand years.")

इसी आशय के एक पत्र में मैक्समूलर १६ दिसम्बर १८६८ को भारत मन्त्री ड्यूक आफ आर्गायल को लिखता है—"भारत का प्राचीन धर्म लगभग नष्ट है, और यदि इसाईयत उस का स्थान नहीं लेती, तो यह किस का दोष होगा ?"

("The ancient religion of India is doomed and if Christianity does not step in, whose fault will it be ?"

यह है वह कलुषित विचार धारा जिस के प्रभाव में वेदों का अनुवाद किया गया। फिर वेद के साथ न्याय की आशा कहां ? अतः 'वेद रहस्य' (प्रथम खण्ड पृष्ठ ३१) में श्री अरविन्द ने ठीक लिखा हैं—"(पाश्चात्य विद्वानों द्वारा) नयी व्यवस्थाएं इस प्रबल लिप्सा को लेकर विकसित की गयी थीं कि, वेद मन्त्र उन बर्बर जातियों के प्रारम्भिक इतिहास, रीति रिवाजों तथा उन की संस्थाओं का पता देने वाले सिद्ध हो सकें।"

इस लिए पाश्चात्य लेखकों के विचार संकीर्ण और पक्षपात पूर्ण होने के कारण मान्य नहीं हैं।

(३) रस्किन का विचार है कि जैसे स्वर्ण को प्राप्त करने के लिए चट्टानों को तोड़ना होता है उसी प्रकार ग्रन्थ के भाव को समझने के लिए शब्द रूपी पत्थरों को तोड़ना पड़ता है। अतः सही शब्दार्थ करने के लिए उस भाषा का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। भाषा पर अधिकार प्राप्त किए बिना पुस्तक के भाव को नहीं समझा जा सकता। प्रसिद्ध वैज्ञारिक हक्सले ने ठीक लिखा है कि—जिसे ग्रीक या लेटिन की ए. बी. सी भी नहीं आती, वह उस भाषा में लिखे नाटक पर क्या टिप्पणी करेगा ?

इसी कारण पाश्चात्य विद्वानों का वेद भाष्य प्रमाणित नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनका संस्कृत का ज्ञान नहीं के बराबर है। इस प्रसंग में दो तीन घटनाओं का उल्लेख करना ठीक रहेगा—

पं० धर्म देव जी ने एक बार प्रो० थोमस से पूछा—"क्या आप को संस्कृत बोलने का अभ्यास है ?" तो उत्तर मिला—"How I wish I could speak in Sanskrit fluently like you, but unfortunately I have on practice." (मेरी प्रबल इच्छा है कि आप की तरह धारा प्रवाह संस्कृत बोल सकता, पर दुर्भाग्य से मुझे कोई अभ्यास नहीं हैं।"

महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज लिखते है कि एक भारतीय विद्वान इंगलैंड गया। वहाँ वह प्रो० मैकडोनल से मिला पर प्रो० मैकडोनल उन के साथ संस्कृत में बात न कर सके।

तो क्या संस्कृत का इतना कम ज्ञान रखने वाले लोग वेद का सही अनुवाद कर सकते हैं ? बिल्कुल नहीं। मैक्समूलर ने ठीक लिखा है—"हम तो वैदिक साहित्य की सामुद्रिक सतह पर ही फिरते हैं। अभी हम ने उस समुद्र में गोता लगाकर रत्न नहीं निकाला। हम ने तीस वर्ष के परिश्रम के पश्चात् वेद का जो अनुवाद किया—वह आजमायश है—प्रमाणित नहीं है शुद्ध और सम्पूर्ण अनुवाद के लिये एक शताब्दी और चाहिये। इस पर भी मुझे यह शंका है कि हम वेद का सत्य अनुवाद कर भी सकेंगे ?"

अत: पश्चिमी लेखक तो स्वयं स्वीकार करते हैं कि वेद का सही अनुवाद करना उनके बस का कार्य नहीं है। यहां हम इस बात की पुष्टि के लिए निम्न मन्त्र की व्याख्या करेंगे:—

वाय वायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।
तेषां पाहि श्रुधि हवम्॥ ऋ० १।२।१॥

Sanskrit Texts के Volume II में पृष्ट २०५ पर इस मन्त्र का अर्थ muir (म्यूर) इस प्रकार करता है कि—Come, OVayu, these Soma are prepared. Drink of them. hear our invocation" अर्थात्-हे वायु ! आओ। ये सोम तैयार हैं। इन्हें पियो। हमारी प्रार्थनाओं को सुनो।" इसी प्रकार Rigveda Translation and notes (vol. I) में विल्सन इस का अर्थ करता हुआ लिखता है—Vayu pleasant, to behold, approach, these libations are prep red for thee, drink of them, hear our invocations.'

पर इसका शुद्ध अर्थ यह है—"स्पर्शादि गुणों से देखने योग्य वायु गतिमान और सुगन्धी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाली है। यह सब जगत के जीवों और वृक्षों आदि को जल और प्राण से सुशोभित करके रक्षा करती है। इसके द्वारा ही कहने और सुनने का व्यवहार होता है।"

अत: पाश्चात्य लेखक मन्त्रों का सही अर्थ करने की योग्यता नहीं रखते।

(४) पाश्चात्य विद्वानों ने सायण के भाष्य के आधार पर वेद का अनुवाद किया है। वेदार्थ विषय में भ्रान्ति उत्पन्न करने में सायण का भाष्य मुख्य कहा जा

सकता है क्योंकि सायण और महीधर आदि वेद का सही अनुवाद करने में असमर्थ रहे हैं। अतः "जब इन्हीं लोगों (महीधर, सायण आदि) के व्याख्यान अशुद्ध हैं, तब यूरोप खण्ड वासी लोगों ने न उन्हीं की सहायता लेकर अपनी देश भाषा में वेदों के व्याख्यान किए हैं, इन के अनर्थ का तो क्या ही कहना है।" (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका)

इस लिए बुराई की जड़ सायण का यह अशुद्ध, अवैज्ञानिक, एकांगी और संकुचित अनुवाद है क्योंकि "सायण के भाष्य ने पुरानी मिथ्या धारणाओं पर प्रमाणिकता की मुहर लगा दी और उसके निर्देश, उस समय जबकि एक दूसरी सभ्यता ने वेद को ढूंढ कर निकाला और उस का अध्ययन आरम्भ किया, यूरोपियन विद्वानों के मन में नई नई गलतियों के कारण बने।" (श्री अरविन्द कृत वेद रहस्य, पृष्ठ २९)

सब मन्त्रों को केवल यज्ञ परक अर्थ में घसीटना सायण भाष्य की दुर्भाग्य पूर्ण देन है। इस लिए ब्लूमफील्ड कह उठा था "वेद एक आदम जाति के यज्ञ सम्बन्धी मन्त्र हैं।" वस्तुतः सायण का भाष्य ईतना निकम्मा है कि वेद के प्रसिद्ध विद्वान पं० ब्रह्म दत्त जी जिज्ञासु लिखते हैं—"यदि सायण भाष्य का ही हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू व अन्यत्र जिस किसी भाषा में अनुवाद करके किन्हीं शिक्षणालयों में रख दिया जावे तो निश्चय ही समझना चाहिये कि कुछ श्रद्धालुओं को छोड़ कर सब की एक ही ध्वनि उठेगी कि ये वेद जंगलियों की यों ही बड़बड़ाहट या अण्ट सण्ट कृतियां हैं।" अतः सायण भाष्य ने पाश्चात्य लेखकों की आंखों पर पट्टी बाँध दी।

दयानन्द और वेद

सदियों से अलमारी में कैद वेद को जनता तक पहुंचाने का श्रेय देव दयानन्द को है। भारत के इस सन्त का जीवन वेद के लिए था। ऋषि दयानन्द ने समाधि में बैठ बैठ कर वेद के गहन रहस्यों को समझा। ऋषि की सूझ निराली थी। संस्कृत भाषा पर उन का पूर्ण अधिकार था। बहुधा भाष्यकारों ने वैदिक शब्दों के प्रचलित अर्थ लेने की गलती की। पर ऋषिवर ने वेद के इन शब्दों के यौगिक अर्थ किए। इस क्षेत्र में ऋषि की यह एक महान देन है। लगभग सभी निष्पक्ष विद्वान ऋषि दयानन्द की सूझ तर्क; वेद सम्बन्धी ज्ञान तथा पण्डित्य को स्वीकार करते हैं। फिटज (Fitz) ने लिखा है—"पाश्चात्य विद्वानों का संस्कृत और वेदों का ज्ञान नहीं के बराबर है। हमें उनके कथन पर बिल्कुल विश्वास नहीं हम केवल दयानन्द के भाष्य को प्रामाणिक समझते हैं।" महात्मा टी० एल० वास्वानी के विचारानुसार।' "Swami Dayanand Saraswati was in the first place. India's eye opener to the wisdom of the Vedas. I know none in modern India who was so great a scholar as the Swami."

"स्वामी दयानन्द सरस्वती वेदों के ज्ञान के प्रति भारतीयों का ज्ञान चक्षु खोलने वाला पहला व्यक्ति था मुझे आधुनिक भारत में स्वामी के समान कोई भी विद्वान ज्ञात नहीं।"

वास्तव में महात्मा वास्वानी का विचार अक्षरशः सत्य है। क्योंकि वेद भाष्य की ऋषि दयानन्द की शैली ही सर्वोत्तम और पूर्ण है। इस विषय में श्रीयुत अरविन्द

भी स्वीकार कर चुके हैं कि–"वैदिक व्याख्या के बारे में मेरा यह विश्वास हो चुका है कि वेदों की अन्तिम पूर्ण व्याख्या कुछ भी हो, दयानन्द प्रथम सत्य मार्ग दर्शक के रूप में सम्मानित किया जाएगा। समय ने जिन द्वारों को बन्द कर रखा था उसने उनकी चाबियों को पा लिया और बन्द पड़े हुए स्रोत की मुहरों को तोड़ कर परे फैंक दिया।"

[" In the matter of Vedic interpretation I am convinced that what ever may be the final complete interpretation, Dayanand will be honoured as first discoverer of the right clues. He has found the keys of the doors that time had closed and rent asunder the seals of the imprisioned fountains."

अतः यह बात निर्विवाद है कि दयानन्द का भाष्य ही प्रामाणिक है।

ऋषि दयानन्द का प्रभाव

ऋषि के इस पवित्र कार्य की विश्व पर अमिट छाप पड़ी है। दयानन्द ने पाश्चात्य लेखकों के अग्रगामी मैक्समूलर का सिर भी वेद के आगे झुका दिया। वेदों को केवल 'uncultivated race of mere heathens and savages' के लिये मानने वाले मैक्समूलर ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका को पढ़ कर, मानों प्रायश्चित करने के लिये, "हम भारत से क्या सीख सकते हैं ?" नामक पुस्तक की रचना की। उसमें मैक्समूलर स्वीकार करता है—"मेरा यह निश्चित मत है कि संसार में मनुष्य मात्र के स्वाध्याय के लिये वेद के अतिरिक्त अन्य कोई आवश्यक ग्रन्थ नहीं है।"

मैक्समूलर एक और स्थान पर लिखता है कि—"I maintain that to every body who cares for himself, for his ancestors, for his history, for his intellectual development, a study of the Vedic literature is indispensible."

अर्थात्··· 'मेरा विचार है कि आत्म ज्ञान की प्राप्ति की इच्छा रखने वाले तथा अपने पूर्वजों, इतिहास और मस्तिष्क उन्नति के लिए सचेत प्रत्येक व्यक्ति के लिए वेद का स्वाध्याय नितान्त आवश्यक है।"

मैक्समूलर ही नहीं, अपितु सभी विद्वान ऋषि के वेद सम्बन्धी विचारों का समर्थन करने पर विवश हो गये हैं। वेद को केवल पूजा पाठ की पुस्तक मानने वाले भी आज इसे समस्त ज्ञान का भण्डार मान चुके हैं। Vedic India में पावगी साहब लिखते हैं—The Veda is the fountain head of all knowledge. (वेद समस्त ज्ञान का स्रोत है)

The Vedic fathers of Geology में तो पावगी साहब ने यहां तक लिख दिया है कि–"The Vedas contain many things not yet known to any body, as they form a mine of inexhaustible literary wealth, that has only tially been opened and has still remained unexplored."

अर्थात्—वेदों में बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनका अभी तक किसी को ज्ञान नहीं। क्योंकि वे साहित्यिक धन की समाप्त न होने वाली खान है जिस का अभी थोड़ा भाग ही खुला है और जो अभी तक अज्ञात ही पड़ा है।"

न केवल भारतीय विद्वान अपितु पाश्चात्य लोगों पर भी वेद का सिक्का बैठ चुका हैं। बेल्जियम के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं नोबल पुरस्कार विजेता मैटरलिंक ने लिखा है—"Only the glare of the clairvoyant directed upon the mysteries of the past may reveal unrivalled wisdom which lies behind the Vedas,"

अर्थात्—"अतीत के रहस्यों पर डाली हुई अन्तर्दर्शी की एक मात्र दृष्टि वेदों में निहित अद्वितीय ज्ञान को प्रकट कर सकती।"

इसी लिये मोरिस फिलिप ने स्वीकार किया है कि—"We are justified in concluding that the higher and purer conceptions of the Vedic Aryans were the result of a primitive Divine Revelation."

अर्थात्—"हमारा इस निष्कर्ष पर पहुंचना ठीक है वैदिक आर्यों के उच्चतर और पवित्र पर विचार आरम्भिक ईश्वरीय ज्ञान का परिणाम थे।"

वेद और विज्ञान

ऋषि दयानन्द तो वेद में विज्ञान भी मानते हैं। Biogrophical Essays से मैक्समूलर लिखता है-"स्वामी दयानन्द के लिए वेद में लिखी प्रत्येक बात न केवल पूर्णतया सत्य है अपितु वह इस से भी एक पथ आगे गए तथा वह वेद की व्याख्या से दूसरों को यह निश्चय कराने में सफल हुए हैं कि प्रत्येक जानने योग्य बात वेद में पाई जाती है अतः आधुनिक विज्ञान के आविष्कार भी वेद में वर्णित है।" तो क्या ऋषि का यह विचार, कि वेद में विज्ञान है, सत्य है ? इस प्रश्न का उत्तर हम कुछ विद्वानों के मुख से दिलाना चाहेंगे। Introduction to the message of the 20 th century में पी० एन० गौड़ लिखता है—The Rigveda deals with the theorms and experiments while the process of preparing the reagents and apparatus is recorded is the Yajurveda which is intact a laboratory guide."

अर्थात्—"ऋग्वेद वैज्ञानिक सिद्धातों और परीक्षणों का वर्णन करता है जब कि रसायनिक वस्तुओं और समान के तैयार करने की विधि यजुर्वेद में पाई जाती है। यजुर्वेद वास्तव में प्रयोग शाला मार्ग दर्शक है। The vedic Gods में डाक्टर रैले स्वीकार करता है—"Our present anatomical knowedge of the nervous system tallies so accurately with literal description of the world given in the Rigveda that a question arises in mind whether the vedas are really religious book or whether they are books on anatomy and physiology of the nervous system."

अर्थात्—हमारा आजकल का नाड़ी सिस्टम की रचना का ज्ञान ऋग्वेद के जगत के शाब्दिक वर्णन से इतनी अच्छी तरह मिलता है कि मन में कई बार यह प्रश्न उठने लगता है कि क्या वेद वास्तव में धर्म ग्रन्थ हैं या वे शरीर विज्ञान और नाड़ी सिस्टम की रचना विषयक ग्रन्थ है।

सर विलियम जोन्स के विचारानुसार From the Vedas are deduced the practical arts of surgery, medicines, music, dancing, archery and architect under which system of mechanical art is inculded."

शल्य चिकित्सा, औषधि शास्त्र, संगीत विद्या, नृत्य कला, धनुर्विद्या तथा गृह निर्माण विद्या की व्यवहारिक कलायें जिनमें यान्त्रिक कला की पद्धति भी सम्मिलित है, वेदों से ली गई हैं।

जैकोलियट अपनी पुस्तक The Bibil in India में लिखता है—"Astonishing fact ! the ideas of only the Vedas are in perfect harmony with the modern science." (कितनी आश्चर्य की बात है ! केवल वेद के ही विचार आधुनिक विज्ञान के साथ पूर्ण रूप से मिलते हैं।)

अतः पूर्व और पश्चिम के विद्वान वेद में विज्ञान मान चुके हैं। यहां हम विद्वानों द्वारा मान्यता प्राप्त उपरोक्त सत्य की पुष्टि एक उदाहरण द्वारा करेंगे। ऋग्वेद में एक मन्त्र आया है—

सूरी रथस्य नप्त: १। ५०। ६।

यहां 'सूर्य' को सब का प्रकाशक होने से 'सूर' कहा गया है। 'रथ' शब्द 'रह' धातु से बना है जिसका अर्थ 'गति करना' (to move) है। नक्षत्र घूमते रहते हैं अतः उन्हें 'रथ' की संज्ञा दी गई है। 'रथ' इंगलिश शब्द planet का सही अनुवाद है क्योंकि planet लैटिन शब्द planeta से बना है जिसका अर्थ हैं Wandeter. नप्त: का अर्थ 'नहीं गिरने देना' है सायण भी मानता है कि "नप्त्य: न पातयित्र्य: याभिर्युक्ताभि रथो याति न पतति तादृशी।" अर्थात् जो इसे नहीं गिरने देते, उन्हें नप्त्य कहते हैं। अतः 'सूरो रथस्य नप्त:' का अर्थ है कि "सूर्य इस सौर मण्डल के नक्षत्रों को नहीं गिरने देता हैं।"

ऋग्वेद एक और स्थान पर कहता है—"उक्षादाधार पृथ्वी मुतद्याम्" अर्थात् सूर्य भूमि आदि नक्षत्रों को आकाश में रोके हुए है।"

अथर्ववेद ने "सूर्य्येणोत्तभिता द्यौ:" कहकर इस सत्य का प्रतिपादन किया है। सूर्य इन नक्षत्रों को किस प्रकार रोके हुए है ? इस प्रश्न का उत्तर ऋग्वेद ने निम्नलिखित मन्त्र द्वारा दिया है :—

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।

हिरण्ययेन सविता रथेना देवों याति भुवनानि पश्यम्। १।३५।२।

इस मन्त्र में स्पष्ट कह दिया है कि धुरी के चारों ओर घुमने वाला यह सूर्य सौर मण्डल के भूमि आदि नक्षत्रों को अपनी आकर्षण शक्ति के द्वार रोके हुए है।

आज का भौतिक विज्ञान इन वेद मन्त्रों के एक एक शब्द का समर्थन कर रहा है। पर दूसरे मत वालों के पास एक भी ऐसी पुस्तक नहीं जिस में से विज्ञान निकाला जा सके।

अतः सभी मनुष्यों को उचित है कि मिथ्या मत वादियों के कुचक्रों में न फ़ंस कर वेद-मार्ग के पथिक बनें। इसी के द्वारा विम्ब में सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। यही सकल ज्ञान का भण्डार है। अन्त में हमारी परमदेव परमात्मा से प्रार्थना है कि हे प्रभो ! बल दो, बुद्धि दो, ताकि हम तेरी पवित्र वेद वाणी के अनुसार जीवन बना सकें॥



गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली

के प्रकाशन

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.५०
तत्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	७.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का संदेश (पॉकेट)	४.००
एक ही रास्ता	२.५०
मानव जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	१.२५
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायण व्रत कथा	१.२५
प्रभुदर्शन (पॉकेट संस्करण)	५.००
दो रास्ते (पॉकेट)	५.००
यह धन किसका है ? (पॉकेट)	५.००
भक्त और भगवान् (पॉकेट)	३.००
बोध कथाएं (पॉकेट)	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.००
The only way	२.५०
Anand Gayarti Discoarses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्रीमहात्मा आनन्दस्वामी सरस्वती	८.००
,, ,, ,, उर्दू	१०-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

शिव संकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेद सौरभ	४.००
वेद सौरभ [संक्षिप्त]	१.००
घरेलू औषधियाँ	२.५०
वैदिक विवाह पद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	६.००
वैदिक उदात्त भावनाएं	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
चतुर्वेदशतक	८.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा अजिल्द	२०.००
,, सजिल्द	३०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

वैद्य गुरुदत्त

विश्वेदेवा	६.००
अद्वैत मीमांसा	६.००

पं० रामचन्द्र देहलवी

देहालवी लेखावली	७.००

पण्डित बिहारीलाल शास्त्री

विचार वाटिका	३.००

प्रो० विष्णुदयाल

वेद भगवान् बोले	४.००

स्वामी सर्वदानन्द

आनन्द उपदेशमाला	१.५०

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य संदेश	७.००
वैदिक विचारधारा का वैदिक आधार	२०.००

स्वामी सत्यानन्द

दयानन्दप्रकाश	१५.००

पं० भगवद्दत्त

भारतीय संस्कृति का इतिहास	७.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश	२५.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	०.१५
आर्याभिविनय	१.००
आर्यसमाज के नियमोपनियम	०.२५
आर्योद्देश्य रत्न माला	०.२५
व्यवहार भानु	१.००
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण	०.४०
बालशिक्षक	०.४०

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार

सन्ध्या विनय	१.५०
प्रार्थनादीप	२.००
पूर्व और पश्चिम	७.५०
जीवन की राहें	४.००
सु-राज्य की रूपरेखा	०.५०

म० नारायण स्वामी

प्राणायाम विधि	०.६०
आर्यसमाज क्या है ?	१.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला	३.००

संकलन

महर्षि दयानन्द के स्वप्नों का आर्यसमाज	५-००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द	४.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना	१-००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्री मद्भगवतगीता	१-५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त)	१-००

स्वामी दर्शनानन्द कृत

कथा पचीसी	२-५०

पं० राजेन्द्र

भारत में मूर्तिपूजा	४.००

स्वामी वेदानन्द

स्वाध्यायसंग्रह	४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्तव्य	०.५०

स्वेट मार्डन

उन्नति कैसे करें ?	३.००
धनकुबेर कैसे बनें ?	३.००
अपना खर्च कैसे घटायें ?	३.००
सफल कैसे हों ?	३.००
अवसर को पहचानो	३.००
अपने आप को पहचानिए	३.००

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१.५०
स्वामी श्रद्धानन्द	१.००
गुरु विरजानन्द	१.००
पं० लेखराम	१.००
पं० गुरुदत्त	१.००
स्वामी दर्शनानन्द	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा प्रथम भाग	०.६०
वैदिक धर्मशिक्षा द्वितीय भाग	०.६०
वैदिक धर्मशिक्षा तृतीय भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा चतुर्थ भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा पंचम भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा षष्ठ भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा सप्तम भाग	१.२५
वैदिक धर्मशिक्षा अष्टम भाग	१.२५

हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार	०.५०

भजन पुस्तकें

नन्दलाल

गीत सागर	३.००
गीत श्रद्धांजलि	१.००

कर्मकाण्ड

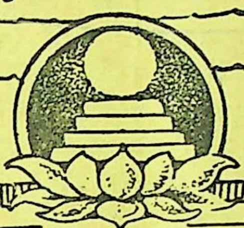
वैदिक सन्ध्या २५ पैसे, सैकड़ा	१८.००
वैदिक यज्ञप्रकाश ३० पैसे "	२५.००
आर्य सत्संग गुटका ८० पैसे "	६०.००

पं० सोमदत्त विद्यालंकार

पंचयज्ञ प्रकाशिका	२.०

प्रकाशक , मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर एस० नारायण एण्ड संस पहाड़ी धीरज दिल्ली में मुद्रित कर "वेदप्रकाश" कार्यालय, ४४०८, नई सड़क दिल्ली से प्रकाशित किया

वेद प्रकाश



वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

नये प्रकाशन

स्वर्गीय श्री पं० रामचन्द्र देहलवी के टेपरिकार्ड किये भाषणों का प्रकाशन—

१. वेद व्यावहारिक हैं
२. शंका समाधान
३. पूजा क्या क्यों कैसे
४. ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई
५. वेद का इस्लाम पर प्रभाव

प्रत्येक का मूल्य ००-७५ प्रति

स्वर्गीय श्री पं० रामचन्द्र देहलवी महान् तार्किक थे। वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि अकाट्य तर्क से वे किया करते थे। विरोधी विचार वाले भी उनके तर्कों से पराजित रहे। प्रत्येक आर्य को उनकी ये पुस्तकें अपने यहां अवश्य संभाल कर रखनी चाहिए। अपने लिए मंगाये। अपने मित्रों के लिए मंगाये। वैदिक सिद्धान्त के विरोधियों के लिए मंगवाये।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष : २६ अंक ४] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [नवम्बर १९७६

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा. जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेद व्यावहारिक हैं

स्वर्गीय श्री पं० रामचन्द्र देहलवी शास्त्रार्थ-महारथी

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नाऽसुव ।

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः

माननीया बहिनो, भाइयो व प्यारे बच्चो !

यह जो मन्त्र मैंने पढ़ा है इसमें भगवान् से यह प्रार्थना की गई है कि हे जगदीश्वर, जगत के उत्पन्न करने वाले और शुभ कर्मों के प्रेरक ! कृपा करके हमसे, जितने दुर्गुण व दुर्व्यसन हैं, उन्हें दूर करें और जो हमारे लिए भद्र बात है वह हमको प्राप्त हो जाए। ऐसी परमात्मा से प्रार्थना की गई है।

'देव और सविता' इन दो शब्दों के साथ उसको सम्बोधित किया गया है। परमात्मा देव है। बड़ी-बड़ी चीज़ें उसने हमको दान दी हैं। सूर्य का प्रकाश दान दिया है, हमें जमीन दी है, ज़मीन के ऊपर की कई चीज़ें हमें दी हैं, हमारा जीवन हमको दिया है; शरीर दिया है। इस प्रकार भगवान् बड़ा दानी है। उसने ऐसे-ऐसे पदार्थ रचे हैं कि जिनसे हम अपना कार्य कर सकें। रात्रि में हम अच्छी तरह काम नहीं कर सकते ; लेकिन जब सूर्य का उदय होता है तब हम अपना कार्य भली प्रकार कर सकते हैं (**दीपनाद्वा**)। आगे कहते हैं कि (**द्यो तनाद्वा**) उसने वेद का प्रकाश, वेद का ज्ञान हमको दिया है जिससे हम यह जानें कि कौन-सा काम करने के योग्य है और कौन-सा काम करने योग्य

नहीं है। इसलिए परमात्मा ने वेद-ज्ञान दिया है और (**स्थानोभव-तीतिवा**) जितना भी प्रकाश है उसका वह (Reservior) है, उसका वह भण्डार है, सारा प्रकाश वहीं से आता है। उससे (परमात्मा से) हम प्रार्थना करते हैं कि हे जगदीश्वर! '**विश्वानि दुरितानि परासुव**' जितने दुर्गुण व दुर्व्यसन हैं वे हमसे दूर हो जाएँ और '**यद्भद्र**'' जो कल्याण करने वाली बातें हैं वे हमें प्राप्त हो जाएँ परन्तु यह याद रखना चाहिए कि केवल प्रार्थना से भगवान् नहीं मानेगा।

प्रार्थना पुरुषार्थपूर्वक होनी चाहिए। कैसे? ये बच्चे स्कूल में पढ़ते हैं, अगर ये अपने मास्टर जी से प्रार्थना करें कि मास्टर जी! हमें आप पास कर दीजिए। हम बार-बार आप से प्रार्थना करते हैं कि आप हमको पास करें, हम अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाएँ।

तो मास्टर जी कहेंगे, "तुम मेहनत करो, मेहनत करके मुझसे प्रार्थना करो तब तो कुछ हो सकेगा।" लेकिन तुम मेहनत कुछ न करो, साल-भर खेलते रहो और जब परीक्षा हो उसमें तुमको प्रश्न-पत्र ऐसा आवे कि तुम उत्तर न दे सको तब किसी दूसरे लड़के की कापी लेकर नोट करने लगो, कापी करने लगो तो मास्टर तुमसे कापी छीन लें। तब छीनने से क्या होगा कि तुम फेल हो जाओगे, तुम पास न होओगे।

"क्यों ?" केवल प्रार्थना से परमात्मा नहीं मानता है। परमात्मा क्या ? हमारा उस्ताद जो है वह भी केवल प्रार्थना से नहीं मानता है। "वह कैसे मानता है ?" "प्रयत्न करो, मेहनत करो। जो सबक़ तुमको दिया जाता है उसको याद करो और याद करके फिर आओ हमारे पास और जब समझ में न आवे तब हमसे पूछो। यह प्रकार है।" तो भगवान् से भी इसी प्रकार से क्या करना चाहिए ? जो चीज़ हम चाहते हैं उसके लिए पूर्ण प्रयत्न, पुरुषार्थ करने के बाद ही परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि "हे जगदीश्वर! यह हमें दो।" वैसे वह कभी नहीं मानता, याद रखिए। इसीलिए स्वामी जी महाराज ने 'सत्यार्थ-प्रकाश' में स्पष्ट रूप से लिखा है कि—

'प्रार्थना कैसी होनी चाहिए ?'

'परमात्मा से (प्रार्थना) पुरुषार्थपूर्वक होनी चाहिए।'

आपने देखा होगा कि अगर रास्ता अँधेरा है तो लालटेन किसके हाथ में दी जायेगी ? आँख वाले के हाथ में दी जाएगी। अन्धे के हाथ में नहीं दी जाएगी। अन्धे को रास्ता मालूम नहीं है लेकिन आँखवाला रास्ते पर चल सकता है। इसलिए लालटेन उसी के हाथ में होगी।

"तो भगवान् किसको ज्ञान देता है ? किसकी बुराई को दूर करता है ?"

"उसकी करता है जो भगवान् की आज्ञा का पालन करके बुराई को स्वयं दूर करना चाहता है ।"

इसलिए एक बात याद रखो—बच्चो ! तुम भी और जो बड़े हैं वे भी—कि भलाई यदि अपने अन्दर लेनी है तो बुराई निकालनी पड़ेगी । इसीलिए मन्त्र में बताया गया है कि पहले दुर्गुण व दुर्व्यसन दूर हो जाएँ, पीछे भली बात आए । क़ायदा यह है कि अगर आप अपने घर में खाना खाने आएँ तो पहले वह थाली जो जूठी है माँजनी पड़ेगी और माँजने के बाद फिर खाने के लायक भोजन उसमें आएगा । इसलिए पहले जो निकालने लायक चीज़ है, जो दूर करने के लायक है, जो साफ़ करने के योग्य है उसको साफ़ करो और जब थाली साफ़ हो जाए तब उसमें खाओ यही तरीक़ा वेद-मन्त्र में बतलाया गया है कि पहले दुर्गुणों को दूर करो फिर सद्‌गुण तुम्हारे पास आएँगे । मेहनत करने से अपने-आप तुम्हें प्राप्त होंगे ।

दूसरी एक बात और भी है । कभी आपने देखा होगा कि हमारी बहिनें या बेटियाँ कभी कपड़ा रँगवाने के लिए, अपनी साड़ी रँगवाने के लिए रंगरेज़ के यहाँ जाती हैं । अगर साड़ी मैली हो तो रंगरेज़ क्या कहता है ?

रंगरेज़ कहता है कि "मैल को दूर करो, कपड़ा अच्छी तरह धोकर लाओ, फिर रँगवाओ । अच्छा रंग चढ़ेगा" यानि **'दुरितानि परासुव'** —जो दुर्गुण, दुर्व्यसन—जो बुरी चीज़ है—मैल है, उसे निकालो फिर तुम्हारी मर्ज़ी के मुताबिक उस पर रंग आएगा । वैसे नहीं आ सकता । यह चीज़ है याद रखने की ।

क्या दिल्ली के अन्दर बसों में ऐसी व्यवस्था नहीं है ? अवश्य ऐसी ही व्यवस्था होगी कि पहले लोग बसों में से उतरें और फिर चढ़ें । जब तक लोग बसों में से उतरते हैं तब तक अन्य लोग लाइनों में अपनी बस में चढ़ने की बारी की प्रतीक्षा करते हैं । यदि कोई इससे पहले चढ़ने की कोशिश करता है तो बस के दरवाज़े पर खड़ा कण्डक्टर बस में चढ़ने की जल्दी करनेवालों को रोक देता है—"ठहरिए साहब ! पहले लोगों को उतर जाने दीजिए । जल्दी मत कीजिए । जब उतरने वाले उतर जाएँ तब आप चढ़िएगा ।" **"विश्वानि दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव"** इस वेद-मन्त्र को चाहे कण्डक्टर बोल नहीं रहा है किन्तु व्यवहार में ला रहा है ।

स्टेशन पर चले जाइए। टिकिट ख़रीदने वालों की लाइन लगी हुई है। वे पहले टिकिट लेंगे और जो नया आता जाएगा लाइन में खड़े लोगों के पीछे खड़ा होता जाएगा, वह आगे नहीं बढ़ेगा। इस तरह बराबर नियम चल रहा है। जो पहले आए वही पहले टिकिट ले। फिर रेल में सवार होने के लिए भी वही नियम। पहले उतरनेवालों को उतर जाने दीजिए। यदि आप उनके उतरने से पहले ही गाड़ी में चढ़ गए तो यह कैसे पता चलेगा कि डिब्बे में जगह ख़ाली है या नहीं? यदि जगह ख़ाली है तो कौन-सी सीटें खाली हैं? आप कहाँ, कैसे बैठेंगे? उतरनेवाले कैसे उतरेंगे? तो यहाँ भी पहले लोगों को उतर जाने दीजिए, फिर आप बैठिए यही व्यवस्था सुविधाजनक है। जहाँ-जहाँ सीटें खाली हुई होंगी उन्हें ढूँढने में अधिक समय नहीं लगेगा। मैंने आपको बहुत ही मोटे तरीके से समझाया है। यह वेद-मन्त्र बस वाले, ट्रांसपोर्ट वाले, रेलगाड़ी वाले, रंगरेज़ आदि सभी व्यवहार में ला रहे हैं। हमारे वेद की सचाई सब जगह मानी जा रही है। कोई ऐसी जगह नहीं जहाँ यह सिद्धान्त न माना जाता हो।

बच्चों! आपके लिए क्या ज़रूरी है वह आपको बताता हूँ। आपके लिए पहले बुरी आदत का छोड़ना ज़रूरी है। कौन-सी आदतें छोड़नी हैं जो बुरी हैं?

गाली देना, बकवास करना, किसी की चीज़ चुराना, रास्ते में या स्कूल में पड़ी चीज़ को अपने पास रख लेना आदि। ये सभी बुरी आदतें हैं। ये हमें छोड़ देनी चाहिए।

अच्छी आदतें जैसे अपने अध्यापक, अपने माता-पिता, अपने बड़े भाई-बहिनों से प्रातः उठकर नमस्ते करना। नमस्ते करके और हाथ-मुँह धोकर शौच वग़ैरा जाकर अपनी पाठशाला में जाना। सदा सच बोलना, झूठ नहीं बोलना, जो चीज़ जहाँ से उठाई है उसे वहीं रखना। यदि ऐसा न करोगे तो चीजें कभी भी समय पर मिलेंगी ही नहीं।

भगवान् ने यही तो किया है। सूर्य कहाँ से निकलता है, यह मालूम है? "सूर्य पूर्व से निकलता है, रोज़ पूर्व से निकलता है, है न? और रोज़ पश्चिम में डूब जाता है, है न? कभी इसके विपरीत सूर्य को पश्चिम में निकलते व पूर्व में डूबते देखा है?" कभी नहीं न! वह जिधर से एक बार निकला था रोज़ उसी तरफ़ से निकलता है और जिधर डूबा था उधर ही नियमानुसार डूबता है। इस प्रकार ईश्वर तुम्हें अपने कार्य नियम पूर्वक करने की शिक्षा देता है कि देखो मैं अपना काम नियम-पूर्वक करता हूँ। तुम भी मुझसे सीखो और अपने

काम नियम-पूर्वक करने की आदत डालो। यदि तुम अपने घर में अपनी चीज़ें ठीक-ठिकाने से नहीं रखोगे तो वे तुम्हें कभी भी जल्दी से नहीं मिलेंगी।

तो तुम्हें बुरी आदतें छोड़ देनी चाहिए। आजकल क्या हो रहा है? माता-पिता अपने बच्चों को बुरी बातों से हटाने में आलस्य और प्रमाद करते हैं। यहाँ मन्त्र में एक शब्द आया हुआ है 'देव और सविता'। **'विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव'**। सविता और देव का अर्थ क्या है? इन शब्दों का अर्थ है शुभ कर्मों का प्रेरक, नेक कामों में तहरीक करनेवाला, नेक कामों में, अच्छे कामों में प्रेरित करे। मतलब यह निकला कि जो गृहस्थी औलाद पैदा करें उनका यह काम होगा कि वे अपनी औलाद को नेक कामों की ओर ले जाएँ, ग़लत कामों की तरफ़ न ले जाएँ, बीड़ी-सिगरेट, पान-तम्बाकू ये चीज़ें वे स्वयं न खाएँ-पीएँ, न बच्चों को खाने-पीने दें। सिनेमा न जाने दें। सिनेमा बहुत बुरी चीज़ है। हम आज तक नहीं गए। हमारी उम्र एक कम अस्सी है यानी उनासी। हम आज तक नहीं गए हैं। यह बच्चा जो काम (रिकार्डिंग) कर रहा है इस वक्त। ये भी नहीं गए हैं अब तक। हमारे घर का कोई भी बच्चा सिनेमा नहीं गया है। हमारे अन्दर कोई कमी नहीं है। बताइये कि हममें आपको क्या कमी नज़र आती है। सिनेमा में न जाने से हममें कोई कमी नहीं है। जो लोग सिनेमा गए हैं उनमें हमसे अधिक कौन-सी विशेषता है? वे क्या नई चीज़ हासिल करके आ गए हैं?

इन चीजों से बुराई आती है। गाने बेहूदा हैं। उन गानों को हम अपनी बहिनों-बेटियों की उपस्थिति में गा नहीं सकते हैं। बड़े-बड़े नगरों में रिक्शाओं में बैठकर लाउडस्पीकर पर बिना किसी रोकटोक के बकवास की जाती है। यह राज्य की ढील है। राज्य की यह ख़राबी है। हमारे राज्य वालों को बच्चों के बिगड़ जाने की कोई चिन्ता नहीं। छोटे-छोटे बच्चे उन गानों को सीख लेते हैं जो किसी बेहूदा मुँह-फट बड़ी उम्र वाले आदमी की ज़बान से ही रुचते हैं। वे गाने छोटे बच्चों के गाने के लिए नहीं हैं। छोटे बच्चे, जो पवित्र चीज़ हैं, क्या उनकी ज़बान से ऐसी चीज़ें निकलनी चाहिए जैसी इस गाने में निकलती हैं? 'वाह तेरा क्या कहना'। देखा आपने ऐसे गाने बच्चे गाते हैं जो उन्हें नहीं गाने चाहिए। तो राज्य में ख़राबी है। इसलिए माता-पिता को सोच कर बच्चों को ऐसे स्थानों पर नहीं जाने देना चाहिए।

मैंने अभी कहा है कि वेदमन्त्र बतलाता है कि बुरी बातें दूर हों, इसलिए हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं।

भगवान् कहता है कि लोग प्रार्थना तो करते हैं किन्तु पुरुषार्थ नहीं ! पुरुषार्थ के बग़ैर कोई भी सहायता के लिए तैयार नहीं है। मैं एक मिसाल बयान करता हूँ। आज मैं इतनी आसान भाषा में व्याख्यान दे रहा हूँ जिससे बच्चे भी समझ जाएँ क्योंकि आज बच्चे, यहाँ बड़ी तादाद में, मौजूद हैं।

जब मैं छोटा था तब मैंने एक किताब पढ़ी थी। उसमें लिखा हुआ था कि एक गाड़ीवान् अपनी गाड़ी को सड़क पर ले जा रहा था। गाड़ी तो चलाता था पर उसका रख-रखाव नहीं करता था—आप देखते हैं, सरकार रेलगाड़ियाँ चलाती है, हज़ारों मील का सफ़र तय करके वे सही-सलामत अपनी मंज़िल पर पहुँच जाती हैं। उनमें रास्ते में कभी कोई ख़राबी आती होगी क्योंकि उनका रख-रखाव किया जाता है—तो इन महाशय की गाड़ी थोड़ी दूर चली और धुरे में से पहिया निकल गया। कुछ थोड़ी कोशिश की पहिया लगाने की। नहीं लगा तो सड़क के किनारे पेड़ की छाया में बैठ गया और हुक्का गुड़-गुड़ाने लगा। जो आदमी सड़क पर आते-जाते दिखाई देते उन्हें रोक कर कहता, "ज़रा साब ! मेरा पहिया धुरे में लगा दीजिए, यह धुरे में से निकल गया है।" लोग ग़ुस्से में आ जाते और कह उठते, "बेवकूफ़ ! तू समझता नहीं। ख़ुद तो बैठा हुक्का पी रहा है और हमसे पहिया लगाने की बातें करता है। तू ख़ुद कोशिश क्यों नहीं करता। हम तेरे बाप के नौकर हैं जो पहिया लगाएँगे !"

देखा आपने, वे सब नाराज़ हो गए। उसको लान-तान करने लगे। उसका बेहूदापन उस पर ज़ाहिर किया। तेरी ये बातें ठीक नहीं। तुझे स्वयं मेहनत करनी चाहिए।" जब क़रीब-क़रीब शाम होने को आई तो उसने सोचा कि सारी रात ठेला यहीं पड़ा रहेगा और मुझे भी यहीं पड़े रहना पड़ेगा इसलिए चलो कोशिश करनी चाहिए।

वह उठकर पहिया लगाने चला। पहिया उठाया और धुरे में लगाने के लिए इतना ज़ोर लगाया कि पसीने-पसीने हो गया। उधर से दो आदमी गुज़र रहे थे। उन्होंने देखा कि बेचारा ज़ोर लगा रहा है, पसीने-पसीने हो गया है, फिर भी पहिया धुरे में नहीं लग रहा है। वे दौड़कर गए और उन्होंने उसकी मदद की। पहिया धुरे में चढ़ गया। सब ठीक हो गया। तो लोगों ने कब मदद की ? जब उस व्यक्ति ने अपनी पूरी शक्ति-भर प्रयत्न किया। किन्तु जब वह बैठा-बैठा केवल

प्रार्थना कर रहा था तब किसी ने उसकी सुनी ? किसी ने नहीं सुनी। उसने बार-बार बड़ी मिन्नत की, "महाशय जी ! मेहरबानी करके जरा पहिया लगवा दीजिए"। कोई नहीं माना। नाराज़ हो गये। उसको बुरा-भला कहा कि तू नालायक है, तुझे शर्म नहीं आती। हमसे पहिया लगाने के लिए कह रहा है और स्वयं मेहनत नहीं करता।

कहते हैं, इसी तरह परमात्मा भी उन लोगों से जो परमात्मा से प्रार्थना-ही-प्रार्थना करते रहते हैं, "हे भगवान् ! हमको यह दे दीजिए। भगवान् ! हमको वह दे दीजिए" और प्रयत्न नहीं करते हैं तो भगवान् भी इसी तरह नाराज़ होता है लेकिन अगर आप गाड़ीवान् की तरह से पहिये को उठाने में पूर्ण प्रयत्न करें और पसीने-पसीने हो जाएँ तो चलने वाले की तबियत में जैसे मदद करने की बात पैदा हो गई उसी तरह भगवान् भी आपकी मदद करेगा।

दिल्ली में एक स्कूल है जिसका नाम कमर्शियल स्कूल है। उस स्कूल मे मैं व्याख्यान देने गया तो लड़के बड़े ख़ुश थे। उन्होंने तमाम कुर्सी व मेज़ एक तरफ़ लगा दीं। वहाँ पर एक बहुत बड़ा लकड़ी का सन्दूक रखा था। आप उसे कबर्ड कह लीजिए। उसमें किताबें भरी हुई थीं। एक लड़के ने शौक से आकर उस कबर्ड को खींचना चाहा। खिसकाना चाहा। कबर्ड इतना भारी था कि लड़के का चेहरा ज़ोर लगाने से लाल हो गया। उसकी आँखें बाहर निकलने को हो गईं। तो वे मास्टर जो अपनी बड़ी इज़्ज़त समझते थे, कभी मेज-वेज़ हटाने के काम के नज़दीक न आते थे, दौड़कर वहाँ गए और बच्चे की मदद की। कबर्ड को सरकवाया।

कहने का मतलब यह है कि इस दुनिया में भी जो आदमी प्रयत्न करता है, मेहनत करता है किसी काम को करने की, दूसरे आदमी उसका सहारा बन जाते हैं। किन्तु जो प्रयत्न नहीं करता, लोग उसे बेवकूफ़ कहते हैं कि तू बिना प्रयत्न किये हमसे अपनी मदद चाहता है।

अगर आप (बच्चे लोग) अपनी एक किताब आले में रख दो और आले में रखकर वहाँ एक देवता भी रख दो (अपना मनमाना)। फिर उस देवता के सामने हाथ जोड़ते रहो कि हे देवता जी ! कृपा करके हमें पास कर देना। परीक्षा में हमें सफल कर देना। तब देवता भी फ़ेल हो जाएगा और तुम भी फ़ेल हो जाओगे। पास नहीं होगे क्योंकि देवता तो तुम्हारा बनाया हुआ है न। वह ऐसा तो नहीं है कि जिसने तुमको बनाया हो। इसलिए तुम किसी भी देवता से यहाँ तक कि

परमात्मा से भी प्रार्थना करो, प्रयत्न न करो तो वह चीज़ कभी प्राप्त नहीं होगी।

अब मैं ज़रा दूसरी बात कहता हूँ, बच्चों से थोड़ी-सी अलग, जो बड़ों के लिए है। योग-दर्शन में पतञ्जलि मुनि ने इसी के आधार पर, **विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव** के आधार पर यम और नियम दिए हैं। 'यम' माने कि जो छोड़ने योग्य है और 'नियम' कि जो अपनाने के क़ाबिल हैं, जो इसे ग्रहण करने चाहिए। 'यम क्या हैं ?' **अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रह** ये यम कहलाते हैं, ये छोड़ने योग्य हैं। हमें हिंसा नहीं करनी चाहिए। मन से, वचन से, कर्म से किसी को तकलीफ़ देना, दुःख देना यह नहीं करना चाहिए। कोई पूछे "क्यों नहीं चाहिए ?"

इसलिए नहीं चाहिए कि जैसा आत्मा हमारे अन्दर है वैसा ही सबके अन्दर है। ये बहिनें बैठी हुई हैं। सबसे पहले इनको शिक्षा मिलती है या इनके पास बच्चा आता है ? जो बच्चा परमात्मा ने इनको दिया है। जब कोई बच्चा नहीं हुआ था तो ये अपना ही ख़याल करती थीं। जब बच्चा हो गया तो बच्चे का ख़याल करने लगीं। अब अपने से ज़्यादा बच्चे का ख़याल करती हैं। अपने को बच्चे में देखा। बच्चे के दर्द को अपना दर्द समझा। बच्चे के आराम को अपना आराम समझा। इसलिए कहते हैं कि अहिंसा—किसी को तकलीफ़ नहीं पहुँचाना, दुःख नहीं देना। "क्यों तकलीफ़ नहीं देना ?" इसलिए तकलीफ़ नहीं देना कि सब में आत्मा वही है जो तुम में है। तो माँ ने अपने आत्मा को बढ़ा दिया। "कैसे बढ़ा दिया ?" यदि बच्चे को कोई गाली दे दे तो माँ नाराज़ हो जाएगी, मारने तक को आएगी, बुरा-भला कहेगी कि तूने ऐसा क्यों किया ? क्योंकि वह बच्चे में अपने-आप को देख रही है। अपने अन्दर जैसा आत्मा है वैसे ही उसके अन्दर भी आत्मा को समझ रही है। उसका सुख इसका सुख है। उसका दुःख इसका दुःख है। पहले तो वह गर्मी में अपने को पंखा करती थी, जब अकेली थी—लेकिन जब परमात्मा ने बच्चा प्रदान किया तो पंखा बच्चे को करती है। "क्यों करती है ?" क्योंकि वह अपने को उसमें देखती है। जैसा अपना आत्मा है वैसा ही उसका आत्मा समझती है। यदि दो बच्चे हों तो भी उनमें वही बात है। जितने भी बच्चे माता के होंगे, माँ सब में अपने को समझेगी। किसी एक बच्चे को भी न चाहेगी कि वह उससे जुदा हो जाएगा।

एक दफ़ा मैं एक घर में गया। ठहरता था घरों में ही। वहाँ उस माँ के बहुत-से बच्चे थे। उनको सँभालने में मुश्किल होती थी। तो एक बार किसी बच्चे के लिए—'तुझे फूँक दूँ, चूल्हे में दे दूँ'—ऐसा कह दिया। मैंने ज़रा हँसी में कहा कि क्या तुम यह चाहती हो कि बच्चा न रहे। मैंने बहिन से पूछा "क्या तुम यह चाहती हो कि बच्चे न रहें, इसमें से कम हो जाएँ?" तो कहने लगीं कि पंडित जी! कम न हों, मैं उनका कम होना नहीं चाहती। मैंने जो गाली दी है कि तुझे चूल्हे में दे दूँ या फूँक दूँ (दिल की ओर हाथ करके) यहाँ से नहीं कहा है। देखा आपने? माँ की बात कितनी बढ़िया है। माँ मुँह से गाली देती है लेकिन ऊपर-ऊपर से। दिल से नहीं देती। "क्यों! क्या कारण है?" कारण वही जो मैंने आपको बतलाया है कि वह अपने आत्मा के तुल्य बच्चे का आत्मा समझती है। हमें इसीलिए दूसरों को तकलीफ़ नहीं पहुँचानी चाहिए क्योंकि दूसरे जीव भी वैसी ही भावना रखते हैं जैसी हम रखते हैं। उसमें कुछ भी फ़र्क़ नहीं है।

आजकल बड़ी हिंसा हो रही है। मांसाहार का कुछ ठिकाना है? यह हमारी सरकार ने कहीं मुर्ग़ी पालने के लिए, कहीं मछली पालने के लिए इन्तज़ाम करवाया है और वह आदमी जो निरामिषाहारी हैं, जो मांस खाने वाले नहीं हैं उनके अन्दर यह स्वभाव (मांस खाने का) डाला जा रहा है, यह टेव डाली जा रही है कि वे मांसाहारी होकर एक हो जाएँ सारे-के-सारे। एक प्रकार के एक जगह इकट्ठे हो जाएँ। "एक प्रकार के कैसे?" यानि सबके-सब हिंसक बन जाएँ। गाँधी जी तो आए इसलिए कि वे हिंसा का प्रचार जीवन भर रोकते रहे और अहिंसक बनने का प्रचार करते रहे। उन्होंने तो यहाँ तक कहा कि यदि कोई मनुष्य हमें मारे तो भी हमें उसे नहीं मारना चाहिए। हिंसा नहीं करनी चाहिए। कोई मारे तो मर जाओ।

एक बार किसी व्यक्ति ने पूछा कि "महाराज! मेरी बहिन मेरे साथ है और कोई आदमी आकर मेरी बहिन पर प्रहार करे तब क्या करें?" तो गाँधी जी ने उत्तर दिया कि "बचाओ और बचाते-बचाते मर जाओ लेकिन उसे मत मारो, उस पर प्रहार मत करो।"

देखा आपने? हद से बढ़ गए। मैं इस बात का समर्थक नहीं हूँ। मैं तो इस बात को मानता हूँ कि बदमाश को ठीक करना चाहिए। वह बग़ैर ठीक किए ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो बदमाश है न। बदमाश को ठीक करना है। उसका आत्मा ख़राब हो गया है। उसने आत्मा को बिगाड़ लिया है।

देखिए ! राजा फाँसी देता है या नहीं ? देता है । "क्यों फाँसी देता है ?" कि जिस आदमी ने दूसरे आदमी को मार दिया यानि इतना बड़ा पाप किया है कि उसने आत्मा की बेक़दरी की है, बेइज़्ज़ती की है।

"कैसे की है बेइज़्ज़ती ?" "मैं चाहता हूँ कि मुझे कोई न मारे" । जब हम सब यह चाहते हैं कि हमें कोई न मारे और फिर कोई मारे तो क्या हुआ ? कि उसने आत्मा की बेइज़्ज़ती की । इसलिए राजा क्या करता है ? कि इसको ख़त्म कर देना चाहिए और ईश्वर के सुपुर्द कर देता है । ईश्वर ! तुम इसको सुधारो । हमारे बस में नहीं है । इसने बहुत बड़ा पाप किया है । इसने आत्मा की अवहेलना की है, उसकी बेइज़्ज़ती की है, निरादर किया है । इस वास्ते इस निरादर का फल हम तो यही दे सकते हैं कि इसका आत्मा इसके शरीर से जुदा कर दें । परन्तु आपके सुपुर्द कर दें । आप इसका पूर्ण सुधार कीजिए। हमसे इसका सुधार नहीं होगा । इसलिए उसको फाँसी दे दी जाती है। अब समझ लीजिए कि कितनी बड़ी बात है । अपना आत्मा और दूसरे का आत्मा इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है ।

मुझसे एक बार किसी ने पूछा अजमल खाँ पार्क में (जहाँ—जोशी नर्सिंग होम में—मेरे प्रास्टेड ग्लैंड्ज़ का आपरेशन हुआ था) । तब मुझे से कोई सज्जन पूछने लगे, "पंडित जी ! ज़रा ये तो बताइये कि क्या वह महात्मा हो सकता है जो मांस खाए ?

मैंने कहा, "बिल्कुल नहीं ।"

"क्यों नहीं हो सकता ?"

मैंने कहा, "इसलिए नहीं हो सकता महात्मा, कि उसने आत्मा को समझा ही नहीं है । वह तो अभी क्षुद्र आत्मा है । वह महात्मा नहीं है, वह तो क्षुद्रात्मा है । जो मांस खाता है, वह महात्मा नहीं है । महा आत्मा तो वह होगा जो तमाम आत्माओं को अपने जैसी आत्मा समझे । जो दूसरों की आत्माओं को कष्ट पहुँचाए वह तो क्षुद्र आत्मा है । अधर्म आत्मा है । इसलिए वह आदमी जो मांस खानेवाला है, वह ठीक नहीं है । यह मांस आदमी का भोजन नहीं है । (विज्ञान के हिसाब से मनुष्य फलाहारी है) ।

मनु ने लिखा है **अनुमन्ता विषशता निहन्ता, क्रय-विक्रयी, संस्कर्ता चोपहर्त्ता व खादकश्चैति खादकाः** जो आदमी राय दे कि खाया करो और वह जो काटे, जो मारे, क्रय-विक्रयी, जो बेचे और ख़रीदे संस्कर्त्ता—जो पकावे, उपहरता—जो परोंसे, और खादकाः जो खावे ये आठ कसाई बयान किये हैं मनु महाराज ने । इस अहिंसा के बारे में

बतलाया गया है कि हमें मन, वचन, कर्म से हिंसा नहीं करनी चाहिए। इसलिए मांस खाने योग्य पदार्थ नहीं है। बच्चा इससे घृणा करता है, मरी हुई चीज़ से दूर भागता है।

यह भगवान् की तरफ़ से क्या है? यह भगवान् की तरफ़ से एक प्रकार की शिक्षा है कि यह हमारे खाने योग्य पदार्थ नहीं है। आपने देखा होगा—कौवा आता है, चिड़िया आती है, तोता आता है। पानी पीता है या कोई चीज खाता है। एक चोंच पानी की भर ली और फिर इधर-उधर देख लिया, फिर एक चोंच भर ली और फिर ऊपर देखा। "क्यों?" एक दम बहुत देर तक क्यों नहीं पीता रहता? जैसे हम पानी पीते हैं वैसे क्यों नहीं पीता? क्यों चोंच भर-भर कर इधर-उधर देखता है?"

उसका कारण यह है कि भगवान् ने उसके अन्दर उसकी रक्षा के लिए ऐसी बात रख दी है कि वह हर वक्त शंका में रहता है कि कोई मुझे पकड़ने या मारने न आ जाए। सब में यही चीज़ रखी है भगवान् ने। गाय का बच्चा अभी पैदा हुआ है। अभी-अभी। लेकिन कनस्तर गिर गया। उसके गिरते ही माँ चमक गई और बच्चा भी चमक गया और माँ हूँ-हूँ करने लग गई।

क्या बात हो गई? कौन आ गया? क्या हुआ है? पता लगा कि मां के अन्दर अपने बच्चे की रक्षा की ज़बरदस्त भावना पैदा हो गई है और बच्चा तो बिचारा है ही बच्चा। बिदकता है, चमकता इससे ज़ाहिर है कि वह अपनी रक्षा चाहता है, मरना नहीं चाहता, ज़िन्दा रहना चाहता है। यह जीवन बहुत बड़ी चीज़ है।

लिखा है—**मयाज़ार मोरि कि दाना कशस्त**। मत मारो चींटी को कि दाना खींचने वाली है। दाना खाने वाली है।

कि जांदार को जाँ नशीरीं तरस्त

कि जान रखती है और जान बहुत प्यारी होती है। इसलिए बतलाया है कि अहिंसा धारण करो। पहली चीज़ है यह। इसके साथ एक और चीज़ बतलाऊँगा।

स्वामी जी महाराज ने टिहरी गढ़वाल की तरफ़ अपना दौरा किया था। वहाँ जो गए तो वहाँ साधु थे, महन्त लोग थे, उन्होंने स्वामी जी का बड़ा आदर-सत्कार किया। आइए स्वामी जी महाराज! वे सबके-सब इस तरह की गोमुखी, बहुत खूबसूरत, कई तरह के रंगीन कपड़ों की हाथ में लिये माला फिरा रहे थे और चौकियों पर बैठे थे। स्वामी जी का बड़ा आदर किया और कहा कि

महाराज ! भोजन हमारे यहाँ ही करना—कहा कि मैं मांस नहीं खाता हूँ। "तो मांस नहीं पकेगा महाराज ! अगर आप मांस नहीं खाते तो मांस नहीं पकेगा। स्वामी जी कहीं चले गए और कह गए कि मैं भोजन के समय आऊँगा। अपना काम करके स्वामी जी जब आए तो क्या देखते हैं कि मछली पका रहे हैं। स्वामी जी ने कहा कि— **"इमानि कानि सन्ति ?"** यह क्या हैं ? यह क्या कर रहे हैं, आप ? उत्तर मिला **'इमानि जलफलानि सन्ति'** ये तो महाराज ! जलफल हैं, यह कोई मांस थोड़े ही है। यह तो जलफल है। स्वामी जी ने कहा "नहीं, यह सब मांस है—भिन्न-भिन्न प्रकार का। मैं तो इसे नहीं खाता हूँ।"

यह बात मैं क्यों कह रहा हूँ ? इसलिए कह रहा हूँ कि बुरी बात छोड़ देने पर ही आदमी पवित्र होता है। कपड़े पहिने हुए हैं बहुत अच्छे, नहा लिये हैं, तिलक लगाया हुआ है, गोमुखी में हाथ है लेकिन मांस खा रहे हैं तो शौच सच्चा नहीं हुआ। नियमों में शौच भी है। (**शौच सन्तोष तपस्स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः**) और यम में (**अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रह यमाः**) जिसने हिंसा नहीं छोड़ी वह गौमुखी में हाथ रखकर के यदि भगवान् का नाम लेता है तो भगवान् उसके नज़दीक आएगा ? कभी नहीं।

तू पवित्र कैसा रे ! तू जीवों को मार-मार कर खा रहा है और गौमुखी में हाथ रखकर तू मुझे बुलाता है। यहाँ माला जप रहा है। ज़रा सोच और विचार कर। मुझसे प्रार्थना करता है अपनी रक्षा की। जीवों की रक्षा करता नहीं है। और तू अपनी रक्षा की प्रार्थना करता है। कैसे बात बनेगी ?

इसलिए कहते हैं कि अहिंसा धारण करो। हाँ, इतना ज़रूर है कि गृहस्थी लोगों से तो कहीं भूल हो जाती है तो उनके लिए तो निदान भी लिखा है कि चलने-फिरने में चक्की-चूल्हे में जीव बहुत-से मर जाते हैं। हम उन्हें मारना चाहते नहीं हैं फिर भी मर जाते हैं। तो पूछा किसी ने, "महाराज ! हमारे यहाँ चक्की चलती है, कोई जीव पिस जाए। चूल्हा जलता है उसमें कोई जीव जल जाए तो क्या करें ?"

तो उत्तर मिला, **बलिवैश्वदेव** यज्ञ करो। यज्ञ से क्या होता है ? प्रायश्चित्त हो जाता है। प्रायश्चित्त कैसे हो जाता है ? बलिवैश्वदेव यज्ञ में हम कुछ देते हैं। वह हम पर जुर्माना है। बेजाने जो जीव मर जाते हैं उनका भी जुर्माना देते हैं तो जानकर मारने का ख़याल तो आ ही नहीं सकता। अहिंसा पूरी होनी चाहिए मन से, वचन से और

कर्म से भी। इन तीनों से अहिंसा पूरी होनी चाहिए। जो आदमी हिंसक हैं वे पवित्र नहीं हो सकते चाहे जितना कुछ करें। हर्गिज़, हर्गिज़ माफ़ी नहीं मिल सकती।

आपने देखा होगा, बहुत-से आदमी ख़ुदा को ख़ुश करने के लिए जानवर मारते हैं। परमात्मा राज़ी होगा उस जीव को मारने से? अरे परमात्मा तो पैदा करता है उसे और पैदा करके तुम्हें देता है। तुम उसे मारकर कहते हो कि वह ख़ुश हो जाएगा। जो कपड़ा दर्ज़ी ने तुम्हें सीकर दिया है पहिनने के लिए। तुमने फाड़कर फेंक दिया उसी के सामने। तो वह ख़ुश होगा? बाइसिलक तुम लाए ख़रीदकर बाज़ार से और तोड़-फोड़ के उसके सामने डाल दी तो क्या कहेगा वह? "बड़े बेवकूफ़ हो तुम" "क्या तुमको बाइसिकल तोड़ने के लिए दी थी?"

आजकल बड़ी ज़बरदस्त हिंसा हो रही है। इसीलिए कहते हैं **'विश्वानि दुरितानि परासुव'**—हे भगवान्! ये दुर्गुण व दुर्व्यसन हम से दूर हो जाएँ। सोचो वे लोग, वे ब्राह्मण, वे क्षत्रिय, वे जैन और वे सनातन धर्मी जो मांस नहीं खाते थे—मैं देख रहा हूँ—उनके अन्दर यह चीज़ (मांसाहार) घुस गई है। आकर पूछते हैं "अण्डा खाने में क्या दोष है?"

मैंने कहा, "अण्डे की जगह गुलाब जामुन खाइये। गुलाब जामुन की भी वैसी ही शक्ल होती है। बुरी चीज़ हमें छोड़ देनी चाहिए।"

कहने का मतलब यह है कि दुर्गुण और दुर्व्यसन ये सब दूर हो जाने चाहिए। जब दूर हो जाएँगे तब भली चीज़ें आएँगी। भली चीज़ के लिए जगह पैदा करो। जगह नहीं होगी तो वह आएगी कहाँ? जब एक आदमी अच्छा कपड़ा पहिनना चाहता है तो पहले मैला (कपड़ा) निकाल देता है या मैले पर ही पहिन लेता है? सब तरफ़ देख लीजिए कि वेद-मन्त्र किस तरह चरितार्थ हो रहा है। हम मैला कपड़ा निकाल देंगे, तब दूसरा अच्छा कपड़ा पहिनेंगे। नहा लेंगे तब दूसरी साफ़ धोती पहिनेंगे। मकान को अच्छी तरह धोलेंगे तब हवन करेंगे। जहाँ कहीं भी आप देखेंगे यही प्रकार है कि दुर्गुण—निकालने के लायक़ जो है—पहले उसे निकालना चाहिए। जो लाने के लायक़ है, रखने के लायक़ है, बाद में आना चाहिए यह सीधी-सी चीज़ है। इसलिए इसे हमें न भूलना चाहिए।

अहिंसा के लिए और भी बारीक बात लिखी है—जाति, देश व काल। इसकी मैं यहाँ व्याख्या नहीं करूँगा क्योंकि इसकी व्याख्या में ज़रा बारीकी है। आपको समझने में मुश्किल होगी। संक्षेप यह है

कि महाव्रत क्या है ? अहिंसा का महाव्रत क्या है ? अहिंसा जाति से, देश से और काल से, किसी से भी बाधित नहीं होनी चाहिए। मैं इसे ज़रा समझा दूँ। जाति से क्या ? कि साहब ! ब्राह्मणों को तो हम मारते नहीं लेकिन बाक़ी कोई और बिरादरी का हो तो उसे हम मार देते हैं। हिंसा हो गई या नहीं हो गई ? ये जाति से हुई।

देश से—बोले, साहब ! हम हरिद्वार में जाते हैं, वहाँ हम कोई चीज़ नहीं मारते, और जगह मार देते हैं।

समय—विवाह-शादी में तो कोई बात नहीं बाक़ी अन्य वक्त में तो हम बराबर ऐसे ही करते हैं (अर्थात् हिंसा नहीं करते)।

हमें महाव्रत लेना चाहिए कि कभी भी किसी जीव को ख़ामख़्वाह न मारें। वैसे तो आज्ञा दी है कि दुराचारी हो तो उसे दण्ड देना चाहिए। सुधार के लिए दण्ड देना बुरा नहीं है। वैसे कोई भी किसी को न मारे। बच्चों को जल्दी समझ में आ जाएगा। एक मिसाल देता हूँ।

एक बच्चे ने दूसरे बच्चे को थप्पड़ मारा। जिसको थप्पड़ मारा था वह मास्टर जी के पास गया और बोला कि अमुक लड़के ने मुझे चाँटा मारा है। यह मेरा गवाह है।

मास्टर जी ने लड़के से पूछा कि तुमने चाँटा मारा ? लड़के ने जवाब दिया, "जी हाँ ! मारा तो है।"

मास्टर जी ने कान पकड़कर उसको एक थप्पड़ लगाया और पूछा कि "बेवकूफ़, तूने उसको थप्पड़ क्यों मारा ?"

थप्पड़ तो लड़के ने खा लिया लेकिन बोला कि "मास्टर जी ! मैंने लड़के को थप्पड़ मारा तो आपने मुझे चाँटा लगाया। आपने मुझे चाँटा लगाया है तो अब आपको कौन लगाएगा ? आपने भी तो मुझे चाँटा मारा है न ?"

मास्टर जी हँसे और हँसकर बोले कि "मैं तुझे समझाता हूँ। तेरा थप्पड़ बदमाशी का था, शरारत का था। तूने जो इस लड़के को चाँटा मारा वह शरारत का था और मैंने जो चाँटा मारा है वह सुधार का है। तो सुधार के थप्पड़ के लिए फिर थप्पड़ नहीं लगा करता। इसलिए मेरे थप्पड़ के लिए अब और थप्पड़ की ज़रूरत नहीं है। मैंने चाँटा सुधारने के लिए लगाया है जबकि तूने शरारत की थी। इसलिए थप्पड़ थप्पड़ में भेद है। जब राजा किसी को दण्ड देता है तो चाहे किसी ने जान से मारा किसी को। अब पकड़ हो रही है। दिल्ली में दिन दिहाड़े किसी ने एक व्यक्ति को मार दिया। अब पकड़ हो रही है। फाँसी हो जाएगी उसको। जब सरकार किसी को फाँसी देती है तो

सरकार को कोई फाँसी नहीं देता। क्योंकि सरकार दोष के लिए सज़ा देती है। जिस आदमी ने दूसरे की जान ले ली अब उसकी जान रखने के क़ाबिल नहीं। ऐसी जान को निकालकर (सरकार) भगवान् के सुपुर्द कर देती है जैसा मैंने आपसे कहा था कि सरकार दण्ड देती है किन्तु सरकार को कोई सज़ा नहीं देता।

किसी जीव को सताना ठीक नहीं। उनको सताने के लिए सज़ा मिलती ही है, इसमें कोई शक नहीं। आपके यहाँ गाय है, बछड़ा है, बछिया है। कभी-कभी आप लकड़ी से या रस्सी से उसे मार भी देते हैं। "क्यों मार देते हैं?" इसलिए मार देते हैं कि उनकी आदतों में सुधार करना है। वह बार-बार आकर किसी चीज़ को चाटता है या किसी चीज़ को खाता है या कपड़े को लपकने की कोशिश करता है तो हम थप्पड़ मार देते हैं। वह यह नहीं समझता कि कपड़ा खाना या दीवार की कलई चाटना कोई पाप है या ऐसा काम है जिसे नहीं करना चाहिए। किन्तु वह यह ज़रूर समझता है कि मैं जब कपड़े या दीवार को मुँह लगाता हूँ तो ये लकड़ी दिखाते हैं। वह डरता है। डर से वह छोड़ दे, यह और बात है किन्तु पाप-पुण्य का वहाँ लेश नहीं है। इसलिए कहते हैं, याद रखने की बात है—पशु आये, उन्होंने कहीं पेशाब कर दिया, भैंस है कहीं गोबर कर दे, घोड़ा है कहीं भी लीद कर दे। उसे कोई पकड़कर ले जाता है क्या? अगर घोड़ा बाज़ार में लीद कर दे तो क्या वहाँ पुलिस वाला आता है और कहता है कि पकड़-लो इस घोड़े को और ले चलो कोतवाली। इसने बाज़ार में लीद कर दी।

"नहीं। कोई नहीं ले जाता, कोई उसको दोषी नहीं ठहराता। उसको बाज़ार में मल-मूत्र कर देने के लिए कोई दोषी नहीं ठहराता।"

देखो। आदमियों के लिए लिखा हुआ है "यहाँ पेशाब मत करो"—यह आदमियों के लिए लिखा है, पशुओं के लिए नहीं।

आदमी पेशाब—पाख़ाना करे तो पकड़ा जाए लेकिन अगर जानवर कर दे तो उसे कोई नहीं पकड़ता क्योंकि वह इस सम्बन्ध में नासमझ है, वह भगवान् की तरफ़ से ऐसे ही आया है। वह तो पहले ही नंगा है। भगवान् ने कहा कि जाओ बराबर इसी तरह काम करते रहना। "क्या काम?" सेवा करते रहना दुनिया की। तुमसे काम लिया जाएगा। हाँ, खाना वे तुम्हें जरूर देंगे, यह निश्चित बात है। कहीं से भी लाकर चाहे कितना भी महंगा हो लेकिन तुमको बराबर दिया जाएगा। इस वास्ते याद रखना है कि मनुष्य की जिम्मेदारी है पाप-

पुण्य की। दूसरों की नहीं है, जानवरों की नहीं है। जानवर बिल्कुल अलग हैं।

बिल्ली चूहे को पकड़कर खा जाए तो बिल्ली को कोई पाप नहीं। छिपकलियाँ घर में होती हैं। वे कीट-पतंग जितने हैं उनको खाती रहती हैं किन्तु उनको पाप नहीं। यदि आदमी ऐसा करे तो उसको पाप है क्योंकि वह जानता है कि जीव को मारना पाप है और वह उसका (छिपकली का) स्वभाव है। उसका ऐसा स्वभाव क्यों बनाया गया यह फिर कभी बतायेंगे। जब कभी मांस के सम्बन्ध में लम्बा व्याख्यान होगा तब आपको बतायेंगे। इस वक्त तो मुझे इतना ही कहना है कि ये जो बुराई की चीज़ें हैं उन्हें छोड़ दें।

मैं माताओं से ख़ासतौर पर कहूँगा (जो यहाँ बैठी हैं) कि तुमने अपने बच्चों को अच्छी तरह शिक्षा नहीं दी है। उनके सामने जब आप गाली दोगी तो बच्चा भी गाली देगा। उनके सामने स्वयं जैसी मैली रहोगी वैसा ही वह भी रहेगा। इसलिए जैसा आप बच्चे को बनाना चाहती हैं वैसा अपने को बना लें। ऐसा करने से बच्चा माँ की तबियत के मुताबिक़ हो जाएगा। जैसा माँ चाहती है, वैसा बच्चा हो जाएगा। परन्तु होगा कब ? जब आप अपने आपको वैसा बना लेंगी तब होगा, वर्ना कभी नहीं होगा। इसलिए ज़रूरी है कि माँ इस बात का ख़याल रखे। सबसे पहले भगवान् माँ की गोद में बच्चा देता है। माता की गोद में आने से पूर्व भी बच्चा उसके गर्भ में आता है। वहाँ वह अपने कुछ संस्कार लेकर आता है। बच्चा और माँ इन दोनों के संस्कार मिल जाते हैं। अगर माँ के अच्छे संस्कार हैं तो बच्चे के संस्कारों के साथ मिलकर अच्छापन बच्चे में आ जाता है। अगर माँ के संस्कार अच्छे नहीं है—गाली देना, लड़ाई लड़ना, रोना-पीटना, झिक-झिक करना, घर का इन्तज़ाम ठीक न रखना, (चीज़ें खुली पड़ी हैं। कुत्ता आ जाए चाहे बिल्ली आ जाए या चूहे आ जाएँ कोई ख़याल ही नहीं है। कोई चीज़ इधर पड़ी हुई, कोई चीज़ उधर पड़ी हुई है, कोई उघड़ी पड़ी है, कोई कैसे ही पड़ी हुई है)—तो ऐसी माँ को पहले अपने को सुधारना पड़ेगा, तब कहीं बच्चा सुधर सकता है वर्ना नहीं। आप घरों को जाकर देख लीजिए, कोई चीज़ भी तरतीब से नहीं रखी हुई है।

एक जगह की बात है। मैं एक घर में खाना खाने के लिए जा रहा था। मैं ज़रा दरवाज़े पर खड़ा हो गया कि जब अन्दर से आवाज़ आ जाएगी तो जाऊँगा। इतनी देर में मैंने क्या देखा कि दरवाज़े के पास एक ताक़ बना था, आला बना था और आले में चीज़ें रखी हुई

थीं। क्या थीं वे चीज़ें ? पीली मिट्टी की सूखी हुई डली, दूसरी सूखी गाजर, तीसरी चीज़ मुझे याद नहीं रही। तीन चीज़ें रखी थीं। मैंने उनसे पूछा, "यह कोई टोटका है क्या ? जरा मुझे बताओ यह क्या बात है ?" तो हँसने लगीं वे देवी और बोलीं, "अजी, यूँही किसी ने रख दी होगी खाते-खाते। हाथ धोते-धोते मिट्टी रख दी होगी।"

मैंने उनसे पूछा, "कोई ख़ास फ़ायदे की चीज़ हो तो मैं भी अपने घर पर ऐसे ही गाजर और मिट्टी रखवालूँ ?" तो कहने लगीं कि "यह बात नहीं है। यूँ ही किसी ने रख दी होंगी।"

(हाँ, हाँ, याद आया, तीसरी चीज़ सिर के बाल रखे हुए मिले। टूटी कंघी के अन्दर सिर के बाल लगे हुए, एक मिट्टी की डली व सूखी गाजर ये तीनों चीज़ें वहाँ रखी हुई थीं) तो अब बताओ, इससे क्या नतीजा निकलता है कि किसी चीज़ की तरतीब नहीं है। सिर बहाया होगा—सिर बहाकर कंघी भी वहीं रख दी और बाल भी वहीं रख दिए। गाजर खाई होगी, वह भी ताक़ में रखकर छोड़ दी। मिट्टी की डली भी छोड़ दी। किसी चीज़ का कोई हिसाब नहीं। यह मैंने एक मोटी मिसाल दी है जो ख़ुद मेरे व्यवहार में आई है। वही मैं आपसे बतला रहा हूँ कि अगर इस प्रकार से अपने घर का इन्तजाम रखोगी तो ठीक नहीं है।

आप स्टेशन पर चले जाएँ। बाबू से टिकिट माँगे। जहाँ का टिकिट माँगेगे वहीं का टिकिट वह फौरन निकालकर देगा। नीचे से टिकिट निकाल लेगा। ऊपर वाले नीचे आते रहेंगे। टिकिट रखने के लिए ऐसा सन्दूक बनाया है।

कोई आपसे पूछे कि "फ़लाँ चीज कहाँ रखी है ?" तो कहेंगे "जी यहीं रखी थी।" हाँडी, कुठले जितने हैं सब उठा-उठाकर देख लिये, कहीं मिलती ही नहीं। "मिले कैसे ?" जब ठिकाने रखी ही नहीं तो मिले कैसे ? अगर कहीं टिकिट बाबू भी कहे कि साहब, टिकिट-विकिट तो मिलता है नहीं, यहीं-कहीं रखा है तो अगले दिन निकालकर बाहर कर दिया जाएगा, टिकिट नहीं दे सकते, बाक़ायदा चीज़ें नहीं रख सकते।

घर के अन्दर भी वही बात (**विश्वानि दुरितानि परासुव**) इसी के आधार पर कह रहा हूँ। अपने घर का व्यवहार, अपने घर की चीज़ें ठीक-ठीक रखनी चाहिए, नियम से रखनी चाहिए। मैंने अपने यहाँ यह इन्तज़ाम रखा है। मैं इसको बहुत अभिमान से कह सकता हूँ। मेरे घर में जाकर आप चीज़ें देखेंगे। जो चीजें जहाँ रखी हैं वहाँ से उठायेंगे तो वहीं रखेंगे। अगर वहाँ उन्होंने नहीं रखी तो मैं उनकी ख़बर लेता

हूँ कि तुमने यह क्या किया ? मटर छीलीं और छिलके कनस्तर में डाले। उनमें से कुछ बाहर गिरे और कुछ अन्दर गिरे। मैंने आवाज़ लगाई और पूछा कि "भाई ये छिलके किसने फेंके हैं ?" उत्तर मिला कि सुवीरा देवी ने फेंके हैं, (सुवीरा देवी मेरी नवासी है—इनकी छोटी बहिन) मैंने कहा, "बेटे ! यहाँ आओ, तुमने डाले हैं ये छिलके ?"

उसने कहा, "हाँ जी, मैंने डाले ?"

मैंने पूछा, "बाहर कैसे गिर गए हैं ?"

मैंने कहा, "जब तुम रोटी खाती हो तो कुछ टुकड़े बाहर गिर जाते हैं और कुछ मुँह में जाते हैं ? सारी रोटी मुँह में ही जाती है न ?"

तो वह शर्मा कर बोली, "जी, पूरी रोटी मेरे मुँह में ही जाती है।"

मैंने कहा, "तो इसी प्रकार छिलके भी कनस्तर में पूरी तरह जाने चाहिए। कनस्तर बाट देख रहा है, ये सारे इसी में डालो।"

इस प्रकार उससे बाहर गिरे हुए सारे छिलके उठवाकर कनस्तर में डलवाए। नहीं तो वैसे ही डाल देते हैं, कनस्तर रखा भी है और किसी काम का नहीं है। उसमें न डालकर कूड़ा उसके आस-पास गिरा देते हैं। यह तरीका ठीक नहीं। भगवान् ने एक चीज़ रखी है। रात को अगर किसी आदमी के नाक में खाज चले तो क्या वह चिराग़ जलाकर देखता है कि नाक कहाँ है ?

कोई पूछे, "क्यों जलाया है चिराग़ ?"

उत्तर मिला, "अजी साहब, नाक में खाज चल रही है।"

"तो फिर"

"ज़रा नाक ढूँढूँगा कि कहाँ है वह।"

"कभी आपने ऐसा किया।"

"नहीं। कभी नहीं किया। नाक अपने ठिकाने पर है न इसलिए ढूँढने या चिराग़ से देखने की ज़रूरत नहीं पड़ती। हाथ अपने-आप नाक पर पहुँच जाता है। कान में खाज चली तो कान पर हाथ चला जाता है।"

"यह सब क्यों हो रहा है ?"

"क्योंकि ये सब चीज़ें अपने-अपने ठिकाने रखी हैं। भगवान् ने हमें बता दिया है कि यदि चीज़ें ठिकाने से रखेंगे तो आराम रहेगा और ठिकाने से न रखेंगे तो तकलीफ़ रहेगी।"

इसीलिए यह पहली चीज़ है। स्वामी जी महाराज ने यही कहा है कि बच्चों को सिखाओ, बचपन से ही वे अपनी चीज़ें ठिकाने से रखें।

जहाँ पेशाब करें, वहाँ पानी डालें और जहाँ पाख़ाना जाएँ, वहाँ राख या मिट्टी ज़रूर डालें ताकि मक्खियाँ न आएँ, आँखों को बुरा न लगे, बदबू न आए। ये तीनों चीज़ें होंगी। आज मैं जहाँ ठहरा, मैंने कहा, "मुझे राख चाहिए ज़रूर।"

"कि अच्छी बात है, उसका इन्तज़ाम हो जाएगा।"

"किसलिए ?"

"उन्हीं तीन बातों के लिए। फिर नोट कर लो। बच्चे भी नोट कर लें। छोटे बच्चे बैठे हैं। बेटे ! तुम जब शौच जाओ, पाख़ाने जाओ तो राख डालनी चाहिए। मक्खी नहीं आएगी, उस पर (मल पर) मक्खी नहीं बैठेगी। यदि उस पर बैठेगी तो वहाँ से उड़कर तुम्हारी रोटी पर बैठेगी। तुमने क्या उसे बाँध रखा है कि वह उधर नहीं आएगी ? तुम्हारे हलवे पर बैठेगी। इसलिए अपने घर में किसी घड़े या बाल्टी में राख रखो और फिर कोई भी शौच के लिए जाए तो वह ज़रूर राख डाले।"

मैंने यह इन्तज़ाम कर रखा है। यही इन्तज़ाम रखा हुआ है। जो भी आवे, यदि कोई बाहर का आदमी भी आवे तो बता देते हैं कि राख डालनी है (शौच के बाद)।

माताओं को चाहिए कि वे बच्चों को यह बात सिखाएँ। जहां पेशाब करें, वहाँ पानी डालें।

"पानी न डालें तो क्या हो जाता है ?"

"पानी न डालें तो दाग़ हो जाते हैं। देखने से बुरा लगता है। बदबू आती है।"

इसकी एक बात आपको सुनाऊँ शिक्षा देने के लिए।

मैं एक बार जोधपुर गया था। आर्यसमाज का जलसा था वहाँ। मैंने मन्त्री जी से कहा, "मन्त्री जी ! मैं लघुशंका करना चाहता हूँ, पेशाब करना चाहता हूँ, कहाँ जाऊँ ?"

मन्त्री जी ने कहा, "पंडित जी ! छत पर चले जाइए।"

छत पर जो गए तो देखा, वहाँ बीसियों लोगों ने पेशाब कर रखा था। एक ने एक जगह कर रखा तो दूसरे ने उससे अगली तरफ़, तीसरे ने पिछली तरफ़ कर रखा। इसी प्रकार वह ख़ुश्क हो गया। उनके नक्शे बने हुए थे।

मैंने मन्त्री जी से कहा, "यहाँ बहुत नक्शे बने हुए है, कहीं अफ्रीका का, कहीं अमेरिका का, कहीं जापान का, कहीं आस्ट्रेलिया का। बहुत

नक्शे बने हुए हैं। आप कहें तो मैं भी अपना बना दूँ? तोड़ दूँ इन सबको।"

मन्त्री जी भागे हुए बाल्टी लेकर आए। उस स्थान को धोया और बोले—

"अजी! पंडित जी! क्या करें! लोग आते हैं, इसी तरह करते हैं।"

मैंने कहा, "कुछ नहीं। हम आर्यसमाजी हैं और यदि हम भी न सोचें, न सीखें और इसी तरह करें तो क्या फ़ायदा?"

इसलिए कहते हैं कि जितनी बुरी आदतें हैं, जितने दुर्गुण हैं, वे सब हमें छोड़ देने चाहिए। जब तक हम उन्हें नहीं छोड़ेंगे, काम नहीं चलेगा।

पहली चीज़ है पवित्रता। मैंने आज वही कहा विद्यालंकार जी के यहाँ (जिनके यहाँ हम ठहरे हैं)—

"मैंने सीखा है।"

"कहाँ से सीखा है?"

"फ़ीरोज़पुर से सीखा है। फ़ीरोज़पुर आर्यसमाज के उत्सव पर मुसलमानों से शास्त्रार्थ था। मैं शास्त्रार्थ करने के लिए वहाँ गया हुआ था। वहाँ पर वकील साहब (विष्णुदत्त जी) के मकान में ठहरे थे। जब मैं उनके यहाँ प्रातःकाल पाख़ाने गया तो दो दफ़ा जाना पड़ा। एक बार चला गया। दुबारा गया तो क्या देखता हूँ कि वहाँ (शौचालय में मल पर) राख पड़ी हुई है। जब राख पड़ी हुई थी तो मैंने देवी जी को आवाज़ लगाई। मैंने कहा, "देवी जी, राख कहाँ है?" तो बहुत हँसीं।

मैंने कहा, "आप हँसी क्यों?" उन्होंने जवाब दिया, "हँसी यों कि आपने अक़्ल पर कुछ ज़ोर तो दिया। राख पड़ी थी तो आपने पूछा कि राख कहाँ है, आपने राख माँगी। किन्तु यहाँ लोग आते हैं। बहुत-से मुवक्किल वकील साहब के पास। वे समझते हैं कि पाख़ाना जाना हमारा काम और राख डालना वकील साहब की बीवी का काम।"

तो मैंने उस दिन से कान पकड़ा और कहा कि मैं बराबर अपने घर में इसका (राख का) इन्तज़ाम रखूँगा और मैं यह समझता हूँ कि इस सम्बन्ध में वे मेरी गुरुआनी हैं जिन्होंने मुझे यह सिखाया।

इसलिए मैं बच्चों को बता रहा हूँ कि इस बात का ध्यान रखो।

मैंने अपने घर में राख का ढेर रखा हुआ है। दो मन के क़रीब होगा। उपले जलते हैं। मैंने बराबर राख रखी हुई है। सब अपने

पाखानों में रखिए। जो पाखाने जाए, यह ज़रूर डाले अच्छी तरह से। क्या होगा ? मक्खी नहीं आएगी, दुर्गन्ध नहीं आएगी और आँखों को बुरा नहीं लगेगा। कितना अच्छा होगा ? यह होना ही चाहिए। यह एक याद रखने की चीज़ है जो माँ-बाप अपने बच्चों को सिखाएँ। यह सिखाने की चीज़ है बुरी चीज़ें जितनी भी हैं, वे हटानी चाहिए बच्चों से।

स्वामी जी ने लिखा है, 'लाडना बहवो दोषाः और ताडना बहवो गुणाः।' बच्चों की ताड़ना बहुत फ़ायदेमन्द है और ज़्यादा लाड करना नुक़सान वाली चीज़ है। इसलिए माताओं को ऐसा लाड नहीं करना चाहिए कि जिससे बच्चे बिगड़ जाएँ। बच्चे सुधरें, ऐसा काम करना चाहिए। क्या आप ज़रा भी ख़याल करती हो उस वक्त जब आटे को गूँधने लगती हो ? दोनों मुट्ठियों से लेकर यों उस पर कुछ रहम करती हो क्या ? कुछ दया करती हो ? नहीं न ? कई बार उसको यों पलटा, गूँधा, फिर पलटा। तब जाकर के उसमें लोच आता है और रोटी अच्छी बनती है और अच्छी फूलती है। यूँ ही अगर रख दो, लोच न लगाओ तो रोटी अच्छी नहीं बनती। तो इसलिए बच्चों को भी लोचदार बनाओ। बच्चों को लोचदार बनाने के लिए दूसरा समुल्लास है। सब सुन लें, जितने मेरे भाई यहाँ बैठे हैं, सब सुनें। मेहनत करनी चाहिए। लोगों ने औलाद पैदा की लेकिन मेहनत नहीं करते हैं।

"वेद क्या कहता है ?"

"सविता बनो। अगर औलाद पैदा करते हो तो उसे नेक कामों की तरफ़ ले चलो।"

"भगवान् ने इसीलिए क्या किया ? **धियो योनः प्रचोदयात्**—जीवों को शुभ काम की ओर प्रेरित करता है। उसने उत्पन्न किया है। वह शुभ कामों के करने की प्रेरणा करता है। अपना कर्त्तव्य पूरा करता है।"

"किन्तु माँ-बाप पूरा नहीं कर रहे हैं। उल्टा ख़ुद जा रहे हैं सिनेमा और बच्चों को भी ले जा रहे हैं ताकि वे भी बिगड़ जाएँ। हम भी बिगड़ें और वे भी बिगड़ें। आप हुक्का पीते हैं, उनको भी पिलाते हैं। बीड़ी पीते हैं, उनको भी पिलाते हैं। ये हैं किसी फ़ायदे की चीज़ ?"

मैंने तो अपने यहाँ तीनों भाषाओं में लिखकर बोर्ड लगाया हुआ है (तमाखू पीने की कड़ी रोक है। तम्बाकू पीने की सख़्त मुमानियत है। स्मोकिंग इज़ स्ट्रिक्टली प्रोहिबिटेड)। तीनों ज़बानों के अन्दर मैंने

अपने घर के बाहर बोर्ड लगा रखा है। कोई भी नहीं पी सकता। यह जो मेरा बच्चा है, मेरा नवासा, इसकी जब शादी हुई तो जिनके यहाँ शादी हुई वे सिगरेट बीड़ी पीते थे। जब वे हमारे यहाँ आए तो मैंने उनका मोढ़ा मकान के बाहर डलवा दिया और कह दिया कि जब तक आप बीड़ी-सिगरेट पियेंगे, बाहर मोढ़े पर ही बैठिये और जब पी चुकें तो अन्दर आ जाइये।

मैंने कहा, "बोर्ड लगा हुआ है, इसलिए अन्दर नहीं पी जा सकती।"

एक और साहब बैठे थे बोले कि "आपने तो बहुत सख़्ती की। ये तो आपके रिश्तेदार हैं।"

मैंने कहा, "रिश्तेदार हैं तो रिश्तेदार के ये माने हैं कि जहाँ पीने की जगह नहीं है वहाँ भी पिलाई जाए।"

एक मुसलमान साहब भी वहीं बैठे थे। वे जूते का जोड़ा लाए थे। वे कहने लगे—

"साहब, अगर लड़की के ससुर आ जाएँ तो आप क्या करेंगे ?"

मैंने कहा, "जो लड़की का ससुर होगा वह आदमी होगा या गधा होगा ?"

कहने लगे, "होगा तो आदमी ही।"

मैंने कहा, "अच्छा आदमी होगा, मान लीजिए आपके यहाँ आजाएँ और उनको पाख़ाने की हाजत हो तो उन्हें चूल्हे के पास बिठा दीजिए क्योंकि ख़ातिरदारी करनी है न, मेहमान आए हैं इसलिए वहीं बिठा दीजिए। वहीं क्या, बल्कि चूल्हे पे बिठा दीजिए। थोड़ी देर बाद साफ़ कर देंगे। खाना पका देंगे। चूल्हे और खुड्डी की शक्ल एक ही होती है।"

कहने लगे, "साहब, आप ऐसी बात कहते हैं ?"

मैंने कहा, "मैं यही कहता हूँ। आप पुख़्ता बनें, मज़बूत बनें। यह क्या वजह है कि जो पीने वाला है—जहाँ अन्दर पीना नहीं है, वह वहाँ आएगा ? वह अन्दर नहीं आएगा, बाहर ही रहेगा।"

मैं आज रेल से आया हूँ यहाँ। हापुड़ से आया दिल्ली। कितने ही सिगरेट पीने वाले मेरे पास बैठे थे। मैंने जब नाक पर कपड़ा लगाया तो उन्होंने मुझ पर इतनी मेहरबानी की कि मुँह नीचा करके धुआँ नीचे ही छोड़ते रहे। मैंने उनका धन्यवाद भी किया।

मैंने कहा, "चाहे आप पी रहे हैं। आपने मेरा लिहाज़ किया, इसलिए मैं आपका धन्यवाद करता हूँ।"

मैं पीता नहीं हूँ। लोग भी पीते कहाँ हैं ? उगलते हैं। मैंने पीते तो किसी को देखा नहीं। जब पीते हैं तो धुआँ उगलते ही देखा है।

बाहर निकालते ही देखा है। इस वास्ते ऐसे आदमी स्वयं अपने को बिगाड़ें और गैरों को तकलीफ़ दें, यह अच्छी चीज़ नहीं है। इसको बयान किया है एक डॉक्टर ने। बड़ा अच्छा कहा है उन्होंने।

डाक्टर कहते हैं (डॉक्टर कोविन)

O maidem, do not marry that man who smokes be cause there is no place for God in his heart.

वे कहते हैं, हे देवी ! ऐसे पुरुष से शादी मत करना जो तमाखू पीता है क्योंकि उसके दिल में ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं है। यह वह शख़्स कहता है।

"क्यों कहता है ? ईश्वर के लिए उसके दिल में क्यों स्थान नहीं है ?"

"क्योंकि वह अपने आपको भी नुक़सान पहुँचा रहा है और जो नहीं पीने वाले हैं उन्हें भी नुक़्सान पहुँचा रहा है। उनकी तरफ़ धुआँ जा रहा है। वे नाक बन्द कर रहे हैं। जो तुम्हें तकलीफ़ नहीं देते, तू उन्हें तकलीफ़ दे रहा है और साथ ही अपना नुक़्सान भी कर रहा है।"

इसलिए उसके अन्दर ईश्वर के लिए जगह कहाँ रही !

आज क्या हो रहा है ? आज जहाँ आदमी ने पतलून पहनी और कमीज पहनी तब कहते हैं कि सिगरेट लगनी चाहिए वर्ना चला ही नहीं जाएगा। सिगरेट लेता है। बाइसिकल पर बैठता है तो सीधी नहीं लगाता (सिगरेट)। मुँह में टेढ़ी लगाता है। जवानी का ज़ोर है।

मैं कहता हूँ, "छोड़ दो इसे।"

समय समाप्त होने को है। अन्त में मैं बस इतना ही कहता हूँ कि वेद लोगों को सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा करते हैं। वे लोगों के लिए हैं और करोड़ों ऐसे लोग, जिन्होंने वेद देखे भी नहीं हैं, वेदानुसार कार्य करते हैं। जीवन सुखी बनाना है तो वेद की आज्ञानुसार कर्म कीजिए।

॥ ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ॥

अपने घर में

घरेलू शताब्दी पुस्तकालय बनाइए

वर्ष में ४१-०० रु० की बचत कीजिए

१. हर दो महीने में एक बार २०-०० की पुस्तकें १८-०० में वी. पी. पी. से प्राप्त करें। वर्ष में १२-०० की बचत।
२. हर बार का डाकखर्च जो लगभग ४-०० होगा, वह हम वहन करेंगे। वर्ष में २४-०० की यह भी बचत।
३. वेदप्रकाश मासिक हर माह बिना मूल्य प्राप्त होगा। ५-०० की बचत।
४. इस प्रकार वर्ष में १२० रु० की पुस्तकें संग्रहीत हो जायेगी तथा ४१-०० रु० की बचत हो जायेगी।

सदस्य बनने के लिए आप हमें केवल तीन रुपये (अमानत राशि) भेज दें। तथा पुस्तकों के नाम लिख दें कि कौन-कौन सी पुस्तकें पहली वी. पी. से भेजी जायें।

अब तक हम निम्नलिखित पुस्तकें घरेलू शताब्दी पुस्तकालय के सदस्यों को दे चुके हैं।

पं० वीरसेन वेदश्रमी
वैदिक सम्पदा २०.००

श्री रणवीर
महात्मा आनन्द स्वामी जीवनी ८.००

पं० रामशरण वशिष्ठ
वेदार्थ विज्ञान १.००

प्रो० विष्णुदयाल एम. ए.
वेद भगवान बोले ४.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती
चतुर्वेदशतकम् ८.००
शिव संकल्प ४.००
विवाह पद्धति २.००

पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार
सामवेदभाष्य (दोनों भाग) ३८.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार
वैदिक वन्दना ७.००

वैद्य गुरुदत्त
विश्वदेवा ६.००
अद्वैत मीमांसा ६.००

प्रो० राजाराम शास्त्री
कठ उपनिषद् ८.००

प्रो० रामनिवास
ऋचाओं की छाया में ६.००

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार २०.००

प्रो० प्रशान्त वेदालंकार
महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था ८.००

पं० नरेन्द्र (स्वामी सोमानन्द सरस्वती)
हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

जो सज्जन इस पुस्तकालय योजना का लाभ उठाना चाहें वे ३.०० भेजकर सदस्य बन सकते हैं। उपरलिखित कोई पुस्तकें २०.०० की १८.०० में भेजी जायेंगी।

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८ नई सड़क, दिल्ली-११०००६

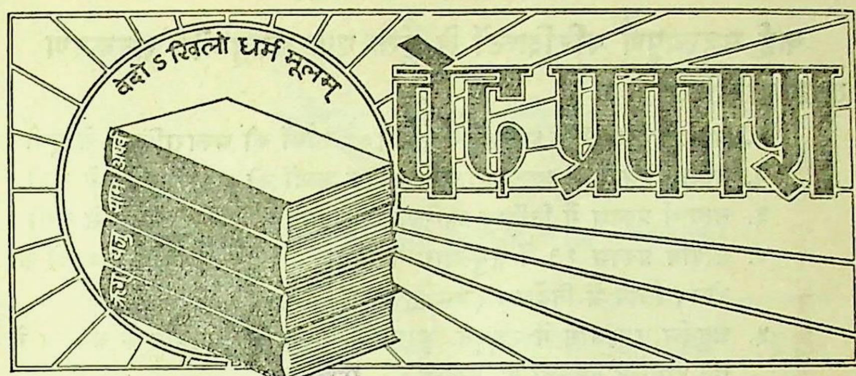
पं० रामचन्द्र देहलवी
देहलवी लेखावली ७.००
पण्डित बिहारीलाल शास्त्री
विचार वाटिका ३.००
प्रो० विष्णुदयाल
वेद भगवान् बोले ४.००
स्वामी सर्वदानन्द
आनन्द उपदेशमाला १.५०
प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
ब्रह्मचर्य संदेश ७.००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार २०.००
दयानन्दप्रकाश **स्वामी सत्यानन्द** १५.००
पं० भगवद्दत्त
भारतीय संस्कृति का इतिहास ७.००
डॉ० प्रशान्त कुमार वेदालंकार
महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था ८.००
स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती
आर्य समाज का परिचय १.५०
संकलन
महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००
महर्षि दयानन्द की देन ४.००
सत्यार्थप्रकाश **स्वामी दयानन्द** २५.००
संस्कार विधि ,, ४.००
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ,, ८.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ,, ०.१५
आर्याभिविनय ,, १.००
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण ,, ०.३७
आर्योद्देश्य रत्न माला ,, ०.२५
बालशिक्षक ,, ०.३७
व्यवहार भानु ,, १.००
सन्ध्या विनय **नित्यानन्द वेदालंकार** १.५०
पूर्व और पश्चिम ,, ७.५०
जीवन की राहें ,, ४.००
सु-राज्य की रूपरेखा ,, ०.५०
प्राणायाम विधि **नारायण स्वामी** ०.६०
आर्यसमाज क्या है ? ,, १.००
पं० नरेन्द्र
हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि
बृहदारण्यक कथामाला ३.००
भारत में मूर्तिपूजा **पं० राजेन्द्र** ४.००
स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द** ४.००
पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड
गोरक्षा परम कर्त्तव्य ०.५०
पं० उदयवीर शास्त्री
सांख्यदर्शन का इतिहास ४०.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास ३०.००
सांख्यसिद्धान्त २४.००
सांख्य दर्शन १६.००
वेदान्तदर्शन ३०.००
वैशेषिक दर्शन २५.५०
पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति
महर्षि दयानन्द ४.००
श्री रामशरण वशिष्ठ
पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १-००
स्वामी मंगलानन्द पुरी
श्री मद्भगवद्गीता १-५०
पं० राजनाथ पाण्डेय
वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त) १-००
कथा पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द** २-५०

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद
महर्षि दयानन्द १.५०
स्वामी श्रद्धानन्द १.००
गुरु विरजानन्द १.००
पं० लेखराम १.००
पं० गुरुदत्त १.००
स्वामी दर्शनानन्द १.००
पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०
वैदिक धर्मशिक्षा प्रथम भाग ०.६०
वैदिक धर्मशिक्षा द्वितीय भाग ०.६०
वैदिक धर्मशिक्षा तृतीय भाग १.००
वैदिक धर्मशिक्षा चतुर्थ भाग १.००
वैदिक धर्मशिक्षा पंचम भाग १.००
वैदिक धर्मशिक्षा षष्ठ भाग १.००
वैदिक धर्मशिक्षा सप्तम भाग १.२५
वैदिक धर्मशिक्षा अष्टम भाग १.२५

प्रकाशक, मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर एस० नारायण एण्ड संस पहाड़ी धीरज दिल्ली में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया



स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान अर्द्ध शताब्दी पर

प्रकाशित

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेद किस प्रकार के ग्रन्थ हैं इसका विहंगम दृष्टि से परिचय इस ग्रन्थ में कराया गया है।

वेद खण्ड, ईश्वर खण्ड, सृष्टि खण्ड, उपासना खण्ड, स्वास्थ्य और जीवन शक्ति खण्ड, ब्रह्मचर्य खण्ड, गृहस्थ खण्ड, राष्ट्र निर्माण खण्ड तथा वेद में वर्णित विविध एवं विभिन्न विषयों का समावेश इस ग्रन्थ में है।

उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कृत यह ग्रन्थ वेदप्रकाश के आकार में लगभग २५० पृष्ठों में समाया है।

बढ़िया कागज, मोती सी छपाई
सजिल्द आकर्षक आवरण
मूल्य केवल १५.०० रुपये मात्र

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

सत्यार्थ प्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादिक्रम से सूची।
२. सत्यार्थ प्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादिक्रम से सूची।
३. सत्यार्थ प्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादिक्रम से सूची।
४. सत्यार्थ प्रकाश १३ वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश। (जैसे हारून का Aaron)
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचंद्र देहलवी का वक्तव्य।
६. सत्यार्थ प्रकाश की आधार ग्रन्थ सूची।
७. सत्यार्थ प्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा। ८. अन्त में अकारादिक्रम से प्रमाण सूची।

विशेषताएँ

१. यह शब्दावली संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्तजी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी संस्करण में दी गई है।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय सूची समुल्लास-अनुसार।

बढ़िया कागज। १६ प्वां का मोटा मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५.००।

वैदिक सम्पदा [पं० वीरसेन वेदश्रमी]

'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है' तथा 'वेद में आधुनिक सभी समस्याओं का समाधान है' की व्याख्या में लिखा गया यह विषद्-ग्रन्थ वेद के सभी विद्वानों द्वारा सराहा गया है।

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड लिखते हैं—वैदिक समाजशास्त्र, वैदिक समाजवाद में पारिवारिक आदर्श, गृहस्थ निर्माण, आदर्शवाद, सामाजिक समस्याएँ, वेद में यातायात, वेद में चिकित्सा, विज्ञान, वैदिक अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, विज्ञान, रेखागणित, शासन (राजनीति), शिक्षा विज्ञान, वेदों में भाषा विज्ञान, ऋतुविज्ञान, भूतत्त्वविज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अग्निविज्ञान, विमान विज्ञान, जल विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, धर्म इस प्रकार विभाजन करते हुए वेदों के आधार पर इनपर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

मूल्य २०.००; राज संस्करण ३०.००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष : २६ अंक ५] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [दिसम्बर १९७६

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

भगवद्भक्तिः

लेखक : आचार्य जयदत्त शास्त्री, एम. ए.

ओ३म् प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदंवशे यो । भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ अथर्ववेदः ११ । ४ । १

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः ।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ॥ अथर्ववेदः

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ यजु० ३३ । ३१

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरो देवममीवचातनम् ॥
साम० १ । ३ । १२

इदमतिशयचित्रं सर्वतो दृश्यमानं,
जगदचरचरात्मं वीक्ष्य यद् विस्मितोऽस्मि ।
न खलु न खलु शक्तः पारमेतस्य यातुं,
क्व पुनरति विचित्रस्यास्य कर्त्तुर्महान्तम् ॥ १ ॥

प्रतिपलजनि मृत्यूद्धार कृत्यानि देवं,
ध्रुवमिह जगदीशं कारकं बोधयन्ति ।
स हि भवति शरण्यो जीवलोकस्य बन्धु-
र्गतिरपि परमात्मा सादरं तं नतोऽस्मि ॥ २ ॥

नानावादविवाददूषितधियो ह्यध्यात्ममार्गेऽधुना,
सत्योद्बोधनलक्ष्यलक्षणमना जिज्ञासुनून् नोनुवः ।
नम्रीभूय निवेदयेऽल्पमतिमान् स्वान्तान्तरे स्थायिनो,
भावांस्तत्त्वविचारणाय न मनोन्मोदाय वै केवलम् ॥ ३ ॥

प्रिय मित्रो ! आज एक गम्भीर किन्तु प्रसिद्ध विषय पर कुछ विचार-विमर्श हमें आपके साथ करना है। हममें से जो कोई भी व्यक्ति भगवान् का नाम सुनकर प्रसन्न होते हैं; भगवान् पर श्रद्धा तथा विश्वास रखते हैं; कदाचित् असत्य मार्ग पर चल पड़ने पर भगवान् से दण्डित होने का भय रखते हैं; उसकी अपार महिमा को विचारकर उसके प्रति नतमस्तक होते हैं; अपनी सम्पूर्ण शुभ कृतियों को उस मङ्गलमय देवता के अर्पण करते हुए उससे सफलता, सुख, शान्ति और सन्तोष की प्राप्ति तथा सकल रोग-शोक, ताप-शाप और दु:ख-दारिद्र्य के शमन की शुभकामना करते हैं, उनके प्रति तथा उन सहृदयों के प्रति जो इस विषय के जिज्ञासु तो हैं, किन्तु सच्चे मार्ग की खोज में भटक रहे हैं यहाँ विशेष रूप से विनम्र निवेदन करेंगे।

सर्वप्रथम विचारणीय प्रश्न यह है कि क्यों यह मानव अपने से बड़ी किसी अदृश्य किन्तु सर्वदा सर्वगत, अचिन्त्य किन्तु ज्ञानगम्य ऐसी शक्ति के प्रति बलात् आकृष्ट-सा, उसके वशीभूत-सा अपने को पाता है ? विचार करने पर पता चलता है कि जिस प्रकार सर्वथा अदृष्टपूर्व और अश्रुतपूर्व होते हुए भी किसी राजा की सत्ता का, उसकी शक्ति की अभिव्याप्ति—अर्थात् यत्र-तत्र उसकी नीति, नियम और व्यवस्थाओं की उपलब्धि मात्र से लोक को अनुमान हो जाया करता है; ठीक उसी प्रकार सामान्यतया अप्रकट से प्रतीत होने वाले भगवान् की सत्ता का भी स्वशक्ति की अभिव्याप्ति और दिव्य विभूतियों के रूप में विशेषत: प्रकटीकरण से मान और अनुमान अनायास एक विचारक को हो जाता है। असकृत् चिन्तन मनन से उसकी यह प्रतीति जब निश्चयात्मकता को प्राप्त हो जाती है तब वह उस महाशक्ति देवाधि-देव पर दृढ़तया विश्वास करने लग जाता है। इसी ज्ञान के आधार पर वह अपने को, अपने को ही क्यों समस्त स्थावरजङ्गमात्मक विश्व को ईश्वर के वशीभूत देखा करता है। परन्तु इस दृष्टि से विचार कर भगवान् पर दृढ़ विश्वास रखने वाले कितने लोग हैं ? क्या ये सारे लोग हैं जो समाज में धार्मिक, आस्तिक, ईश्वरभक्त अथवा देवपूजक कहलाते हैं ? नहीं-नहीं, विरले ही विचारक हैं, जो सद्गुरूपदेश, शास्त्राध्ययन और आत्मचिन्तन द्वारा हृद्गुहा में निगूढ़[1] आत्मज्योति को जगाते और प्रज्वलित करने में समर्थ हैं। तो शेष क्या कोरे हैं ? कोरे चाहे न कहिये, किन्तु उनके सदृश उत्तम कोटि के पात्र न होकर मध्यम अथवा अधम कोटि के पात्र तो हैं ही। क्योंकि चाहे गतानुगतिक न्याय (एक के देखादेखी अपने भी बिना विचारे वैसा कर लेना) जिसे कि अन्धपरम्परा भी कहा जाता है, से इस पथ के पथिक हों, अथवा किसी के आग्रह या आधीनता से आस्तिक श्रेणी में वे आ जाते हैं।

अब इसका निश्चय हो जाने पर कि प्रभु सर्वोपरि विराजमान है, यह देखना चाहिये कि उसका स्वरूप क्या है। वैसे यह विषय जितनी सरलता से यहाँ निरूपित

---

१. द्रष्टव्य—**वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।**
तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओत: प्रोतश्च विभू: प्रजासु॥
यजुर्वेद ३२। ८।

किया जा रहा है उतना सरल नहीं है। अपितु सूक्ष्म, गम्भीर और महान् होने से अति दुरूह है। भारत के सुदूर प्राचीन काल के महामनीषी, सिद्ध, योगी, महर्षि ब्रह्म के स्वरूपादि का बहुत कुछ विवेचन करने के उपरान्त भी 'नेति नेति' (अर्थात् वह ब्रह्म इतना ही नहीं है, जितना कि हमने उसका वर्णन किया, अपितु इससे भी महान् है, और उसका पूर्णतया वर्णन करना अल्पज्ञ और अल्पशक्ति मानव के सामर्थ्य से बाहर की बात है।) ऐसा लिख गये हैं, तो मेरे सदृश स्वल्पप्रज्ञ व्यक्ति की इसमें क्या थाह है। पुनरपि विषय आलोच्य होने से अपनी तुच्छ बुद्धि से इस पर कुछ लिखने का दुस्साहस करना ही पड़ता है। तब उसमें से युक्तायुक्त का निर्णय करना विद्वान् विचारशील पाठकों पर निर्भर करता है।

सामान्यतः संसार भरके, परन्तु अधिकांशतः भारतवर्ष के, अतीत और वर्तमान काल के मनीषी अपनी-अपनी दृष्टि से ईश्वर के सम्बन्ध में विचार कर गये और करते आ रहे हैं। उनमें कतिपय एक निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। परन्तु बहुतों के मतों में पर्याप्त भेद भी रहा है। उदाहरण के लिए एक ने यदि उसे अज, अमर और अशरीरी बतलाया है तो दूसरे ने उसे शरीर धारण करने वाला और जन्म-जरा-मरणादि बन्धनों से युक्त बतलाया है। एक ने यदि इन्द्रियों से अगम्य, निरूप और निराकार बतलाया तो दूसरे ने इन्द्रियगम्य, सरूप और साकार। एक ने यदि देशकाल जातिरूपेण अपरिच्छिन्न अर्थात् अनादि, अनन्त, सत्य, सनातन, सर्वव्यापक, सूक्ष्मतम, महत्तम, सदैकरस और निर्विकार बतलाया तो दूसरे ने एकदेशी, एककालिक, एकजातीय, सादि, सान्त और सपरिच्छेद्य। इस प्रकार ईश्वर के स्वरूप के विषय में परस्पर विरोधी भी अनेक सिद्धान्त मान्यता प्राप्त अवस्था में मिलते हैं। ऐसी स्थिति में स्वतन्त्र चिन्तक के सामने एक बड़ी समस्या उत्पन्न हो जाती है कि इन परस्पर विरोधी वादों में से किसको युक्त और किसको अयुक्त माना जाय।

परन्तु प्यारे मित्रो! चिन्ता करने और घबराने की कोई बात नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि आप अपने संकुचित मन-मन्दिरों के पट कुछ देर के लिए खोलकर उनके दूषित विचारवासनाओं रूपी कूड़े को दूर कर उनमें शुभ विचार रूपी वायु का आगमन होने दीजिए। चित्त की एकाग्रता को प्राप्त कर इस विषय पर स्वयं मनन करना आरम्भ कर दीजिए। कुछ काल पश्चात् आप देखेंगे कि आपको स्वत एव यथार्थता का आभास होने लगता है। दूसरे को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी कि सत्य क्या है और असत्य क्या है। आप स्वयमेव सत्यासत्य के निर्णय में बहुत कुछ अंश में सफल हो जायेंगे। हमारा अनुमान है कि आप बहुत कुछ निम्नांकित निष्कर्षों पर आ पहुँचेंगे—

(१) जो ईश्वर जगत् के उत्पादन, परिपालन और विनाशन के ज्ञान और सामर्थ्य से परिपूर्ण है, वह निश्चय ही अकेले विश्व की सभी सम्मिलित शक्तियों और ज्ञानवानों से कहीं अधिक शक्तिशाली और अधिक ज्ञानवान् है। इसी रूप में वह सर्वोपरि मान्य है। इस प्रकार जब ईश्वर के तुल्य ज्ञान और शक्ति वाला कोई अन्य नहीं तो ईश्वर से बढ़कर भी कोई होगा? यह प्रश्न ही नहीं उठता। देखिये ऋषि का

यह दर्शन कि **'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते'** (श्वेताश्वतरोपनिषद् ६ । ८)—अर्थात् उस (ईश्वर) के बराबर और उससे अधिक कोई देखने में नहीं आता है—हमारे विचारों से साम्य रखता है या नहीं ।

(२) संसार का एक प्रसिद्ध नियम है कि कारण सदैव स्वकार्य के पूर्व विद्यमान रहता है । उदाहरण के लिए अग्नि को उत्पन्न करने वाले साधन रूप कारण पूर्व और कार्यरूप अग्नि पश्चात् है । बनाने वाला कारीगर तथा मिट्टी, पत्थर, लकड़ी इत्यादि साधन रूप कारण पूर्व और भवन या मन्दिर रूप कार्य पीछे । कारण-भूत बीज पूर्व और कार्यभूत वृक्ष पश्चात् । ठीक इसी प्रकार इस संसार रूपी कार्य के पहले इसके कर्त्ता और प्रकृति परमाण्वादि निर्माण सामग्री का होना भी अत्यावश्यक है । जो इसका कर्त्ता है वही परब्रह्म,[१] परमेश्वर, परमात्मा इत्यादि नामों से सम्बोधित किया जाता है । भारतीय दर्शन शास्त्रों में जगत् के कर्त्ता का विशेष विचार वेदान्त शास्त्र में और जगन्निर्माण की उपादान सामग्री प्रकृति, परमाणु, जीवात्मा इत्यादि का विचार सांख्य, न्याय तथा वैशेषिक दर्शनों में हुआ है । इसी प्रकार सुख-दुःख रूप फलों (कार्यों) के प्रति पुण्यापुण्य कर्मों (कारणों) की हेतुभूतता और वैदिक यज्ञादि कर्मों का विचार पूर्वमीमांसा शास्त्र में किया गया है । योगदर्शन में चित्तवृत्तिनिरोध (समाधि) तथा कैवल्यमूलक योगाङ्गानुष्ठानों के साथ ईश्वरोपासना की रीति भी बतलायी गई है । एवं कृत्वा ये समस्त आस्तिक दर्शन ईश्वर-जीव तथा जड़ जगत् के विभिन्न पहलुओं पर विभिन्न दृष्टियों से विचार करने के लिए प्रवृत्त हुये हैं ।

(३) जो ईश्वर सर्वशक्तिमान् तथा जगत् का कर्त्ताधर्त्ता तथा संहर्त्ता है वह क्या स्थूल वा साकार है ? यदि तत्त्वतः स्थूल या साकार होता तो वैसा दिखाई देता । क्योंकि आकार-प्रकार वाली स्थूल वस्तुएँ चक्षुरिन्द्रियगम्य (नेत्रों से देखने योग्य) होती ही हैं । परन्तु इस प्रकार की कोई वस्तु जो इतनी महान् हो, स्थूल रूप और आकृति विशेष में न आज तक देखी गई और न आगे देखी जा सकेगी ऐसी सम्भावना ही है । **न भूतो न भविष्यति** । सुतरां व्यक्त है कि वह ब्रह्म महान् से भी महान् होते हुये भी स्थूल नहीं है । तो फिर कैसा है ? सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है । कठ तथा श्वेताश्वतर महर्षि की दिव्य दृष्टि **'अणोरणीयान् महतो महीयान्'** कठोप० १ । २ । २० (श्वे० ३०३ । २०) इन शब्दों के द्वारा इसी रहस्य का उद्घाटन कर रही है ।

अब आगे चलिए । प्रश्न होता है कि जब वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है तो किस रूप में ? इसका उत्तर यह है कि अति सूक्ष्म होने से आकार रहित है । परमाणु सूक्ष्म वस्तु है, सूक्ष्म होने से वही अदृश्य है । फिर उससे सूक्ष्म जीवात्मा और उससे भी सूक्ष्म परमात्मा के आकार और रूप की कल्पना ही क्यों करनी, जिस प्रकार वायुमण्डल

---

१. ब्रह्मादि शब्दों के पूर्व पर या परम विशेषण शब्द सन्देह दूर करने के लिए लगा दिया जाता है, क्योंकि ब्रह्मादि शब्द जगदीश्वर के अतिरिक्त अन्य अर्थों के भी वाचक हैं । जैसे ब्रह्म का एक अर्थ वेद और जगत् भी है, ईश्वर का एक अर्थ स्वामी या राजा भी है । आत्मा का एक अर्थ जीवात्मा भी है ।

में व्याप्त वायु आँख से न देखा जाता हुआ भी त्वगिन्द्रिय (स्पर्श) द्वारा ग्राह्य होता है; एवं च वायु के अस्तित्व का अपलाप नहीं किया जा सकता; उसी प्रकार सर्वगत परमात्मा भी अचिन्त्य (अस्मदादि के लिए) स्वकीय ज्ञान-बल-क्रियाओं द्वारा जो अणु अणु में गत्यादि रूपेण नियमन करता हुआ प्रतीत होता है, उससे उसकी सत्ता (अस्त्वि) का निषेध नहीं किया जा सकता वह रूपरसगन्धस्पर्श और शब्द से रहित होता हुआ भी इन गुणों को ग्रहण करने वाला, शरीर तथा उसके हस्तपादादि अवयवों से रहित होता हुआ भी उनके कार्यों को सम्पन्न करने वाला अद्भुत चेतन तत्त्व है। श्रुतिस्मृतियाँ इसी रूप में उसे गाती हैं तथा च—

'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥
कठोप० १। ३। १५

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥
श्वे० उ० ३। १९

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥
ऋ० १०। ८। १ ३, यजु० १७। १९ श्वे० उ० ३। ३

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥ श्वे० उ० ३। १६। १७
सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणगुणाभोक्तृ च ॥ गीता १३। १४

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ विधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ प्रान बिनु बास अशेषा ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥
(रामचरितमानस)

जिस प्रकार प्रकृति पुरुष का निरूपण करते हुए सांख्यदर्शनकार महात्मा कपिल ने लिखा "सौक्ष्मात् तदनुपलब्धिः" (सां० सू० १। १०९) अर्थात सूक्ष्म होने से प्रकृति तथा जीवात्मा भले ही दिखाई नहीं देते, फिर भी सत्ता तो उसकी है ही। उसी प्रकार परमेश्वर भी यद्यपि अति-सूक्ष्म, (केवल प्रज्ञान गम्य) होने से, इन चर्मचक्षुओं से नहीं देखा जा सकता है, तथापि उसकी सत्ता तो है ही। वह किसी भी वस्तु की उत्पत्ति के पूर्व और विनाश के पश्चात् भी अवस्थित रहता है। अतएव सदा एक रूप रहने से निर्विकार, नित्य, सत्य और सनातन उसे कहा जाता है। तथा सर्वत्र उपस्थित रहने से सर्वव्यापी और सर्वगत उसे कहते हैं। सृष्टि के अन्तर बाहर उसके अनुप्रविष्ट होने की

बात को उपनिषत्कार ने "**तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्**" (अर्थात् उस (जगत्) को रचकर उसके भीतर अनुप्रविष्ट ब्रह्म हो जाता है) इन शब्दों में प्रतिपादित किया है।

(४) उस परात्पर ब्रह्म को अध्यात्मशास्त्रों में नित्यशुद्धबुद्धमुक्त-स्वभाव, आप्तकाम[1] और सच्चिदानन्दस्वरूप बतलाया गया है। अब उसको प्राप्तकाम या पूर्णकाम मानने पर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि सृष्टि रचने का उसका प्रयोजन क्या है? इसका उत्तर शास्त्रकारों ने इस प्रकार दिया है कि उसके लिए जगत् की उत्पत्ति, धारण और प्रलय के कृत्य कोई प्रयोजन विशेष से नहीं किन्तु स्वाभाविक-क्रीडावत् हैं। जिस प्रकार प्राणिशरीर में श्वास-प्रश्वास की क्रिया प्राणी की इच्छा या प्रयत्न से न होकर अनायास स्वत एव हो रही है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरवर्ती दैवी (अमानवीय) कार्यों की स्थिति है। अतएव "**स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च**" (श्वे० उ० ३। ८), "**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**" वेदान्त सू। २। १। ३३), "**तस्यात्मानु—ग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनम्**" (योग सू० १। २५ व्यासभाष्यम्) इत्यादि निष्कर्षों को प्राचीन तत्त्वज्ञ महर्षियों ने सिद्धान्तत माना है। इस प्रकार प्रागभाव प्रध्वंसाभाव के बीच में पड़ने वाला यह जगत् यद्यपि अनित्य माना जाता है, तथापि सृष्टि प्रलयचक्र के निरन्तर चलते रहने से अनादि-अनन्त और प्रवाह से नित्य[2] ही है। अतएव कपिपय अद्वैतवेदान्तियों की यह उक्ति कि ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई सत् नहीं है, संगत नहीं होती। तत्त्वतः ब्रह्म, जीव और जगत् का मूल उपादान कारण-प्रकृति ये तीनों सत् (नित्य) हैं। जीव सत् तथा चित् (ज्ञान वाला) तथा ब्रह्म सत्, चित् तथा आनन्दरूप है।

(५) संसार में सभी प्राणी स्व-स्वप्राक्तन कर्मों के फलों, जो कि विपाक को प्राप्त हो चुके हैं, को भोग रहे हैं। कर्मफलों की यह अनुकूल-प्रतिकूलता, सुखदुःखरूपता, हानिलाभोभयरूपता सबको घेरे हुये है, जो भाग्य नाम से प्रसिद्ध है। इन-वर्त्तमान में अदृष्ट अथवा दृष्टपूर्वकर्मों के फलों की न्याय संगत व्यवस्था तभी उत्पन्न हो सकती है जबकि किसी निष्पक्ष न्यायाधीश को मध्यस्थ मान लिया जाय। इस प्रकार का न्यायाधीश परमेश्वर के अतिरिक्त हो ही कौन सकता है, जिसका कि लोक-लोकान्तरों में बसने वाले असंख्य प्राणियों के ऊपर एक साथ ही न्याय का व्यवहार(जिसके जैसे कर्म हैं, उसको उन्हीं के अनुसार फल भुगतवाना) चल रहा हो। मनुष्य समाज में जिस प्रकार राजनियमों का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति राजा या शासन की ओर से दण्डित तथा उनके अनुकूल आचरण करने वाला सम्मानित अथवा पुरस्कृत होता है; उसी प्रकार जो

---

१. "**अकामो धीरोऽमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्च नोनः।**
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानाम्।"

अथर्ववेदः १०। ८। ४४

२. द्रष्टव्य—"**यथर्तुष्वृतुलिङ्गानि नामरूपाणि पर्यये।**
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु॥

वेदान्त दर्शन—शांकरभाष्य १-३-३० में उद्धृत

प्राणियों के कर्म राजा या शासन की दृष्टि या सीमा से परे हैं, उनका उपद्रष्टा और फलदाता परमेश्वर है।

वैदिक दर्शन इसी तत्त्व की ओर संकेत कर रहा है। उदाहरणार्थ देखिये निम्नांकित मन्त्र—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यास्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम॥

(यजु० ४०। १६)

अर्थ—हे प्रभो! हमें धन प्राप्त्यर्थ अच्छे मार्ग से ले चलो; आप हमारे संपूर्ण ज्ञान और कर्मों को जानते हो, कुटिल और पापकर्मों (जो परिणामतः दुःखदायी होते हैं) से हमें पृथक् कर दो। आपकी महत्ता के समक्ष हम सदैव नतमस्तक है, अतः बार-बार नमस्कारोक्तियाँ आपको समर्पित करते हैं।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः। (यजु० ४०। २)

अर्थ—इस संसार में मनुष्य शुभकर्मों को करता हुआ सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करे।

'सखायः क्रतुमिच्छत' (ऋग्० ८। ७०। १३)—मित्रो! कर्मशील बनने की इच्छा करो।

'देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः। (अथर्व० ६। २३। ३)

अर्थ—सर्वोत्पादक और प्रेरक, सुखदाता, ईश्वर की व्यवस्था-प्रेरणा में सब मनुष्य शुभ कर्मों को किया करें। (ज्ञातव्य है कि ईश्वर की प्रेरणा दो प्रकार की है—(१) वेदाज्ञारूप में, तथा (२) आत्मा के आभ्यन्तर हो बुद्धि में मार्ग निर्देशन के रूप में)

'न किल्बिषयत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः समममान एति।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनराविशाति॥

(अथर्व० १२। ३। ४८)

अर्थ—इस कर्म सिद्धान्त के विषय में कोई त्रुटि नहीं है, कोई कमी नहीं है; न किसी की सिफारिश चलती है, न मित्रों के साथ गति कर सकता है अर्थात् मित्रों का सहारा लेकर भी नहीं बच सकता। हमारा यह कर्मों का पात्र विना किसी घटा बढ़ी के पूर्ण भरा हुआ रखा है। पकाने वाले को पकाया पदार्थ फिर आ मिलना है, अर्थात् जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। यही बात एक अन्य मन्त्र में कही गई है—

असद्भूम्याः सम्भवत्तद् द्यामेति महद् व्यचः।
तद् वै ततो विधूयायत प्रत्यक् कर्त्तारमृच्छतु॥"

(अथर्व० ४। १९। ६)

दुष्ट कर्म भूमि से उत्पन्न होकर और बड़े भारी रूप में फैलकर चाहे आकाश तक पहुँचा जाये तो भी वह कर्त्ता को सन्ताप देता हुआ उसी के पास लौट आता है।"[1]

---

१. यह अर्थ और इससे संबन्धित मन्त्र 'वैदिक उदात्त भावनाएँ', पृ० ३७ से साभार उद्धृत है।

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥
(ऋ० ७ । ३२ । २६)

अर्थ—हे ऐश्वर्यशालिन् देव ! आप हमें ज्ञान और कर्म से ऐसे ही समन्वित कर दीजिए जैसे कि योग्य पिता अपने योग्य पुत्रों को कर देता है। अयि सबके पूज्य देव ! इस संसार यात्रा में हमें ऐसी शिक्षा दीजिए जिससे कि हम ज्ञान के वा सुख के प्रकाश (रूपफल) को प्राप्त करने में समर्थ हों।

स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा ते अन्येन न सन्नशे ॥ (यजु० २३ । १५)

अर्थ—हे बलवन् ! प्राणिन् ! तू स्वयमेव अपने शरीर का पूर्ण विकसित रूप में निर्माण कर; स्वयं यज्ञ-दानादि सत्कर्म और सुसंगति कर; और स्वयमेव अर्जित वस्तुओं का प्रीति से सेवन कर। तेरी महिमा, बड़प्पन और गौरव दूसरे के द्वारा प्राप्त होने की वस्तु नहीं है; तू स्वयम् उसका कारणकर्त्ता बन।

स्पष्ट है कि वैदिक विचारधारा के अनुसार संसार-सागर में प्रत्येक प्राणी अपनी जीवन रूप नौका का नाविक स्वयं है। वह **"स्वतन्त्रः कर्त्ता"** (अष्टा० १ । ४ । ५४) के नियम से कर्म करने में स्वतन्त्र है। किन्तु फल पाने में परतन्त्र है। अतएव गीताकार की यह उक्ति विश्वविख्यात हो गई है कि **"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।"** (गीता २ । ४७) कर्म करने में ही जीव की स्वतन्त्रता-स्वेच्छा चल सकती है, फल पाने में नहीं। यह भी निश्चित बात है कि किया हुआ कर्म फल दिये बिना नहीं रह सकता। अतः यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
क्षीयन्ते नाऽस्य कर्माणि कल्पकोटि शतैरपि ॥

कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करेउ सो तस फल चाखा ॥
(रामचरितमानस)

कर्मों की शृंखला ही संसारशृंखला है और कर्मों की विचित्रता ही संसार की विचित्रिता[1] है। कर्मों के रहते ही ईश्वर फल दे सकता हैं, न तु अन्यथा। जिसने कर्म ही नहीं किया तो उसको वह क्या फल देगा। इस बात को दूरदर्शी कवि लोगों ने बड़े सुन्दर रूप से इस प्रकार वर्णित किया है—

(१) **अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूप्पन्यकर्मणाम्।**
कर्त्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्त्तुः प्रभुर्हि सः ॥ (भागवत)

(२) **नमस्यामो देवान् ननु हतविधेस्तेऽपि वशगाः,**
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियत कर्मैकफलदः।
फलंकर्मायत्तं किममरगणैः किञ्च विधिना,
नमस्तत् कर्मेभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥

इस कर्मफल व्यवस्था के विचार से भी ईश्वर की सिद्धि हो जाती है।

१. द्रष्टव्य—**"कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्"** (सांख्य सूत्र ६ । ४१)

(६) ईश्वर की एक और विशेषता का विवेचन करके हम प्रकृत प्रसंग से आगे बढ़ेंगे। वह विशेषता यह है कि जिस प्रकार इस अद्‌भुत जगत् को रचकर ईश्वर ने कर्मक्षेत्र में प्राणियों को उतारा है; स्वेच्छानुसार कर्म करने तथा भोग और मोक्ष सुखों को प्राप्त करने का अवसर दिया है; उसी प्रकार बुद्धिजीवी मनुष्यों के मार्ग निर्देशन के लिये मनुष्यादि सृष्टि के साथ ही साथ एक ज्ञानराशि भी प्रदान[1] की है जो वेद नाम से प्रसिद्ध है। यह वेद इस समय भी ऋग्-यजु:-साम-अथर्व नाम से चार विभिन्न रूपों में हमें उपलब्ध है। इसकी उत्पत्ति का वही इतिहास है जो सृष्टि की उत्पत्ति का। अन्तर केवल इतना है कि सृष्टि भौतिक-अभौतिक वस्तुओं का सम्मिश्रण है तो वेद पदार्थ प्रत्यायक परमात्मा का निश्वासरूप[2] शब्दमय काव्य[3] होने से केवल ज्ञान की साधन वस्तु है। अतएव आत्मा और चेतना (बुद्धि) का तथा श्रोत्र और वागिन्द्रियों का विषय (लिपिबद्ध होने पर चक्षुर्विषय भी और त्वग् व घ्राणेन्द्रिय का विषय भी) है। उसमें मानवों के कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्मों का निरूपण ही नहीं अपितु मानवोन्नति के समस्त उपायों का प्रतिपादन है। सभी आस्तिक दर्शन वेदों की ईश्वरमूलकता और स्वत: प्रमाणता को एक स्वर से स्वीकार करते हैं। देखिए कुछ निदर्शन—

(१) **मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवत्तत् प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्।**" (न्यायदर्शन)

(२) **तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।** (वैशेषिकदर्शन १।१।३)

(३) **निज शक्त्यभिव्यक्तेः स्वत: प्रामाण्यम्।** (सांख्यदर्शन ५।५१)

(४) **(स एष) पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।** (योगदर्शन १।२६)

(५) **औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपेदशोऽव्यतिरेक श्चार्थेनुपलब्धे तत् प्रामाण्यम्०।** (पूर्वमीमांसादर्शनम् १।१।५)

(६) **शास्त्रयोनित्वात्; अतएव च नित्यत्वम्;**
(उत्तरमीमांसादर्शन १-१-३; १-३-२९)

अतएव ब्रह्म वेदादिसच्छास्त्रों-अनेक विद्याओं का आदि कारण माना जाता है।

यह परमेवर के स्वरूप तथा गुण, कर्म, स्वभावों का संक्षिप्त परिचय है जिसका कि आपने कुछ दिग्दर्शन किया। अब यह विचारना है कि इन देहधारी या देहयुक्त जीवात्मावों का परमात्मा से क्या सम्बन्ध है; और क्या उसकी उपासना द्वारा जीव का कोई प्रयोजन सिद्ध भी होता है या नहीं। विचार से पता चलता है कि अनेक बातों में परमात्मा और जीवात्मा में समानता है और अनेक बातों में विषमता। समानता इन बातों में है :—

---

१. **'देवत्तं ब्रह्म गायत'** (ऋ० १।३७।४)—देव अर्थात् ईश्वर के दिए हुए ब्रह्म (वेद) को गाओ।

२. **एवं वास्वैऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरसः।**
(बृहदारण्यकोपनिषद् ३।४।१०)

३. **"देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।** (अथर्ववेद)
"स पर्यगाच्छुक्रमकायम···कवि···याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥" (यजुर्वेद)

(१) ईश्वर सूक्ष्म और निराकार है; जीवात्मा भी सूक्ष्म और निराकार है।

(२) ईश्वर अज, अमर, अनादि, अनन्त है; जीवातमा भी अज, अमर, अनादि, अनन्त व नित्य है।

(३) ईश्वर सत्, चित् है; जीवात्मा भी सत् और चित् है।

(४) ईश्वर शक्ति और ज्ञान (प्रकाश) का पुञ्ज है; जीवात्मा भी शक्ति और ज्ञान (प्रकाश) का पुञ्ज है।

विषमता निम्नांकित बातों में है :—

(१) ईश्वर जगत् की रचना, पालना व विघात अपनी अभिव्याप्ति और सर्वगत शक्ति द्वारा बिना कोई शरीर या आकार धारण किये ही कर लेता है। परन्तु जीवात्मा छोटी-मोटी वस्तुओं का उत्पादन मनुष्यादि शरीर धारण करके ही कर सकता है। शरीर और ज्ञानकर्मेन्द्रियों के बिना नहीं।

(३) ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। जीव अल्पशक्तिमान् है।

(२) ईश्वर सर्वज्ञ (भूत-भविष्य-वर्त्तमान के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान रखने वाला) है। जीव अल्पज्ञ है। शास्त्रकारों के अनुसार गोगारूढ़ होने पर भूत और भविष्य का भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेता है, परन्तु ईश्वरवत् सर्वज्ञ पदवी को फिर भी नहीं प्राप्त हो सकता।

(४) ईश्वर कदापि शरीर धारण नहीं करता[1]। किन्तु जीव सृष्टिकाल में जब तक मुक्त नहीं हो जाता तब तक एक के बाद दूसरे शरीर को अपने प्राक्तन कर्मों के अनुसार धारण करता रहता है। अतएव ईश्वर शरीर सम्बन्धी जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, भय इत्यादि क्लेशों से सदैव विनिर्मुक्त[2] है, और जीव शरीरावस्था में सदा इन क्लेशों से घिरा हुआ है।

(५) ईश्वर सदा आनन्दस्वरूप है। परन्तु जीवात्मा समाधि-सुषुप्ति-मोक्ष[3] की अवस्थाओं को छोड़कर अन्य अवस्थाओं में स्वरूपस्थ न रहने के कारण नित्य आनन्दरूप नहीं है।

(६) ईश्वर देवाधिदेव, सर्वतोमहान् और जीव का हितैषी मित्र[4] होने से उपास्य है, परन्तु जीवात्मा उपासक।

---

१. वेदबाह्य पुराणादि ग्रंथों में ईश्वर के यदा कदा दुर्जन दमनार्थ और सज्जन रक्षणार्थ अवतार (शरीर विशेष) धारण करने की जो बाते लिखी गई हैं, वे सच्छास्त्रों और तर्क से अनुमोदित न होने से प्रामाणिक नहीं हैं। इस सम्बन्ध में कुछ विशेष विवेचन आगे किया जा रहा।

२. योगदर्शनकार ने स्पष्टतः कहा है—**'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'**। (यो० द० १। २४)

३. 'द्रष्टव्य—**'समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपताः'**। (सांख्यसूत्र ५। ११६)

४. **'देवो देवानामसि मित्रो अद्‌भुतः०'; 'इन्द्रस्य युज्यः सखा'**।
(ऋग्वेद १। ६४। १२; १। २२। १६)

(७) ईश्वर कर्मफल प्रदाता है। जीव कर्मकर्त्ता तथा फलभोक्ता है। (ईश्वर के सृष्ट्यादि कर्म सहज और निष्काम होने से उनमें वह लिप्त नहीं होता।)

(८) ईश्वर मोक्षदाता है और जीव मोक्ष प्राप्ता।

(९) ईश्वर सर्वव्यापक है और जीवात्मा परिच्छिन्न और एकदेशी। स्वशरीर में यद्यपि आनख-शिखाग्रं जीवात्मा की व्याप्ति सी प्रतीत होती है परन्तु तत्त्वत: वह हृदय गुहा-बुद्धि में ही केवल विराजता है[1]; और हृदय से समस्त शरीर में प्रसृत सहस्रों नस नाड़ियों में व्याप्त व्यान वायु द्वारा सर्वत्र देह में उपस्थित सा लगता है।

(१०) ईश्वर विभु (व्यापक), प्रभु (स्वामी), शम्भु (कल्याणकारी) तथा सत्यं शिवं सुन्दरं है। वह समस्त प्राणियों का माता, पिता, गुरुवत् पालन-पोषण करने वाला तथा राजवत् न्यायाधिपति होने के कारण अपराधानुकूल दण्डदाता है। जीवात्मा में ये सब योग्यतायें यदि कुछ हैं भी तो ईश्वर के सामने नगण्य हैं। जीवात्मा यदि कथांचित राजा, या देव बन भी जाय तो भी ईश्वर के ही अधीन है। अतएव ईश्वर राजाओं का भी राजा, सम्राटों का भी सम्राट्, और देवों का भी देव है। ठीक ही ऋषि लोग कह गए हैं।—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां प्रथमं पुरस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

(श्वे० उ० ६।७)

इस प्रकार ईश्वर और जीवात्मा के बीच अन्य भेद भी ढूँढ़े जा सकते हैं। यहाँ तो ये स्थालीपुलाकन्याय से निदर्शनमात्र हैं। अब आइये अगले ईश्वरोपासना विषय पर विचार करें।

यह शरीर में बद्ध जीव अनेक सांसारिक क्लेशों से पीड़ित है। इन क्लेशों को ऋषियों ने तीन भागों में विभाजित किया है। वे हैं आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक।[१] जो दु:ख स्वशरीरगत और स्वमनोगत हैं, वे आध्यात्मिक हैं। जैसे रोग शोक, चिन्ता, भय, अविद्या आदि।[२] जो दैवी शक्तियों के निमित्त से उत्पन्न होते हैं, वे आधिदैविक हैं। जैसे क्षुधा, तृष्षा, अतिशैत्य, अत्युष्णता, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, विद्युत्प्रपतन, अन्धकारादि। (३) जो दु:ख मनुष्यों में से चोर, डाकू, लुटेरे, दुर्जन तथा हिंसक पशुओं जैसे सर्प, व्याघ्र आदि से उपन्न होते हैं, वे प्राणिनिमित्तक होने के कारण आधिभौतिक कहलाते हैं। इन त्रिविध दु:खों से छुटकारा पाने की सामान्यत: प्राणिमात्र की और विशेषत: मनुष्यमात्र की निरन्तर आकांक्षा बनी रहती है। अत: वह यथाशक्ति इन दु:खों को दूर करने की चेष्टा करता रहता है, और एतदर्थ अनेक साधनों व उपायों का आश्रय लेता है। इन्हीं साधनों और उपायों में ईश्वरोपासना भी एक है, जिसकी सर्वोत्तम वैज्ञानिक विधि 'अष्टाङ्गयोग' की मानी गई है। अष्टांगयोग के

---

१. विशेष जानकारी के लिये देखें पं० युधिष्ठिर मीमांसक जी का 'वेदवाणी' मासिक पत्र (काशी) में धारावाही रूप से प्रकाशित निबन्ध—"जीवात्मा का मनुष्य-शरीर में निवासस्थान"। (वेदवाणी वर्ष २०, अंक ९। १०)

अनुष्ठान से होने वाले महाफल का वर्णन करते हुए पतञ्जलि महामुनि लिखते हैं—

"योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।"

(यो० द० २ । २८)

इस पर महर्षि व्यासजी भाष्य करते हुए लिखते हैं—

"योगांनुष्ठानमशुद्धेर्वियोगकारणं, यथा परशुश्छेद्यस्य;
विवेकख्यातेस्तु प्राप्तिकारणम्, यथा धर्मः सुखस्यः···।"

अर्थात् यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि नामक आठ अंगों वाले (क्रियात्मक व्यवहार) योग का अनुष्ठान शरीर मन और आत्मा की अशुद्धि (अपवित्रता, मलिनता) को ऐसे ही दूर कर देता है जैसे कि फरसे से काटी जाने वाली वस्तु) कटने पर स्वस्थान से) दूर कर दी जाती है । साथ ही उससे ज्ञान की वृद्धि होते-होते प्रकृति-पुरुष के भेद का वास्तविक बोध ऐसे प्राप्त हो जाता है जैसे कि धर्माचरण करने से सुख । इन योगाङ्गों में द्वितीय अंग-नियम का अन्तिम प्रकार ईश्वरप्रणिधान नाम से प्रसिद्ध है, जिससे समाधि की सिद्धि[१] प्राप्त होती है । यह ईश्वरप्रणिधान क्या वस्तु है ? इसे समझना चाहिये । कहा गया है कि सब विचार और कर्मों को ईश्वर के अर्पण (हवाले) कर देना ही ईश्वरप्रणिधान है । इससे साधक को भूत, भविष्य सम्बन्धी इष्ट पदार्थों का यथार्थज्ञान होने लगता है । यह योग का मार्ग यद्यपि सर्व-साधारण जनों से गम्य नहीं है । विरले ही विरक्त तथा सांसारिक प्रपञ्चों से रहित तपस्वी साधक इस पथ के पथिक बन सकते हैं । पुनरपि यथाशक्ति इसका आचरण कल्याणकर ही हुआ करता है इसमें कोई सन्देह नहीं ।

ईश्वरोपासना-भक्ति के अन्य प्रकारों पर इस ग्रन्थ में आगे विचार किया जा रहा है । पहले फल प्रयोजनादि पर यहाँ विचार करते हैं ।

सांसारिक आपदाओं से घिरे मानव को ईश्वरोपासना से बड़ी शान्ति मिलती है । ज्ञान का प्रकाश मिलता है । आत्मबल और सम्बल मिलता है ।[२] ईश्वर के जो शुद्धता, मुक्तता, पवित्रता, न्यायकारिता, दयालुता, निष्कलमषता, विज्ञानात्मता, आनन्द आदि गुण हैं वे उपासक की आत्मा में भी समविष्ट होने लगते हैं । 'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति'—इस न्याय से भला सकल गुणागार भगवान् की भक्ति से सद्‌गुणों की प्राप्ति भक्त को क्यों न हो ? विज्ञानानन्द-रूप भगवान् की उपासना से उपासक की आत्मा में विज्ञानानन्द उदय होना सर्वथा तर्कसंगत है । वेदशास्त्र भी तो इस रहस्य का निर्देश कर रहे हैं । यथा—

(१) तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।
बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽसि, ओजो मयि धेहि ।

---

१. 'समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्' (यो० द० २ । ४५)

२. द्रष्टव्य—"य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यछायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।"
(यजु० २५ । १३)

मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥" (यजु० १६ । ६)

अर्थात् हे प्रभो ! आप तेजस्वी, वीर्यवान् (पराक्रमवान्) बलवान्, ओजस्वी, (दुष्टों के दमन के लिए) क्रोधी तथा क्षमावान् (सज्जनों तथा कर्त्तव्यादि भारों के) हैं; अतः मुझ (उपासक) को भी वर्चः, तेज आदि आत्मगुणों से भर दीजिये।

"विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥"

(यजु० ३० । ३)

हे दुर्गुणनाशक तथा मंगलमय कल्याणकारी देव ! आप हमारे (अर्थात् भक्तों के) समस्त दुर्गुणों को दूर कर हमें मंगल और कल्याणकारी गुणों को प्राप्त करा दीजिये।

"परि माऽग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज ।" (यजु० ४ । २८)

हे प्रकाशस्वरूप अग्रणी देव ! हमें दुष्ट बातों, दुष्ट कर्मों से रोककर अच्छी बातों, अच्छे कर्मों में लगा दीजिए।

असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माऽमृतं गमय ॥

(बृहदारण्यकोपनिषद्)

हे सत्यदेव ! आप हमें असत्य से सत्य की ओर ले चलिये। हे प्रकाशस्वरूप देव ! आप हमें अज्ञान व अन्धकार से ज्ञान व प्रकाश की ओर ले जाइये। हे अमृत अविनाशी देव ! हमें मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलिए। इत्यादि। अतएव वेद की यह घोषणा है—

"विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ॥" (यजु० ४ । ७)

अर्थात् सभी लोग आत्मसुख कल्याण के लिये सर्वत्र प्रकाशमान् सर्वसौख्यप्रद सच्चिदानन्द परमेश्वर देवाधिदेव महादेव की मित्रता किया करें और मित्रता किया करें उस व्यक्ति की जो अपने भव्यगुणों से समाज का नेता, संरक्षक और उद्धारक है।

अपि च, ईश्वर सकल प्राणियों का माता तथा पिता के समान लालन-पालन कर रहा है। उसके कृपाकटाक्ष के विना कौन यहाँ क्षणमात्र भी स्वस्थ रह सकता है। ऐसे पितृवद् हितकारी ईश्वर की भक्ति न करना, उसके गुणों को न गाना, उसकी पूज्यता, महत्ता और उपकारों को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता नहीं तो और क्या है। अतः मनुष्यमात्र का यह कर्त्तव्य है कि जैसे लोक में अपने उपकारक और हितैषी तथा सम्बन्धी व्यक्ति का मान और पूजन करते हैं, उसी प्रकार उपकारकों का भी उपकारक, हितैषियों में भी श्रेष्ठ तथा सम्बन्धियों में भी निकटतम प्रभु का भी अत्यन्त नम्र और आर्द्रभाव से आदर और श्रद्धाभक्ति किया करें। वेद तो ईश्वर के साथ जीव के माता, पिता, गुरु, बन्धु, सखा, मित्र आदि सभी आत्मीय सम्बन्धों को प्रतिपादित करते हैं। यथा

(१) "त्वं हि नः **पिता** वसो त्वं **माता** शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे ॥" (ऋग्वेद अथर्व० २० । १०८ । २)

(२) "शृण्वन्तु विश्वे **अमृतस्य पुत्रा** आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ।" (अथर्व०)

(३) "स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।"
(यजु० ३२ । १०)

(४) "ग्रौदितिद्यरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।"
(ऋग्वेद १ । ६ । १६ । ५)

(५) "न रिष्येत् त्वावतः सखा," "सुमित्रः सोम नो भव"
(ऋ० १ । ६ । २० । ३, १ । ६ । २१ । २)

(६) "देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामपि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।"
(ऋ० १ । ६ । ३२ । ३)

(७) "स पर्यगाच्छुक्रम्···कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यःसमाभ्यः ।।" (यजु० ४० । ८) इत्यादि ।

ईश्वर के ग्रसंख्य उपकारों में मनुष्य शरीर का प्रदान करना ग्रौर उसमें भी ग्रन्यों से विशेष बुद्धि प्रदान करना विशेष प्रकार का उपकार है। यह बुद्धि ही मनुष्य का संसारयात्रा में क्षण-क्षण ग्रौर पग-पग में मार्गनिर्देशन करती है । ग्रतः इसका मानव शरीर में, ग्रात्मा के बाद सर्वोच्च स्थान है। इसके बिना मानव मानव नहीं, ग्रपितु दानव है; इतना ही क्यों वह सर्वथा ग्रन्धा है । नेत्रोविहीन व्यक्ति जिस प्रकार चलने में ग्रकिंचितकर तथा पथभ्रष्टत्व ग्रौर निपतन के भय से पीड़ित है, वही दशा बुद्धिविहीन मनुष्य की भी है। ग्रतः सदा सर्वत्र सबके द्वारा बुद्धि की भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती रही है। भारत के महामनीषी ऋषियों ने तो बुद्धिप्रदाता के रूप में ईश्वर की जो स्तुति तथा प्रार्थनायें हैं, उन्हें सर्वोत्तम माना है । ग्रतएव—

"ग्रो३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।
(ऋ०, यजु०, सामवेद)

इस मन्त्र को जो गायत्रीच्छन्दोन्वित होने के साथ. गाने वाले का त्राण (रक्षा) करने वाला (ईश्वर से सम्बन्धित) है, 'गुरुमन्त्र' (महान् विचार) की संज्ञा से संबोधित किया है क्योंकि इसमें परमात्मा से सुबुद्धि तथा सुकर्मों की प्रेरणा देने की प्रार्थना की गई है। इसी प्रकार ग्रन्यत्र भी "ग्रग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेतमर्त्यः ।" (साम० पू० ग्रा० १ । २ । ६) इत्यादि मन्त्र में कहा गया है कि—'मनुष्य को चाहिए कि वह मन से ग्रर्थात् मनन, चिन्तन द्वारा ईश्वर की ज्योति को ग्रपनी ग्रात्मा में जगाता हुग्रा बुद्धि वा कर्मों को प्राप्त किया करे ।' ज्ञान की महत्ता किसी से छिपी नहीं है । ग्रतः उसकी प्राप्ति के लिये ज्ञान के स्रोत गुरु, ग्राचार्य, शास्त्रों ग्रौर गुरुग्रों के भी परमगुरु परमेश्वर की शरण में जाना ही चाहिए । शास्त्रों में ज्ञान की महिमा कैसी वर्णित है, इसको भी प्रसंगवश यहाँ लिखना ग्रनुपयुक्त न होगा । देखिये कुछ ग्रार्ष वाक्यों के निदर्शन—

(१) **पश्येदक्षण्वान् न विचेतदन्धः** (ऋग्वेद)
ग्राँख (वा ज्ञान) वाला ही देखता ग्रौर जानता है, ग्रन्धा (या मूर्ख) नहीं ।

(२) **उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।**

(ऋ० १०। ७१। ५)

एक अज्ञानी (अन्धा व बहरा) व्यक्ति देखते हुए भी नहीं देख सकता, और सुनते हुए भी नहीं सुन सकता। परन्तु दूसरा ज्ञानवान् मनुष्य नाम और रूप (शब्द तथा अर्थ) को सम्यक् सुनता, समझता, देखता और जान लेता है।

(३) **ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ।**

ज्ञान के बिना बन्धनों से छुटकारा नहीं मिलता।

(४) **नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।** (गीता ४। ३८)

ज्ञान के समान पवित्र वस्तु संसार में कोई नहीं है।

(५) **सर्पान् कुशाग्राणि तथोदयानान् ज्ञात्वा मनुष्याः परिवर्जयन्ति ।**
अज्ञानतस्तत्र पतन्ति केचिज्ज्ञाने फलं पश्य तथा विशिष्टम् ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व)

मनुष्य सर्प, काँटे तथा जलाशयों के मुख में उस समय गिर पड़ने से बच जाया करते हैं, जिस समय कि उनको इनका दर्शन (ज्ञान) हो जाता है। सर्पादि को न देखने (न जानने) पर वे इनके ऊपर आ गिरते हैं, जिससे दुःख या मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। यही ज्ञान और अज्ञान का भेद सर्वत्र देखना चाहिए। अर्थात् ज्ञान सुख का कारण है तो अज्ञान दुख का।

(६) **बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।** (पंचतन्त्र)

जिसके पास बुद्धि है उसी के पास (असली) बल है। बुद्धिहीन के पास बल कहाँ ? इत्यादि।

सच्ची ईश्वरोपासना से ज्ञानरूपी अग्नि उपासक की आत्मा में प्रकट होती है, जिससे आत्मा के सब पापतापादि दोष उसमें भस्मीभूत होकर दग्धबीजवत् सदा के लिए शान्त हो जाते हैं।[1] शुभकामनाओं का मन में उदय होकर कर्त्तव्यपालन तथा शुभ (पुण्य) कर्मों को करने की प्रेरणा मिलती है। यह एक महान् लाभ जो उपासक को ईश्वर की कृपा से प्राप्त हो सकता है। आत्मा और परमात्मा के स्वरूप का तात्त्विक ज्ञान भी ईश्वरोपासना का ही फल है। निरन्तर अभ्यास से यही ज्ञान मुक्ति के द्वार तक जीवात्मा को पहुँचा देता है जहाँ कि वह चिर शान्ति और सुख को प्राप्त करता है। अतः मुमुक्षुओं के लिए भी ईश्वरोपासना एक प्रमुख अवलम्बन और आधार है।"

"तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" (यजु० ३१। १८)

इस श्रुति के अनुसार आत्मज्ञान के अतिरिक्त दूसरा कोई ऐसा प्रभावी साधन नहीं है जिससे मुक्ति प्राप्त हो सके।

---

१. **ज्ञानाग्निं ज्वालयेन्नित्यं चित्तवृत्तिनिरोधकः ।**
सर्वाणि पापकृत्यानि भस्मयेज्ज्ञानवह्निना ॥
ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन ग्रंथ के पृष्ठ २०५ से उद्धृत श्री चैतन्यनीतिशतक श्लोक, १०७।

ईश्वरोपासना का एक अन्य विशेष लाभ निर्भयता और चरित्रशुद्धता है। इस संसार में अनीश्वरवादी, असहृदयता, अदयालु और अनुदार भावना वाले व्यक्ति अधिक तथा ईश्वरवादी सहृदय, दयालु, और उदारचेता कम दिखाई देते हैं। इसका कारण सम्भवतः यह है कि आस्तिकता और धार्मिकता में संयम नियम की अपेक्षा रहती है जिसे विरले ही सहर्ष स्वीकार करते हैं; अन्य स्वतन्त्र-प्रकृति के लोग धार्मिक नियमों में पड़ना अनभीष्ट बन्धन समझते हैं। यही कारण है कि वास्तविक रूप से धार्मिक व्यक्तियों की संख्या अल्प तथा तदितर लोगों की संख्या अधिक रहती है। अधार्मिक लोग प्रायः इसी कारण क्रूर और हिंस्र स्वभाव के हो जाते हैं जो कि अशान्ति और दुःख का कारण हो जाता है। दूसरी ओर धर्मात्मा और ईश्वर भक्त व्यक्ति सत्यनिष्ठ और पवित्राचार-व्यवहार के कारण सदैव निर्भयता, शान्ति और सन्तोष का अनुभव करता है। किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है—

"हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः। साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते ॥"

हाँ, तो इश्वर का दृढ़ विश्वास मनुष्यों में सामाजिक शान्ति, परस्पर भ्रातृभाव निरुपद्रवता, न्यायप्रियता, प्रेम, दया, सहानुभूति, सौहार्द तथा पारस्परिक सहायता और कल्याण की भावना का जनक होता है। ये बातें एक अच्छे समाज के लिये कितनी आवश्यक हैं इससे समाज शास्त्रवेत्ता भली-भाँति परिचित हैं। अतः इष्टप्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार के लिए (जोकि मनुष्यमात्र को अभिप्रेत है) ईशोपासना परमावश्यक तथा महत्त्वपूर्ण साधन है। यह इस सारे विवेचन का फलितार्थ है।

अब इसके भावपक्ष की ओर आइये ताकि ईश्वरभक्ति का स्वरूप विदित हो सके। भावपक्ष हृदयपक्ष है अतः इस दिग्दर्शन के लिये हृदयोद्गारों का दिग्दर्शन करना चाहिये। ये हृदयोद्गार हम अपनी ओर से न देकर एक तड़फते हुए ईश्वर भक्त के शब्दों में यहाँ प्रस्तुत करते हैं। बीसवीं शताब्दी (विक्रम) के महर्षि, वेदज्ञ, महासमाज-सुधारक, दलितोद्धारक, योगी, संन्यासी स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम को कौन अभागा न जानता होगा। उन्होंने ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के ईश्वरभक्तिपरक कतिपय मन्त्रों को संगृहीत करके "आर्याभिविनय" नामक एक लघुकाय किन्तु भक्तिरस परिपूर्ण भाषाभाष्य समन्वित ग्रन्थ रचा है। उसके काशी से सं० २००८ सन् १९५१ के अष्टम संस्करण में "भक्त की भावना" शीर्षक प्राक्कथन में पद-वाक्य-प्रमाणज्ञ, महाविद्वान् पं० ब्रह्मदत्तजिज्ञासु जी लिखते हैं—

"···भक्ति भी अन्तरात्मा की हृदय के अन्तःपटल में वर्त्तमान रहने वाली उन गहरी भावनाओं तथा उद्गारों का नाम है जो बिना किसी विडम्बना के सम्पूर्ण विश्व के नियन्ता प्रभु की सत्ता का स्वयं अनुभव करते हुए उत्पन्न होती है। जिन भावनाओं का बाह्य जगत्-लोकाचार से कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता। पिता, पुत्र अथवा शिशु और माता की वह किलोलें हैं जो बिना किसी शब्द का उच्चारण किये स्नेह से परिपूर्ण अवस्था में होती हैं।

इसके विपरीत लोक-समाज के विचार से लोकैषणा की दृष्टि से किसी विशेष समुदाय को अपने पीछे चलाने के लिए ध्यान के नाम पर की हुई हमारी अनेक क्रियायें "भक्ति" की परिभाषा में नहीं आ सकतीं।

पवित्र वेदवाणी में सूक्त के सूक्त ऐसी भक्ति से परिपूर्ण हैं, जिनमें स्वाभाविक भावों का ही संचार है, बनावटी बातों का उनमें लेश भी नहीं। यह इस (आर्याभिविनय) ग्रन्थ के एक-एक मन्त्र का ध्यानपूर्वक पाठ करने से ज्ञात हो सकता है। अन्तर्हृदय की उपर्युक्त भावनाओं के कुछ अंश इस ग्रन्थ में से सहृदय पाठकों के सम्मुख उपस्थित किये जाते हैं—

"आपका तो स्वभाव ही है कि अंगीकृत को कभी नहीं छोड़ते। सो आप सदैव हमको सुख देंगे, यह हम लोगों का दृढ़ निश्चय है।" पृष्ठ ८,

"हम सब लोग आपकी प्राप्ति की अत्यन्त इच्छा करते हैं। सो आप अब शीघ्र हमको प्राप्त होओ। जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी कभी ठिकाना न लगेगा।" पृष्ठ ९३।

"हे मनुष्यो ! उसको मत भूलो, बिना उसके कोई सुख का ठिकाना नहीं है।" पृष्ठ ९६।

किञ्च हम लोग तो आपके प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं, सर्वथा आपके अनुकूल वर्त्तमान नहीं कर सकते, परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं, इससे हमको स्वकृपाकटाक्ष से सुखी करें।" पृष्ठ ८६॥

"जैसे पुत्र लोग अपने पिता के घर में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं, वैसे ही जो परमात्मा के भक्त हैं वे सदा सुखी ही रहते हैं···।" पृष्ठ ४०॥

यह है हृदयंगम सच्ची भावना से परिपूर्ण पूर्ण श्रद्धायुक्त भक्त की भावना जो एक साक्षात्कृतधर्मा परमईश्वरभक्त (महर्षि दयानन्द) के उद्गार हैं, जिनके एक-एक शब्द पर घंटों विचार करने पर भी अधिक से अधिक आनन्द प्रतीत होता है। जिस दिन, जिस घड़ी हम इस मार्ग पर चलने का दृढ़ निश्चय कर चुकेंगे और हमें मार्ग की अनुकूल सामग्री की उत्कट खोज होगी तभी इन भोले-भाले (सरल) शब्दों का महत्त्व हमें समझ में आवेगा।" पृष्ठ ९-११।

ईश्वरोपासना के लिये योगावलम्बन को उत्तम मार्ग के रूप में पूर्व पृष्ठ पर प्रतिपादित किया जा चुका है। उसी प्रसंग में लिखते हैं कि ईश्वर का मुख्य और उत्तमोत्तमनिज नाम ओम्' है। यह शब्द अ+उ+म् इन तीन वर्णों के संयोग से 'अवरक्षणे' धातु से निष्पन्न है जिसके अनेक अर्थ विराट्, हिरण्यगर्भ आदि शास्त्रों में वर्णित हैं।[1] इनमें 'रक्षक' अर्थ मुख्य है। इस पर तथा अन्य अर्थों पर बार-बार (ओंकार के जप के साथ) विचार करने से चित्त की एकाग्रता प्राप्त होती है, जिससे आत्मा और परमात्मा

१. ईश्वर के 'ओ३म्' इत्यादि सौ प्रसिद्धतम नामों की व्याख्या के लिये देखिये ऋषि दयानन्द सरस्वती कृत 'सत्यार्थप्रकाश' का प्रथम समुल्लास।

के स्वरूप का ज्ञान (हृदय में प्रकाश) होने लगता है। इन बातों को योगदर्शन के सूत्रों में तथा इनके व्यासभाष्य में समझाया गया है।

"तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थभावनम्। ततः प्रत्यक चेतनाऽधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च:।" (१। २७, २८, २९)

दूसरा प्रकार—प्रातः सायं संध्या करना है। कृतोपनयन यज्ञोपवीती वर्णाश्रमी के लिए प्रातः और सायं की पुण्य वेला में विशिष्ट वेद मन्त्रों के जप और अर्थ विचार तथा प्राणायाम पूर्वक ध्यानादि का अभ्यास करना अनिवार्य कर्त्तव्य कर्म माना गया है। दूसरे शब्दों में इसे (संध्या को) ब्रह्मयज्ञ नाम से भी पुकारा गया है और इसका गृहस्थ के नित्य कर्त्तव्य पंचमहायज्ञों में विशिष्ट स्थान है। संध्या शब्द का अर्थ हैं।

"सम्यक् ध्यायन्ति चिन्तयन्ति ब्रह्म यस्यां वेलायां सा सन्ध्या"

अर्थात् जिस काल (दिन और रात्रि के संयोग) में ईश्वरभक्त भगवान् का ध्यान करते हैं, वही सन्ध्या काल कहलाता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रातः और सायंकाल के शान्त वातावरण में जब कि सूर्य चन्द्र दो ज्योतियों उदयास्तमन की वेला हो; रात्रि और दिन का संयोग (सन्धि) हो रहा हो; ब्रह्म की सृष्टि प्रक्रिया का विशेष दर्शन हो रहा हो, शरीर शुद्धि करके एकान्त स्थान में आसनस्थ होकर, आचमन, अंगस्पर्श द्वारा वाह्य पवित्रता तथा प्राणायाम द्वारा आन्तरिक पवित्रता का तथा चित्तैकाग्रता का लाभ लेकर यथाविधि विशिष्ट वेदमन्त्रों से ब्रह्म का ध्यान करने का विधान है। जिसमें वेदाद्यार्षग्रन्थों के ये प्रमाण हैं[1] :—

(१) **उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि॥**
(ऋ० १। १। ७, य० ३। २२)

(२) **सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता। वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम॥ प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्य दाता। वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतं हिमा ऋधेम॥** (अथर्ववेद काण्ड १९, सूक्त ५५, मन्त्र ३, ४)।

(३) **"तस्माद् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपस्ते। सज्योष्या ज्योतिषो दर्शनात् सोऽस्याः कालः सा सन्ध्या, तत् सन्ध्यायाः सन्ध्यात्वम्॥"** (षड्विंशब्राह्मणम् प्रपाठक ४। खण्ड ५। ३)

(४) **"उद्यन्तमस्तं यन्तमोदित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते।"** (तैत्तिरीय आरण्यक, प्रपाठक २। अनुवाक २। ४)

(५) **'यत् सायं च प्रातश्च सन्ध्यामुपास्ते'** (षड्विंश ब्रा० ४। ५)

(६) **सायंप्रातः सदा सन्ध्यां ये विप्रा नो उपासते।**
कामं तान् धर्मिको राजा शूद्रकर्मसु योजयेत्॥
(बौधायन धर्मसूत्र २। ४। २०)

---

१. इन प्रमाणों को महर्षि दयानन्द प्रणीत 'पञ्चमहायज्ञविधि' ग्रन्थ के सन्ध्योपासन विधि नामक भाग (रामलाल कपूर ट्रस्टका २०१९ सं० संस्करण) से उद्धृत किया गया है।

(७) पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्॥
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥

(मनुस्मृति २। १०१, १०३)

इन प्रमाणों से प्रातः और सायं दो ही काल सन्ध्या के लिए शास्त्रविहित निश्चित है। मध्याह्न काल में सन्ध्या का कहीं विधान नहीं है। अतः त्रिकाल सन्ध्यावादियों का मध्याह्न काल को संध्याकाल ठहराना अयुक्त है वैसे तो यदि कोई मध्याह्न में ही क्यों, काम करते, चलते-फिरते, सोते-बैठते[1] ईश्वर का भजन चिन्तन कर सके तो उत्तम बात है। परन्तु **'युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्'** (न्याय दर्शन) इस शास्त्रोक्त मन के लक्षण से (जिसके अनुसार कि मन एक काल में एक साथ दो या अधिक विषयों में नहीं लग सकता) सांसारिक कार्यों के साथ-साथ ठीक रूप से ईश्वर का मनन, ध्यान होना असम्भव है। इसलिए ऋषियों ने बहुत सोच-समझकर के प्रातः और सायम्, इन दो कालों को सन्ध्या के लिए उपयुक्त ठहराया है। जिसमें प्राकृतिक अनुकूलता, रमणीय, शान्त, निस्तब्धा और पवित्र वातावरण चहुँ ओर विद्यमान रहता है। साथ ही इन कालों में मन चञ्चलताहीन निश्चल, शान्त, पवित्र और प्रसन्न रहता है जो सन्ध्या के लिए बड़ा उपयोगी और अनुकूल सिद्ध होता है।

इस सम्बन्ध में सन्ध्या का क्या सार और फल है यह भी ज्ञातव्य वस्तु है। आइए, इसका भी ईश्वरोपासक भक्तों के शब्दों में परिचय प्राप्त कीजिये। श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट ग्रन्थमाला द्वारा ऋषि दयानन्द कृत 'पञ्चमहायज्ञ-विधि'[2] ग्रन्थ से पृथक् कर 'सन्ध्योपासन[1] विधि' नामक पुस्तक का अमृतसर से सं० २०१६ में एक संस्करण छपा है। उसमें "सन्ध्या का सार" शीर्षकान्तर्गत भूमिका में पूज्य ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी लिखते हैं—

"सन्ध्या=आध्यात्मिक भोजन (आत्मा की खुराक) है। भूखे को भोजन, पिपासु को पानी, रोगी को औषधि का आनन्द पूछना चाहिए। **"स्वयं तदन्तःकरेण गृह्यते"**—यह स्व स्व अन्तःकरण का ही विषय है।

प्रतिदिन, प्रति घण्टा, प्रतिक्षण मैले होते रहने वाले वस्त्र के लिए धोबी या साबुन की परमावश्यकता है। उसी प्रकार आत्मा रूपी वस्त्र किस साबुन या धोबी से धुलेगा?

सन्ध्या=परमात्मदेव के चिन्तन से।—सो कैसे?

सर्वव्यापी—सुख की वर्षा करने वाले—प्रभु का आश्रय, शत्रुओं पर विजय,

---

१. **'शय्यासनस्थोऽपि पथिव्रजन् वा'।**
२. हम पाठकों को जिनके पास कि ये ग्रन्थ नहीं हैं, विनम्र सुझाव देंगे कि इनको वे प्राप्त करके नित्य कर्मों का अनुष्ठान करें तथा 'आर्याभिविनय' सदृश ग्रन्थों का स्वाध्याय कर ईश्वर भक्ति का आनन्द प्राप्त करें।

चंचल इन्द्रियों को सुमार्ग में लगाकर उन्हीं को मित्र बना लेना। सूर्य चन्द्रादि विचित्र विविध सृष्टि के महान् रचयिता व्यवस्थापक प्रभु से डर पाप से बचना। उच्छृंखल (दुलत्तियाँ चलाने वाले) दुर्निवार (बड़े यत्न से वश में होने वाले, दूर-दूर जाने वाले) मन रूपी घोड़े को पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, नीचे और ऊपर उस महान् प्रभु का अन्त लेने में खुली दौड़ दौड़ाकर हँपा और थका देना।···अतः जगत् के प्राण, दुःख दूर करनेवाले, शुद्धस्वरूप परमात्मदेव के चिन्तन से हमारी—

पाप, अधर्म, अपवित्र, स्वार्थबुद्धि दूर हो।
पुण्य, धर्म, पवित्र, विश्वहित बुद्धि बनी रहे॥

कल्याणकारी उस प्रभु को हम अपना सर्वस्व अर्पण कर दें। प्रातः सायम् इन्हीं का चिन्तन करना सन्ध्या है।···।

···प्रभु कृपा करें हमें सच्ची आध्यात्मिक भूख लगे और हम सन्ध्या रूपी आत्मिक भोजन का आनन्द प्राप्त कर सकें।

उसी पुस्तक की भूमिका में नित्य सन्ध्या (ब्रह्मयज्ञ) के फल का वर्णन करते हुए ऋषि लिखते हैं—"इस नित्यकर्म के फल ये हैं कि ज्ञान प्राप्ति से आत्मा की उन्नति और आरोग्यता होने से शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थ कार्यों की सिद्धि होना, उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये सिद्ध होते हैं। इनको प्राप्त होकर मनुष्यों को सुखी होना उचित है।"

तीसरा प्रकार—भगवान् की पूजा का नित्य अग्निहोत्र करना है। यह एक क्रिया विशेष है जिसमें घृत, यव, तिल, तण्डुल, गुड़ादि पौष्टिक, बुद्धिवर्धक, आयुवर्धक तथा रोगनाशक द्रव्य औषधियों का वेद मन्त्रों द्वारा विशेष विधि से अग्नि में प्रातः सायं होम किया जाता है। यह क्रिया देवयज्ञ नाम से प्रसिद्ध है। पंच महायज्ञों में इसका 'विशेष स्थान है' इससे वायुमण्डल की शुद्धि होकर स्वास्थ्य लाभ जहाँ होता है, वहाँ अन्य अनेक प्रयोजन भी सिद्ध होते हैं। सम्बन्धित मन्त्रों में यज्ञ के लाभ तथा प्रयोजन वर्णित हैं। स्वाहाकार पूर्वक जो हवि अग्नि में डाली जाती है उसका क्या तात्पर्य है? द्रव्य का, अग्नि, वायु, सोम, इन्द्र, प्रजापति आदि देवता (परमेश्वर) के वाचक शब्दों का नाम निर्देशपूर्वक भौतिक अग्नि में त्याग ही तो। यही यज्ञ के तीन प्रधान अंग—(द्रव्यं-देवता-त्यागः) हैं। हविः प्रक्षेप के पश्चात् बहुत सारे मन्त्रों में—**"इदमग्नये इदन्न मम, इदं सोमाय इदं न मम"**—इत्यादि रूप से जो शेष वाक्य बोले जाते हैं वे इस बात के द्योतक हैं कि यजमान दान और त्याग की यज्ञ से शिक्षा लेकर परोपकारमय जीवन व्यतीत करे। भगवान् के नाम स्मरण पूर्वक सुपात्र में किया गया दान उत्तम निष्कामकोटि का दान[1] माना जाता है जो आत्मोन्नति का कारण होता है। ईश्वरप्रणिधान प्रसंग में पूर्वत्र हम कह आये हैं कि अपनी सम्पत्ति तथा कर्मों को ईश्वर के अर्पण करना ईशोपासना का अंग है। इसका व्यावहारिक रूप यज्ञ में देखा

---

१. **दातव्यमिति यद्दान दीयते ऽनुपकारिणे।**
देशेकाले च पात्रे च तद्दानं सात्विक स्मृत्॥ (गीता १७। २०)

जाता है, जहाँ देव (ईश्वर तथा विद्वानों) की पूजा होती है और सुपात्रों को दान मिलता है; साथ ही जहाँ विद्वत्सत्संग की प्राप्ति होती है। यही 'यज' (देवपूजा-संगतिकरण-दानेषु) धातु का भी अर्थ है जिससे भाव में नङ्प्रत्यय करने पर 'यज्ञ' शब्द निष्पन्न हुआ है।[1]

इस प्रकार यज्ञ ईश्वर भक्ति के साथ सामाजिक संगठन का भी साधन है। और वस्तुओं के अति संग्रह, स्वायत्तीकरण, परस्वहरण और शोषण की राजसी व तामसी प्रवृत्ति के विरुद्ध एक आघोष और आन्दोलन भी है। **'यज्ञो वै विष्णुः', 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'** इत्यादि आर्ष प्रमाणों से यज्ञ भगवान् का प्रतीक तथा श्रेष्ठतम कर्म हैं। इस दैनिक अग्निहोत्र के अतिरिक्त अन्य भी यज्ञ के बहुत से प्रकार हैं जिन्हें श्रौत व स्मार्त नाम से दो भागों में बाँटा गया है। कल्पसूत्रों में इनकी चर्चा है। काम्येष्टियाँ जैसी प्राचीन काल में प्रचलित थीं वैसी अब कदाचित् ही होती हैं। कारण उनका प्रचार और विधि लुप्त हो चुकी हैं। फिर भी यत्न करने पर बहुत सारी बातों का पता लग सकता है। आवश्यकता इस बात की हैं कि वैदिक-याज्ञिक विद्वत्समाज इस दिशा में अनुसन्धान के लिए जागरूक और प्रयत्नशील हो।

हाँ, यज्ञ के सम्बन्ध में एक बात के विशेष स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। वह यह कि याज्ञिकों ने 'पशुयाग' का विपरीत व दूषित अर्थ करके यज्ञ के पवित्र स्वरूप को नष्ट कर दिया है। पशु शब्द केवल गाय, बकरी, घोड़े आदि पशुओं का ही वाचक नहीं है अपितु वैदिक साहित्य में वह अन्य अर्थों में भी प्रयुक्त हुआ है। प्रायः यज्ञकाण्ड में वह पक्वान्न से निर्मित पुरोडाश का वाचक है। **"पशुर्वै पुरुषः, पशुः पुरोडाशः"** (काशिका १।४।५७ में उद्धृत) **"देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति"** (ऋग्वेद)। **"उपतिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नाना रूपा पशवो जायमानाः"** (अथर्ववेद) इत्यादि प्रयोग स्पष्टतः पशु शब्द के पुरोडाश और मनुष्य अर्थ को बतलाते रहे हैं। ऐसी स्थिति में पशवालम्भन आदि शब्दों को यज्ञ में गाय, घोड़े या बकरी के वध अर्थ में घसीटना वाममार्ग के मस्तिष्क की उपज है। जिसका उत्तरकाल में महात्मा बुद्ध तथा महावीर स्वामी द्वारा इतना विरोध हुआ कि उससे वास्तविक-शुद्ध यज्ञ प्रथाएँ भी शनैः-शनै उच्छिन्न हो गईं। यह वर्तमान युग में महर्षि दयानन्द सरस्वती की देन है जिन्होंने वेदों के अन्तस्थल में प्रविष्ट होकर (द्रव्य) यज्ञ का वास्तविक स्वरूप पुनः समाज के सामने रखा और वेदभाष्यों के साथ-साथ सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा पंचमहायज्ञविधि प्रभृति ग्रन्थों में उसका निरूपण किया वस्तुतः वेद में यज्ञ को अध्वर[2] (हिंसा रहित कर्म) कहा गया है। उसमें गायादि पशुओं के मांस मज्जा की हवि देने की बात महा अनर्थ नहीं तो और क्या है। जबकि दूसरी ओर इन पालतू पशुओं की सदैव रक्षा की बात वेद में कही गई है और गाय को तो स्पष्टतः 'अघ्न्या' कहा गया है जिसका अर्थ होता है—न मारने योग्य। इतना ही क्यों,

---

१. **'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षस्वपो नङ्'** (अष्टाध्यायी ३-३-९०) यजने=यज्ञः।
२. **ध्वरतिर्हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेधः** (निरुक्तम्)।

'माँ मा हिꣳसीः' (यजुर्वेद), **'मा गामनागामदितिं वधिष्ट'** (अथर्ववेद) इत्यादि मन्त्रों में तो गोवध का सर्वदा-सर्वदा निषेध ही किया गया है। अतः इसका सदैव ध्यान रखना चाहिए कि यज्ञ हिंसा रहित पवित्र कर्म है। **इत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्तेन।**

चौथा प्रकार ईश्वर पूजा का है सत्य का अनुसरण। ईश्वर सत्य है और उसकी मनुष्यमात्र के लिए वेद में आज्ञा है कि वह मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य का पालन करे[1], असत्य से दूर रहे। सत्य ही धर्म है और धर्म ही सत्य है। शास्त्रों में काह है—**"तस्मात् सत्यं वदन्तमाहु धर्मं वदति धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति।"**

अर्थात् सत्य बोलने वाले को कहते हैं कि धर्म की बात कर रहा है और धर्म की बात करने वाले को कहते हैं कि सत्य बोल रहा है। इस सत्य के आचरण से **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** रूप भगवान् के स्वरूप का भी दर्शन होने लगता है जो कि आत्मज्ञान का उत्पादक है। ईश्वर भक्त के लिए सत्यवादी और सत्याचरणी होना अत्यावश्यक और सर्वथा योग्य है।

पाँचवाँ प्रकार ईश्वर पूजा का है सेवा और सहायता के अभिलाषी और पात्र असहाय जनों की सेवा और सहायता करना। क्योंकि सभी प्राणी ईश्वर के लिए पुत्र के समान हैं। **'शृवन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः'** (अथर्ववेद) **"आर्यः ईश्वरपुत्रः"** (निरुक्तम्) इस नियम से तत्त्वतः प्राणिमात्र में परस्पर समभाव, सहानुभूति तथा सेवा-सहायता की भावना का होना सर्वथा योग्य है। क्योंकि विश्वात्मा ईश्वर अपनी व्याप्ति से सब प्राणियों में अनुस्यूत है। अतः प्राणिमात्र के साथ आत्मतुल्य व्यवहार (Do with others as you wish to be done by others.) प्रेम और मित्रता का वर्ताव, अहिंसात्मक-अवर-बुद्धि रखना, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ईश्वर पूजा ही है। इसके अतिरिक्त **"पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः"** (ऋ० ६।७५।१४) अर्थात् मनुष्य मनुष्य की सब ओर से रक्षा करे—इत्यादि जो ईश्वर की वेद में आज्ञायें हैं, उनका पालन प्राणियों के पारस्परिक सौहार्द और सद्भावनाओं से ही हो सकता है। धर्म का भी तो सार यही है कि परिहित हो परहानि नहीं। अतएव धर्मात्माओं के ये वचन सदैव स्मरणीय हैं—

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावाधार्यताम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

महात्मा तुलसी ने भी कहा है—

पर उपकार सम धर्म नहिं भाई।
पर पीडा सम नहिं अधमाई॥

---

१. **"अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥"** (यजु० १।५)
"मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः। मान्तःस्थुर्नो अरातयः॥
(अथर्ववेद)

इस प्रकार शास्त्र और सन्तों के द्वारा उपदिष्ट मार्ग का अनुसरण करना भी प्रकारान्तर से ईश्वर पूजा ही है।

भगवान् और भगवान् की भक्ति या पूजा के सम्बन्ध में यथामति किंचित् विवेचन प्रस्तुत करने के पश्चात् हम हिन्दू समाज में प्रचलित अनेक देवी-देवताओं की तथाकथित मूर्तियों की ईश्वर के नाम पर चल रही पूजा के विषय पर आते हैं। क्योंकि यह प्रासंगिक विषय है, अतः उसकी समीक्षा न करना, उसके औचित्य-अनौचित्य का विचार न करना, विषय को अधूरा छोड़ना है। किंच, **"परमतमप्रतिषिद्धमनुमतं भवति"**—यह न्याय भी हमें अपनी सफाई देने के लिए प्रेरित कर रहा है। अतः इस सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। क्योंकि विषय सत्य निर्णय का है, इसलिए इसमें पक्षपात, छल, कपट या दुराग्रह को कोई स्थान नहीं। हाँ, सत्याग्रह अवश्य समाश्रित है। इससे किसी को ठेस पहुँचाने की बुद्धि से यह न होकर, सत्य को पहचानने और अपनाने की सुबुद्धि भ्रान्त व्यक्तियों में उत्पन्न हो—इस दृष्टि से है, ऐसा जानकर लिखित बातों का अध्ययन और विचार करना चाहिए।

देवता क्या, कैसा और कौन—है या हैं ? इस विषय का सविस्तार विवेचन हम अपने 'देवार्थप्रकाश'[1] नामक ग्रन्थ में दे चुके हैं। यहाँ पर इतना ही कहना है कि देवता जड़-चेतन भेद से दो प्रकार के हैं। जड़ देवता—जैसे अग्नि, जल, वायु, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि हैं। चेतन देवता विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारी मनुष्य (चाहे वे सामान्य गृहस्थ हों, चाहे ब्रह्मचारी अथवा संन्यासी; चाहे रंक हों चाहे राजा, स्त्री हों चाहे पुरुष) हैं। अथ च, ऋतुओं, शरीर के भीतर के दसों प्राणों, मन सहित ग्यारहों इन्द्रियों, जीवात्माओं तथा देहमुक्त मुक्तात्माओं और वेद के मन्त्रों को देव और देवता नाम से अभिहित-संकेतिक किया गया है। यह देवतत्व का अति स्थूल और संक्षिप्त परिचय है। इन सबके ऊपर विराजमान सर्वज्ञ और सर्वत्र प्रकाशमान, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर देवाधिदेव महादेव कहा जाता है। ब्रह्मा विष्णु, रुद्र, महेश, गणेश इत्यादि मूलतः उसीके नाम हैं।[2] उपर्युक्त अन्य देवता उसके अंग-प्रत्यंग के समान हैं। इस रहस्य को निरुक्तकार महर्षि यास्क ने इन शब्दों में उद्घाटित किया है—

"माहाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते, एकस्यात्मनोऽन्ये देवा प्रत्यंगानि भवन्ति।" (निरुक्त, दैवतकाण्ड १। १। ४)

प्रारम्भिक शुद्ध वैदिक काल में यह आर्यजाति एक मात्र निराकार ईश्वर की ही उपासना करती थी। उसके स्थान में किसी साकार जड़मूर्ति को आज की तरह नहीं पूजती थी। जैसा कि ऊपर कहा गया है, ब्रह्म, विष्णु, अग्नि, इन्द्र, रुद्र, विराट्,

---

१. यह लगभग चार सौ पृष्ठों का ग्रन्थ वर्षों पूर्व लिखित होने पर भी अप्रकाशित पाण्डुलिपि के रूप में ही हमारे पास पड़ा है। कब प्रकाशित होगा—यह ईश कृपा पर निर्भर है।

२. इन तथा अन्य नामों के अर्थों के लिए देखिए स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास।

वरुण[1] इत्यादि पदों से एक अद्वितीय ब्रह्म की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करती थी, ऋग्वेद का यह प्रसिद्ध मन्त्र इसमें प्रमाण है—

"इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

(ऋ० १ । १६४ । ४६)

जिसकी व्याख्या करते हुए यास्क मुनि लिखते हैं—

"इममेवाग्निं महान्तमात्मानमेकमात्मानं बहुधा मेधाविनो वदन्ति इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निं दिव्यं च गरुत्मन्तम् । दिव्यो दिविजो गरुत्मान् गरणवान् गुर्वात्मा महात्मेति वा ।" (निरुक्त दैवाङ् १ । ४ । १८)

अहां ! कितने सुन्दर और स्पष्ट शब्दों में तथ्य का प्रकाशन है । परन्तु इसके होते हुए भी पौराणिक युग में एक ऐसा झंझावात आया कि वैदिक सत्य, सनातन परम्पराएँ एक के बाद एक या तो प्रणष्ट हो गई या विकृत और विदूषित हो गई। यही एक उदाहरण है कि इस पौराणिक काल ने एक सर्वोपास्य देव के स्थान में उसके स्वरूप को प्रच्यवित (दबा) कर शिव, ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, राम, कृष्ण, हनुमान्, सीता, गौरी, राधा, लक्ष्मी इत्यादि कितने ही देवी-देवताओं को उपास्य और मोक्षप्रद करार कर डाला । नहीं नहीं, इनको क्यों, अपितु इनकी जड़ प्रतिमाओं और मूर्तियों की (प्राण प्रतिष्ठा के बहाने) पूजा की ? बड़ी विचित्र स्थिति है । किसी अपने सम्बन्धी प्रियजन के प्राण चले जाने पर उसमें प्राण प्रतिष्ठा करने का तो साहस नहीं होता, परन्तु जड़ मूर्तियों में आसानी से प्राण प्रतिष्ठा कर डालते हैं । ये तो हैं व्यापारी, पण्डा, पुजारी तथा मठाधीशों की चतुराई, उधर निर्विचार किन्तु श्रद्धालु व्यक्ति इनके चंगुल में फँस जाते हैं । बस फिर तो दुकानदारी मजे से चल पड़ती है । कहीं पर परस्पर बड़ा विरोध भी पैदा होने लगा, जैसे शैव व वैष्णवों में आपस में कट्टर विरोध है ।

अब इसपर सोचिये । प्रथम तो ये राम, कृष्ण, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, सीता, राधा, गौरी आदि ऐतिहासिक व्यक्ति हैं । ये सब-के-सब अपने-अपने जीवनकाल में उसी परमेश्वर के उपासक रहे जिसके सब सज्जन सदा रहते हैं—यह बात उनके उपलब्ध जीवन वृत्तान्तों से भली-भाँति विदित हो जाती है । महात्मा या महापुरुष के रूप में यदि इनके प्रति श्रद्धा है तो उसको व्यक्त करने का उत्तमोपाय यह है कि उनके उत्तमोत्तम गुणों को अपनाने का प्रयत्न किया जाय, न कि उनकी प्रतिमा घड़कर उसके समक्ष साष्टांग प्रणाम और खाद्य (भोग) सामग्री प्रस्तुत की जाए, जो कि जड़ के ग्रहण करने के सर्वथा अयोग्य बातें हैं ।

तनिक विचार कीजिए कि वास्तव में तो यह जिस व्यक्ति की मूर्ति की पूजा की जाती है उसको भी नहीं प्राप्त हो सकती, फिर परमेश्वर को प्राप्त होने की तो कथा ही क्या कहनी ? परमेश्वर के निराकारस्वरूप होने से उसकी कोई आकृति या मूर्ति

---

१. ये शब्द कहीं पर भिन्न अर्थ के भी वाचक हैं; परन्तु आध्यात्मिक अर्थ में ईश्वरार्थ परक ही हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं ।

बनाई ही नहीं जा सकती। भला जो अपार अनन्त संसार की मूर्तियों को चमत्कारपूर्ण, अलौकिक अपनी शक्ति से क्षण-क्षण में रच रहा है, बढ़ा रहा है, और क्षय को प्राप्त करा रहा है उलटे उसकी मूर्तियाँ बनाने की ठेकेदारी लेना कहाँ की बुद्धिमानी है? ऐसा निर्बुद्धिपूर्ण खेल तो नादान बच्चे भी नहीं खेलते, जो कि किसी की मूर्ति बनाते या नामतः निर्दिष्ट करते हैं तो वह एक ऐसी वस्तु होती है जिसका अपना कोई-न-कोई रूप रंग होता ही है। निराकार की मूर्ति बनाने की वे कल्पना भी नहीं करते। पर वाह रे मानव ! तूने खूब लोगों को, अपने ही भाई बन्धुओं को धोखा दिया है, आँखों में धूल झोंककर उन्हें अन्धा बना दिया है? खेद ! महाखेद !

हम मूर्ति निर्माणकला के विद्वेषी नहीं हैं, न हमें किसी मूर्ति से ही रिष है। हमारी दृष्टि में मूर्तियाँ सामान्यतया दो बातों की प्रत्यायिका हैं। प्रथम बनाने वाले की कलाकारिता और दूसरे जिसकी मूर्ति बनाई गई है उसके किसी गुण या विशेषता को ध्यान में रखते हुए उसका यश और स्मरण बनाये रखने की भावना। परन्तु इन मूर्तियों को मन्दिरों के भीतर स्थान देकर इनके उक्त दोनों प्रयोजन छिपाकर एक तीसरा ही रूपक इनपर आरोपित किया गया है, और वह है लोकनाथ विश्वम्भर भगवान् का आरोप। इससे स्थिति बिलकुल भिन्न हो गई। मूर्तिगृह देवालय कहे जाने लगे और धूप, दीप, नैवेध, स्नान, चन्दन, वस्त्र, भूषण, व भोग द्वारा की जाने वाली मूर्ति की पूजा, देव पूजा—भगवत् पूजा कही जाने लगी और उसे एक प्रमुख धार्मिक कृत्य के रूप में गिना जाने लगा।

परन्तु इसके औचित्य पर मूर्तिपूजकों ने कभी विचार करने का प्रयत्न नहीं किया। वास्तव में इन किसी प्रकार की जड़मूर्तियों का भगवान् से कोई सम्बन्ध नहीं बनता। यदि कथंचित् मूर्तिपूजा ही अभीष्ट हो तो चेतन मूर्तियों (प्राणियों) की पूजा कीजिये जो कि पूजित होने पर पूजक को आशीर्वाद तो दे सकें। पर हाय ! किससे कहें, क्या कहें? उधर तो बकरी, भेड़, मुर्गा, मछली के गले में छुरी की धार और मूर्ति पर सिर झुकाकर उससे अपराध क्षमा करने की प्रार्थना करके नमस्कारों की भरमार। ठीक ही है निश्चेतन मूर्ति से की गई प्रार्थना क्यों कर चेतन ईश्वर को पहुँचे। अन्यथा ईश्वर कृपा करके इनकी हिंसात्मक प्रवृत्ति को तो बुद्धिस्थ होकर रोकता। लेकिन वे कुप्रवृत्तियाँ रुकती कहाँ? यदि बुद्धिमान् की भक्ति या पूजा होती तो वैसा भी होता। पर यहाँ तो जड़ पूजा ने बुद्धि को भी जड़ बना दिया है। किन्तु दुःख तो यही है कि इस पर भी तो वह पूजक सन्मार्ग पर नहीं चलता। अतएव बच्चों की कौतुकमयी क्रीड़ा की भाँति भले ही कोई मूर्ति को ईश्वर कल्पित कर ले, पर इससे कोई लाभ नहीं। मूर्ति के चढ़ावे के द्वारा पण्डे व पुजारियों को होने वाले लाभ को लाभ मत समझ लीजिये—वह तो उनकी सौदेबाजी है। पर पूजक को क्या मिला? कुछ भी तो नहीं। क्या कोई आत्मिक शान्ति और ज्ञान की रेखा प्राप्त हुई? महात्मा और सिद्ध पुरुषों की मूर्तियाँ भले ही उनके कृत्यों की गौरवता के सम्बन्ध में कुछ प्रेरणादायक हों, परन्तु भगवान् की कोई आकृति न होने से उसकी मूर्ति बन ही नहीं सकती फिर उसके नाम की किसी मूर्ति से प्रेरणा पाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

एक और विशेष बात को देखिए। जिस वेद से संसार में समस्त विद्याओं का उद्भव हुआ, और जिन दर्शनशास्त्रों में बड़ी गम्भीर सूक्ष्म और तर्कपूर्ण विवेचना से वस्तुओं की व्याख्या हुई है, उनमें कहीं भी ब्रह्म को आकारवान् नहीं बतलाया गया है। प्रत्युत उसके स्वरूप को सीमित और संकुचित बनाने तथा उसे कोई नाप तौल की वस्तु बनाने मानने का सर्वथा निषेध ही किया गया है। प्रमाणार्थ देखिये—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। यजुर्वेद ३२। ३

उस ईश्वर की कोई नाप तौल या मूर्ति नहीं है जिसका नाम बड़ा यशस्वी है।

"न प्रतीके न हि सः" ब्रह्मसूत्र ४। १। ४

अर्थ—वह परमात्मा प्रतीक अर्थात् मूर्ति इत्यादि में भावनीय (कल्पनीय) नहीं है, क्योंकि वह मूर्ति आदि नहीं है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है—मूर्तिपूजा की उत्पत्ति भारत के इतिहास में मध्यकाल की उपज है और उस समय में इसका उदय हुआ जबकि वेदज्ञ विद्वानों का ह्रास हो चला था क्योंकि वेद के अध्ययनाध्यापन के रहते इस वेदविरुद्ध वस्तु का पैदा हो जाना साधारणतः बुद्धि में नहीं बैठता। हमें एक विद्वान् व्यक्ति के मुख से निम्नांकित श्लोक सुनने को मिला, जिसे उन्होंने व्यास जी की कृति बतलाया (पर यह ज्ञात नहीं कि वे कौन व्यास थे और वह श्लोक किस ग्रन्थ का है) इस श्लोक में केवल मूर्तिपूजा ही नहीं, अपितु अन्य भी अवैदिक बातों की उत्पत्ति के कारण को स्पष्ट दर्शाया गया है—

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत् कल्पितम्,
स्तुत्याऽनिर्वचनीयताऽखिलगुरोर्दूरीकृता यन्मया।
व्यापित्वं च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रादिना,
क्षन्तव्यं जगदीश ! तद् विकलतादोषत्रयं मत्कृतम्॥

अर्थ–हे जगत् के स्वामिन् (परमेश्वर) (१) आप निराकार रूप रहित हैं, परन्तु मैंने आपके रूप को कल्पित कर लिया। (२) आप अनिर्वचनीय (वर्णन के अयोग्य) हैं, परन्तु मैंने विशेष गुणों (रूप, रंग, क्रियादि) की स्तुति (वर्णन) द्वारा आपकी वर्णनातीतता को दूर कर दिया (३) आप सर्वव्यापक हैं; परन्तु मैंने तीर्थ विशेषों में आपको संकुचित व सीमित कर डाला। ये मेरे तीन दोष हैं जिन्हें कृपा करके क्षमा कर दीजियेगा।

चाहे श्लोक किसी का भी बनाया हुआ हो परन्तु उसकी भावना कितनी यथार्थ है—यह देखने योग्य है। मूर्तिपूजादि का प्रचारक भगवान् से स्वयं इस अयुक्त कार्य के लिए क्षमा याचना करता है तो इस 'वदतोव्याघात' दोष से भी मूर्तिपूजा की अयथार्थता स्वयं सिद्ध है **इत्यलं बुद्धिमत्सु।**

भगवान् का प्रतिपल और प्रतिपद स्मरण करना बड़े सौभाग्य की बात है, क्योंकि भगवान् को भूलने पर हीमनुष्य पापकर्म में प्रवृत्त होता है। उसे सदा सर्वत्र उपस्थित और द्रष्टा, श्रोता इत्यादि रूप में ज्ञान से देखने वाले व्यक्ति की कुमार्ग में प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती। इस दृष्टि से ईश्वरोपासना आत्मशोधन और चरित्र निर्माण की कुञ्जी है। दूसरी

ग्रोर ग्रनेक देवी देवताग्रों की जड़ मूर्तियों के द्वारा यह प्रयोजन कभी सिद्ध नहीं हो सकता। मूर्ति स्वयं निष्क्रिय ग्रौर चेतनाशून्य होने से किसी के मन पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं डाल सकती। परन्तु सर्वगत ग्रौर सर्वद्रष्टा ईश्वर की दृष्टि से कोई कितना ही छिपने का प्रयत्न करे, कभी नहीं छिप सकता। उसके भक्त को बुराई या पापकर्म से नित्य ही भय बना रहता है। ग्रत: वह यथासम्भव उससे बचकर सचाई के मार्ग का ही ग्रनुसरण किया करता है। ग्रपने समीप ही सदैव ईश्वर को विद्यमान देखता है, उससे ग्रात्मज्ञान ग्रौर कर्त्तव्यकर्मों का का निर्देश प्राप्त करता है। जिसकी ऐसी मान्यता नहीं है उसके लिये ईश्वर पास होते हुये भी बहुत दूर है; दृश्य ग्रौर ज्ञेय होते हुये भी ग्रदृश्य ग्रौर ग्रज्ञेय है। इन्हीं दो भेदों को दिखलाते हुये वेद में भी कहा गया है—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ यजु० ४०। ५

ग्रर्थात्–"ईश्वर सचेष्ट भी है (ज्ञानियों के मत में) निश्चेष्ट भी है (ग्रज्ञानियों के मत में) दूर (ग्रज्ञानियों के लिए) है ग्रौर ग्रति समीप में (ज्ञानियों के लिए) भी है। वह तो सबके ग्रन्तर ग्रौर बाहर विद्यमान है।" किसी भक्त ने भी क्या सुन्दर गाया है—"वह क्या तुमसे दूर है ? (नहीं) सभी जगह भरपूर है। इतनी बात जरूर है कि तुम उसकी पहचान करो—बस सिर्फ ज्ञान की दूरी है।" इत्यादि पुनरपि भक्त विशेष रूप से ईश्वर की गोद में बैठकर परमानन्द रस का पान करने के लिये प्रात: ग्रौर सायं की पवित्र वेला में एकान्तसेवन ग्रौर सन्ध्या किया करता है। इसके बिना भक्त को शान्ति ग्रौर सुख की प्राप्ति कहाँ ? सांसारिक धन-सम्पत्ति ग्रौर ऐश्वर्योपभोग मात्र से ग्रात्मशान्ति नहीं मिल जाती। उपनिषत्कार ने यथार्थ ही लिखा है—**"न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य:"** ग्रर्थात् धन मनुष्य को तृप्ति ग्रथवा शान्ति नहीं दे सकता। कविवर शरण गुप्त ने भी कहा है—

"सुख धन, धरती में नहीं किन्तु रहता है मन में।" इति

ग्रत: चित्तप्रसाद, शान्ति, ग्रार्जव, दया, शील, संयम, विनय, विवेक, निरभिमानता, सहिष्णुता, सत्यप्रियता, श्रद्धा, समता, मैत्री, ग्रहिंसा, उदारता ग्रादि शुभ गुणों के उदय ग्रौर ग्रभिवृद्धि तथा कुकाम, कुक्रोध, कुलोभ, मोह, मद, मात्सर्यादि दुर्गुणों के ह्रास ग्रौर विनाश के लिए परमदेव परमात्मा की भक्ति ग्रर्थात् स्तुति (गुणवर्णन), प्रार्थना (पुरुषार्थ करने के पश्चात् इष्ट वस्तु की प्राप्ति की ग्रभिलाषा) तथा उपासना (योग की रीति से ध्यानादि द्वारा साक्षात्कार) प्रत्येक व्यक्ति को करनी चाहिये। ग्रथ च ईश्वर भक्ति करते हुए इन गुण-दोषों का धारण-मोचन जो नहीं करता उसकी वह भक्ति निष्फल है, किं वा बाह्याडम्बर मात्र है। यदि ग्रानन्दसागर में गोता लगाकर उसके जल से ग्रात्मा को पवित्र ग्रौर ग्राह्लादित नहीं किया, तो क्या लाभ ऐसे स्नान से। ईश्वरोपासना भी एक प्रकार का स्नान है जिसमें डुबकी लगाकर उपासक ग्रपने को नितान्त पवित्र, निर्भय ग्रौर सुखी ग्रनुभव करता है। वह सर्वान्तर्यामी देव सबको सुमति प्रदान कर सबका उद्धार करे—यही हमारी उस प्रभु से बार-बार प्रार्थना है। □

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६
के प्रकाशन

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसी	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहवली लेखावली	७.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.००
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	७.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल के	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	२.५०
मानव जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायण व्रत कथा	२.००
प्रभु दर्शन	५.००
दो रास्ते	५.००
यह धन किसका है ?	५.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.५०
The only way	३.००
Anand Gayarti Discoarses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्रीमहात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती	८.००
" " उर्दू	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

शिव संकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेद सौरभ	४.००
वेद सौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू औषधियाँ	२.५०
वैदिक विवाह पद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	६.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
चतुर्वेदशतक	८.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा अजिल्द	२०.००
" सजिल्द	३०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

वैद्य गुरुदत्त

विश्वदेवा	६.००
अद्वैत मीमांसा	६.००

पं० रामचन्द्र देहलवी

देहलवी लेखावली ७.००

पण्डित बिहारीलाल शास्त्री

विचार वाटिका ३.००

प्रो० विष्णुदयाल

वेद भगवान् बोले ४.००

स्वामी सर्वदानन्द

आनन्द उपदेशमाला १.५०

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश ७.००

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार २०.००

दयानन्दप्रकाश **स्वामी सत्यानन्द** १५.००

पं० भगवद्दत्त

भारतीय संस्कृति का इतिहास ७.००

डॉ० प्रशान्त कुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्य समाज का परिचय १.५०

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

महर्षि दयानन्द की देन ४.००

सत्यार्थप्रकाश **स्वामी दयानन्द** २५.००

संस्कार विधि " ४.००

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका " ८.००

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश " ०.१५

आर्याभिविनय " १.००

शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण " ०.३७

आर्योद्देश्य रत्न माला " ०.२५

बालशिक्षक " ०.३७

व्यवहार भानु " १.००

सन्ध्या विनय **नित्यानन्द वेदालंकार** १.५०

पूर्व और पश्चिम " ७.५०

जीवन की राहें " ४.००

सु-राज्य की रूपरेखा " ०.५०

प्राणायाम विधि **नारायण स्वामी** ०.६०

आर्यसमाज क्या है ? " १.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००

भारत में मूर्तिपूजा **पं राजेन्द्र** ४.००

स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द** ४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य ०.५०

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास ४०.००

वेदान्तदर्शन का इतिहास ३०.००

सांख्य सिद्धान्त २४.००

सांख्य दर्शन १६.००

वेदान्त दर्शन ३०.००

वैशेषिक दर्शन २५.५०

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्री मद्भगवद्गीता १.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त) १.००

कथा पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द** २.५०

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.५०

स्वामी श्रद्धानन्द १.००

गुरु विरजानन्द १.००

पं० लेखराम १.००

पं० गुरुदत्त १.००

स्वामी दर्शनानन्द १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

वैदिक धर्मशिक्षा प्रथम भाग ०.६०

वैदिक धर्मशिक्षा द्वितीय भाग ०.६०

वैदिक धर्मशिक्षा तृतीय भाग १.००

वैदिक धर्मशिक्षा चतुर्थ भाग १.००

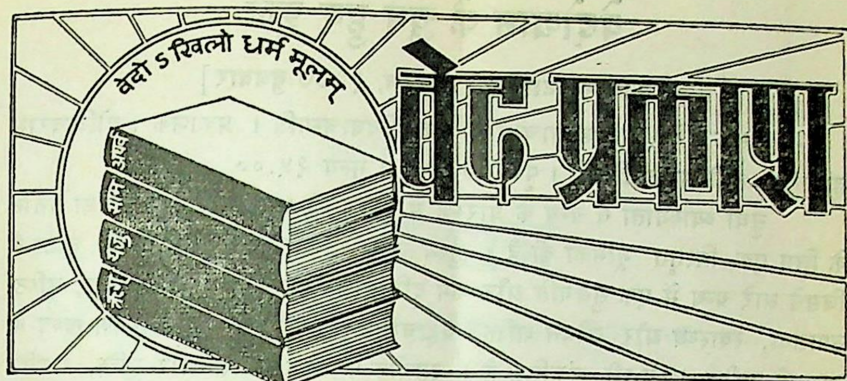
वैदिक धर्मशिक्षा पंचम भाग १.००

वैदिक धर्मशिक्षा षष्ठ भाग १.००

वैदिक धर्मशिक्षा सप्तम भाग १.२५

वैदिक धर्मशिक्षा अष्टम भाग १.२५

प्रकाशक, मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स दिल्ली-३२ में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।



66

वेदप्रकाश के सम्बन्ध में

वेदप्रकाश के २६ वर्ष इस अंक के साथ पूरे हो गये। गत वर्ष में हमने लगभग सभी अंक विशेषांक के रूप में प्रकाशित किए—

१. ऋग्वेद का अक्षसूक्त	स्वामी जगदीश्वरानन्द
२. प्रश्नोपनिषद् सार	" "
३. वेदसुधा	स्वामी वेदमुनि परिव्राजक
४. वेद व्यावहारिक हैं	पं० रामचन्द्र देहलवी लेखावली
५. श्री सत्यनारायण व्रत-कथा	स्वामी जगदीश्वरानन्द
६. पंच महायज्ञ	डॉ० सुरेशचन्द्र वेदालंकार
७. वेदों में मूल प्रकृति विज्ञान	श्री रामशरण वशिष्ट
८. मांस मदिरा निषेध	स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती
९. पशुबलि और वैदिक सिद्धान्त	पं० बिहारीलाल शास्त्री
१०. भगवद्भक्ति	आचार्य जयदत्त शास्त्री एम. ए.

वेदप्रकाश के पाठकों ने गतवर्ष हमारे अंकों की प्रतीक्षा की और रुचि के साथ उनका स्वाध्याय किया।

इस वर्ष भी बारह अंकों में से ९–१० अंक विशेषांक होंगे।

वेदप्रकाश का वर्ष गत अंक के साथ समाप्त हो गया। नये वर्ष के लिए अपना वार्षिक शुल्क ५-०० तुरन्त भेजिए।

हम तो बल्कि यह निवेदन करना चाहेंगे कि यदि वेदप्रकाश आपको पसन्द आ रहा है तो इष्ट मित्रों तथा सम्बन्धियों को भी इसका ग्राहक बनाएँ। ५ ग्राहकों का वार्षिक मूल्य २५-०० के स्थान पर २०-०० भेजें। कई सज्जनों ने पिछले वर्ष ५–५ तथा १०–१० ग्राहकों का शुल्क भेजा था। इस वर्ष आशा है, प्रत्येक पाठक वेदप्रकाश के ग्राहक बनाने का प्रयत्न करेगा।

जो सज्जन इस प्रकार ५–५ या १०–१० ग्राहकों का शुल्क भेजेंगें, वेदप्रकाश में उनका नाम आगामी अंकों में प्रकाशित किया जाएगा।

—व्यवस्थापक

वेदालोक

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

१. मैं पाप से पृथक् रहूँ

मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गाम कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधिवोचता नः ॥

—ऋ० १० । १२८ । ४

शब्दार्थः—(मम) मेरी (यानि) जो (हव्या=हव्यानि) अच्छाइयाँ हैं वे (मह्यम्) मेरे लिए (यजन्तु) यज्ञ करें, यज्ञ रूप हों। (मे) मेरा (मनसः आकूतिः) मानसिक चिन्तन, मेरे मन की संकल्प शक्ति (सत्या) सत्य (अस्तु) हो। (अहम्) मैं (कतमत् चन) किसी भी (एनः) पाप की ओर (मा नि गाम) न जाऊँ। (विश्वे देवासः) समस्त ज्ञानी पुरुष (नः) हमें (अधिवोचत) अधिकार पूर्वक उपदेश करें।

व्याख्या—मन्त्र में चार बहुत ही महत्वपूर्ण, जीवन को ऊँचा उठाने वाले दिव्य उपदेश हैं। आइए, एक-एक उपदेश पर कुछ चिन्तन और मनन करें।

मह्यं यजन्तु मम यानि हव्या

मेरी अच्छाइयाँ मेरे लिए यज्ञरूप हों। मनुष्य एक यज्ञ है और मनुष्य के सद्गुण यज्ञ में प्रज्वलित होने वाली सामग्री के समान हैं। मनुष्य को अपने सद्गुणों का इतना विकास करना चाहिए कि वे सद्गुण विकसित होकर मनुष्य के जीवन को शुद्ध, पवित्र, निर्मल और सुगन्धित बना दें। वेद की उपमाएँ भी बड़ी सुन्दर होती हैं। यज्ञ की सामग्री शत्रु और मित्र सबका समान रूप से कल्याण करती है। एक व्यक्ति के घर यज्ञ हो रहा है। पड़ौसी से इसकी बोलचाल नहीं है परन्तु इसके यज्ञ का लाभ शत्रु को भी मिलेगा। इसी प्रकार मनुष्य के सद्गुणों का लाभ शत्रु और मित्र सबको मिलना चाहिए।

यदि हम इतिहास के पृष्ठों को पलटें तो हमें पता चलेगा कि आर्यों के सत्य व्यवहार और सच्चरित्रता का लाभ शत्रु भी उठाते रहे। श्रीराम ने रावण से युद्ध करते हुए उसके घोड़ों को मार गिराया, फिर सारथि को भी यमलोक पठा दिया तदनु रथ को भी तोड़ दिया। श्रीराम चाहते तो रावण को बड़ी सरलता से मार सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया अपितु हँसते हुए कहा—"रावण ! तुम थक गये हो, तुम्हारा सारथि और घोड़े मारे गए, तुम जाओ। कल सन्नद्ध होकर पुनः युद्ध के लिए आना।"

इन्द्रजित्=मेघनाद मर गया। उसकी पत्नी सुलोचना ने रावण से अपने पति का सिर मंगवाने की प्रार्थना की। रावण ने कहा—"यह कार्य असम्भव है।" रावण के मना करने पर सुलोचना ने अपनी सास मन्दोदरी से प्रार्थना की। मन्दोदरी ने कहा—"तू स्वयं राम के शिवर में चली जा।" सुलोचना चली, श्रीराम के शिविर की ओर। एक स्त्री को आते देखकर सभी सैनिकों की आँखें नीचे झुकी हुई हैं। सुलोचना श्रीराम के निकट पहुँची और मेघनाद का सिर माँगा। मेघनाद का सिर लाकर उपस्थित कर दिया गया। साथ ही श्रीराम बोले—"उस अस्त्र को भी देख लो जिससे तुम्हारे पति को मारा गया है।" सुलोचना ने कहा—"क्या मेरे पति को लोह के अस्त्रों ने मारा है ? मेरे पति को तो आपके सैनिकों के शील ने, सद्गुणों ने मारा है।"

पृथ्वीराज चौहान अपने शत्रु को भी क्षमा करता रहा। महर्षि दयानन्द अपने गाली देने वालों को भी मिठाई देते रहे।

मनुष्य को अपने जीवन में अच्छाइयों का संग्रह करना चाहिए। जैसे मधु-मक्खी नीम और आक के पुष्पों से भी मिठास ग्रहण कर लेती है, उसी प्रकार मनुष्य को भी अवगुणों से भी गुणों का संग्रह करना चाहिए। Every saint has a past and every sinner has a future. गिरे-से-गिरे और पतित-से-पतित मनुष्य में भी कोई-न-कोई अच्छाई होती है। मनुष्य को अपनी बुराइयों का दमन करके अच्छाइयों का संग्रह करना चाहिए। ऐसा न करने पर महापुरुषों का भी पतन होते देखा गया है।

भीष्म वेदादिशास्त्रों के विद्वान् थे परन्तु दुर्योधन के साथ रहने के कारण भीष्म जैसा विद्वान् भी गौएँ चुराने के लिए चला गया। कर्ण वीर था, उदार था, चरित्रवान् था। उसके गुणों की प्रशंसा स्वयं भीष्म जी ने भी की है। भीष्म शर-शय्या पर पड़े हैं। सब रथी और महारथी बारी-बारी आकर उन्हें प्रणाम कर रहे हैं। जब कर्ण आया भीष्म पितामह ने कहा—

कुलभेदभयाच्चाहं सदा परुषमुक्तवान्।
सदृशः फाल्गुनेनासि कृष्णेन च महात्मनः॥

—महा० भीष्म० १२२। १५-१६

हे कर्ण ! अपने कुल में फूट पड़ने के भय से मैं तुम्हें कटु वचन कहता रहा, वस्तुतः अस्त्रबल में तुम अर्जुन और महात्मा श्रीकृष्ण के सदृश हो।

कर्ण ने कुन्ती से प्रतिज्ञा की थी कि मैं तेरे चार पुत्रों को नहीं मारूंगा। अनेक वार ऐसे प्रसंग आए कि कर्ण चाहता तो युधिष्ठिर, भीम आदि को बड़ी सरलता से मार डालता परन्तु नहीं, उसने कुन्ती को दिये अपने वचन का पालन किया।

यह है कर्ण के जीवन का उज्ज्वल स्वरूप ! दूसरी ओर वही कर्ण पाण्डवों को नष्ट करने के लिए घृणित-से-घृणित षड्यन्त्रों में दुर्योधन का साथ देता है। यदि कर्ण अपने सद्गुणों का चिन्तन करना, उनका विस्तार करता तो उच्चकोटि का महामानव बन जाता।

आकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु

मेरा मानसिक चिन्तन, मेरे मन के संकल्प सत्य हों। वेद में अन्यत्र कहा है—

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे।

—अथर्व० १६।४।२

मैं सौभाग्य प्रदान करने वाली, दिव्य गुणयुक्त संकल्प-शक्ति को आगे रखकर चलता हूँ।

महर्षि मनु कहते हैं—

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥—मनु० २।३

संकल्प इच्छा सिद्धि का मूल है। यज्ञ भी संकल्प से ही होते हैं। व्रत और यम-नियम भी संकल्प से ही सिद्ध होते हैं।

संकल्पवान् मनुष्य के समक्ष पर्वत नम जाते हैं, सागर थम जाते हैं। संकल्प के बल से मनुष्य हिमालय की चोटियों पर चढ़ जाता है, द्युलोक का भी भ्रमण कर आता है।

मेरे संकल्प सत्य=पूर्ण हों। परन्तु ये संकल्प पूर्ण कब होंगे? हमारे संकल्प सिद्ध उस समय होंगे जब हमारे सोचने और विचारने का ढंग ठीक होगा। किसी भी कार्य को करने से पूर्व उसके सम्बन्ध में सभी दृष्टिकोणों से विचार करें। यदि हमारा चिन्तन ठीक होगा तो आचरण भी ठीक होगा परन्तु हमारा चिन्तन और मनन ही ठीक नहीं है तो आचरण के ठीक होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। बहुत-से लोग शेख-चिल्ली की भाँति हवाई महल बनाया करते हैं और उसी हवाई महल में बन्द हो जाते हैं। भौंरा रस के लोभ में कमल-पुष्पों पर जा बैठता है। रस का पान करते-करते वह इतना बेसुध हो जाता है कि उसे समय का ध्यान नहीं रहता। सूर्यास्त हो जाने पर कमल-पुष्प बन्द हो जाता है और भौंरा उसमें बैठा हुआ सोचता है—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे,
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार॥

—भर्तृहरि संग्रह ७१२

रात्रि व्यतीत हो जाएगी, प्रातःकाल होगा। सूर्य उदय होगा और कमल खिल उठेगा तब मैं इस बन्धन से मुक्त हो जाऊँगा। कमल में बन्द भौंरा ऐसा सोच रहा था परन्तु ओह! एक हाथी उधर आया और कमल-नाल को तोड़कर अपने मुख में रख लिया।

निरर्थक बिना सिर-पैर के चिन्तन कभी सफल नहीं होते। मनुष्य सत्य बोले, सत्य ही विचार करे, सत्य का ही आचरण करे तब उसका फल क्या होता है—

सत्यंप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयित्वम्। —योग० २।३६

सत्य में प्रतिष्ठित होने पर मनुष्य की वाणी अमोघ हो जाती है, वह जो कह देता है, वैसा ही हो जाता है।

एनो मा निगां कतमच्चनाहम्

चाहे कुछ भी हो, कैसी ही स्थिति और परिस्थिति हो, मैं पाप का आचरण नहीं करूँगा। जिस बात को मैं पाप के रूप में जानता हूँ उसे जीवन में कदापि नहीं आने दूंगा। बुराई का दमन वीरतापूर्वक करना चाहिए। जो बुराई के सामने ढीले बने रहते हैं, बुराई, पाप उन पर अपना अधिकार जमा लेता है फिर मनुष्य उनके चंगुल से निकल नहीं सकता। एक सिगरेट व्यसनी (chain smoker) यदि यह समझे कि मैं एक-एक सिगरेट कम करके सिगरेट पीना छोड़ दूंगा तो वह सिगरेट कभी नहीं छोड़ सकेगा। मनुष्य को बुराई से छुटकारा तभी मिल सकता है जब वह बुराई से लोहा लेने के लिए डटकर कहे कि मरना पसन्द है परन्तु व्यसनी रहकर पसन्द नहीं।

स्वामी श्रद्धानन्द जब मुंशीराम थे तब आप में मद्य और मांस दोनों व्यसन लगे हुए थे। आप वकालत का अध्ययन करने के लिए लाहौर जाना चाहते थे। प्रातःकाल जाने का कार्यक्रम बनता और रात्रि में किसी मित्र के यहाँ पार्टी का निमन्त्रण आ जाता। कल जाएँगे, कल जाएँगे में कई दिन बीत गए। एक दिन रात्रि में यह घर लौटे तो इनका मित्र शराब की बोतल खोले बैठा था। ये भी बैठ गए। मित्र एक-दो गिलासों के पश्चात् ही नशे में चूर होने लगे। उन्होंने मित्र को अन्दर भेजा और अपने लिए एक प्याला भरा। इतने में अन्दर से किसी के चीखने की आवाज आई। अन्दर जाकर देखा तो मित्र एक युवती को पकड़ रहा था। उसे छुड़ाया। बड़ी ग्लानी हुई। उस दिन शराब से घृणा हो गई। प्याले को उठाकर दीवार पर दे मारा। जो व्यसन बार-बार आकर लग जाता था, आज सदा के लिए विदा हो गया। अगले ही दिन वकालत-अध्ययन के लिए लाहौर के लिए प्रस्थान कर दिया।

दृढ़ता से पापों को, बुराइयों को कुचलते हुए प्रार्थना करो—

अव या पाप्मन् सृज वशीसन् मृडयासि नः।
आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् धेह्यावह्रुतम्॥

—अथर्व० ६। २६। १

हे पाप! मुझे छोड़ दे। हमारे वशीभूत होकर हमें सुखी कर। मुझे कुटिलता से पृथक् करके कल्याण और सुख के लोक में स्थापित कर।

विश्वे देवासो अधि वोचता नः।

ज्ञानी पुरुष अधिकारपूर्वक मनुष्य मात्र को उपदेश करें। ज्ञानी लोग ज्ञान का प्रचार करें। प्रचार के बिना संसार से बुराई दूर नहीं हो सकती। यह स्वाभाविक बात है कि जब मनुष्य को उत्तम एवं श्रेष्ठ विचार नहीं मिलते तब उसका झुकाव पाप और बुराई की ओर हो जाता है। कठोपनिषद् में कहा है—

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥ —कठो० ४। १

परमात्मा ने इन्द्रियाँ बहिर्मुखी बनाई हैं अतः मनुष्य बाहर की ओर ही देखता है अन्दर आत्मा की ओर नहीं देखता। अविनाशी, आनन्दमय परमात्मा को चाहने वाला कोई धीर पुरुष ही होता है जो विषयों की ओर से आँखें बन्द करके आत्मा की ओर देखता है।

इन्द्रियों की बहिर्मुखी प्रवृत्ति को मनुष्य अच्छे विचारों के आधार पर ही रोक सकता है और अच्छे विचार ज्ञानी पुरुषों से ही मिल सकते हैं। अच्छे विचारों के प्रचार और प्रसार से बढ़कर पुण्यकर्म और क्या हो सकता है? जैसे भूले-भटके और अन्धे को मार्ग बताना पुण्यकर्म है, उसी प्रकार अबोध एवं अज्ञानी को ज्ञान का उपदेश करना भी महापुण्य का कार्य है। महापुरुषों का तो यह आदर्श होना चाहिए—

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इत ततनः।
गाय गायत्रमुक्थ्यम्॥ —ऋ० १। ३८। १४

मैं वेद मन्त्रों से अपना मुख भर लूं और बादल की भाँति उनकी सर्वत्र वर्षा कर दूं। मैं वेद मन्त्रों को स्वयं गाऊँ और दूसरों से गवाऊँ।

संसार में जब भी बुराई कम हुई है वह महापुरुषों के परिश्रम, घोर तप और ज्ञान प्रचार से ही कम हुई है। समय के प्रभाव से अच्छाई कभी नहीं फैलती। आज जब रयिदेव (Radio) सिनेमा, दूरदर्शन समाज में अश्लीलता और कामुकता का प्रचार करके युवक और युवतियों के चरित्रों को दूषित कर रहे हैं, ऐसी अवस्था में विद्वानों का भी कर्त्तव्य है कि वे दुगुने जोश और चौगुने उत्साह से श्रेष्ठता का प्रचार करें।

२. सम्राज्ञी बन

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी स्वश्रूवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्रज्ञी अधि देवृषु॥

—ऋ०१०। ८५। ४६

शब्दार्थ—हे वधू! तू (श्वसुरे) श्वसुर में प्रीति करके (सम्राज्ञी) महारानी (भव) बन। तू (स्वश्रूवां) तू सासु में प्रेमयुक्त होकर (सम्राज्ञी) राजरानी (भव) बन। तू (नन्दान्दरि) ननदों में (सम्राज्ञी) महारानी (भव) हो और (देवृषुअधि) देवरों पर (सम्राज्ञी भव) महारानी हो।

व्याख्या—मन्त्र में प्रत्येक नववधू को गृह की सम्राज्ञी बनने का उपदेश दिया है। परिवार एक राष्ट्र है। पति इस राष्ट्र का राजा है और पत्नी है इस राष्ट्र की महारानी। पत्नी परिवार रूपी राष्ट्र के सभी नागरिकों सास, श्वशुर, ननद और देवरों की महारानी बने। यह महारानी कैसे बनेगी? दिव्य गुणों से। कौन से दिव्य गुणों से। वेदादि शास्त्रों में यत्र-तत्र उन दिव्य गुणों का वर्णन किया गया है। हम यहाँ कुछ गुणों का वर्णन करते हैं।

वेशभूषा—स्त्रियों को भद्र वस्त्र पहनने चाहिएँ। कुत्सित और भद्दे वस्त्र नहीं पहनने चाहिएँ। Her dress should shine as bright as the peacocks tail. उसके वस्त्र मयूर-पुच्छ की भाँति चमकते हुए होने चाहिएँ। वस्त्र ऐसे न हों कि सारा शरीर ही नग्न दिखाई दे रहा हो और ऐसे भी न हों कि पता ही न लगे कि यह लड़का है या लड़की। वेद ने नारियों को सन्देश देते हुए कहा—

अधः पश्यस्व मोपरि संतारां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥

—ऋ० ८। ३३। १९

हे नारि! नीचे देख, ऊपर मत देख। दोनों पैरों को ठीक प्रकार से रखकर चल। तेरे न दिखाई देने वाले अङ्ग [स्तन, उदर, नितम्ब आदि] दिखाई न दें क्योंकि स्त्री ब्रह्मा है, मानव-समाज की निर्माता है।

शील स्वभाव—नारियों का स्वभाव कोमल एवं मृदु होना चाहिए। नारियों को सिनीवाली अर्थात् अन्नपूर्णा बनना चाहिए, जो अन्न से सबको बाँध लेती है, स्वादु भोजन बनाकर सबको वश में रखती है। स्त्री सिनीवाली होनी चाहिए जो सबको बाँध दे, वह दारा न बने जो सबको फाड़कर अलग कर दे। नारी सच्ची गृहलक्ष्मी बनें। किसी कवि ने कहा है—

यस्य भार्या शुचिर्दक्षा भर्तारमनुगामिनी।
नित्यं मधुरवक्त्री च सा रमा न रमा रमा॥

धन-सम्पत्ति लक्ष्मी नहीं है अपितु पवित्र, कुशल, पति के अनुकूल चलने वाली और मीठा एवं मधुर बोलने वाली स्त्री ही लक्ष्मी है।

वैदूष्य—नारी को विदुषी बनना चाहिए। अब महर्षि दयानन्द की कृपा से—'ढोल गवाँर सूद्र पशु, नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥' का युग समाप्त हो गया। नारियों को वेद का ज्ञान प्राप्त कर पण्डिता बनना चाहिए। स्त्रियों को वैद्यक, गणित, शिल्पकला आदि गृहोपयोगी विद्याएँ तो अवश्य ही सीख लेनी चाहिएँ। स्त्री पढ़ें, विदुषी बनें। परन्तु एक बात का सदा ध्यान रखना चाहिए—

तालीम दुख्तरों की जरूरी तो है मगर।
खातून खाना हों वे सभा की परी न हों॥

नारी शिक्षित बनें परन्तु शिक्षा प्राप्त कर वे गृहलक्ष्मी बनें सभा की परी नहीं।

आचार-व्यवहार—आचार से तात्पर्य है अन्दर की पवित्रता और व्यवहार का अर्थ है गृहकार्यों में कर्म कुशलता। नारियाँ आचार से पवित्र बनें। नारियों को अपना आचार सीता, सावित्री, द्रौपदी, दमयन्ती और राजपूत रमणियों की भाँति बनाना चाहिए। हमारे यहाँ सब कुछ बिका परन्तु नारी का शील और पुरुष का मान नहीं बिका। परन्तु आज नारी का शील बिक रहा है। आज नारी क्लबों में जाकर नाचती है, शराब पीती है, अण्डे और मांस का सेवन करती है। ये व्यसन हैं। इनसे बचो।

महर्षि मनु कहते हैं—

पानं दुर्जन संसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसन्दूषणानि षट् ।।

मद्य आदि मादक द्रव्यों का सेवन, दुष्ट एवं नीच पुरुष का संग पति वियोग, अकेली इधर-उधर पाखण्डियों के दर्शन के लिए फिरती रहना, पराये घर में जाकर सोना और वास करना—ये छः स्त्री को दूषित करने वाले दुर्गुण हैं ।

यजुर्वेद ११।५६ में नादी को उरवा कहा गया है । उरवा का अर्थ है बटलोई। तात्पर्य यह है कि स्त्रियों को पाकक्रिया में कुशल होना चाहिए । इस विषय में महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

सब कुमारियों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य से व्याकारण, धर्मविद्या और आयुर्वेद आदि को पढ़, स्वयंवर विवाह कर ओषधियों को और ओषधिवत् अन्न, और दाल, कढ़ी आदि को अच्छा पका, उत्तम रसों से युक्त कर पति आदि को भोजन करा तथा स्वयं भोजन करके वल-आरोग्य की सदा उन्नति किया करें ।

—यजुर्वेद १९ । १५ का भावार्थ

इनके अतिरिक्त नारियों को कुछ वैदिक शब्दों को अपने जीवन में धारण करना चाहिए । वे गुण निम्न हैं—

नारियाँ इष्टका अथवा इष्टिका बनें । यजुर्वेद १३ । १२१ में नारी को **'देवीष्टके'** कहा है । यह शब्द इष्टका=ईंट के गुणों को जीवन में धारण करने का सन्देश दे रहा है । इष्टका के गुण निम्न हैं—

१. इष्टका दृढ़ होती है । नारियाँ भी दृढ़ बनें । विवाह संस्कार में वर वधू को सम्बोधित करते हुए कहता है—

आरोहेममश्मानमश्मेव त्वँ स्थिरा भव ।
अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधरस्व पृतनायनः ।।

—पार० गृह्य० १ । ७ । १

हे देवि ! तू इस शिला पर आरोहण कर और शिला के समान दृढ़ बन । कलहकारियों और समूह को लेकर आक्रमण करने वाले आन्तरिक और वाह्य सभी शत्रुओं को कुचल डाल ।

गृहस्थाश्रम रूपी भवन को सुदृढ़ बनाने के लिए स्त्रियों को हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ और दृढ़ांग होना चाहिए । हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ बनने के लिए आसन, प्राणायाम और व्यायाम करें । लाठी, भाला और तलवार चलाना सीखें । आज दुबला होना फैशन बन रहा है । दुबला होने के लिए डार्यटिंग (Dieting) की जा रही है । निर्बल नहीं सबल बनो । 'हम भारत की नारी हैं । फूल नहीं चिंगारी हैं ।' यह आपका आदर्शवाक्य (Motto) होना चाहिए । ऐसी सबला बनों कि दुष्ट आपकी ओर आँख न उठा सकें । चाबी के स्थान कटार बाँधो ।

२. जैसे सहस्रों इष्टकाएँ मिलकर भवन का निर्माण करती हैं, इसी प्रकार घर की सब देवियाँ मिलकर गृह एवं समाज का निर्माण करें। अपने गृह और समाज को सम्पन्न, समृद्ध और प्रतिष्ठावाला बनाएँ।

३. इष्टका नींव या दीवार के भीतर होती है। वह प्रदर्शन से दूर है। इसी प्रकार स्त्रियों को भी अपने आपको बाह्य प्रदर्शन से दूर रखकर किसी महान् कार्य के लिए अपने आपको मिटा देना चाहिए। इसी में देवत्व है। जब बीज अपने आपको मिटा देता है तब वह हरे-भरे वृक्ष का रूप धारण करता है। लोग वृक्ष के फल खाकर तृप्त होते हैं परन्तु उस बीज के बलिदान को कोई नहीं जानता। ईंट के समान बलिदान और सहिष्णुता से ही सुन्दर एवं आदर्श गृहस्थ का निर्माण हो सकेगा।

नारियाँ अदिति बनें। ऋग्वेद और यजुर्वेद में अनेक स्थानों पर स्त्रियों के लिए अदिति विशेषण आया है। यजुर्वेद १३। १८ में नारी को पृथिवी एवं आकाश आदि के समान क्षोभरहित एवं धैर्यशालिनी होने का उपदेश दिया गया है। नारियाँ तेजस्विनी बनें। किसी कवि ने लिखा है—

बनो सजनी तुम जलती ज्वाला।
तुमको कोई लाँघ न पाये।
आँख न कोई तुम्हें दिखाए।
इतना ऊँचा उठो व्योम में।
छा जाए भास्कर उजियाला॥ बनो सजनी

उपजिह्विका बनो। यजुर्वेद ११। ७४ में नारी के लिए एक विशेषण आया है उपजिह्विका। सायण आदि सभी भाष्यकारों ने इसका अर्थ दीमक किया है परन्तु महर्षि दयानन्द ने ऋषि बुद्धि द्वारा शब्द के मर्म को जानकर इसका अर्थ किया है— '**उपगताऽनुकूला जिह्वा यस्याः पत्न्याः सा।**' अर्थात् जिसकी जिह्वा इन्द्रिय वश में हो, जो जिह्वा लोलुप न हो।

स्त्री और पुरुष को जिह्वा लोलुप नहीं होना चाहिए। पदार्थों के उपभोग से मनुष्य की कभी तृप्ति नहीं होती। मनुष्य जैसे-जैसे भोगों को भोगता है उसकी कामनाएँ बढ़ती ही जाती हैं। मनुष्य सोचता है भोगों को भोगकर मैं इन्हें समाप्त कर दूँगा परन्तु संसार के भोग समाप्त नहीं होते, मनुष्य समाप्त हो जाता है। किसी ने क्या खूब कहा है—

भोगों को क्या भोगा हमने भोग हमें भुगताय गये।
तपते रहे तपों को हम क्या तप ही हमको ताप गये।
रहे सोचते काल काट लें काल ही हमको काट गया।
तृष्णा ! तू तो हुई न बूढ़ी हमें बुढ़ापा चाट गया।

जिह्वा के वशीभूत होकर मनुष्य मद्य-माँस और अण्डों का सेवन करते हैं। अण्डों को तो अब लोग नरामिष मानने लगे हैं। ये सभी पदार्थ अखाद्य हैं। इंगलैण्ड के डाक्टरों का कहना है कि अण्डे हाई-ब्लडप्रैशर, दिल की बीमारी और पथरी आदि भयंकर रोगों की जड़ हैं, इनके बिना हम अधिक स्वस्थ रह सकते हैं।

नारी को सरमा बनना चाहिए। यजु० ३३। ५६ में नारी को सरमा कहा है। महर्षि दयानन्द ने सरमा का अर्थ किया है—**'समानं रमा रमणमस्याः सा'**—समानता से रमण करने वाली, पति के अनुकूल चलने वाली। जहाँ पत्नी पति के अनुकूल चलती है वहाँ लड़ाई और झगड़े नहीं होते। जिस घर में नारी पति के अनुकूल चलती है, वहाँ स्वर्ग होता है।

यहाँ प्रसंगवश इतना लिखना और आवश्यक है कि महीधर आदि भाष्यकारों ने सरमा का अर्थ देवशुनि=देवों की कुतिया करके महान् अनर्थ किया है।

३. प्रभो ! मेरी पुकार सुन

श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि॥ —साम० ३४६

(इन्द्र) हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! (महान् असि) आप महान् हैं अतः (यः) जो उपासक (तिरश्च्याः) अपनी इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर तथा अन्तर्मुख होकर अपने आपको (त्वा) तेरे प्रति (सपर्यति) समर्पित कर देता है ऐसे (सुवीर्यस्य) उर्ध्वरेता, शक्तिशाली तथा (गोमतः) इन्द्रि-संयमी की (हवम्) पुकार को (श्रुधि) आप सुनिये और उसे (रायः) आध्यात्मिक ऐश्वर्यों, धन पौर ज्ञान से (पूर्धि) भरपूर कर दीजिए।

व्याख्या—भक्त सब ओर से निराश होकर परमात्मा को पुकारता है। प्रभु पुकार सुनते हैं परन्तु किसकी ? भक्त की योग्यताओं और प्रभु की महिमा का मन्त्र में वर्णन है।

इन्द्र महान् असि—ऐश्वर्यशाली परमात्मा महान् है। सामवेद में अन्यत्र कहा है—

न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृजहन्।
न क्येवं यथा त्वम्॥ —साम० २०३

हे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! संसार में तुझसे श्रेष्ठ, उत्कृष्ट कुछ नहीं है। हे वासनाओं के विध्वंसक ! आप से बड़ा भी कोई नहीं है और आप जैसा भी कोई नहीं है। ऋग्वेद १०। १५२। १ में कहा है—

शास इत्था महाँ अस्यमित्रखादो अद्भुतः।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन॥

हे प्रभो ! सचमुच तू विश्व का सबसे महान् शाक है। तू अद्भुत है और शत्रुओं का नाश करने वाला है। जो आपका मित्र बन जाता है, वह न कभी मारा जाता है और न किसी से परास्त होता है।

श्रुधि हत्वम्—ऐसे अदभुतकर्मकारी एवं महान् प्रभु को स्मरण करता हुआ भक्त आकुलता और व्याकुलता से पुकारता है—प्रभो मेरी पुकार को सुनो।

आत्वा रम्भं न जिव्रयो ररभ्मा शवसस्पते।
उश्मसि त्वा सधस्थ आ॥ ऋ० ८। ४५। २०

हे ज्ञान ग्रौर बल के स्वामिन् ! जैसे बूढ़ा मनुष्य लाठी का सहारा लेता है उसी प्रकार तेरा सहारा लिया है। ग्रपने जीवन-यज्ञ में मैं तुझे सदा ग्रपनी ग्राँखों के सामने देखना चाहता हूँ।

भगवान् भक्तों की पुकार सुनता है परन्तु कौनसे भक्तों की। मन्त्र में भक्तों के कुछ विशेषण बताये हैं—

१. तिरश्चयाः

जो मनुष्य सांसारिक विषय-भोगों में लिप्त है, 'खाग्रो, पीग्रो, करो ग्रानन्द' ही जिसके जीवन का लक्ष्य है, जो केवल प्रकृति में रम रहा है, ऐसे भक्त की प्रार्थना नहीं सुनी जाती। प्रार्थना उसकी सुनी जाती है जिसने ग्रपनी चित्तवृत्तियों को बाह्य विषयों से मोड़कर ग्रन्तर्मुखी बना लिया है, जो विषयों में न रमकर हृदय में विराजमान परमात्मा की ग्रोर चलने लगता है।

२. यस्त्वा सपर्यति

परमात्मा उस भक्त की प्रार्थना सुनते हैं जो ग्रपने ग्रापको पूर्ण रूपेण परमात्मा के प्रति समर्पित कर देते हैं। श्रीकृष्ण ने ग्रर्जुन से कहा था—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

—गीता १८। १२

हे ग्रर्जुन ! तू सर्वात्मना उस प्रभु की शरण में जा। उसी की कृपा से तुझे परम शान्ति=ग्रानन्द ग्रौर मोक्षधाम की प्राप्ति होगी।

कैसे प्राप्त होती है उस प्रभु की कृपा ? उसके स्वभाव को जानकर। बिना उसका स्वभाव जाने प्रभु की कृपा प्राप्त नहीं हो सकती।

एक दम्पति किसी मित्र के यहाँ गये। नया-नया विवाह हुग्रा था। मित्र ने पूछा—कहो ! गृहस्थ की गाड़ी ठीक चल रही है। पति ने पत्नी को खूब गालियाँ निकालीं। मित्र ने पत्नी से पूछा तो वह बोली—"इनका तो हर समय मूड ही बिगड़ा रहता है।" मित्र ने कहा, "तू पति का स्वभाव जान। इनकी रुचि क्या है ? कौनसी सब्जियाँ पसन्द हैं, कैसा खाना चाहिए, कैसे कपड़े ग्रच्छे लगते हैं।" पत्नी ने ऐसा ही किया। एक वर्ष के पश्चात् पत्नी को हर समय गाली निकालने वाले पति कहने लगे। यह तो सतयुग की देवी है। पति को बैंगन पसन्द हैं तो पत्नी भी कह देती इसमें विटामिन ए० बी० सी० डी० ही नहीं जैड भी है। पति दिन में कहते कि देखो ! ग्राकाश में चन्द्रमा निकला हुग्रा है तो पत्नी कह देती, हाँ, हाँ, तारे भी तो दिखाई दे रहे हैं।

भगवान् को प्रसन्न करो उसे जानकर। परमात्मा कैसा है ? वह भूः भुवः, स्वः, ग्रौर महः है। वह प्राणों का प्राण है, वह दुःख दूर करने वाला है, वह सुख-स्वरूप ग्रौर सुख प्रदाता है, वह महान् है। वह गाली देने वाले को भी भोजन देता है। हम भी महान् बनें, विशाल हृदय बनें। दूसरों के दुःखों ग्रौर कष्टों को दूर कर

उन्हें सुख प्रदान करें। हम किसी को प्राण जीवन दे नहीं सकते तो अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए प्राणियों का वध न करें।

भक्त वह सुनेगा और अवश्य सुनेगा, अपने आपको उसके प्रति समर्पित कर दे। जैसे विवाह मण्डप में पति-पत्नी एक-दूसरे को समर्पित कर देते हैं, ऐसे ही भक्त को चाहिए कि अपने को प्रभु को अर्पित कर दे और मस्ती में गा उठे—

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में और हार तुम्हारे हाथों में॥

३. सुवीर्यस्य

परमात्मा उसकी पुकार सुनता है जिसका शरीर और मन स्वस्थ है। जो रोगी है, बीमार है, बलहीन है, उसकी प्रार्थना कोई नहीं सुनता। उपनिषद् ने घोषणापूर्वक कहा—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। —मुण्डक ३।२।४

जो बलहीन है, जो ब्रह्मचारी नहीं है, ऊर्ध्वरेता नहीं है, ऐसा व्यक्ति परमात्मा को नहीं पा सकता।

अपनी पुकार सुनवाने के लिए हम शरीर और मन से बलिष्ठ बनें। शरीर नीरोग और बलिष्ठ बनता है—आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य से।

शरीर से भी अधिक महत्व मन का है। मन बीमार होता है तो शरीर भी बीमार हो जाता है। उनिषद् में कहा—

मनो वै ब्रह्म। —बृहदा० ४।१।६

मन ब्रह्म है, महान् है, अत्यन्त शक्तिशाली है—

मन की बदौलत रञ्ज भी है और मन की बदौलत राहत भी।
यह दुनिया जिसको कहते हैं दोजख भी है और जन्नत भी॥

योग दर्शनकार महर्षि पतञ्जलि ने शरीर और मन को स्वस्थ रखने का एक साधन बताया है—

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः। यो० १।३२

शारीरिक और मानसिक रोगों एवं विघ्नों को दूर करने के लिए एकतत्त्व=परमात्मा का चिन्तन करना चाहिए।

परन्तु प्रभु पर भरोसा करने का अर्थ निकम्मा और निठल्ला होकर बैठना नहीं है। कर्म कर। तन्तुं तन्वन्रजसो भानुमन्विहि। (ऋ० १०।५३।६) संसार का तानाबाना बुनते हुए प्रकाश का अनुसरण कर।

मन को स्वस्थ रखने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—

१. निश्चित बनो। चिन्ता मत करो। क्योंकि—

चिन्ताज्वरो मनुष्याणां क्षुधां निद्रां बलं हरेत्।
रूपमुत्साहबुद्धिं श्रीं जीवितं च न संशयः॥

चिन्तारूपी ज्वर मनुष्य की भूख, निद्रा, शक्ति, सौन्दर्य, उत्साह, बुद्धि, धन और आयु इन सबका नाश करता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

व्यर्थ की चिन्ता से शरीर को मत सुखाग्रो । सुनो—

चिन्ता वाकी कीजिए जो ग्रनहोनी होय ।
जो होनी है उसकी चिन्ता किए क्या होय ।।

२. उत्तम ग्रन्थों का स्वाध्याय कीजिए । जीवन को पतन के गर्व में गिराने वाले ग्रश्लील उपन्यास ग्रौर गन्दे साहित्य को मत पढ़ो । वेद, दर्शन, उपनिषद् , रामायण, महाभारत ग्रादि उत्तम ग्रन्थों का स्वाध्याय करो ।

३. ग्रच्छी संगत में बैठो । श्रेष्ठ पुरुषों का सत्संग करो । वेद में कहा है—

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ।।

—ग्रथर्व० १० । ८ । १५

पूर्ण के, उत्तम ग्रौर श्रेष्ठ पुरुष के साथ रहने से मनुष्य सामान्य जनों से पृथक् होकर ऊपर उठ जाता है ग्रौर नीच व्यक्ति का सहवास करने से पतित हो जाता है । इसलिए राष्ट्र को धारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब लोक-लोकान्तर में व्यापक महान् ग्रौर पूजनीय देव परमात्मा की संगति करते हैं, उसी की स्तुति, प्रार्थना ग्रौर उपासना करते हैं ।

४. गोमतः

प्रभु किसकी पुकार सुनते हैं जो गोमत है, इन्द्रिय-संयमी है । यदि प्रभु को ग्रपनी पुकार सुनानी है तो जितेन्द्रिय बनो, इन्द्रियों के स्वामी बनो । जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, जिसकी ग्राँखें रूप की ग्रोर, कान शब्दों की ग्रोर, नाक गन्ध की ग्रोर, जिह्वा रस की ग्रोर ग्रौर त्वक् स्पर्श की ग्रोर भाग रही हैं—ऐसा व्यक्ति जिसका मन चञ्चल है क्या प्रार्थना कर पाएगा । रावण दशमुख था । दसों इन्द्रियों से भोग भोगता था ग्रतः वह रोने वाला था, उसका सर्वनाश हुग्रा । दूसरी ग्रोर दशरथ जितेन्द्रिय था । दश इन्द्रियों के रथ पर सवार था । हे मानव ! तू भी इन्द्रियों के रथ पर सवार होकर भोग भोग ।

रायस्पूर्धि

भक्त पुकार रहा है प्रभु को किसलिए ? भक्त को एक कामना ने ग्रा घेरा है । ग्रतः भक्त प्रार्थना कर रहा है—प्रभो ! तू मुझे ग्राध्यात्मिक ऐश्वर्यों से परिपूर्ण कर दे, योग की विभूतियाँ मुझे प्रदान कर दे, साथ-ही-साथ मुझे धन ग्रौर ज्ञान से भी ग्रापूर कर दे, भर दे ।

४. सविता देव की स्तुति कर

दोषो गाय बृहद्गाय द्युमद्धेह्याथर्वण ।
स्तुहि देवं सवितारम् ॥ —अथर्व० ६ । १ । १

शब्दार्थः—हे (आथर्वण) ब्रह्म के उपासक ! स्थितप्रज्ञ ! कूटस्थ परमात्मा का ध्यान करने वाले योगिन् ! तू (दोषा) रात्रि के समय (उ) और दिन के समय, सायं प्रातः (गाय) प्रभु गुण गान कर। (बृहत् गाय) खूब गा, रज-रजकर गा। (सवितारम्) सबके उत्पादक, सबके प्रेरक (देवम्) सर्वप्रकाशक और आनन्द प्रद परमदेव परमात्मा की (स्तुहि) स्तुति किया कर और इस प्रकार (द्युमत धेहि) प्रकाशमान आध्यात्मिक और भौतिक ऐश्वर्यों को धारण कर।

व्याख्या—इस मन्त्र में मनुष्य को प्रभु-भक्ति करने की प्रेरणा दी गई है और भक्ति का फल भी बताया गया है।

दोषो गाय

प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि जो उसका उपकार करे, उसे भी उसके ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करना चाहिए। परमपिता परमात्मा ने हमारे ऊपर असंख्य उपकार किए हैं। उसने हमें रहने के लिए भूमि प्रदान की। पीने के लिए जल दिया। खाने के लिए नाना प्रकार के अन्न, कन्द-मूल, फल आदि प्रदान किए, श्वास लेने के लिए वायु दी। उसकी कृपाओं की गिनती करना सम्भव नहीं। इन कृपाओं के लिए हमें परमेश्वर का कृतज्ञ होना चाहिए। यदि प्रातः सायं हम परमात्मा की भक्ति नहीं करते तो हम पापी हैं। इस विषय में महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

"जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष, दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं, इसलिए परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिए। इससे आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबराएगा और सबको सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है ? और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है, क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों के सुख के लिए दे रखे हैं, उसका गुण भूल जाना, ईश्वर को ही न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है।"

—स० प्र० सप्तम समुल्लास

प्रातः और सायं दिन और रात्रि की सन्धि होती है। प्रातः सायं की अवस्था सम होती है। इस समय सभी की इडा और पिंगला नाड़ियाँ सम होती हैं। यही उपासना का सर्वोत्तम समय है। भक्तगण वेद के शब्दों में अपनी भावना को प्रकट करते हुए कहते हैं—

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषवस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ॥—ऋ० १ । १ । ७

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! हम प्रतिदिन प्रातः और सायं नमस्कार की भेंट लेकर तेरी ओर आ रहे हैं।

महर्षि मनु ने तो यहाँ तक लिख दिया है—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥

—मनु० २। १०३

जो मनुष्य प्रातः और सायं सन्ध्या=ईश्वरोपासना नहीं करता उसे सम्पूर्ण द्विज-कर्मों से पृथक् कर देना चाहिए अर्थात् उसे शूद्रवत् समझें।

स्वर्गीय लाला हरदयाल एम० ए० लिखते हैं—

Daily Meditation is an essential for moral health as the daily cold wash is for physical efficiency... Meditation should be practised every morning and evening. —Hints for Selfculture. p. 173

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगेश्वर श्रीकृष्ण, महर्षि दयानन्द, माता कौसल्या, सती साध्वी सीता सभी प्रभु-उपासना करते थे। हे मानव ! तू भी इनके जीवन से शिक्षा ले और प्रतिदिन प्रातः सायं प्रभु-उपासना कर।

बृहद् गाय

खूब गा। रज-रज कर गा। वेद के शब्दों में गा—

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः॥

—अथर्व० ११। २। १६

मैं सबके उत्पादक और दुःखनिवारक परमात्मा के लिए सायं, प्रातः रात्रि में और दिन में नमन करता हूँ।

शय्यासनस्थोऽथ पथिव्रजन्वा—शय्या पर लेटे हुए, आसन पर बैठे हुए अथवा मार्ग में चलते हुए जैसे भी सम्भव हो परमात्मा का गुण गान कर।

महर्षि दयानन्द ब्रह्मचारी एवं गृहस्थों के लिए लिखते हैं—

"न्यून-से-न्यून एक घण्टा ध्यान अवश्य करे। जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं, वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करे।"

—स० प्र० तृतीय समुल्लास

मुमुक्षुओं=मोक्ष की इच्छा वालों के लिए ऋषिवर लिखते हैं—

"नित्यप्रति न्यून-से-न्यून दो घण्टा पर्यन्त मुमुक्षु ध्यान अवश्य करे जिससे भीतर के मन आदि पदार्थ साक्षात् हों।" —स० प्र० नवम समुल्लास

महर्षि ने एक और उत्तम सन्देश दिया है—

"जैसे गोताखोर जल में डुबकी मार के शुद्ध होके बाहर आता है, वैसे ही सब जीव लोग अपने आत्माओं को शुद्ध ज्ञान, आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर में मग्न करके शुद्ध करें।" —पञ्च महायज्ञ विधि

खूब गा और एक बात स्मरण रख कि परमात्मा का दरवाजा पापी-से-पापी के लिए भी चौवीस घण्टे खुला रहता है। योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति नि गच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

—गीता ९। ३०-३१

यदि कोई महादुराचारी व्यक्ति भी अनन्यभाव से, पूर्ण आत्मा समर्पण के साथ सर्वव्यापक परमात्मा को भजता है तो उसे साधु ही मानना चाहिए क्योंकि उसने अच्छे मार्ग पर चलने का संकल्प कर लिया है।

अनन्यभाव से परमात्मा की भक्ति करनेवाला वह साधक शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है, उसे चिरस्थायी शान्ति प्राप्त हो जाती है। हे कुन्ती-पुत्र अर्जुन! तू निश्चित रूप से जान ले कि परमात्मा का भक्त कभी नष्ट नहीं होता।

स्तुहि देवं सवितारम्

सर्वोत्पादक सविता देव की स्तुति करो। वेद में कहा है—

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत॥

—ऋ० ८। १। १

हे मित्रो! सुखवर्षक, परमैश्वर्यशाली परमात्मा की ही स्तुति करो। यज्ञ के अवसरों पर भी एक साथ बैठकर बारम्बार उस परमात्मा का ही गुणगान करो। परमात्मा से भिन्न और किसी की उपासना मत करो। उस परमात्मा की उपासना करते हुए कभी दुःखी मत होओ।

परमात्मा की उपासना में जो आनन्द है वह कहीं नहीं है अतः हमें सविता देव की आराधना करनी चाहिए। आज मन्दिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में, गिरजाघरों में जहाँ देखें भगवान् का भजन और कीर्तन हो रहा है परन्तु वास्तव में देखें तो इन कीर्तन करनेवालों में इन उपासकों में भगवान् को चाहता कोई नहीं।

एक आख्यान है कि एक बार देवर्षि नारद परमात्मा के पास पहुँचे और उनसे कहा—"सारा संसार आपके दर्शनों के लिए आकुल और व्याकुल हो रहा है, कृपया अपने भक्तों को दर्शन तो दो।" परमात्मा ने कहा—"मैं दर्शन दूँगा, परन्तु पहले जाकर पूछ तो आ इन लोगों की आवश्यकता क्या है।" नारदजी गए और लगे लोगों से पूछने। किसी ने कहा धन चाहिए, किसी ने स्त्री माँगी, किसी ने पुत्र की कामना की, किसी ने राज्य-प्राप्ति की इच्छा प्रकट की, किसी ने मुकदमे में जीतना चाहा। एक भी ऐसा नहीं मिला जिसने प्रभु-प्राप्ति की इच्छा प्रकट की हो। नारद जी वापस लौटे। परमात्मा ने पूछा—"कहो! पूछ आए?" नारद बोले—"भगवन्! क्या कहूँ, बहुत लज्जित हूँ। बहुत घूमा परन्तु एक भी तो ऐसा न मिला जो यह कहता हो कि मुझे भगवान् चाहिए।"

हे संसार के लोगो सुनो—

जो है इस संसार में भगवान् को भूला हुआ।
वह है अगर सरदारे आलम तो भी क्या हुआ।।

जब याज्ञवल्क्य संन्यास लेने लगे तब उन्होंने अपनी भार्या मैत्रेयी से कहा—"मैं संन्यास लेकर गृह त्यागने लगा हूँ अतः तेरी सम्पत्ति का भाग तुझे दिला दूँ।" मैत्रेयी ने कहा—"भगवन्! धन से परिपूर्ण यह सारी पृथिवी मेरी हो जाए तो क्या उससे मुझे मोक्ष की प्राप्ति हो जाएगी?" याज्ञवल्क्य ने कहा—"वैभवपूर्ण पृथिवी से तुझे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। धन से तो जैसा धनिकों का जीवन होता है, वैसा ही तेरा जीवन भी हो जाएगा। **अमृतत्वस्य तु नाऽऽशाऽस्ति वित्तेन।** (बृह० उप० २।४।१) धन से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।" तब मैत्रेयी ने कहा—"**येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्।** (बृह० २।४।३) जिस धन की प्राप्ति से मुझे मोक्ष न मिले, उस धन से मैं क्या करूँ।"

धन से संसार में सब कुछ खरीदा जा सकता है परन्तु सुख-शान्ति नहीं खरीदी जा सकती। यदि दुःखों से छूटकर शान्ति प्राप्त करने की इच्छा है तो गाओ परमात्मा की स्तुति करो उसके अमृत का पान।

द्युमत् धेहि

क्या मिलेगा प्रभु की भक्ति से? तुझे आध्यात्मिक और भौतिक सभी ऐश्वर्य मिल जाएँगे। प्रभु-भक्ति से तेरा आत्मा प्रकाश से जगमगा उठेगा, तेरे अन्दर ज्ञान की ज्योति जग जाएगी, तुझे ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होगी। फिर धर्ममेघ समाधि प्राप्ति होती है। आध्यात्मिक ऐश्वर्यों के साथ भौतिक ऐश्वर्यों की भी कमी रहेगी।

आथर्वण

परन्तु परमात्मा की उपासना करेगा कौन? जो अथर्वन् है, जिसमें चञ्चलता नहीं है। जो स्थितप्रज्ञ है। योगेश्वर श्रीकृष्ण ने स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताते हुए कहा—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।

गीता० २।५६

स्थितप्रज्ञ मनुष्य वह कहलाता है जो दुःखों में घबराता नहीं और सुखों की इच्छा नहीं करता। धर्मपूर्वक विषयभोग, सुख, ऐश्वर्य प्राप्त होने पर भी इनमें रागी नहीं होता और इनके चले जाने पर क्रोध तथा भय नहीं करता।

भक्त! अथर्वन् बनकर दिन-रात प्रभु का गुणगान कर, खूब रज-रजकर गा, तुझे संसार में किसी वस्तु की कमी नहीं रहेगी।

५. उच्च एवं आदर्श जीवन

दौःष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दूर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ।।

—अथर्व० ४ । १७ । ५

शब्दार्थः—(दौः स्वप्न्यम्) क्षुद्र आकांक्षा, दुष्ट स्वप्न, बुरे एवं खोटे विचार (दौः जीवित्यम्) दुष्ट जीवन, अधम एवं पतित जीवन (रक्षः) राक्षसी वृत्तियों, दुर्भावनाओं (अभ्वम्) निर्बलता, उत्साह हीनता, दीनता, (अराय्यः) अदानशीलता, कंजूसी (दुः नाम्नी) बुरे नाम वाली बदनामी, अपयश, अपकीर्ति (दुः वाचः) दुर्वचन, कठोर वाणी को हम (अस्मत्) अपने से (नाशयामसि) दूर करें ।

व्याख्या—हम अपने जीवनों को उच्च, महान्, दिव्य और आदर्श बनाने के लिए मन्त्र में वर्णित सात बुराइयों का परित्याग कर दें क्योंकि जब तक ये बुराइयाँ मनुष्य में रहेंगी तब तक वह अधम, पतित और क्षुद्र ही रहेगा ।

१. दौः स्वप्न्यम्

स्वप्न रात्रि में ही नहीं आते दिन में भी आते हैं । दिन में जो स्वप्न आते हैं उनका नाम है आकांक्षा । प्रस्तुत मन्त्र में स्वप्न शब्द आकांक्षा के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है । हम जीवन में महान् स्वप्न लें, ऊँचा उठने का स्वप्न लें । हमारी आकांक्षाएँ हीन न होकर उच्च और उदात्त हों । जिनकी आकांक्षाएँ जितनी उदात्त और महान् होती हैं उनके जीवन उतने ही उच्च और आदर्श होते हैं ।

एक स्वप्न आया था कुमारिल भट्ट के जीवन में । कुमारिल भट्ट चले जा रहे थे । वे एक महल के नीचे से निकले तो आँसुओं की दो मोटी-मोटी बूंदें उन पर गिरीं । उन्होंने सिर ऊपर उठाकर देखा तो राजकुमारी को कहते हुए सुना—

किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति ।

मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, वेदों का उद्धार कौन करेगा ?

उस राजकुमारी को आश्वासन देते हुए कुमारिल भट्ट ने कहा—

मा विभेषि वरारोहे भट्टाचार्योऽस्तिभूतले ।।

हे सुन्दरि ! तू भयभीत मत हो, मैं कुमारिल भट्ट संसार में वेदों का उद्धार करूँगा ।

एक स्वप्न आया था महर्षि शंकराचार्य के जीवन में । उन्होंने निश्चय किया कि मैं सारे संसार में वैदिक धर्म की दुन्दुभिः बजा दूंगा ।

एक स्वप्न लिया महर्षि दयानन्द ने । मैं सच्चे शिव की खोज करूँगा और मृत्युञ्जय बनूंगा । अपने स्वप्न को साकार कर उन्होंने भारत में ही सारे संसार में क्रान्ति का बिगुल बजा दिया ।

महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों और वेद का स्वाध्याय करते हुए एक स्वप्न लिया था स्वामी श्रद्धानन्द ने परिणामस्वरूप एक महान् गुरुकुल खड़ा कर दिया ।

एक स्वप्न लिया था स्वामी दर्शनानन्द ने। उन्होंने गुरुकुल काँगड़ी के पास ही एक निःशुल्क गुरुकुल खड़ा कर दिया।

हे मानव ! तू भी दुःस्वप्न और दुराकांक्षाओं को जीवन से दूर कर अपने जीवन में महान् स्वप्न ले।

२. दौः जीवित्यम्

हम दुष्ट जीवन को, पतित जीवन को तिलाञ्जलि दे दें। आलस्य, प्रमाद, चिन्ता, अश्रद्धा आदि दुर्जीवन के लक्षण हैं। हम इनका परित्याग कर एक आदर्श जीवन जीएँ। हम प्रभु से प्रार्थना करें—

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ऋ० १।४।६

हे दुर्गुणों और पापों को क्षीण करनेवाले प्रभो ! हम सदा तुझ परमैश्वर्यशाली इन्द्र की शरण में रहें जिससे हमारे शत्रु भी हमें श्रेष्ठ और सौभाग्यशाली कहें, शत्रु भी हमारी प्रशंसा करें।

हमारे जीवन में जितने दोष हैं, ऐब हैं, बुराइयाँ हैं, उन सबको हम अपने जीवन से दूर करें। अपने दोषों को दूर कर हम अपने जीवनों को आदर्श, दिव्य और महान् बना सकते हैं। टालस्टाय अपने आरम्भिक जीवन में शराब पीते थे, मांस खाते थे, और भी अनेक दुर्गुण उनमें थे परन्तु उन सभी बुराइयों को दूर कर वे महात्मा टालस्टाय बन गये। स्वामी श्रद्धानन्द जी का आरम्भिक जीवन भी अत्यन्त पतित था। वे भी शराब पीते थे, मांस खाते थे, एक बार मित्रों के साथ वेश्या के यहाँ भी चले गये, जुआ भी खेला, हुक्का भी पिया। परन्तु उनकी सती-साध्वी पत्नी शिवदेवी और महर्षि दयानन्द के सत्संग से वे अपने सभी दोषों को त्यागकर संसार प्रसिद्ध बन गये।

कुछ लोग होते हैं बिगाड़ा। वे जीवन में भी बिगाड़ करते हैं और मरने पर भी। हम दुष्ट जीवन को त्यागकर, श्रेष्ठ बनें, ऊँचे उठें, महान् बनें।

३. रक्षः

हम काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि राक्षसी वृत्तियों को अपने जीवन से दूर करें। आज शिक्षा बढ़ रही है, फिर भी हम पतन के गड्ढे में क्यों गिर रहे हैं, इसलिए कि हमारी भावनाएँ दूषित हैं। इस विषय में एक सुन्दर दृष्टान्त है—

एक दिन पार्वती ने शिव से कहा—"ये इतने लोग आपकी भक्ति करते हैं, तीर्थों में जाते हैं, आपके ऊपर जल चढ़ाते हैं, आप इन्हें कैलाश पर बुला क्यों नहीं लेते ?" शिवजी ने कहा—"ये सभी झूठी भक्ति करते हैं।" पार्वती को विश्वास नहीं हुआ। तब शिवजी ने कोढ़ी का रूप बनाया और पार्वती ने एक सुन्दर स्त्री का। फिर ये दोनों एक ऐसे स्थान पर जा बैठे जहाँ से तीर्थयात्री निकलते थे। पार्वती कहती—"मेरा पति कोढ़ी है, इसे गंगा में निहला दो।" यात्री कहते—"तू किस कंगले के पीछे जीवन खो रही है, हमारे साथ आ।" लाखों यात्रियों में एक किसान आया। उसने कहा—"चलो, मैं निहलाता हूँ।" इस प्रकार तीर्थों में भी मनुष्य की भावनाएँ दूषित ही रहती हैं। किसी ने कहा—

मोहादवाचीमबुधाः प्रतीचीं प्राचीमुदीचीमपि पर्यरन्ति ।
सच्चिन्मये मानस एव तीर्थे स्वच्छे सुखं स्नातुमपारयन्तः ।।

मोह के कारण मूर्ख लोग पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण सभी तीर्थों में घूमते हैं परन्तु स्वच्छ, पवित्र अपने मानस तीर्थ में स्नान करने में असमर्थ हैं ।

अपने मन रूपी मानसरोवर में स्नान करो । दुष्ट वृत्ति को जीवन से निकालकर फेंक दो । वेद में कहा है—

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ।।

—ऋ० ७ । १०४ । २२

हे आत्मन् ! तू उलूकवृत्ति=मोह, शुशुलूक=भेड़ियावृत्ति=क्रोध, श्वान=कुत्ते की वृत्ति=द्रोह, कोक=चिड़े की वृत्ति काम, सुपर्ण=गरुण की वृत्ति अभिमान और गृध्र=गीध की वृत्ति=लोभ को नष्ट कर दें । इन राक्षसी वृत्तियों को ऐसे पीस डाल जैसे लोढ़ी से मसालों को पीसा जाता है ।

४. अस्वम्

दीनता, हीनता और निर्बलता की भावनाओं को मार भगाओ । अपनी शक्ति को पहचानो । तुम दीन-हीन और कंगाल नहीं हो ।

भीखा भूखा कोई नहीं, सबकी गठड़ी लाल ।
गठड़ी खोल देखत नहीं ता विधि भये कंगाल ।।

अपने आपको पहचानो तुम तो वैदिक सिंह हो फिर निराशा और हताशा क्यों—

एकोऽहमसहायोऽहं कृशोऽहमपरिच्छदः ।
स्वप्नेऽप्येवंविधा चिन्ता मृगेन्द्रस्य न जायते ।।

मैं अकेला हूँ, असहाय हूँ, दुर्बल हूँ, परिवारहीन हूँ, सिंह के मन में ऐसी चिन्ता स्वप्न में भी नहीं होती ।

तुम दीन-हीन नहीं हो । तुम्हारा शरीर ही लाखों और करोड़ों रुपये की सम्पत्ति है । अपनी सोई हुई शक्तियों को जगाओ । खड़े हो जाओ । लंगर-लंगोटे को कस लो और कहो—If I get a point I can move the world. यदि मुझे खड़ा होने के लिए एक स्थान मिल जाए तो मैं सारे संसार को हिला सकता हूँ ।

भरो अपने जीवन को उत्साह से, प्रेरणाओं से, आशा और विश्वास से ।

५. अराय्यः

निर्धनता तथा अदानशीलता भी दुर्गुण हैं । धन कमाएँ और खूब कमाएँ । साथ ही अपने जीवन में दान शीलता भी लाएँ । दान की महिमा महान् है—

दानेन भूतानि वशी भवन्ति दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम् ।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानैर्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति ।।

दान देने से मनुष्य वश में हो जाते हैं, वैर-विरोध का नाश हो जाता है । दान से पराये भी अपने बन जाते हैं, दान सारी आपत्तियों को मार भगाता है ।

दान दो, दान देने से कमी नहीं आती। किसी कवि ने कहा है—

ऋतु वसन्त याचक भयो द्रुम दिये सब पात।
ताते नव पल्लव भयो दियो दूर नहीं जात॥

परन्तु दान कहाँ दें, किनको दें, सोच समझकर दें। दान दें, परन्तु अपमानपूर्वक नहीं प्रेमपूर्वक दें। सात्विक दान दें।

६. दुः नाम्नीः

बुरे नामवाली, अपकीर्ति को भी दूर करें। संसार में हमारा दुर्नाम न होकर नेक नाम हो। संसार में हमारी कीर्ति और यश हो।

यशो मा प्रतिमुच्यताम्। साम० ६११

मुझे यश कभी न त्यागे। मैं संसार में यशस्वी होकर ही जाऊँ। मैं वेद के शब्दों में घोषणापूर्वक कह सकूँ—

अहमस्मि यशस्तमः। अथर्व० ६। ३९। ३

मैं सब मनुष्यों में सबसे अधिक यशस्वी हूँ।

कैसा जीवन हो?

वह चाल चल कि सब याद तुझे करें।
जब तेरा नाम लें तो खुशी से लिया करें॥

हम अपने शुभ कर्मों से अपने यश का विस्तार करें।

७. दुः वाचः

हम कठोर वाणी को त्याग दें। सदा मीठा और मधुर बोलें। कटु और कड़वा बोलने वाले से कोई प्रसन्न नहीं होता। हम मधुच्छन्दा बन जाएँ। हमारी वाणी से सदा फूल झड़ते रहें। हम सदा स्मरण रखें—

न हीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु विद्यते।
दया मैत्री च भूतेषु दानं च मधुराचवाक्॥

प्राणियों पर दया और उनके साथ मित्रता, दान देना और मधुर बोलना—इनसे बढ़कर तीनों लोकों में कोई वशीकरण नहीं है।

६. उसी को जानकर मुक्ति

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽनाय॥

—यजु० ३१। १८

शब्दार्थः—(अहम्) मैं (तमसः परस्तात्) अविद्या-अन्धकारादि दोष रहित (महान्तम्) महान् गुणों से युक्त, बड़ों से भी बड़े (आदित्य वर्णम्) सूर्य के समान देदीप्यमान, स्वप्रकाश स्वरूप (एतम्) इस (पुरुषम्) सर्वत्र परिपूर्ण पुरुष को (वेद) जानूं, क्योंकि मनुष्य (तम् एव) उसको ही (विदित्वा) जानकर (मृत्युम्) दुःखदायक

मृत्यु का (अति एति) अतिक्रमण कर सकता है, मृत्यु को लाँघ सकता है। (अन्यः) इससे भिन्न और कोई (पन्थाः) मार्ग (अयनाय) मोक्ष प्राप्ति के लिए (न विद्यते) नहीं है।

व्याख्या—संसार का प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक मतावलम्बी मोक्ष चाहता है। इस मोक्ष प्राप्ति के लिए कोई गंगा में डुबकी लगाना बताता है तो कोई किसी महापुरुष पर ईमान लाने की बात कहता है परन्तु ये सभी उपाय गलत हैं। इस मन्त्र में मोक्ष प्राप्ति का जो सही और सच्चा मार्ग बताया है, उसपर चिन्तन और मनन कीजिए।

वेदाहमेतं पुरुषम्

मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। मुक्ति का साधन क्या है? मुक्ति होगी परमात्मा के जानने से, अतः भक्त कहता है—"मैं उस पुरुष को जानूँ।" परमात्मा पुरुष है। उसे पुरुष क्यों कहते हैं। निरुक्तकार महर्षि यास्क लिखते हैं—

पुरुषः पुरिषाद्: पुरिशयः। निरुक्त २ । ३ । १

मानव शरीर या ब्रह्माण्डरूपी शरीर में बैठने वाला अथवा लेटनेवाला, निवास करने वाला होवे पुरुष कहलाता है।

जीवात्मा शरीर में निवास करने से पुरुष है और परमात्मा ब्रह्माण्ड में निवास करने से पुरुष है। तब क्या वह परमात्मा हम जैसा ही पुरुष है? उत्तर है—नहीं।

महान्तम्

वह महान् गुणों से युक्त और बड़ों से भी बड़ा है। उससे बड़ा अथवा उनके बराबर कोई नहीं है। हम पुरुष हैं, वह महापुरुष है, हम आत्मा हैं तो वह परम-आत्मा है। हम अल्पज्ञ हैं, वह सर्वज्ञ है। हम एक देशी हैं, वह सर्वदेशी है, सर्वव्यापक है। हम अल्पशक्तिमान् हैं वह सर्वशक्तिमान् है। हम सत्-चित् हैं, वह सच्चिदानन्द है। हम भोक्ता हैं, वह साक्षी है। कितना महान् है वह परमात्मा। वेद कहता है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिँ सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥
पुरुष एवेदँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

—यजु० ३१ । १—३

वह परमात्मा सहस्रों सिर वाला, अनन्तज्ञानशक्ति वाला, सर्वज्ञ, असंख्य नेत्रों वाला, अनन्त दर्शनशक्ति वाला, सर्वद्रष्टा तथा असंख्यात् पादों वाला—अनन्त गति-शक्ति से युक्त, सर्वव्यापक है। वह सारे ब्रह्माण्ड को सब ओर से व्याप्त करके पाँच स्थूलभूत और पाँच सूक्ष्मभूत अर्थात् दस अङ्गों वाले जगत् को लाँघकर स्थित है। वह अन्दर-बाहर सर्वत्र परिपूर्ण है।

जो कुछ उत्पन्न हुआ और जो उत्पन्न होगा, जो अन्न से, आहार से बढ़ता है, यह सम्पूर्ण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षात्मक जगत्, अविनाशी मोक्ष सुख तथा कारण प्रकृति—इन सबका अधिष्ठाता एकमात्र परमेश्वर ही है।

यह दृश्य और अदृश्यमान, ब्रह्माण्ड उस परमपिता परमात्मा की विभूति है, उसकी महिमा है, वह पुरुष इससे बहुत महान् है। विश्व ब्रह्माण्ड उस जगदीश्वर के एक अंश के तुल्य है, उस जगत्स्रष्टा के तीन पाँव नाश रहित हैं जो प्रकाशात्मक स्वरूप में विद्यमान रहते हैं।

अथर्ववेद में परमात्मा के विराट् स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा—

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरोऽभवन्।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

—अथर्व० १०। ७। ३२—३४

भूमि जिसके पैरों के तुल्य है, अन्तरिक्ष उदर के समान है और द्युलोक को जिसने आकाश के समान बनाया है उस ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ पर ब्रह्मपरमेश्वर के लिए हमारा बारम्बार नमस्कार है।

सूर्य और प्रतिदिन नूतन रूप में उत्पन्न होनेवाला चन्द्रमा—ये दोनों जिसकी दो आँखों के तुल्य हैं, अग्नि को जिसने अपने मुख के समान बनाया है, उस सर्वश्रेष्ठ परब्रह्म के लिए हमारा बारम्बार नमस्कार है।

वायु जिसके प्राण और अपान के तुल्य है, सूर्य चन्द्र आदि तेजस्वी पदार्थ जिसके नेत्र के तुल्य हैं और दिशाओं को जिसने पताकाओं के समान ज्ञान करानेवाले कर्णों के समान बनाया है, उस सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म के लिए हमारा बारम्बार नमस्कार है।

आदित्यवर्णम्

वह परमात्मा सूर्य के समान देदीप्यमान है। उपनिषदों में कहा है—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

—मुण्डक २। २। १०

उस परात्परब्रह्म के प्रकाश के समक्ष सूर्य की दीप्ति क्षीण हो जाती है, चन्द्र और तारों की ज्योति प्रभाहीन हो जाती है, विद्युत् का प्रकाश तेजोहीन हो जाता है फिर इस साधारण अग्नि का तो कहना ही क्या? उस ब्रह्म की ज्योति से ही ये सब प्रकाशित होते हैं, उसके प्रकाश से ही यह सारा जगत् प्रकाशमान् हो रहा है।

तमसः परस्तात्

परमात्मा अविद्या-अज्ञान के अन्धकार से सर्वथा पृथक् है। आदित्य चमकता है। वह प्रकाश का पुञ्ज है परन्तु उस प्रकाश में कुछ कालिमा भी है, अतः परमात्मा और आदित्य के प्रकाश की क्या तुलना ? गीता में कहा है—

दिवि सूर्य सहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः ॥

—गीता ११। १२

यदि आकाश में सहस्रों सूर्यों का प्रकाश एक साथ इकट्ठा होकर चमक उठे तो वह प्रकाश विराट् पुरुष के प्रकाश का कदाचित् कुछ सादृश्य कर सके।

परमात्मा अज्ञान-अन्धकार से दूर है। उसमें अविद्या और अज्ञान का लेश भी नहीं है। महर्षि पतञ्जलि ने कहा—

क्लेशकर्मविपाकाशैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥

—योगदर्शन १। २४

जो अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—इन पाँचों क्लेश, शुभ, अशुभ आदि कर्म, कर्मों के फल और कर्मों के संस्कारों से सर्वथा रहित, पुरुष विशेष को ईश्वर कहते हैं।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति

उस परमपिता को जानकर मनुष्य जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है अतः उसी परमात्मा को जानने का प्रयत्न करो। जीवन का उद्देश्य है प्रभु की प्राप्ति।

यस्तन्नवेद किमृचा करिष्यति ॥ —ऋ० १। १६४। ३९

जो मनुष्य वेद के प्रतिपाद्य परमेश्वर को नहीं जानता, वह वेद पढ़कर भी क्या करेगा ? वेदपाठ से भी उसका कल्याण नहीं होगा।

उस परमात्मा की ही उपासना करो, उसी को जानो। शतपथ ब्राह्मण ने कहा—

योऽन्या देवतामुपासते पशुरेव स देवानाम् ।

—शत० १४। ४। २। २२

जो एक परमेश्वर को छोड़कर अन्य देवता की उपासना करता है, वह कुछ भी नहीं जानता। वह तो विद्वानों में पशु ही है।

भागवतपुराण (१०। ८४। १३) में कहा है—

यस्यात्म बुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिलेन कर्हिचिज्—
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

जो लोग वात, पित्त और कफमय शरीर को ही आत्मा मानते हैं, स्त्री आदि को ही अपना समझते है, मिट्टी से बनी मूर्तियों में पूज्य बुद्धि रखते हैं, और जल को तीर्थ समझते हैं, तत्वज्ञानियों की दृष्टि में ऐसे लोग बैल और गधे हैं।

मनुस्मृति में बहुत से श्लोक मिलाये गए साथ ही अनेक श्लोक निकाले भी गये। निकाले गये श्लोक गुजराती संस्करण के परिशिष्ट में दिए हुए हैं। उस परिशिष्ट का अन्तिम श्लोक है—

विप्राणां दैवतं शम्भुः क्षत्रियाणां तु माधवः।
वैश्यानां तु भवेद्ब्रह्मा शूद्राणां गणनायकः॥

विप्रों का देवता है शम्भु, क्षत्रियों का देवता है माधव, वैश्यों का देवता है ब्रह्मा और शूद्रों का देवता है गणेश।

हे ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों! आप शूद्र के देवता की उपासना क्यों करते हैं। इसकी उपासना से आपका कल्याण नहीं होगा। परमात्मा की ही पूजा और उपासना करो। उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु को लाँघ सकता है—

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय

परमात्मा को जाने विना मोक्ष-प्राप्ति का और कोई उपाय नहीं है। यदि मृत्यु से छूटना चाहते हो तो उस परमात्मा का अवलम्बन=सहारा लो। जिसने उस परमात्मा को जाना वह मृत्यु के चंगुल से बच गया।

कहते हैं, एक दिन कबीर जा रहे थे। एक स्थान पर एक चलती हुई चक्की को देखकर रो पड़े। लोगों ने कारण पूछा तो उन्होंने कहा—

चलती चक्की देख के दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में बाकी रहा न कोय॥

थोड़ी देर में कबीर का पुत्र उधर आ निकला। वह सारी बात जानकर अपने पिताजी से कहने लगा—

चलती चक्की देख के कमाल रहा ठठाय।
मानी पासे जो रहे, बाकी पिसे बलाय॥

जो परमात्मा की शरण में आ गये, वे भवसागर से तर गये, उनका बेड़ा पार हो गया, वे मुक्ति के अधिकारी बन गये।

भक्त! तू भी कल्याण चाहता है, मृत्यु से त्राण चाहता है तो परमात्मा को जान।

॥ इति ॥

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य साधना में संलग्न, रामाय के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

- o यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की झांकी देखना चाहते हैं।
- o यदि आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का अध्ययन करना चाहते हैं।
- o यदि आप प्राचीन राज्यव्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं।
- o यदि आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं।
- o यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं।
- o यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं।

तो यह रामायण पढ़ जाइए। सैंकड़ों टिप्पणियों से समलंकृत सम्पूर्ण रामायण ६००० श्लोकों में समाप्त। **मूल्य : ४० रुपये**

आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा लिखते हैं—

"सम्पादन, टीका-टिप्पणी और लोह-लेखनीधारी स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा हुई है। पं० आर्यमुनि, पं० राजाराम शास्त्री, पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार ने भी रामायण की टीका क्षेपक-रहित प्रकाशित की थीं। उसमें पादटिप्पणियों का अभाव था। इस टीका में टिप्पणियों की भरमार है जिससे विषय का प्रतिपादन भलीभाँति हो जाता है।...स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का परिश्रम, स्वाध्याय, विद्वत्ता प्रत्येक अध्याय में दृष्टिगोचर होता है।"

श्री अमर स्वामी जी महाराज (भूतपूर्व ठा० अमरसिंह जी महाराज) लिखते हैं—

"रामायण को देखकर ऐसा लगा कि इसमें कोई आवश्यक बात छूटी नहीं तथा कोई अनावश्यक और अनर्गल बात रहने नहीं पाई। टिप्पणियों तथा शंकाओं के समाधानों ने तो सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर दी है।"

अपने घर में

घरेलू शताब्दी पुस्तकालय बनाइए

वर्ष में ४१-०० रु० की बचत कीजिए

१. हर दो महीने में एक बार २०-०० की पुस्तकें १८-०० में वी. पी. पी. से प्राप्त करें। वर्ष में १२-०० की बचत।

२. हर बार का डाकखर्च जो लगभग ४-०० होगा, वह हम खर्च करेंगे। वर्ष में २४-०० की यह भी बचत।

३. वेदप्रकाश मासिक हर माह बिना मूल्य प्राप्त होगा। ५-०० की बचत।

४. इस प्रकार वर्ष में १२० रु० की पुस्तकें संग्रहीत हो जायेंगी तथा ४१-०० रु० की बचत हो जायेगी।

सदस्य बनने के लिए आप हमें केवल तीन रुपये (अमानत राशि) भेज दें तथा पुस्तकों के नाम लिख दें कि कौन-कौन-सी पुस्तकें पहली वी. पी. से भेजी जायें।

अब तक हम निम्नलिखित पुस्तकें घरेलू शताब्दी पुस्तकालय के सदस्यों को दे चुके हैं।

पं० वीरसेन वेदश्रमी
वैदिक सम्पदा २०.००

श्री रणवीर
महात्मा आनन्द स्वामी जीवनी ८.००

पं० रामशरण वशिष्ठ
वेदार्थ विज्ञान १.००

प्रो० विष्णुदयाल एम. ए.
वेद भगवान बोले ४.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती
चतुर्वेदशतकम् ८.००
शिव संकल्प ४.००
विवाह पद्धति २.००
वाल्मीकि रामायण ४०.००

पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार
सामवेदभाष्य (दोनों भाग) ३८.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार
वैदिक वन्दना ७.००

वैद्य गुरुदत्त
विश्वदेवा ६.००
अद्वैत मीमांसा ६.००

प्रो० राजाराम शास्त्री
कठ उपनिषद् ८.००

प्रो० रामनिवास
ऋचाओं की छाया में ६.००

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार २०.००
संस्कार चन्द्रिका ४५.००

प्रो० प्रशान्त वेदालंकार
महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था ८.००

पं० नरेन्द्र (स्वामी सोमानन्द सरस्वती)
हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

जो सज्जन इस पुस्तकालय योजना का लाभ उठाना चाहें वे ३.०० भेजकर सदस्य बन सकते हैं। उपरिलिखित कोई भी पुस्तकें २०.०० की १८.०० में भेजी जायेंगी।

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८ नई सड़क, दिल्ली-११०००६

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्टियुत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसी !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहवली लेखावली	७.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.००
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	७.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	२.५०
मानव जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	५.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.५०
The only way	३.००
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्रीमहात्मा आनन्द स्वामी उर्दू	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिव संकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेद सौरभ	४.००
वेद सौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू औषधियाँ	३.००
वैदिक विवाह पद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा अजिल्द	२०.००
” सजिल्द	३०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

वैद्य गुरुदत्त

विश्वदेवा	६.००
अद्वैत मीमांसा	६.००

पण्डित बिहारीलाल शास्त्री

विचार वाटिका ३.००

प्रो० विष्णुदयाल

वेद भगवान् बोले ४.००

स्वामी सर्वदानन्द

आनन्द उपदेशमाला १.५०

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश ७.००

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार २०.००

दयानन्दप्रकाश **स्वामी सत्यानन्द** १५.००

पं० भगवद्दत्त

भारतीय संस्कृति का इतिहास ७.००

डॉ० प्रशान्त कुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्य समाज का परिचय १.५०

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

महर्षि दयानन्द की देन ४.००

सत्यार्थ प्रकाश **स्वामी दयानन्द** २५.००

संस्कार विधि ,, ४.००

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ,, ८.००

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ,, ०.१५

आर्याभिविनय ,, १.००

शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण ,, ०.३७

आर्योद्देश्य रत्न माला ,, ०.२५

बालशिक्षक ,, ०.३७

व्यवहार भानु ,, १.००

सन्ध्या विनय **नित्यानन्द वेदालंकार** १.५०

पूर्व और पश्चिम ,, ७.५०

जीवन की राहें ,, ४.००

सु-राज्य की रूपरेखा ,, ०.५०

प्राणायाम विधि **नारायण स्वामी** ०.६०

आर्यसमाज क्या है ? ,, १.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००

स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द** ४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य ०.५०

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास ४०.००

वेदान्तदर्शन का इतिहास ३०.००

सांख्य सिद्धान्त २४.००

सांख्य दर्शन १६.००

वेदान्त दर्शन ३०.००

वैशेषिक दर्शन २५.५०

न्याय दर्शन २४.००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान १.५०

पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्री मद्भगवद्गीता १.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त) १.००

कथा पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द** २.५०

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.५०

स्वामी श्रद्धानन्द १.००

गुरु विरजानन्द १.००

पं० लेखराम १.००

पं० गुरुदत्त १.००

स्वामी दर्शनानन्द १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

वैदिक धर्मशिक्षा प्रथम भाग ०.६०

वैदिक धर्मशिक्षा द्वितीय भाग ०.६०

वैदिक धर्मशिक्षा तृतीय भाग १.००

वैदिक धर्मशिक्षा चतुर्थ भाग १.००

वैदिक धर्मशिक्षा पंचम भाग १.००

वैदिक धर्मशिक्षा षष्ठ भाग १.००

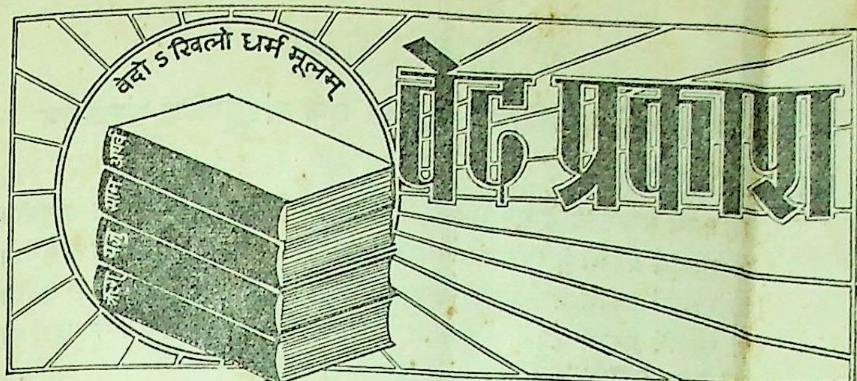
वैदिक धर्मशिक्षा सप्तम भाग १.२५

वैदिक धर्मशिक्षा अष्टम भाग १.२५

नैतिक शिक्षा नवम भाग १.५०

नैतिक शिक्षा दशम भाग १.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया ।



श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य साधना में संलग्न, रामायण के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

० यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की झांकी देखना चाहते हैं।
० यदि आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का अध्ययन करना चाहते हैं।
० यदि आप प्राचीन राज्यव्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं।
० यदि आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं।
० यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं।
० यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं।

तो यह रामायण पढ़ जाइए। सैंकड़ों टिप्पणियों से समलंकृत सम्पूर्ण रामायण ६००० श्लोकों में समाप्त। **मूल्य : ४० रुपये**

आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा लिखते हैं—

"सम्पादन, टीका-टिप्पणी और लोह-लेखनीधारी स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा हुई है। पं० आर्यमुनि, पं० राजाराम शास्त्री, पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार ने भी रामायण की टीका क्षेपक-रहित प्रकाशित की थीं। उसमें पादटिप्पणियों का अभाव था। इस टीका में टिप्पणियों की भरमार है जिससे विषय का प्रतिपादन भलीभाँति हो जाता है।···स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का परिश्रम, स्वाध्याय, विद्वत्ता प्रत्येक अध्याय में दृष्टिगोचर होता है।"

श्री अमर स्वामी जी महाराज (भूतपूर्व ठा० अमरसिंह जी महाराज) लिखते हैं—

"रामायण को देखकर ऐसा लगा कि इसमें कोई आवश्यक बात छूटी नहीं तथा कोई अनावश्यक और अनर्गल बात रहने नहीं पाई। टिप्पणियों तथा शंकाओं के समाधानों ने तो सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर दी है।"

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

सत्यार्थ प्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची।
२. सत्यार्थ प्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची।
३. सत्यार्थ प्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची।
४. सत्यार्थ प्रकाश १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश। (जैसे हारून का Haron)
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचंद्र देहलवी का वक्तव्य।
६. सत्यार्थ प्रकाश की आधार ग्रन्थ सूची।
७. सत्यार्थ प्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा। ८. अन्त में अकारादिक्रम से प्रमाण सूची।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थ प्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्तजी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी संस्करण में दी गई है।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास अनुसार।

बढ़िया कागज। १६ प्वांइट के मोटे मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५.००।

वैदिक सम्पदा [पं० वीरसेन वेदश्रमी]

'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है' तथा 'वेद में आधुनिक सभी समस्याओं का समाधान है' की व्याख्या में लिखा गया यह विशद-ग्रन्थ वेद के सभी विद्वानों द्वारा सराहा गया है।

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड लिखते हैं—वैदिक समाजशास्त्र, वैदिक समाजवाद में पारिवारिक आदर्श, गृहस्थ-निर्माण, आदर्शवाद, सामाजिक समस्याएँ, वेद में यातायात, वेद में चिकित्सा, विज्ञान, वैदिक अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, विज्ञान, रेखागणित, शासन (राजनीति), शिक्षा विज्ञान, वेदों में भाषा विज्ञान, ऋतुविज्ञान, भूतत्त्वविज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अग्निविज्ञान, विमान विज्ञान, जल विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, धर्म; इस प्रकार विभाजन करते हुए वेदों के आधार पर इनपर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

मूल्य २०.००; राज संस्करण ३०.००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

!! ओ३म् ।।

वेद प्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष : २६ अंक ६] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [अप्रैल, १६७७

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

निवेदन

स्वर्गीय स्वामी वेदानन्द तीर्थ

विदेशीय शासन के कारण देश में अनेक प्रकार के व्यसनों ने इस देश के वासियों का जकड़ लिया है। किसी भी भारतीय को यह विस्मरण नहीं हो सकता कि सत्याग्रह आन्दोलन के प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस के आदेश पर लाखों जनों ने शराब की दुकानों पर धरना दिया था और फलस्वरूप सहस्रों भारतीयों को जेल यातनाएँ भुगतनी पड़ी थीं। उन्हीं दिनों की बात है कि मध्यप्रान्त के विख्यात देशभक्त डा० मुंजे को मद्य का विरोध करने के अपराध में जेल जाना पड़ा था। विदेशीय राज्य के इससे दो प्रयोजन सिद्ध होते थे—एक तो देशवासी मदोन्मत्त होकर हतबुद्धि, शिथिल शरीर होकर किसी भी आन्दोलन के समर्थ न हो सकें; दूसरे शराब आदि के विक्रय से आय में वृद्धि होती थी। वह शासन भी कैसा, जिसके आधार स्तम्भों में 'नशा' भी एक प्रधान स्तम्भ हो। विदेशीय शासन तो चला गया, परन्तु अपने सहज दुर्गुणों, दोषों को साथ नहीं ले गया, वे अभी तक हमारे देश को अपनी दासता के पाश में बाँधे हुए हैं।

उन अनेक व्यसनों में नशा-सेवन बहुत प्रचण्ड है। यह बुद्धि का नाशक है जैसा कि वैद्यक की शार्ङ्गधर संहिता में लिखा है—'बुद्धिं लुम्पते यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते' जो द्रव्य बुद्धि का लोप करे, बुद्धि को बिगाड़े, वह मदकारी = मादक = बुद्धि-नाशक है। इसकी विनाशकारिता को हमारी अपनी सरकार भी जानती है, अतः प्रान्तों में नशानिवारण के लिए विशेष उद्योग किया जा रहा है।

प्रस्तुत ट्रैक्ट में मद्य = मदिरा = शराब के विषय में धार्मिक दृष्टि से विचार किया गया है। विद्वान् लेखक ने वेद, स्मृति, सन्तों के ग्रन्थों एवं स्वामी दयानन्द के वचनों से मद्य सेवन को धर्म-विरुद्ध सिद्ध किया है। धर्मप्राण भारतीयों को इस व्यसन से छुड़ाकर फिर से उन्हें धर्म में प्रवृत्त करना देशहित की दृष्टि से भी अत्यन्त आवश्यक कार्य है।

सम्पादक यहाँ एक और दृष्टिकोण से शराब और उसके साथ मांस [मांस भी एक भयंकर पाप है] के सम्बन्ध में विचार करना चाहता है और वह है शारीरिक। वैद्यक के प्रसिद्ध प्राचीन वैज्ञानिक ग्रन्थ सुश्रुत के टीकाकार श्री डल्लणाचार्य का कहना है कि—

मांसकामाः सुराकामाः स्त्रीकामाः साहसे रताः।
मागधेयास्तेन भूयिष्ठं दृश्यन्ते राजयक्ष्मिणः॥

मगध (बिहार) देशवासी मांसाहारी, शराबी, व्यभिचारी तथा बलात्कार के कार्यों में लगे रहते हैं, अतः अधिकतर राजयक्ष्मा से पीड़ित देखे जाते हैं।

भाव यह है कि मांस, शराब (व्यभिचार तो इन व्यसनों का सहज सहचारी है) का परिणाम राजयक्ष्मा=तपेदिक है। पाश्चात्य प्रणाली के प्रवीण भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। तो क्या कोई भी देशभक्त ऐसा हो सकता है जो इस भयंकर फल देने वाले व्यसनों का समर्थन करे। प्राप्त हुई स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए बुद्धि बल के साथ शरीर बल की आवश्यकता समझाने की आवश्यकता नहीं है। मदिरा=शराब के सेवन से दोनों—बुद्धि तथा शरीर—को क्षीण करती है। राष्ट्र रक्षा की दृष्टि से शरीर रक्षा का महत्त्व अत्यन्त महान् है। हतबुद्धि और हीन-शरीर से राष्ट्र रक्षा का-सा महान् कार्य कैसे सम्पन्न होगा ?

देशी विदेशी सभी इस बात पर सहमत हैं कि प्राचीन काल में भारतवासी गौरव की पराकाष्ठा पर पहुँचे थे। उस समय की एक घटना का उपनिषदों में उल्लेख है। कुछ अध्यात्मचिन्तक महात्मा अपने एक प्रश्न के समाधान के लिए, समित्पाणि होकर एक राजा के पास गये। राजा ने उन्हें भोजन के लिए प्रार्थना की। उन महामनुष्यों ने स्वीकार न किया। राजा ने समझा, राजा के आय में पाप का भाग होने से ये महात्मा मेरा अन्न स्वीकार नहीं करते। इस पर उसने गर्वपूर्ण किन्तु वास्तविकता का द्योतक एक वचन कहा—

न मे स्तेनो जनपदे, न कदर्यो, न मद्ययो, नानाहिताग्निर्, ना विद्वान्, न स्वैरी, स्वैरिणी कुतः ? (छा० उ० ५ । २४ । ५)

'मेरे देश में कोई चोर नहीं, कोई कंजूस नहीं, कोई मद्यप=शराबी नहीं, अग्निहोत्र न करने वाला कोई नहीं, अविद्वान्=बे-पढ़ा लिखा कोई नहीं, व्यभिचारी कोई नहीं, व्यभिचारिणी कैसे हो सकती है।'

आज यदि वह राजा भारत में किसी भाँति आ सके, तो वह इस देश को पहचान न सके। आज इस देश में चोरों की पढ़े लिखे चोरों की, समाज के शिरोमणि चोरों की, रक्षा के नाम चोरी करने वाले चोरों की, सम्पन्न होते हुए भी चोरी करने वालों की भरमार है। मद्यपों=शराबियों, दुराचारियों का तो कहना ही क्या ? विद्याहीनता में यह देश सबका शिरभूषण हो रहा है। यह अवस्था देखकर वह राजा विश्वास ही न करेगा कि यह भारतवर्ष है।

देश को इस पतित अवस्था से उठाकर इसे फिर जगद्गुरु के पद पर आसीन करना प्रत्येक भारतीय का प्रथम कर्त्तव्य है। उस अवस्था को पुनः प्राप्त करने के लिए

व्यसनों का त्याग अत्यन्त अनिवार्य है। इसी भावना को लक्ष्य में रखकर 'सार्वदेशिक दयानन्द सन्यासि वानप्रस्थ मण्डल' ने गत वर्ष अपने वार्षिक यज्ञ के अवसर पर भावी कार्यक्रम का निश्चय करते समय 'मांस मद्यादि के निवारण' को भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। मण्डल के मुख्य अधिकारी व्याख्यान आदि के द्वारा इस दुर्व्यसन का खण्डन करते रहे हैं। मण्डल के उपप्रधान श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने इस विषय पर एक लेखमाला भी लिखी, जो कई सामयिक पत्रों में प्रकाशित हो चुकी है। लेखमाला अत्यन्त उपयोगी है, उसे स्थिर रूप देने के लिए पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है जनता इससे अधिक लाभ उठाएगी।

—**(स्वर्गीय) स्वामी वेदानन्द तीर्थ**

मांस-मदिरा निषेध

स्वर्गीय स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती

(१) मद्य

अंग्रेजी राज्य में जहाँ अन्य व्यसनों की वृद्धि हुई है, वहाँ मद्य का प्रचार खूब बढ़ गया है। आजकल भारतीय सरकार मद्य निषेध करके इस व्यसन से भारतीयों को मुक्त करना चाहती है, समाचार पत्रों में पढ़ा है कि पंजाब सरकार ने जिला रोहतक में मद्य पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। उस जिला में आर्य समाजियों की पर्याप्त संख्या है, अतः मैं मद्य के सम्बन्ध में वेद तथा स्मृति ग्रन्थ और महर्षि दयानन्द जी के आदेश इस लेख में दिखाना चाहता हूँ। आशा है, कोई सज्जन इससे शिक्षा ग्रहण कर ही लेगा।

देसी शराब कई प्रकार की है। एक वह है जिसे गुड़ तथा बबूल के छिलके से बनाते हैं, दूसरी पर्वतीय प्रदेश में चावल से बनाते हैं, जिसे लुगड़ी कहते हैं, पर्वत प्रदेश में एक और शराब जौ से भी बनाई जाती है जिसे रास कहते हैं। तीसरे बुन्देलखण्ड में महुआ के फूल से बनाते हैं, जिसे महुआ ही कहते हैं, चौथे दक्षिणादि प्रान्तों में ताड़ी है जो ताड़, खजूर नारिकेल आदि वृक्षों से बनाई जाती है, ऐसे और भी हैं।

अंग्रेजी मद्य के नाम जो मैं जानता हूँ ये हैं—रम, जीन, पोर्ट, मडीरा, शेरी शंपीन, बरांडी, बिसकी, बीयर आदि। बीयर यव से बनाते हैं।

स्मृतियों में तीन मुख्य भेद हैं यथा—

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः॥ मनुस्मृति ११। ६४॥

गुड़ की तथा पिष्टी की (लुगडी आदि) और महुये के फूलों की, ये तीन प्रकार की सुरा जाननी चाहिये। जैसी एक है वैसी ही सब हैं, द्विजोत्तमों को पीने योग्य नहीं हैं।

पुलस्त्य ने लिखा है—

पानसं द्राक्षं माध्वीकं खारजूरं तालमैक्षवम्।
मधूत्थं सैरमारिष्टमैरेयं नालिकेरजम्॥

समानानि विजानीयान्मद्यान्येकादशैवतु ।
द्वादशे तु सुरामद्यं सर्वेषामधमं स्मृतम् ॥

पानस, द्राक्ष माधूक, (महुया) खजूर, ताल, एक्षव, मधूत्थ, सैर, ग्रारिष्ट, मैरेय, नारिकेलज, इन ग्यारह मदिराग्रों को समान मानो ग्रौर बारहवीं सुरा मद्य है, वह सबसे ग्रधम है ।

यह सब वर्तमान ताड़ी के भेद प्रतीत होते हैं ।

स्मृति ग्रन्थों में मद्य निषेध के सम्बन्ध में निम्न प्रकार के लेख मिलते हैं—

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥ मनु० ११ । ९३

सुरा ग्रन्न का मल है ग्रौर मल को पाप कहते हैं, इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सुरा को न पीवें ।

यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यंमांसं सुरासवम् ।
तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवाना मश्नता हविः ॥

मद्य, मांस, सुरा, ग्रासव, यज्ञ, राक्षस, पिशाचों, का ग्रन्न है । देवताग्रों के हवि खाने वाले ब्राह्मण को ये न खाने चाहिये ।

प्रायश्चित्त

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् ।
तथा स कायेनिर्दग्धे मुच्यते किल्बिषाक्षतः ॥
गौमूत्रमग्निवर्णं पिबेदुदकमेववा ।
पयोघृतंवा मरणा ग्दौशकृद्रसमेववा ॥
कणान्वा भक्षयेदेकं पिण्याकंवा सकृन्निशि ।
सुरापानापनुत्यर्थे वालवासाजटी, ध्वजी ॥मनु० ११,९०,९१,९२

ग्रर्थ—द्विज ग्रज्ञान से मदिरा पीकर ग्राग के समान गर्म मदिरा पीवे, इस प्रकार सुरा से शरीर जलने पर वह उस पाप से छूटता है ।

ग्रथवा, गौमूत्र, वा जल ग्रग्नि के समान गर्म करके पीवे, ग्रथवा दूध वा घृत मरण पर्यन्त पीवे, ग्रथवा गोबर के रस को पीवे । ग्रथवा एक वर्ष तक चावल की कुट्टी वा खल रात को एक समय खाय, सुरापान का पाप दूर करने को कम्बल के वस्त्र पहने, बाल न मुंडावे ग्रौर मदिरापान का चिह्न धारण करके रहे ।

सुरांबुघृतगोमूत्रपयसामग्नि संनिभम् ।
सुरापोऽन्यतमं पीत्वा मरणाच्छुद्धि मृच्छति ॥
याज्ञवल्य स्मृति । प्र० ५, २५३

ग्रर्थ—सुरा, जल, घृत, गोमूत्र, दूध, इनमें से किसी एक को ग्रग्नि के समान दाह करने वाले को पीकर मर जाने से सुरा पीने वाला शुद्धि को प्राप्त होता है ।

तथा लौहेन पात्रेण सुरापोऽग्निवर्णां ।
सुरामायसेन पात्रेण ताम्रेण वा पिबेत् ॥ प्रचेता स्मृति

मदिरा पीने वाला लोहे वा ताम्र पात्र से अग्नि समान गरम मदिरा पीकर प्रायश्चित्त करे।

सुरापानं सकृत्कृत्वाप्ययग्निवर्णां सुरा पिबेत्। (अंगिरा स्मृति)

एक वार मदिरा पीकर अग्नि के समान गरम सुरा पीवे।

सुरापाने कामकृते ज्वलन्तीगं विनिक्षिपेत्।
मुखे तया विनिर्दग्धे मृतः शुद्धि मवाप्नुयात्॥ (बृहस्पति स्मृति)

जानकर मद्य पीने से जलती हुई गरम मदिरा मुँह में डालकर, मुख के जल जाने से मरकर शुद्धि को प्राप्त होता है।

अभ्यासे तु सुराया अग्निवर्णां सुरांपिवेत्।
मरणात्पूतो भवति॥ (वशिष्ठ स्मृति)

सुरा का अभ्यासी तो अग्नि समान सुरा पीकर मरने से ही पवित्र होता है। इसी कारण मनु जी ने लिखा है—

वर्जयेन्मधु मांसं च। (मनु० ६। १४)

अर्थात् मद्य मांस न पीवे, खाये। यही नहीं स्मृतियों में, जो मद्य वाले पात्र में जल पीवे, उसे भी प्रायश्चित्तीय माना है।

मद्यभांडे स्थितं तोयं यदि कश्चित्पिवेद् द्विजः।
पद्मोदुम्वर विल्वानां पालाशस्य कुशस्य च॥
एतेषामुदकं पीत्वा त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति॥ (वसिष्ठ स्मृति)

अर्थ—यदि कोई द्विज मदिरा के पात्र में स्थित जल को पीवे, तो पद्म, गूलर, बिल्व, पलाश, कुशा, इनके जल को पीकर तीन रात में शुद्ध होता है।

मद्यभाण्डस्थितं तोयं पीत्वा सप्तरात्रं गोमूत्रं यावकं पिवेत्।
(शंख स्मृति)

अर्थ—मदिरा पात्र में स्थित जल पीकर सात रात्र गोमूत्र और यव का जल पीने से शुद्ध होता है।

मद्यभाण्डस्थितं तोयं यदि कश्चित्पिवेद्विजः।
द्वादशाह्नतुपयसा पिवेद् ब्राह्मी सुवर्चलाम्॥ (हारीत स्मृति)

यदि शराब के पात्र में कोई द्विज जल पीवे तो दूध को १२ दिन तक ब्राह्मी तथा सुवर्चला के संग पीवे।

यदि किसी की स्त्री मद्यप हो जाय तो उसे भी प्रायश्चित्तीय माना है।

पतत्यर्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत्।
पतितार्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते॥

जिसकी स्त्री मदिरा पीवे, उसका आधा शरीर पतित हो जाता है, आधे शरीर पतित वाले की उत्तम गति नहीं होती है।

जैसे यह है इसी प्रकार पति के मद्यम होने से स्त्री का भी आधा शरीर पतित होगा, अतः प्रत्येक स्त्री को अपने पति की इस व्यसन से रक्षा करनी चाहिये। अन्यथा उसका शरीर पतित होने से उसकी भी उत्तम गति न होगी।

सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द जी ने दशम समुल्लास में लिखा है—

वर्जयेन्मधुमांसंच । मनु०

जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गाँजा, भाँग, अफीम आदि जो-जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं, उनका सेवन कभी न करे।

इस प्रकार धर्मशास्त्रों के लेखों से सिद्ध होता है कि मद्य=शराब का पीना सबके लिए निषिद्ध है, वर्जित है।

वेद में मदिरा को दुर्मद कहा है।

हृत्सु पीतासु युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् ऊर्धन नग्ना जरन्ते। ऋ० ८।१।१२।

अर्थात्—मदिरादि दुर्मद पीकर परस्पर युद्ध करते हैं, लड़ाई-झगड़े करते हैं, रात-भर नग्न पड़े रहते हैं।

किसी भगत ने लिखा है—

जिस पीते मति दूर होय बाल पवे विच आय।
ऐसा मद मूल न पीवई जे बहुरि पछोताय॥

जिसके पीने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाय और बकवास करने लग जाय; ऐसा मद कभी न पीना चाहिये।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द, वेद, स्मृति आदि धर्म ग्रन्थ मद्य का निषेध करते हैं और मरणान्त प्रायश्चित्त बतलाते हैं, तथा इस समय सरकार भी इसे बन्द करना चाहती है, इस अवस्था में प्रत्येक आर्य को इसके बन्द करने में राज्य की सहायता करनी चाहिये, और जहाँ वह वास करता है, उसे यत्न करना चाहिये कि उसके पड़ोस में, मुहल्ले में, ग्राम वा नगर में कोई मद्य पीने वाला न हो।

स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा मनु जी का मत

(२)

इस समय भारतवर्ष में मांस मदिरा का प्रचार पूर्व से अधिक है, जिन प्रान्तों-हरियाणा गुजरातादि में मांस खाने वालों का नाम तक न था, अब वहाँ भी मांसाहारी मिल जाते हैं। जिन मारवाड़ी अग्रवाल आदि बिरादरियों में मांस भक्षण घोर पाप माना जाता था, अब उनके युवक भी होटलों में जाकर मांस भक्षण कर आते हैं। इस प्रकार भारत में इस समय मांस मदिरा का प्रचार अंग्रेजी राज्य के कारण बढ़ गया है। सुना है, कि योरुप में मांस का प्रचार पहले से न्यून है, निरामिष भोजी बढ़ रहे हैं और भारत में आमिष भोजियों की वृद्धि हो रही है यह भी भगवान् की लीला है।

मैं इस लेख में प्रथम ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में मांस विषयक जो कुछ लिखा है वह लिखूँगा, पश्चात् अन्य शास्त्रों के प्रमाण दूँगा।

इस लेख में मांस तथा मद्य के निषेधक पाठ सत्यार्थ प्रकाश से लिखे जायेंगे [सत्यार्थ प्रकाश वैदिक यन्त्रालय का पच्चीसवीं आवृत्ति का है उसके पृष्ठ मात्र लिखे जायेंगे, अतः यदि किसी ने पता देखना हो, तो यह ध्यान रखे।]

(१) ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य मांस······आदि कुकर्मों को सदा छोड़ दें। (पृष्ठ २९)

(२) जो विद्या पढ़ने पढ़ाने के विघ्न हैं, उनको छोड़ देवें, जैसा कुसंग अर्थात् दुष्ट विषयी जनों का संग, दुष्ट व्यसन मद्यादि सेवन॥ (पृष्ठ ४३)

(३) मद्य मांस आदि मादक द्रव्यों का पीना······ये छः स्त्री को दूषित करने वाले दुर्गुण हैं। (पृ० ६८)

(४) काम के व्यवसानों में वड़े दुर्गुण—एक मद्यादि अर्थात् मदकारक द्रव्यों का सेवन···ये चार महा दुष्ट व्यसन हैं। (पृ० ८९)

(५) जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गाँजा, भाँग, अफीम आदि जो जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करें। (पृ० १६७)

(६) प्रश्न—फिर क्या उनका मांस फेंक दें ?

उत्तर—चाहे फेंक दें, चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें व जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती, किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है, जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात, छल, कपट, आदि से पदार्थ को प्राप्त होकर भोग करना है, वह अभक्ष्य और अहिंसा, धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है। (पृ० १६८)

(७) जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आ के गो आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपायी राज्याधिकारी हुये हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है। (पृ० १६८)

(८) जब से ईसाई, मुसलमान आदि के मतमतान्तर चले, आपस में वैर विरोध हुआ, उन्होंने मद्यपान, गोमांसादि का खाना पीना स्वीकार किया, उसी समय से भोजनादि में बखेड़ा हो गया। (पृ० १६९)

(९) देखो इन गवर्गण्ड पापों की लीला कि जो वेद विरुद्ध महा अधर्म के काम हैं उन्हीं को श्रेष्ठ, वाम मार्गियों ने माना। मद्य, मांस, मीन अर्थात् मच्छी······में वाममार्गी दोष नहीं मानते। (पृ० १७७)

(१०) जो दीक्षित अर्थात् कलाल के घर में जावे, बोतल पर बोतल चढ़ावे··· जो इत्यादि कर्म निर्लज्ज निःशंक होकर करे, वही वाममार्गियों में सर्वोपरि मुख्य चक्रवर्ती राजा के समान माना ज़ाता है। अर्थात् जो बड़ा कुकर्मी वही बड़ा और जो अच्छे काम करे और बुरे कामों से डरे वही छोटा। (पृष्ठ १७८)

(११) खड़ा-खड़ा तब तक मद्य पीवे, कि जब तक लड़की के समान पृथ्वी में न गिर पड़े, फिर जब नशा उतरे तब उसी प्रकार पीकर गिर पड़े, पुनः तीसरी बार गिर के उठे, तो उसका पुनर्जन्म न हो अर्थात् सच्च तो यह है, कि ऐसे मनुष्यों का पुनः

मनुष्य जन्म होना ही कठिन है, किन्तु नीच योनि में पड़ कर बहुकाल पर्यन्त पड़ा रहेगा। (पृष्ठ १७९)

(१२) मांस भक्षण करने, मद्य पीने······आदि में दोष नहीं है, यह कहना छोकड़ापन है। क्योंकि बिना प्राणियों के पीड़ा दिये मांस प्राप्त नहीं होता, और बिना अपराध के पीड़ा देना धर्म का काम नहीं। मद्यपान का तो सर्वथा निषेध ही है। क्योंकि अब तक वाममार्गियों के बिना किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा, किन्तु सर्वत्र निषेध है। (पृ० १७९)

(१३) मद्य, मांसादि यथेष्ट खाते-पीते······ये पामर ऐसे कामों को मुक्ति के साधन मानते हैं। विद्या विचार सज्जनतादि रहित होते हैं। (पृष्ठ २२४)

(१४) क्या एक को प्राण कष्ट देकर दूसरों को आनन्द कराने से दयाहीन ईसाईयों का ईश्वर नहीं है? जो माता पिता एक लड़के को मरवा कर दूसरे को खिलावें तो महापापी नहीं हों? इसी प्रकार यह बात है, क्योंकि ईश्वर के लिए सब प्राणी पुत्रवत् हैं, ऐसा न होने से इनका ईश्वर कसाईवत् काम करता है। और सब मनुष्यों को हिंसक भी इसी ने बनाया है। (पृ० ३०४)

(१५) अब देखिये। सज्जन लोगो! जिनका ईश्वर बछड़े का मांस खाये, उसके उपासक गाय, बछड़े आदि पशुओं को क्यों छोड़ें? जिसको कुछ दया नहीं और मांस के खाने में आतुर रहे वह बिना हिंसक मनुष्य के ईश्वर कभी हो सकता है? (पृ० ३०६)

(१६) देखिये। पिता पुत्री भी जिस मद्यपान के नशे में कुकर्म से न बच सके, ऐसे दुष्ट मद को जो ईसाई आदि पीते हैं उनकी बुराई का क्या पारावार है? इसलिए सज्जन लोगों को मद्य के पीने का नाम भी न लेना चाहिये। (पृ० ३०६)

(१७) यह बात ईसाईयों की बाइबल में बड़ी अद्भुत है, कि बिना कष्ट किये पाप से पाप छूट जाय क्योंकि एक तो पाप किया और दूसरे जीवों की हिंसा की और खूब आनन्द से मांस खाया और पाप भी छूट गया, भला कपोत के बच्चे का गला मरोड़ने से वह बहुत देर तक तड़फता होगा, तब भी ईसाईयों को दया नहीं आती। दया क्योंकर आवे, इनके ईश्वर का उपदेश ही हिंसा करने का है। (पृ० ३१४)

(१८) भला कोई मनुष्य एक लड़के को मरवावे और दूसरे लड़के को उसका मांस खिलावे, ऐसा कभी हो सकता है? वैसे ही ईश्वर के सब मनुष्य और पशु, पक्षी आदि सब जीव पुत्रवत् हैं, परमेश्वर ऐसा काम कभी नहीं कर सकता। (पृ० ३१४)

(१९) मद्य मांसादि के सेवन से अलग रहें। (पृ० १९)

(२०) जो मादक और हिंसा-कारक द्रव्यों को छोड़ के भोजन करने हारे हों वे हविर्भुज। (पृ० ६१)

(२१) जब मांस का निषेध है तो सर्वदा ही निषेध है। (पृ० ७४)

(२२) अपने आत्मा और परमात्मा में स्थिर अपेक्षा रहित मद्यमांसादि वर्जित होकर आत्मा ही के सहाय से सुखार्थी होकर इस संसार में धर्म और विद्या के पढ़ाने में उपदेश के लिए सदा विचरता रहे। (पृ० ८०)

(२३) हाँ इतना कारण तो है, कि जो लोग मांस भक्षण और मद्य पान करते हैं, उनके शरीर और वीर्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं, इसलिए उनके संग करने से आर्यों को भी यह कुलक्षण न लग जायें, यह तो ठीक है। (पृ० १६५)

(२४) इनके मद्य पानादि दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण करें। (पृ० १६५)

(२५) हाँ इतना अवश्य चाहिये, कि मद्य मांस का ग्रहण कदापि भूलकर भी न करें। (पृ० १६५)

(२६) हाँ मुसलमान, ईसाई आदि मद्यमांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यों को भी मद्य मांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है। (पृ० १६६)

(२७) और जो मांस खाना है, वह भी उन्हीं वाममार्गी टीकाकारों की लीला है, इसलिए उनको राक्षस कहना उचित है, परन्तु वेदों में कहीं मांस का खाना नहीं लिखा। (पृ० १५९)

महर्षि दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश के अतिरिक्त संस्कार विधि और गोकरण-निधि में मांस भक्षण का निषेध किया है, लेख के लम्बा होने के भय से उनके पाठ नहीं लिखे गये हैं, यदि पाठक चाहें तो उस पुस्तकों को स्वयं पढ़ सकते हैं। गोकरुणानिधि अवश्य ही पढ़ें, क्योंकि वह अपने विषय का अनूठा ग्रन्थ है।

मनुस्मृति अध्याय ५ श्लोक ४३-५१ तक मांस निषेध परक है, उनका पाठ इस प्रकार है—

गृहे गिरावरण्ये वा निवसेन्नातम वान्द्विजः।
नावेदविहितां हिंसा-मापद्यपि समाचरेत् ॥ ४३ ॥
या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिश्चराचरे।
अहिंसामेव तां विद्याद् वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥ ४४ ॥
योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥ ४५ ॥
यो बन्धनवधक्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ ४६ ॥
यद्ध्यायति यत्कुरुते धृति बध्नाति यत्र च।
तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किञ्चन ॥ ४७ ॥
नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मां सं विवर्जयेत् ॥ ४८ ॥
समुत्पत्तिं तु मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्त्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥ ४९ ॥
न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाचवत्।
स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते ॥ ॥ ५० ॥
अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥ ५१ ॥

अर्थ—गृहस्थी, वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी संयम से रहने वाला वेदविरुद्ध हिंसा आपत्काल में भी न करे। ॥ ४३ ॥ संसार में जो वेदविहित हिंसा है उसको अहिंसा ही जाने। क्योंकि वेद से धर्म का ही प्रकाश होता है। ॥४४ ॥ जो अहिंसक प्राणियों को अपने सुख की इच्छा से मारता है वह इस लोक और परलोक में सुख नहीं पाता ॥ ४५ ॥ जो पुरुष प्राणियों को बाँध कर वा मारकर क्लेश देना नहीं चाहता, वह सबके सुख का इच्छुक अनन्त सुख को प्राप्त करता है ॥ ४६ ॥ वह जो कुछ सोचता है, करता है, और जिसमें निश्चय करता है, वह उसे सहज में प्राप्त हो जाता है क्योंकि वह किसीको मारता नहीं है ॥ ४७ ॥ प्राणियों की हिंसा किये बिना मांस उत्पन्न नहीं होता है, और प्राणियों का बध स्वर्गकारक नहीं है, अतः मांस छोड़ देना चाहिये ॥ ४८ ॥ मांस की उत्पत्ति प्राणियों के वध वा कष्ट से ही होती है, इसका ध्यान करके सब प्रकार के मांस भक्षण से निवृत हो ॥ ४९ ॥ जो विधि का त्याग करके पिशाचवत् मांस भक्षण नहीं करता, वह लोगों में प्यारा होता है और रोग से पीड़ित भी नहीं होता ॥ ५० ॥ सम्मतिदाता, अंग काटने वाला, मारने वाला, खरीदार, बेचने वाला, पकाने वाला परोसने वाला, खाने वाला, ये सब घातक हैं ॥ ५१ ॥

इन श्लोकों में मनुजी ने मांस भक्षण का सर्वथा निषेध किया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है—

सर्वान्कामानवाप्नोति हयमेधफलं तथा।
गृहेपि निवसन्विप्रो मुनिर्मांस विवर्जनात् ॥
आचाराध्याय प्रकरण। ७ श्लोक १८०

विद्वान् (विप्र) सर्वकामना यथा अश्वमेध के फल को प्राप्त होता है। जो गृहस्थी मांस नहीं खाता वह मुनि है।

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः।
मांसानि च न खादेद्यस्तयोःपुण्यफलं समम् ॥
मनु० ५—५३

जो सौ वर्ष पर्यन्त प्रति वर्ष अश्वमेध यज्ञ करता है और जो मांस नहीं खाता है, दोनों को समान फल मिलता है।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश में अनेक स्थानों पर मांस का निषेध करते हैं जिनमें से मैंने २७ स्थानों का पाठ उद्धृत किया है, उसके अतिरिक्त और स्थान भी हैं, और मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति के पाठ भी लिख दिये हैं! वेद में भी पशु मारने का निषेध है।

वेद तथा महाभारत की सम्मति

(३)

वैदिक धर्म के जितने सम्प्रदाय हैं वे सब मांस-मदिरा का निषेध करते हैं। केवल शाक्तिक वा वाममार्ग ऐसा है, जिसमें मांस-मदिरा सेवन की विधि है। यह भी सत्य है कि कई अन्य सम्प्रदायों में भी मांस-मदिरा खाने वाले मिल जाते हैं; परन्तु वह धर्मग्रन्थों के आधार पर नहीं, वरन् धर्मग्रन्थों की आज्ञा के विरुद्ध सेवन करते हैं और उनमें से अनेक अपनी इस अनाचारिता को स्वीकार भी करते हैं, परन्तु आत्मबल न होने से छोड़ने में असमर्थता प्रकट करते हैं। इससे पूर्व मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति, तथा सत्यार्थ प्रकाश के पाठ दिये जा चुके हैं।

अब वेद के प्रमाण इस विषय में दिये जाते हैं—

(१) मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। ऋग्वेद १, ११४, ८।

हमारी गायों और घोड़ों को मत मार।

(२) इमं मा हिंसीरेकशफं पशुम्। यजु० १३। ४८।

इस एक शफ वाले पशु को मत मार।

(३) इमं सहस्रं शतधारमुत्सं व्यच्यमानम् सरिरस्य मध्ये।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसीः परमेव्योमन्॥ यजु० १३।४८।

गौ जो दूध देती है जिससे घृत उत्पन्न होता है इस लोक में उसे मत मार।

(४) इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम्।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मां हिंसीः परमेव्योमन्॥

यजुर्वेद अ० १२ मन्त्र ४०

इन ऊन रूपी बालों वाले गाडर (भेड़), बकरी, ऊंट आदि चौपाये तथा पक्षी आदि दो पग वालों को मत मार।

(५) यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पुरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथानोऽसो अवीरहा॥ अथर्व० १। १६। ४।

यदि हमारी गौ, घोड़े, पुरुष को हनन करेगा तो सीसे की गोली से तुझे बेध देंगे। जिससे तू हनन कर्त्ता न रहे।

(६) मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च। अथर्व० ३। २८। ५।

पुरुषों तथा पशुओं को मत मार।

(७) यत्रविजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून् क्षिणाति रिफति रुशति।

अथर्व० ३। २८। १।

जहाँ (यमिनी) धर्मपरायण बुद्धि (अपर्तुः) विपरीत भावयुक्त हो जाती है, वही पशुओं को मारती तथा नाश करती है।

(८) व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्। एष वां भागो निहतोरत्नधेयाय दन्तौ माहिंसीष्टं पितरं मातरं च। अथर्व० ६। १४०। २।

ऊपर नीचे के दोनों दाँतों से चावल, यव, उड़द, तिल खाओ, उत्तमावस्था प्राप्त करने के लिए यह आपका भाग है। आप किसी प्राणी को जो माता-पिता होने योग्य है, उसे मत खाओ। इस मन्त्र में अण्डे खाने का भी निषेध है।

वेदों में मांस खाने का निषेध इस रूप से किया है। मांस बिना पशुहिंसा प्राप्त नहीं होता है। अश्व, गौ, अजा, अवि आदि का नाम लेकर पशु मात्र की हिंसा का निषेध हैं और द्विपाद शब्द से पक्षियों के मारने का भी निषेध है और पुरुषहिंसा-निषेध में सब ही सहमत हैं।

अब महाभारत के कुछ श्लोक लिखे जाते हैं—

१—अहिंसा परमोधर्मः सर्वप्राणभृतांवर। (आदि पर्व अध्याय ११। १३)

२—प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान्मतो मम।
अनृतंवा वदेद्वाचं न तु हिंस्यात्कथंचन॥
(कर्ण पर्व अध्याय ६९ श्लोक २३)

३—जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत्कथं सोऽम्यं प्रघातयेत्।
यद्यदात्मनि चेच्छेत् तत्परस्यापिचिन्तयेत्॥
(शान्ति पर्व। २५९। २२)

४—घातकः खादकोवापि तथा यश्चानुमन्यते।
यावन्ति तस्य रोमाणि तावद्वर्षाणि मज्जति॥
(अनुशासन। ६४। ४)

५—धर्मशीलो नरो विद्वानीहकोऽनीहकोऽपिवा।
आत्मभूतः सदा लोके चरद्भूतान्यहिंसया॥
(शान्ति पर्व। २६५। ३०)

६—सुरां मत्स्यान्मधु मांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्ये तन्नैतद्वेदेषु कल्पितम्॥ (शान्ति पर्व। २६५। ९)

भावार्थ—किसी भी प्राणी को न मारना ही परम धर्म है। १।

मैं प्राणियों का न मारना ही सबसे उत्तम मानता हूँ। झूठ चाहे बोल दे पर किसी की हिंसा न करे। २।

जो स्वयं जीने की इच्छा करता है वह दूसरों को कैसे मारता है? प्राणी जैसा अपने लिए चाहता है वैसा ही दूसरों के लिए भी चाहे। ३।

मारने वाला, खाने वाला, सम्मति देने वाला यह सब उतने वर्ष तक दुःख में डूबे रहते हैं जितने कि पशु के रोम होते हैं। ४।

धर्मपरायण पुरुष इस लोक को चाहता हो वा न चाहता हो सबको समान समझकर किसी की हिंसा न करता हुआ संसार यात्रा करे। ५।

सुरा, मछली, मद्य, मांस, आसव कृसर आदि खाना धूर्तों ने प्रचलित किया है, वेद में इन पदार्थों के खाने पीने का विधान नहीं है। ६।

महाभारत में और भी अनेक स्थल हैं, जहाँ अहिंसा का प्रतिपादन है। जिसे विशेष जानना हो वह महाभारत में ही देखने की कृपा करे। इन श्लोकों में हिंसा का तथा सुरा पान का निषेध लिखा है।

सन्तों की सम्मति

४

इस विषय में सन्तों के वचन देखिये—

(क) कबीर जी

कबीर जी सन्त मत में मुख्य माने जाते हैं, कबीर बीजक पुस्तक उनका रचा कहा जाता है। उस बीजक में इस विषय में ऐसा लेख है—

(१) काजी काज करहु तुम कैसा। घर घर जवह करावहु भैंसा॥
बकरी मुरगी किन फरमाया। किसके हुकम तैं छुरी चलाया॥
दर्द न जानै पीर कहावे। बैतां पढ़ पढ़ जग समुभावै॥
कहहि कबीर सयाद कहावे। आप सरीखे जग कबुलावैं॥

रमैणी ४९

साखी दोहा

दिन को रोजा रहत हो, रात हनत हौ गाय।
यह तो खून वह बंदगी, क्यों कर खुशी खुदाय॥

(३) तुरुक रोजा नमाज गुज़ारे, बिसमिल बांग पुकारै।
इनको बिहिस्त कैसक होइ है, सांभैं मुरगी मारै॥
हिन्दू के दया मेहर तुरुकन की, दूनो घर सो त्यागी।
वे हलाल वे भटका मारै, आग दूनो घर लागी॥

(३) भूला रे अहमक नादाना, तुम हरदम रामहिं न जाना।
बरबस आपजु गाय पछरिन, गला काट जिव आप लिया॥
जियत जीव भुरदार करत हौ, ताको कहत हलाल किया।
जाहि मांस को पाक कहत हौ, ताकी उत्पत्ति सुन भाई॥
रज वीरज से मांस उपानी, मांस नपाकी तुम खाई।
अपनी देख कहत नहीं अहमक, कहत हमारे बढ़न किया॥
उसकी खून तुम्हारी गरदन, जिन तुमको उपदेश दिया।
गयी स्याही आई सफैदी, दिल सफैद अजहूँ न हुआ॥
रोजा निमाज बेंग न कीजै, हुजरे भीतर बैठ मुआ।
पण्डित वेद पुराण पढ़त है, मौला पढ़ै कोराना॥
कहहि कबीर दोउ नरक परे, जिन हरदम राम न जाना॥

शब्द २४

(४) पंडित अचरज एक बड़ होई।
एक मर मुये अन्न नहीं खाई, एक मर सिभै रसोई॥
करि स्नान देवन की पूजा, नवगुण काध जनेऊ।

हांडी हाड हाड थारी मुख, भल षट कर्म वनेऊ ।।
धर्म कथै जहि जीव वधै तहि, अधर्म करु मेरे भाई ।
जे तुमरे को ब्राह्मण कहिये, वाको कहिये कसाई ।।
कहहि कबीर सुनो हो सन्तो, भरम भूल दुनियाई ।
अपरमपार पार पुरुषोत्तम, या गति बिरले पाई ।।

शब्द ५४

(५) जस मांस नल की, तस मांस पशु की ।
रुधिर रुधिर एक साराजी ।
पशु के मांस भक्षै सब कोई, नलहिं भक्षै सियारा जी ।।
ब्रह्म कुलाल मैदिनी भैया, उपज विनशि कित गइया जी ।
मांस मछरिया जो कोई खइहौ, ज्यों खेतन में बोइया जी ।।
माटी को करि देवा देवी, जीव काटि कै देइया जी ।
जो तेरा है सांचा देवा, खेत चरन किन लैइया जी ।।
कहहि कबीर सुनहु हो सन्तो, राम नाम नित लेइया जी ।
जो कुछ कियो जिहवा के स्वारथ, बदल पराया देइया जी ।।

शब्द ५५

(६) सन्तो पांडे निपुण कसाई ।
बकरा मारि भैंसा पर धावै, दिल मँहि दर्द न आई ।।
करि स्नान तिलक देइ बैठे, विधि से देव पुजाई ।
आतम राम पलक महि विनशे, रुधिरक नदी बहाई ।।
अति पुनीत ऊँचे कुल कहिये, सभा माँहि अधिकाई ।
इनते दीक्षा सब कोई माँगे, हँसि आवे मुहि भाई ।।
पाप करन कहि कथा सुनावहि, कर्म करावहि नीचे ।
हम तो दोऊ परस्पर देखा, यम लाये हैं खींचे ।।
गाग बधे तिह तुरुक कहिये, इनते क्या वे छोटे ।
कहहि कबीर सुनो हो सन्तो, कलि मँहि ब्राह्मण छोटे ।।

शब्द ५६

(८) तिह नर पापी शठ पहिचानो ।
करत घात जे मांस स्वाद हित, न जानत दर्द बिरानो ।।

शब्द प्रकरण के अन्त में दोहा शब्द ५

(९) जिव जनि मारहु वापुरा, सबका एकै प्राण ।
तीरथ गये न बांचि हौं, कोटि हीरा दे दान ।।
जिव जनि मारहु वापुरा, बहुत लेत वै कान ।
हत्या कबहुँ न छूटि है, कोटिन सुनहु पुरान ।।
(साखी २१४, २१५)

बीजक में इन वाक्यों के अतिरिक्त और भी वाक्य मांसनिषेध परक हैं। विस्तार भय से उनको उद्धृत नहीं किया गया।

(ख) गुरु ग्रन्थसाहब

सिखों के धर्मग्रन्थों में माँस मदिरा के विषय में निम्न पाठ निषेध परक मिलते हैं :

(१) जिऊँ कूकर हरकाया धावै दहदिस जाय।
लोभी जंत न जाणाई भख अभख सब खाय॥
(श्री राग महिला ५, ६१)

(२) अठसठ तीरथ सगण पुन जोव दया परवान।
(बारा माह माझ म० ५, १२)

(३) जे रतु लगे कपड़े जामा होई पलीत।
जे रत्त पौवहिं माणासा तिन किउ निरमल चीत॥
(माझ की वार महला १, १, ६)

(४) मन सन्तोष सख जीव दया। इन विध वरत सम्पूर्ण भया॥
(गउडी थिति म० ५, ११, १२)

(५) दुःख न देई किसे जीव पति सिउं घर जावउ। (गउडी वार म० ५, १७)

(६) माणस खाणहि करहि निवाज। छरा लगाइन तिन गल ताग।
(आसादी वार म० १, २, १६)

(७) वगा वगे कपड़े तीरथ मंझि वसन्त।
घुटि घुटि जीव खावणो वगेन कही अन॥
(राग सूही म० १, १, ३)

(८) कुकर्म करे गाडर जिउ छेल। अचित जाल काल चक्र पेल॥
(रामकली महला ५, ५२)

(९) जीव वधहु सुधर्म कर थापहु अधर्म कहहु कत भाई।
आपस कउ मुनि कर थापहु काकड कहहु कसाई॥
(राग मारू कबीर जी १)

(१०) हिंसा तउ मनते नहीं छूटी जीभ दया नहीं पाली।
(राग सारङ्ग परमानन्द)

(११) वेद कतेव कहउ मत झूठा झूठा जो न विजारे।
जो सभमहिं एक खुदाय कहतहउ तउ क्यों मुरगी मारे॥
पकर जीभ अनिया देह निवासी माटी कउ विसमिल किया।
जोति स्वरूप अनाहत लागी कहहु हलाल क्या कीया।२।
(प्रभाति कबीर जी ४)

(१२) कबीरा राती होवहिं कारियाँ कारे उभे जन्तु।
लै फाहे उठ धांवदे सिजाण मारे भखवन्त।१०।

(१३) कबीरा जोरी किये जुलम है कहता नाउं हलाल ।
दफतर लेखा मंगिये होय न कोउ खयाल ।१८।

(१४) कबीर जीग्र जु मारहिं जोर कर कहते हौं हलाल ।
दफतर दयी जब काढ हे होयगा कउण हवाल ।१९९।

(१५) कबीर जोर किया सु जुलम है ग्रगेलेग्र जवाव ।
दफतर लेखा नीकसे मार मुंहै मूंहि खाय ।।

(१६) पूजा तिलक करत हस नाना । छुरी काढ लेवे हथ दाना ।२।
वेद पढ़ें मुख मीठी वाणी । जीग्र कुहत न संगे पराणी ।३।
(गउडी महला ५ । १७६)

(१७) रोजा धरे मनावै ग्रलहु सुग्रादात जीभ संघारै ।
ग्रापा देख ग्रवर नहीं देखे काहे कउ झख मारै ।। (ग्रासा कबीर जी २९)

(१८) एकादसी इक रिदै वसावै । हिंसा ममता मोह चुकावै ।
(राग विरावलथिति महला १३)

(१९) मजन तेग वर खूने कसे वे दरेग ।
तुरा नीज खूनास्त बा चरख तेग ।
(जफ़रनाभा, गुरु गोबिन्द सिंह जी)

भाव—किसी की गरदन पर निसंकोच (वेदरेग) होकर खड़्ग न चला, नहीं तो तेरी गरदन भी ग्रासमानी (ग्ररशी) तेग से काटी जायगी ।

(२०) सींह पजूही बकरी मरदी होई खिड़-खिड़ हासी ।
सींह पुछे विसमाद होइ इह ग्रौसर कित माहि रहसी ।।
विनउ करेंगी बकरी पुत्र ग्रसाडे कोचन खस्सी ।
ग्रक धतूरा खांदिया कुह कुह खल विणस्सी ।।
मास खाण गल वढके हाल तिनाड़ा कौन हो वस्सी ।।
गरव गरीबी देह खेद खाज ग्रकाज करस्सी ।
जग ग्रापा सभ कोई मरसी ।।
(भाई गुरुदास दीयां वारां वाट २५, १७)

(२१) कहे कसाई बकरी लाय लूण सीख मांस परोया ।
हस हस वोले कुहीदी खाधे ग्रक हाल यह होया ।
मांस खाण गल चुरीदे हाल तिनाड़ा कौण ग्रलोग्रा ।
जीभे हन्दा फेड़ीयै । खड दंदा मुख भल वगोया ।
(वार ३७, २१)

यह शब्द मांस निषेध के हैं ग्रब मदिरा के सम्बन्ध में देखिये—

(२२) दुरमति मद जो पीवते विखरी पति कमली ।
राम रसायण जोरते नानक सच ग्रमली ।
(राम ग्रासा महला ५ । ११४)

(२३) माणस भरिया आणिया माणस भरिया आय ।
जिन पीते मति दूर होय वरल पवे विच्च आय ।
आपणा पराया न पछाणाई खसमहुधके खाय ।
जिते पीते खसम वीसरे दरगह मिल सजाय ।
झूठा मद भूल न पीवई जेका पार बसाय ।
नानक नदरी सचमद पाइये सतगुरु मिले जिस आप ।।
सदा साहिब के रंग रहै महली पावे थाप ।
(विलाविल की वार श्लोक महला ३, १, १६)

(२४) कवीर भांग मछली सुरापान जो प्राणी खांहि ।
तीरथ वरत नेम किये ते सभै रसातल जांहि ।
(२३२ श्लोक कवीरजी)

मांस मदिरा के सम्बन्ध में यह चौबीस पाठ लिखे हैं । इसके अतिरिक्त और भी हैं, जिनको देखने की रुचि हो वह इन ग्रन्थों के पाठ करने का कष्ट करे । इस प्रकार से सिखों के धर्मग्रन्थ मांस मदिरा का निषेध करते हैं । इसलिये सिखों को अपने धर्मग्रन्थों की आज्ञा मानकर मांस मदिरा से पृथक् रहना चाहिये, जैसा कि उनमें नामधारी आदि रहते हैं । इन शब्दों में चौबीसवें पाठ में भांग का भी निषेध किया है अतः उससे भी बचना चाहिये ।

(ग) श्री गरीबदास

श्री गरीबदासजी के नाम से एक ग्रन्थ छपा है, जिसका नाम 'ग्रन्थ साहिब' है । श्री गरीबदास जी का निवास स्थान ग्राम छुडाणी जिला रोहतक था, उस ग्रन्थ में से कुछ पाठ मांस, मदिरा विषयक पाठकों की भेंट किए जाते हैं—

(१) गरीब भंगी भडुये भूत हैं, ककड़ उड़त खलील ।
मदिरा भखते भारती, एते नाम न शील ।। २४ ।।
गरीब हुक्का हर दम पीवही, लाल मिलावे धूर ।
इसमें शंसा है नहीं, जन्म पिछले सूर ।। २४ ।।
गरीब मांस भखै विलाय ज्यूँ, बूझे बहिशत बैकुण्ठ ।
साती कंवलौं धूम घोट, चौकी बैठा कण्ठ ।। २५ ।।

(भेसका अङ्ग)

(२) गऊ हमारी मात है, पीवत जिसका दूध ।
गरीबदास का जी कुटिल, कतल किया औजूद ।।
गऊ हमारी अमा है, ता पर छुरी न वाहि ।
गरीबदास घी दूध कूँ, सब ही आतम खाहि ।।
ऐसा खाना खाइये, माता के नहिं पीर ।
गरीबदास दरगह सरैं, गल में पड़े जंजीर ।।
(पारख का अङ्ग ५२ । ५७०-५७२)

(३) सुरापान मद्य मांसाहारी, गमन करें भोगें पर नारी।
सत्तर जन्म कटत है शीशम्, साक्षी साहब है जगदीशम् ।।
मदिरा पीव कड़वा पानी, सत्तर जन्म स्वान के जानी।
झोटे बकरे मुरगे ताईं, लेखा सब ही लेन गुसाईं ।।
मृग मोर मारे महमन्ता, ग्रनाचर है जीव ग्रनन्ता।
तीव्र लवा बुटेरी चिड़ियाँ, खूनी मारे बड़े ग्रग्रंगड़ियाँ ।।
ग्रदले बदले लेखखे लेना, समझ देख सुन ज्ञान विवेका।
(ग्रादि पुराण १४, २२०)

(४) हक्क हक्क करत हैं हुक्का, तीसों रोजे साबित रक्खा।
सांझ परी जब मुरगी मारी, उस दरगह में होगी ख्वारी ।।
(बहदे का ग्रन्थ ३१। १०७)

(५) लुवा वुटेर तीतर हितें हेरिके, खा गये भून कर मुरग चिड़ियाँ।
पकड़ हिलवान ततवीर तिके किए, ग्रजों नर भिसत के भरम पडिया।
(रेखते २०, ११।)

(६) काफर कुफर करें बद फैला, इन खाने से है मन मैला ।। ४ ।।
मुरगी बकरी चिड़ी बुठेरी, सूर गउ में एकैं सेरी ।। ५ ।।
जाके रुमरुम में देव ग्रसथाना, दूध दही ग्रौर घृत समाना ।। ६ ।।
जामें ऐसे रतन रसायन भाई,सो विसमल कहु किस फुरमाई ।।७।।
कंठ करे नहों साहिब राजी, मुरगी बकरी मारे काजी ।। ८ ।।
काजी मुल्ला ग्रजब दीवाना, मुरद फरोश हलाहल खाना ।। ९ ।।
गोसत खाँहि करे कुफराना,जिन दरगह का महल न जाना।।१८।।
झोटे बैल हिते बहु भाई, सूर गऊ रख रूह सताई ।। ४२ ।।
लवा वुटेरी तीतर भून्यां, खालक बिना कौन घर सूना ।। ४३ ।।
मच्छी चिड़ी बहुत-सी मारी, रव की रुह करी तरकारी ।। ४४ ।।
जंगली जीव हते खरगोसा, यौह सब महमदके सिरदोषा ।। ४५ ।।
ग्रजा भेड़ काटे हिलवाना, एक रहिया ग्रब मानुख खाना ।। ४६ ।।
रव की रुह करी ततवीरा, वहुर कहावें हजरत पीरा ।। ४९ ।।
(नसीहतनामा ४८)

(७) पारि पडा फोरि ग्रण्डा नहीं खाना खूब वे।
गरीबदास त्रास जी की देखता महबूबवे ।।
(पारसी बैत ४९। ७।१४)

(८) गदह श्वान कऊवा करम के कुलीन।
पीवें तमाखू सो जम के ग्रधीन ।। ९ ।।
सुरापान भंगी मटी मांस खांहि।
ककड चडस पीइ जमलोक जांहि ।। २१ ।।

तूँलगार है लगडा अरु भूठा लबार ।
अमली के मुख में है मूत्र की धार ।। ४१ ।।
सुनरे शराबी खराबी जहान ।
धगड़ धूँस दुनिया सडूवी निदान ।। ५१ ।।
हुक्का हरामी गुलामी गुलाम ।
धनी के सेर में न पहुँचे अलाम ।। ५२ ।।
(ताराखू की बैत ५०)

इस ग्रन्थ साहिब में गरीबदास जी ने रोहतकी भाषा में मांस, मदिरा, तमाखू का सीधा-सीधा खण्डन किया है । मांस भक्षकों को, मद्यपों को तथा तमाखू पीने वालों को बुरा भला भी कहा है, उसमें से कुछ पाठ लिख दिये हैं किन्तु उस ग्रन्थ में अनेक पाठ इसी विषय के और भी हैं । लेख लम्बा न हो जाय इस कारण उनको छोड़ दिया है। वेद स्मृति, सत्यार्थ प्रकाश, कबीर बीजक, श्री गुरुग्रन्थ साहिब (आदि) श्री नानकदेव जी, श्री गरीबदास जी कृत, ग्रन्थ साहिब इन ग्रन्थों के पाठ मांस, मदिरा के विषय में लिखे हैं, तमाखू के विषय में केवल गरीबदास जी ने ही खुला लिखा है। क्योंकि स्मृतियों के समय में तमाखू भारत में था ही नहीं । गरीबदास जी ने अण्डे का उल्लेख भी किया है ।

इस प्रकार वेद, स्मृति, आर्य-समाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द जी तथा सन्त मत के कबीर जी, गुरु नानकदेव जी आदि सिख गुरु, श्री गरीबदास आदि ने एक स्वर से इनका निषेध किया है। इस कारण किसी भी धर्मप्रेमी मनुष्य को मांस, मदिरा आदि का सेवन नहीं करना चाहिए । सभी धर्म प्रेमी सज्जनों को चाहिए कि इन व्यसनों से अन्य मनुष्यों को बचाने का यत्न कर देशहित में प्रवृत्त करें ।



गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्टि्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसी !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहवली लेखावली	७.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.००
तत्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	७.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	२.५०
मानव जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	५.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.५०
The only way	३.००
Anand Gayatri Discoarses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्रीमहात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती	८.००
" " उर्दू	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिव संकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेद सौरभ	४.००
वेद सौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू औषधियाँ	३.००
वैदिक विवाह पद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
चतुर्वेदशतक	८.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा अजिल्द	२०.००
" सजिल्द	३०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

वैद्य गुरुदत्त

विश्वदेवा	६.००
अद्वैत मीमांसा	६.००

पं० रामचन्द्र देहलवी
देहलवी लेखावली ७.००
पण्डित बिहारीलाल शास्त्री
विचार वाटिका ३.००
प्रो० विष्णुदयाल
वेद भगवान् बोले ४.००
स्वामी सर्वदानन्द
आनन्द उपदेशमाला १.५०
प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
ब्रह्मचर्य सन्देश ७.००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार २०.००
दयानन्दप्रकाश **स्वामी सत्यानन्द** १५.००
पं० भगवद्दत्त
भारतीय संस्कृति का इतिहास ७.००
डॉ० प्रशान्त कुमार वेदालंकार
महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था ८.००
स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती
आर्य समाज का परिचय १.५०
संकलन
महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००
महर्षि दयानन्द की देन ४.००
सत्यार्थ प्रकाश **स्वामी दयानन्द** २५.००
संस्कार विधि ,, ४.००
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ,, ८.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ,, ०.१५
आर्याभिविनय ,, १.००
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण ,, ०.३७
आर्योद्देश्य रत्न माला ,, ०.२५
बालशिक्षक ,, ०.३७
व्यवहार भानु ,, १.००
सन्ध्या विनय **नित्यानन्द वेदालंकार** १.५०
पूर्व और पश्चिम ,, ७.५०
जीवन की राहें ,, ४.००
सु-राज्य की रूपरेखा ,, ०.५०
प्राणायाम विधि **नारायण स्वामी** ०.६०
आर्यसमाज क्या है ? ,, १.००
पं० नरेन्द्र
हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि
बृहदारण्यक कथामाला ३.००
भारत में मूर्तिपूजा **पं० राजेन्द्र** ४.००
स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द** ४.००
पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड
गोरक्षा परम कर्त्तव्य ०.५०
पं० उदयवीर शास्त्री
सांख्यदर्शन का इतिहास ४०.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास ३०.००
सांख्य सिद्धान्त २४.००
सांख्य दर्शन १६.००
वेदान्त दर्शन ३०.००
वैशेषिक दर्शन २५.५०
पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति
महर्षि दयानन्द ४.००
श्री रामशरण वशिष्ठ
पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००
स्वामी मंगलानन्द पुरी
श्री मद्भगवद्गीता १.५०
पं० राजनाथ पाण्डेय
वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त) १.००
कथा पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द** २.५०

बालोपयोगी
त्रिलोकचन्द विशारद
महर्षि दयानन्द १.५०
स्वामी श्रद्धानन्द १.००
गुरु विरजानन्द १.००
पं० लेखराम १.००
पं० गुरुदत्त १.००
स्वामी दर्शनानन्द १.००
पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०
वैदिक धर्मशिक्षा प्रथम भाग ०.६०
वैदिक धर्मशिक्षा द्वितीय भाग ०.६०
वैदिक धर्मशिक्षा तृतीय भाग १.००
वैदिक धर्मशिक्षा चतुर्थ भाग १.००
वैदिक धर्मशिक्षा पंचम भाग १.००
वैदिक धर्मशिक्षा षष्ठ भाग १.००
वैदिक धर्मशिक्षा सप्तम भाग १.२५
वैदिक धर्मशिक्षा अष्टम भाग १.२५

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।

वेदप्रकाश

आर्य समाज के शीर्षनेता व उद्भट वक्ता
श्री प्रकाशवीर शास्त्री का निधन

60

रिवाड़ी के समीप हुई रेल-दुर्घटना के शिकार हुए व्यक्तियों में राज्य सभा सदस्य श्री प्रकाशवीर शास्त्री भी थे।

३० दिसम्बर १९२३ को मुरादाबाद जिले के रेहरा नामक गाँव के श्री दलीपसिंह के घर जो पुत्र पैदा हुआ था वही आगे चलकर अग्रगण्य सांसद आर्य समाज के शीर्षस्थ नेता, हिन्दी के अनन्य समर्थक और उद्भट वक्ता—श्री प्रकाशवीर शास्त्री के नाम से प्रख्यात हुआ।

श्री शास्त्री ने संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, आगरा विश्वविद्यालय और गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर से विद्याभास्कर शास्त्री और एम. ए. आदि की उपाधियाँ प्राप्त कीं। वह भारतीय क्रान्ति दल के महासचिव, आर्य प्रतिनिधि सभा (उत्तर प्रदेश) के अध्यक्ष और गुरुकुल, वृन्दावन के कुलपति भी रह चुके थे।

हैदराबाद में निजाम के विरुद्ध चलाये गये आर्य समाज आन्दोलन में भाग लिया था। पंजाब में चलाए गये हिन्दी रक्षा आन्दोलन में भी शास्त्रीजी ने अग्रणी भूमिका अदा की थी।

शास्त्रीजी तीन बार लोकसभा के लिए निर्वाचित हुए थे। सबसे पहले वह मौलाना अबुल कलाम आजाद के मरणोपरान्त गुड़गाँव संसदीय क्षेत्र में हुए उप-चुनाव में विजयी होकर लोकसभा में पहुँचे थे। उसके बाद १९६२ और १९६७ में वह क्रमश: बिजनौर और गाजियाबाद से निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में विजयी हुए थे। १९७४ में वह जनसंघ के प्रत्याशी के रूप में राज्य सभा के लिए निर्वाचित हुए। गत मार्च में हुए आम चुनावों से पहले वह कांग्रेस में शामिल हो गये थे।

शास्त्रीजी ने अनेक पुस्तकें भी लिखीं जिनमें 'धधकता कश्मीर' 'मेरे सपनों का भारत', 'कश्मीर की वेदी पर', 'गोरक्षा' और 'विदेशी मिशनरियों की राष्ट्रविरोधी गतिविधियाँ' विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अलावा, उन्होंने नारी-शिक्षा के लिए अनेक शिक्षा-संस्थानों की स्थापना भी की।

वेद प्रकाश की श्रद्धांजलि अर्पित है।

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

[नवभारत टाइम्स १३ अप्रैल, १६७७ बुधवार]

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५.००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र और सूक्त अन्वयार्थ और सरल स्पष्ट भाषा में व्याख्या सहित मननशील स्वाध्याय प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवास युक्त ये पुष्प गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

वैदिक सम्पदा [पं० वीरसेन वेदश्रमी]

'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है' तथा 'वेद में आधुनिक सभी समस्याओं का समाधान है' की व्याख्या में लिखा गया यह विशद ग्रन्थ वेद के सभी विद्वानों द्वारा सराहा गया है।

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड लिखते हैं—वैदिक समाजशास्त्र, वैदिक समाजवाद में पारिवारिक आदर्श, गृहस्थ-निर्माण, आदर्शवाद, सामाजिक समस्याएँ, वेद में यातायात, वेद में चिकित्सा विज्ञान, वैदिक अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, विज्ञान, रेखागणित, शासन (राजनीति), शिक्षा विज्ञान, वेदों में भाषा विज्ञान, ऋतु विज्ञान, भूतत्त्व विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अग्नि विज्ञान, विमान विज्ञान, जल विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, धर्म ; इस प्रकार विभाजन करते हुए वेदों के आधार पर इन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

मूल्य २०.००; राज संस्करण ३०.००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

।। ओ३म् ।।

वेद प्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष : २७ अंक ५] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [दिसम्बर, १९७७

सम्पादक : **विजयकुमार** आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

सामवेद सूक्ति-सुधा

(स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती)

१. अग्न आ याहि वीतये । सा० १

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! हमारे हृदयान्धकार को दूर करने के लिए, हमारे पापों और दुरितों को दग्ध करने के लिए हमारे हृदय-मन्दिरों में आइए, प्रकट हूजिए।

२. नि होता सत्सि बर्हिषि । सा० १

हे महान् उपदेशक प्रभो ! आप जीवन-यज्ञों के संचालक और सम्पादक हैं, आप हमारे शुद्ध, पवित्र, वासना-शून्य निर्मल हृदय-मन्दिरों में निरन्तर विराजिये।

३. त्वमग्ने यज्ञानां होता । सा० २

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! सर्वाग्रणी ! आप श्रेष्ठतम विचारों और कर्मों, यज्ञीय विचारों और व्यवहारों के ज्ञानदाता हैं। आपकी कृपा और करुणा से ही यज्ञों का सम्पादन होता है।

४. अग्निं दूतं वृणीमहे । सा० ३

हम राग-द्वेष और मिथ्या-ज्ञान के मल को भस्मीभूत करनेवाले ज्ञानस्वरूप, मोक्ष-प्रदाता श्रेयमार्ग-प्रापक परमेश्वर का वरण करते हैं।

५. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् । सा० ४

ज्ञानस्वरूप परमात्मा उपासक के आत्मा पर घेरा डालनेवाले काम-क्रोध आदि वृत्रों को नष्ट करता है।

६. पाहि विश्वस्या अरातेः । सा० ६

प्रभो ! आप हमारी सब प्रकार की अदान भावनाओं से रक्षा कीजिए।

७. अग्ने त्वां कामये गिरा। सा० ८

हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! मैं स्तुति-प्रार्थना द्वारा केवल आपको चाहता हूँ, आपके दर्शन की कामना करता हूँ।

८. अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यम्। सा० १०

हे ज्ञान प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप हम उपासकों के लिए अपने सूर्य के समान ज्योतिर्मय स्वरूप को प्रकट कीजिए।

९. देवो ह्यसि। सा० १०

प्रभो ! सचमुच आप देव हैं। आप सब कुछ देनेवाले हैं। आप स्वयं ज्योतिर्मय हैं और अपने भक्तों को ज्ञान-ज्योति प्रदान करते हैं।

१०. ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः। सा० ११

हे आनन्दप्रद प्रभो ! योगिजन ओज की प्राप्ति के लिए आपकी स्तुति करते हैं।

११. अमैरमित्रमर्दय। सा० ११

प्रभो ! आप अपने ज्ञान, बल और स्वाभाविकी क्रिया द्वारा हमारे काम-क्रोध आदि शत्रुओं को नष्ट कीजिए।

१२. यजिष्ठमृञ्जसे गिरा। सा० १२

मैं मोक्ष-प्रदाता परमात्मा को स्तुति-प्रार्थना की वाणियों द्वारा आराधित करता हूँ, उसका गुणगान करता हूँ।

१३. नमो भरन्त एमसि। सा० १४

प्रभो ! नमस्कार, श्रद्धा और प्रेम की भेंट लेकर हम आपकी ओर, आपकी शरण में आते हैं।

१४. अग्ने मृड महाँ असि। सा० २३

हे प्रकाशस्वरूप ! सर्वोन्नति साधक प्रभो ! आप महान हैं, सर्वव्यापक और आनन्दमय हैं, हमें सुखी कीजिए।

१५. अग्ने रक्षा णो अँहसः। सा० २४

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! हमें पाप से बचाइए।

१६. तपिष्ठैरजरो दह। सा० २४

हे मानव ! देव बनने के लिए तू तपस्वी जीवन से युक्त होकर जरा-जीर्ण न होता हुआ काम-क्रोध आदि शत्रुओं को भस्म कर डाल।

१७. पावक श्रुधि हवम्। सा० २९

हे पवित्र करनेवाले प्रभो ! आप उपासक की पुकार को सुनिए।

१८. दधद्रत्नानि दाशुषे। सा० ३०

परमेश्वर आत्म समर्पक के लिए उत्तमोत्तम रत्न, पदार्थ और मोक्ष को प्राप्त कराते हैं।

१९. कविमग्निमुप स्तुहि। सा० ३२

हे मानव ! तू क्रान्तदर्शी, प्रकाश स्वरूप परमेश्वर की उपासना कर।

२० शं नो देवीरभिष्टये । सा० ३३

सर्वप्रकाशक और आनन्दप्रद परमात्मा हमें शक्ति प्रदान करे जिससे हमें इहलौकिक मनोवांछित अभीष्ट फल प्राप्त हों ।

२१. धियो जिन्वसि सत्पते । सा० ३४

हे सज्जनों के रक्षक प्रभो ! आप मनुष्यों की बुद्धि और कर्मों को तृप्त एवं प्रेरित करते हैं ।

२२. पाहि नो अग्न एकया । सा० ३६

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! आप ऋग्वेदरूपी प्रथम वेदवाणी के द्वारा हमारी रक्षा कीजिए ।

२३. वसो राधाँसि चोदय । सा० ४१

हे मेरे जीवन-धन ! सब में बसनेवाले और सबको बसानेवाले प्रभो ! आप हमें भौतिक और आध्यात्मिक धन प्राप्त कराइए ।

२४. त्वमित् सप्रथा अस्यग्ने । सा० ४२

हे अग्ने ! सत्पथ पर ले चलनेवाले प्रभो ! आप ही इस विशाल ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं ।

२५. अतन्द्रो हव्यं वहति । सा० ४६

आलस्य रहित मनुष्य देने योग्य पदार्थों को प्राप्त करता है ।

२६. अदर्शि गातुवित्तमो । सा० ४७

देवमार्ग पर चलनेवाला उपासक=साधक प्रभु का दर्शन करता है ।

२७. अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः । सा० ४९

हे उपासक! तू आत्मरक्षा के लिए प्रकाशस्वरूप प्रभु की स्तुति किया कर।

२८. नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः । सा० ४९

हे उपासक नर-नारियो ! हे मुमुक्षुओ ! वह जीवन-ज्योति प्रभु दान देनेवालों के लिए, आत्म समर्पण करनेवालों के लिए शरण बन जाता है ।

२९. श्रुधि श्रुत्कर्ण । सा० ५०

हे टेर सुननेवाले प्रभो ! मेरी पुकार सुन ।

३० आ सीदतु बर्हिषि मित्रो । सा० ५०

स्नेहार्द्र, करुणा-सागर परमात्मा मेरे हृदय-मन्दिर में आकर विराजमान हों।

३१. अया वर्धस्व तन्वा गिरा मम । सा० ५२

हे उपासक ! तू वेदवाणी के द्वारा इस मानव-शरीर से वृद्धि को प्राप्त हो । तू आगे बढ़ और मोक्ष प्राप्त कर ।

३२. आ जाता सुक्रतो पृण । सा० ५२

हे शुभ-संकल्पों वाले जीव ! उच्च मानव योनि में उत्पन्न आत्मन् ! तू स्वयं सुखी बन और अन्य प्राणियों का पालन-पोषण कर ।

३३. न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्त्तनम् । सा० ५३

प्रभो ! अब आपका बिछोड़ा सहा नहीं जाता ।

३४. देवो वो द्रविणोदाः । सा० ५५

हे उपासको ! वह दिव्य देव तुम्हें आध्यात्मिक धन और बल का देनेवाला है ।

३५. उद्वा सिंचध्वमुप वा पृणध्वम् । सा० ५५

हे मनुष्यो ! अपने हृदयों को दया की भावना से इतना सींचो कि उनसे दया का प्रवाह बहने लगे फलस्वरूप तुम दुःखियों के समीप पहुँचकर उनके जीवनों को सुखी बनाओ ।

३६. प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः । सा० ५६

वेदों का पति, परमगुरु सर्वज्ञ प्रभु हमें प्रकर्षेण प्राप्त हो ।

३७. प्र देव्येतु सूनृता । सा० ५६

ज्ञान-प्रकाश प्रदान करनेवाली प्रिय और सत्य वेदवाणी तथा मधुर एवं सुसत्य वाणी हमें प्राप्त हो ।

३८. देवा यज्ञं नयन्तु नः । सा० ५६

विद्वान् गण हमें यज्ञीय जीवन, शुभ-आचार, सुविचार और उत्तम व्यवहार वाला जीवन प्राप्त कराएँ ।

३९. त्वमग्ने गृहपतिः । सा० ६१

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! आप हमारे शरीरों और विश्वब्रह्माण्ड के पालक तथा रक्षक हैं ।

४०. त्वं पोता विश्ववार प्रचेता । सा० ६१

हे सब क्लेशों का निवारण करनेवाले ! सबके द्वारा वरणीय प्रभो ! आप सबको पवित्र करनेवाले और प्रकृष्ट ज्ञानी हैं ।

४१. सखायस्त्वा ववृमहे देवम् । सा० ६२

प्रभो ! हम सखा बनकर सर्वप्रकाश और आनन्दप्रद आपका वरण करते हैं ।

४२. आ जुहोता हविषा मर्जयध्वम् । सा० ६३

हे उपासको ! तुम तन, मन और धन द्वारा लोकहित करनेवाले बनो और लोकहित करते हुए अपने जीवन को पवित्र बनाओ ।

४३. प्रियो देवानां परमे जनित्रे । सा० ६५

शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियों का पूर्ण विकास होने पर उपासक विद्वानों, मुमुक्षुओं का प्यारा बनता है ।

४४. भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सँसदि । सा० ६६

परमेश्वर के सत्संग में हमारी मति=बुद्धि, विचार उत्कृष्ट और सुखदायिनी हो ।

४५. अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव । सा० ६६

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! आपकी मित्रता में हम नष्ट न हों ।

४६. उक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः । सा० ६८

हे अग्रणी प्रभो ! आपकी स्तुतियों से विद्वानों, उपासकों और मुमुक्षुओं में दिव्यता अवतरित होती है।

४७. पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् । सा० ६९

हे उपासको ! अपनी रक्षा के लिए हितकर और रमणीय ज्योतिर्मय प्रभु को, विद्युत् की चमक के समान अकस्मात् आ जानेवाली मृत्यु से पूर्व ही, अपना बना लो । मृत्यु से पूर्व ही उसे साक्षात् करने, जानने का प्रयत्न करो ।

४८. अग्निं वरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत । सा० ७२

हे उपासको ! निराकार प्रभु को ध्यान-वृत्तियों और ज्ञान तथा भक्ति अथवा शरीररूपी अधरारणि और प्रणव=ओम् रूपी उत्तरारणि द्वारा प्रकट= साक्षात् करो ।

४९. भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु । सा० ७५

हे सकल ब्रह्माण्ड के पोषणकर्ता प्रभो ! इस संसार में आपका दिया दान सबके लिए सुखदायी और कल्याणकारी हो ।

५०. स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने । सा० ७६

हे अग्रणी प्रभो ! आपकी कृपा से हमारे पुत्र और पुत्रियाँ श्रेष्ठ और सुन्दर कर्मों का विस्तार करनेवाले और विजयशील हों ।

५१. ते सुमतिर्भूत्वस्मे । सा० ७६

प्रभो ! वेद में उपदिष्ट आपकी कल्याणकारिणी शुभ मति हममें सदा बनी रहे ।

५२. अरण्योर्निहितो जातवेदा । सा० ७९

सर्वज्ञ परमात्मारूपी अग्नि ज्ञान और भक्तिरूप अरणियों में अथवा देहरूपी अधरारणि और प्रणवरूपी उत्तरारणि में रखा हुआ है । जैसे अरणियों की रगड़ से अग्नि उत्पन्न होता है, ऐसे ही ज्ञान और भक्ति की रगड़ से प्रभु के दर्शन होते हैं ।

५३. दिवे दिव ईडयो जागृवद्भिः । सा० ७९

जागरूक, विवेकी उपासकों को प्रतिदिन प्रभु की उपासना करनी चाहिए ।

५४. सनादग्ने मृणसि यातुधानान् । सा० ८०

अग्नि के सदृश पापों को भस्म करनेवाले प्रभो ! आप सदा पीड़ा देनेवाले काम क्रोध आदि शत्रुओं को कुचलते हैं ।

५५. अनु दह सह मूरान् कयादः । सा० ८०

प्रभो ! शरीर के मांस को खा जानेवाली चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष आदि राक्षसी वृत्तियों को जड़ समेत निरन्तर दग्ध करते रहिए ।

५६. अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यम् । सा० ८१

हे आगे ले चलनेवाले प्रभो ! हम उपासकों को ओजस्वी-शक्ति से भरपूर आत्मिक धन और यश प्राप्त कराइए ।

५७. द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे । सा० ८३

हे पवित्र करनेवाले प्रभो ! आप अपनी दीप्ति और कृपा से उपासक में चमकते हैं ।

५८. प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेत । सा० ८५

सबका पालक और पूर्ण करनेवाला, सबको तृप्त करनेवाला, अत्यन्त प्रिय, ज्ञानस्वरूप परमात्मा प्रातःकाल की उपासना में उपासकों को सन्मार्ग का उपदेश करता है । अथवा हे उपासको ! ब्राह्ममुहूर्त्त में सबके प्रिय और सबको आगे ले जानेवाले प्रभु की उपासना करो ।

५९. यद् वाहिष्ठं तदग्नये । सा० ८६

इधर-उधर भटकनेवाले चंचल मन को प्रभु के लिए अर्पित करो ।

६०. बृहदर्च विभावसो । सा० ८६

प्रभु के ज्ञान को ही सर्वोत्तम धन समझने वाले उपासक ! तू उस प्रभु की खूब उपासना कर ।

६१. बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा । सा० ८८

हे उपासक ! सूर्य के समान देदीप्यमान परमात्मा के लिए अपनी आयु का बहुत बड़ा भाग उपासना रूप में अर्पित कर ।

६२. अगन्म वृत्रहन्तमम् । सा० ८९

हम उपासकों ने काम-क्रोध आदि वृत्रों (ज्ञानों को आवृत्त करने=ढकने वाले) का नाश करनेवाले परमेश्वर को प्राप्त कर लिया है ।

६३. अग्निमन्वारभामहे । सा० ९१

हम उपासकगण निरन्तर ज्ञानस्वरूप परमेश्वर का आश्रय लेते हैं, प्रभु की आज्ञाओं के अनुसार जीवन-यापन करते हैं ।

६४. द्यामङ्गिरसो ययुः । सा० ९२

विषय-वासनाओं से शून्य, जिनके अंग-अंग में ज्ञान और प्रेम-रस भरा है, ऐसे योगी मोक्षपद को प्राप्त करते हैं ।

६५. अरिरग्ने तव स्विदा । सा० ९७

ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! मैं सब प्रकार से तेरा ही भक्त बनता हूँ ।

६६. वचोऽग्नये भरता । सा० ९८

हे उपासको ! मोक्ष की ओर ले जानेवाले प्रभु की वेदवाणी द्वारा स्तुति करो ।

६७. अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः । सा० ९९

हे वेदोत्पादक ! सर्वज्ञ प्रभो ! हमें उत्तम ज्ञान और महान् यश प्रदान कीजिए ।

६८. देवां देवयते यज । सा० १००

प्रभो ! दिव्य गुणों को चाहनेवाले मुझ उपासक को दिव्यगुण प्रदान कीजिए ।

६९. मेधामाशासत श्रिये । सा० १०१

हे मनुष्यो ! अपने जीवन को सुन्दर, उत्कृष्ट और श्रेष्ठ बनाने के लिए मेधा बुद्धि की याचना करो ।

७०. ईडिष्वा हि प्रतीव्या । सा० १०३

हे उपासक ! तू काम-क्रोधादि शत्रुओं का उन्मूलन करनेवाले प्रभु का ही स्मरण कर ।

७१. यजस्व जातवेदसम् । सा० १०३

हे उपासक ! तू सर्वज्ञ प्रभु की पूजा और उपासना किया कर, उसी के प्रति आत्मसमर्पण कर दे ।

७२. सत्पते कृधी सुगम् । सा० १०५

हे सज्जनों के रक्षक ! प्रभो ! हमारे जीवन-मार्ग को सुगम बना दीजिए ।

७३. श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य । सा० १०६

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! मेरी क्रियामय स्तुति को श्रवण कीजिए ।

७४. मायिनस्तपसा रक्षसो दह । सा० १०६

हे उपासक ! तू छल-कपटरूपी राक्षसी वृत्तियों को अपने तप और तेज द्वारा नितरां भस्म कर डाल ।

७५. तं गूर्धया स्वर्णरम् । सा० १०९

हे उपासक ! तू उस परमात्मा की उपासना कर जो सुखमय स्थिति-मोक्ष में पहुँचाने वाला है ।

७६. देवासो देवमरतिं दधन्विरे । सा० १०९

दिव्य कोटि के साधक, मुमुक्षुजन जगत्स्वामी परमात्मा देव को अपनी हृदय-गुहा में धारण करते हैं ।

७७. मा नो हृणीथा अतिथिम् । सा० ११०

हममें से कोई भी मनुष्य अतिथिवत् पूजनीय प्रभु के प्रति नास्तिकता और अनादर के भाव प्रदर्शित न करें ।

७८. भद्रो नो अग्निराहुतः । सा० १११

जिसके लिए सर्वस्व समर्पण कर दिया है, वह ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हमारे लिए कल्याणकारी हो ।

७९. भद्रा रातिः सुभग । सा० १११

हे शोभन ऐश्वर्यसम्पन्न ! आपका दिया हुआ दान हमारे लिए कल्याणकारी और सुखदायी हो ।

८०. भद्रो अध्वरः । सा० १११

प्रभु का अबाधगति से चलनेवाला सृष्टिरूपी यज्ञ हमारे लिए कल्याणकारी हो ।

८१. भद्रा उत प्रशस्तयः । सा० १११

परमेश्वर की उत्तम स्तुतियाँ हमारे लिए सुखदायिनी और कल्याणकारिणी हों ।

८२. यजिष्ठं त्वा ववृमहे । सा० ११२

उपासना यज्ञों को सफल करनेवाले, दानदाताओं में सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! हम उपासक आपका वरण करते हैं ।

८३. अग्ने द्युम्नमा भर । सा० ११३

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! आप हमें दिव्य धन से आपूर (भर) कर दीजिए ।

८४. विश्वेदग्निः प्रति रक्षाँसि सेधति । सा० ११४

ज्ञानस्वरूप परमेश्वर उपासक के सभी राक्षसी भावों और कर्मों का निवारण कर देता है ।

८५. गाव उप वदावहे । सा० ११७

हे प्रभो ! मुझ उपासक के शुद्ध-पवित्र हृदय-मन्दिर में वेद वाणियों का उपदेश दीजिए । अथवा हे उपासको ! हृदय-गुहा में परमेश्वर के समीप होकर उसकी स्तुति किया करो ।

८६. इन्द्रं वाजयामसि महे । सा० ११६

महत्त्व प्राप्ति के लिए हम आत्मा को ही शक्तिशाली बनाते हैं ।

८७. स वृषा वृषभो भुवत् । सा० ११६

आत्मा की शक्तियों का विकास कर उपासक शक्तिशाली बनता है और दूसरों पर सुख की वृष्टि करता है ।

८८. वृषन् वृषेदसि । सा० १२०

हे सुखवर्षक ! तू वस्तुतः सुखवर्षक है ।

८६. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् । सा० १२१

यज्ञों का अनुष्ठान ऐश्वर्य को बढ़ाता है ।

६०. इदं वसो सुतमन्धः पिबा । सा० १२४

हे शरीर में वास करनेवाले जीव ! प्रभु-कृपा से इस शरीर में सोम-वीर्य उत्पन्न किया गया है, तुम इसका पान करो, इसे शरीर में सुरक्षित करो ।

६१. अस्तारमेषि सूर्य । सा० १२५

हे अविद्या-अन्धकार को नष्ट करनेवाले ज्ञानरूपी सूर्य ! प्रभो ! आप काम-क्रोधादि पाप वृत्तियों को दग्ध करके परे फेंकनेवाले उपासकों के हृदय में उदित होते हो ।

६२. उदगा अभि सूर्य । सा० १२६

हे सहस्रों सूर्यों की दीप्ति के समान चमकनेवाले प्रभो ! आप मेरे हृदय-आकाश में शीघ्र उदित हूजिए, शीघ्र दर्शन दीजिए ।

६३. सर्वं तदिन्द्र ते वशे । सा० १२६

हे ऐश्वर्य सम्पन्न प्रभो ! यह सब कुछ—जड़ और चेतन, विशाल ब्रह्माण्ड आपके वश में है ।

९४. इन्द्रः स नो युवा सखा। सा० १२७

वह अखण्ड एकरस, जीवों को पाप से पृथक् और भद्र से संयुक्त करनेवाला, काम-क्रोधादि असुरों का संहारक इन्द्र हमारा मित्र है।

९५. इन्द्रमर्भे हवामहे। सा० १३०

हम सांसारिक धनों की प्राप्ति के लिए परमैश्वर्यशाली परमात्मा को पुकारते हैं, उससे धनों के लिए याचना करते हैं।

९६. वयमिन्द्र त्वायवः। सा० १३२

हे ऐश्वर्यशाली प्रभो! हम उपासक लोग आपको ही चाहते हैं।

९७. अभि प्र नोनुमो वृषन्। सा० १३२

हे सुखवर्षक! आपको लक्ष्य करके हम बारम्बार आपकी स्तुति करते हैं।

९८. भिन्धि विश्वा अप द्विषः। सा० १३४

हे प्रभो! हमारी सम्पूर्ण और सब प्रकार की द्वेष भावनाओं को छिन्न-भिन्न कर दीजिए।

९९. परि बाधो जही मृधः। सा० १३४

प्रभो! हमारी उन्नति के मार्ग में बाधारूप, संग्रामकारी काम आदि शत्रुओं को और मृत्यु के कारण भूत रोगों को पूर्णरूप से ध्वंस कर दीजिए।

१००. वसु स्पार्हं तदा भर। सा० १३४

प्रभो! जो हमारा स्पृहणीय, अभिलषित आध्यात्मिक धन मोक्ष है, उसे हमें प्राप्त कराइए।

१०१. देवानामिदवो महत्। सा० १३८

देवों-इन्द्रियों का रक्षण वस्तुतः सबसे महान् कार्य है।

१०२. स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। सा० १३९

हे वेदज्ञान के स्वामी परमेश्वर! आप मुझे वेदविद्या से प्रकाशित कीजिए।

१०३. शृणोतु शक्र आशिषम्। सा० १४०

सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हमारी आकांक्षाओं और प्रार्थनाओं को सुने। अथवा परमेश्वर हमसे बोले जाते हुए शुभ शब्दों को ही सुने अर्थात् हमारी वाणी से अशुभ शब्दों का उच्चारण न हो।

१०४. देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम्। सा० १४१

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता समग्र ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर! आप हमें उत्तम सन्तानों से युक्त उत्तम सौभाग्य (ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य) प्रदान कीजिए।

१०५. परा दुःष्वप्न्यँ सुव। सा० १४१

हे प्रभो! दुष्ट संकल्पों और कुसंकल्पों के कारण होनेवाले हमारे पापों और दुःखों को दूर कीजिए।

१०६. क्वा३स्य वृषभः । सा० १४२

वह सुख-शान्ति एवं आनन्द की वर्षा करनेवाला परमेश्वर कहाँ है, उसे कहाँ प्राप्त किया जा सकता है ?

१०७. कस्तं सपर्यति । सा० १४२

उस आनन्दस्वरूप परमेश्वर की उपासना कौन करता है ?

१०८. पुरूवसोऽभि प्र नोनुवुर्गिरः । सा० १४६

हे पालक और पूरक निवास देनेवाले महाधनी परमेश्वर ! मेरी स्तुति वाणियाँ आपको ही लक्ष्य बनाकर निरन्तर स्तुति करनेवाली हों ।

१०९. इष्टा होत्रा असृक्षत । सा० १५१

हमारे द्वारा वांछनीय यज्ञ (पञ्चमहायज्ञ) निरन्तर किये जाएँ ।

११०. अहं सूर्य इवाजनि । सा० १५२

मैं सूर्य के समान तेजस्वी हो गया हूँ ।

१११. सोमः पूषा चचेततुः । सा० १५४

प्रभो ! कृपा करो कि मेरे जीवन में सौम्य और पुष्टि व शक्ति जाग उठें अर्थात् मैं विनीत और शक्ति सम्पन्न बन जाऊँ ।

११२. इन्द्रमभि प्र गायत । सा० १५५, १६४

परमैश्वर्यशाली परमेश्वर के गुणों का खूब गान करो ।

११३. कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते । सा० १५७

हे प्रभो ! कण-कण करके विद्या का ग्रहण करनेवाले मेधावी लोग वैदिक स्तोत्रों के द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ।

११४. अर्कमर्चन्तु कारवः । सा० १५८

क्रियाशील, कर्मकुशल उपासक उपासनीय परमेश्वर की अर्चना करते हैं ।

११५. एहीमस्य द्रवा पिब । सा० १५९

प्रभो ! आप आइए, दर्शन दीजिए । अपने भक्त के प्रति अनुकम्पा=कृपा कीजिए और अपने उपासक भक्त की रक्षा कीजिए ।

११६. अभि त्वा वृषभा सुते । सा० १६१

हे सुखों के वर्षक प्रभो ! मैं इस संसार में आपका स्मरण करके ही कार्य आरम्भ करता हूँ ।

११७. सुतं सृजामि पीतये । सा० १६१

मैं अपनी रक्षा के लिए अपने जीवन में ज्ञान को उत्पन्न करता हूँ ।

११८. इन्द्रमर्च यथा विदे । सा० १६८, २३५

यथार्थ ज्ञान, तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए तू ज्ञान-निधि परमेश्वर की उपासना कर ।

११९. सनिं मेधामयासिषम् । सा० १७१

मैं परमेश्वर से सत्य और असत्य में विवेक कर सकने वाली मेधा बुद्धि को माँगता हूँ ।

१२०. भद्रं भद्रं न ग्रा भरेषमूर्जं शतक्रतो । सा० १७३

हे सैंकड़ों ज्ञान और कर्मों वाले परमेश्वर ! हमें कल्याणकारी और सुख-दायी प्रत्येक मार्ग का उपदेश दीजिए। हमें अन्न और रस-सात्विक भोजन अथवा मोक्ष और जीवन शक्ति प्रदान कीजिए।

१२१. मन्त्रश्रुत्यं चरामसि । सा० १७६

हम उपासक लोग वेदमन्त्रों का श्रवण करते हैं और उस श्रवण के अनुसार अपना आचरण बनाते हैं। अर्थात् हम वेद के अनुसार अपने जीवन को ढालते हैं।

१२२. दोषो आगाद् बृहद् गाय । सा० १७७

हे उपासक ! रात्रि आ गई। अब तू प्रभु का खूब गुणगान कर।

१२३. स्तुहि देवं सवितारम् । सा० १७७

हे उपासक ! सर्व आनन्दप्रद और सबको सदा उत्तम प्रेरणा देनेवाले परमेश्वर का स्तुति-गान कर।

१२४. इन्द्रेहि मत्स्यन्धसः । सा० १८०

हे जीवात्मन् ! तू गतिशील=क्रियामय जीवनवाला बन और भक्ति रस के आनन्द में मस्त हो जा।

१२५. आ तू न इन्द्र वृत्रहन् । सा० १८१

हे पाप वृत्रों का हनन करनेवाले परमेश्वर ! [तू निश्चय ही हमारा है। हम प्रकृति की ओर न चलकर तुझे अपनाते हैं।

१२६. वचस्तच्चिन्न ओहसे । सा० १८३

हे प्रभो ! उस ज्ञान देनेवाली वेदवाणी को निश्चय से आप ही हमें प्राप्त कराते हैं।

१२७. वात आ वातु भेषजम् । सा० १८४

हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से वायु हमारे लिए रोग निवारक ओषधों को बहा लाए।

१२८. प्र न आयूंषि तारिषत् । सा० १८४

परमेश्वर हमारे जीवनों को सब व्यसनों से दूर रखकर दीर्घ कर दे।

१२९ पावका नः सरस्वती । सा० १८९

प्रवाह से चलनेवाली, ज्ञान-विज्ञान का स्रोत वेदवाणी हमारे जीवनों को पवित्र करे।

१३०. यज्ञं वष्टु धियावसु । सा० १८९

ज्ञानरूप धन से सम्पन्न मनुष्य यज्ञीय कर्मों—श्रेष्ठ कर्मों को करने की कामना करे।

१३१. स नो वसून्या भरात् । सा० १९०

वह परमेश्वर हमें नाना प्रकार की लौकिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियों से भर देता है।

१३२. स्मसि स्यातर्हरीणाम् । सा० १६३

हम इन्द्रियरूपी घोड़ों के अधिष्ठाता बनें।

१३३. उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः । सा० १६४

हे परमेश्वर ! हमारे भक्तिरस के बिन्दु आपको सुप्रसन्न करें। अथवा हे जीव ! तेरे शरीर में सुरक्षित सोम-वीर्य के बिन्दु तुझे अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाले हों।

१३४. कृणुष्व राधो अद्रिवः । सा० १६४

हे चट्टान के समान दृढ़ उपासक ! तू सिद्धि का सम्पादन कर।

१३५. अव ब्रह्मद्विषो जहि । सा० १६४

हे उपासक ! तू ब्रह्मद्वेषी, ज्ञान के साथ द्वेष करनेवाली भावनाओं को नष्ट कर दे।

१३६. गिर्वणः पाहि नः सुतम् । सा० १६५

हे वेदवाणियों द्वारा उपासनीय प्रभो ! आप हमारे ज्ञान और भक्तिरस की रक्षा कीजिए।

१३७. सदा व इन्द्रश्चर्कृषत् । सा० १६६

हे उपासको ! वह परमात्मा आप सबको अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है।

१३८. न देवो वृतः शूर इन्द्रः । सा० १६६

हमारा कितना दुर्भाग्य है कि हमने कष्टों की इतिश्री कर डालने वाले, परमैश्वर्यशाली आनन्दप्रद प्रभु का वरण नहीं किया।

१३९. न त्वामिन्द्राति रिच्यते । सा० १६७

हे परमेश्वर ! आप से बढ़कर संसार में कोई शक्ति नहीं है। अथवा परमैश्वर्य को प्राप्त जीव ! आज तुझे कोई नहीं लाँघ सकता, तू सबसे आगे निकल गया है।

१४०. वाजी ददातु वाजिनम् । सा० १६६

शक्ति का भण्डार प्रभु हमें ज्ञान-धन, आध्यात्मिक शक्तियाँ और योग की विभूतियाँ प्रदान करे।

१४१. न कि इन्द्र त्वदुत्तरम् । सा० २०३

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! आप से उत्कृष्ट कुछ भी और कोई भी नहीं है।

१४२. न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् । सा० २०३

हे पापों और वासनाओं का हनन करने वाले प्रभो ! आपसे अधिक बढ़ा हुआ भी कोई नहीं है।

१४३. नक्येवं यथा त्वम् । सा० २०३

प्रभो ! इस संसार में आप जैसा भी कोई नहीं है।

१४४. समानमु प्रशंसिषम् । सा० २०४

मैं उस प्रभु का गुणगान करता हूँ जो उपासकों को उत्साहित करनेवाले हैं।

१४५. असृग्रमिन्द्र ते गिरः । सा० २०५

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! मैं तेरी वेदवाणियों को सृजन-क्रिया का रूप देता हूँ। मैं वेद का स्वाध्याय करता हूँ और वेद के आदेशों को जीवन में चरितार्थ करता हूँ।

१४६. श्रुतं वो वृत्रहन्तमम् । सा० २०८

हे उपासको ! उस प्रभु के गुण-गान का श्रवण करो जो तुम्हारे ज्ञान को आवृत्त करनेवाली वासनाओं का विनाश करनेवाले हैं।

१४७. इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः । सा० २१०

हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर ! हमें प्रातःकाल की उपासना में प्रेम से प्राप्त हूजिए, अपने दिव्यदर्शन दीजिए।

१४८. स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो । सा० २१३

हे ज्ञानधन प्रभो ! मैंने आपके स्वागत के लिए हृदयरूपी आसन बिछाया है।

१४९ स्तोतृभ्य इन्द्र मृऽय । सा० २१२

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! अपने स्तोताओं को सुखी कीजिए।

१५०. इन्द्र न उपा याहि । सा० २१५

हे परमेश्वर ! हमारे समीप आइए, हमें दर्शन दीजिए।

१५१. अतीहि मन्युषाविणम् । सा० २२३

हे उपासक ! शोक, दुःख तथा निराशा के बीज बोनेवाले व्यक्ति को लाँघ जा, ऐसे व्यक्तियों की संगति मत कर। अथवा परमात्मा क्रोधी उपासक को त्याग देते हैं।

१५२. सुषुवांसमुपेरय । सा० २२३

हे साधक ! तू सदा उत्तम प्रेरणा देनेवाले मनुष्यों की संगति कर। अथवा हे परमेश्वर ! आप शान्तस्वरूप उपासक को प्राप्त होते हैं और उसे प्रेरणाएँ देते हैं।

१५३. मा हृणीयथाः । सा० २२७

हे उपासक ! जीवन में क्रोध मत करना।

१५४. कदा वसो स्तोत्रं हर्यत । सा० २२८

हे शरीर में बसनेवाले जीव ! उपासक ! तेरे जीवन में तेरे काम्य प्रभु के लिए प्रभु का स्तवन कब होगा ?

१५५. पिबा सोममृतूं रनु । सा० २२९

हे जीव ! उपासक ! तू नियमित गति से परमात्मा के आध्यात्मिक भक्ति-रस का पान कर।

१५६. तवेदं सख्यमस्तृतम् । सा० २२९

हे उपासक ! तेरा परमात्मा के साथ यह सख्यभाव=मित्रता अविच्छिन्न हो, अटूट हो।

१५७. वयं घा ते अपि स्मसि । सा० २३०

हे परमेश्वर ! कर्म तन्तु का विस्तार करनेवाले हम उपासक निश्चय से तेरे ही हैं ।

१५८. त्वं नो जिन्व सोमपाः । सा० २३०

हे भक्तिरस को स्वीकार करनेवाले प्रभो ! आप हमें तृप्त कीजिए ।

१५९. नृम्णं तनूषु धेहि नः । सा० २३१

हे परमेश्वर ! हमारे शरीरों में बल का आधान कीजिए ।

१६०. एवा शूर उत स्थिरः । सा० २३२

हे उपासक ! तू सचमुच बुराइयों का संहार करनेवाला और स्थिर मनोवृत्तियों वाला-स्थितप्रज्ञ है ।

१६१. अभि त्वा शूर नोनुमः । सा० २३३

पाप-ताप और दुःख दैन्य का संहार करनेवाले प्रभो ! हम आपकी ही खूब स्तुति करते हैं, आपको ही पुकारते हैं ।

१६२. ईशानमस्य जगतः । सा० २३३

हे परमेश्वर ! आप जंगम—चेतन जगत् के स्वामी हैं ।

१६३. ईशानमिन्द्र तस्थुषः । सा० २३३

हे इन्द्र ! आप स्थावर-जड़ जगत् के भी स्वामी हैं ।

१६४. इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ।

हम परमैश्वर्यशाली प्रभु की वेदवाणियों द्वारा स्तुति करते हैं ।

१६५. तरणिरित् सिषासति वाजम् । सा० २३८

वासनाओं को तैरनेवाला, वासनाओं से ऊपर उठनेवाला व्यक्ति ही शक्ति, ज्ञान और त्याग का सम्यक् सेवन करता है ।

१६६. मत्स्वा न इन्द्र गोमतः । सा० २३०

हे परमेश्वर ! हम स्तोताओं-उपासकों के जीवनों को आनन्दमय बनाइए ।

१६७. आपिर्नो बोधि । सा० २३९

हे प्रभो ! आप हमारे बन्धु हैं । आप हमें बोध ज्ञान प्रदान कीजिए ।

१६८. अस्माँ अवन्तु ते धियः । सा० २३९

हे परममित्र परमेश्वर ! आपके द्वारा प्रदत्त धारणाएँ एवं प्रेरणाएँ हमें संसार सागर में डूबने से बचाएँ ।

१६९. त्वं ह्येहि चेरवे । सा० २४०

हे प्रभो ! अपने भक्त, उपासक के प्रति उसके हृदय और जीवन में विचरण करने के लिए आप ही आइए ।

१७०. विदा भगं वसुत्तये । सा० २४०

प्रभो ! अपना धन धनकामियों को प्रदान कर दे, बाँट दे । मुझे धन नहीं, तू चाहिए ।

१७१. उद्वावृषस्व मगवन् गविष्टय। सा० २४०

हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! गौग्रों की वर्षा गो-कामियों-गौग्रों की चाहना करनेवालों पर कर दीजिए।

१७२. सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः। सा० २४१

हे उपासको ! तुम सब मिलकर सोम=भक्तियज्ञ में सम्मिलित होग्रो ग्रौर इच्छापूर्वक भक्तिरस का पान करो।

१७३. मा चिदन्यद् वि शंसत सखायः। सा० २४२

हे उपासक मित्रो ! तुम परमेश्वर के ग्रतिरिक्त ग्रन्य किसी की स्तुति-प्रार्थना-उपासना मत किया करो।

१७४. इन्द्रमित् स्तोता वृषणम्। सा० २४२

हे उपासको ! ग्रानन्द की वर्षा करनेवाले परमेश्वर की ही उपासना करो।

१७५. नकिष्टं कर्मणा नशद्। सा० २४३

उस प्रभु को कोई भी उपासक भिन्न-भिन्न काम्य कर्मों द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता।

१७६. इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तम्। सा० २४३

विश्व ब्रह्माण्ड के धारण करनेवाले परमात्मा को याज्ञिक कर्मों द्वारा भी नहीं पाया जा सकता।

१७७. पुरुवसुर्निष्कर्त्ता विह्रुतं पुनः। सा० २४४

पालक ग्रौर पूरक निवास देनेवाले प्रभु शरीर की तोड़-फोड़ को फिर से ग्रौर बारम्बार जोड़नेवाले, ठीक करनेवाले हैं।

१७८. न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डिता। सा० २४७

हे ऐश्वर्यसम्पन्न प्रभो ! तेरे ग्रतिरिक्त ग्रौर सुख कोई ग्रौर ग्रानन्द देनेवाला नहीं है।

१७९. इन्द्र ब्रवीमि ते वचः। सा० २४७

हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! मैं ग्रापके लिए ही स्तुति वचनों का उच्चारण करता हूँ।

१८० त्वमिन्द्र यशा असि। सा० २४८

हे इन्द्रियों के ग्रधिष्ठाता जीव ! तू यशस्वी है। ग्रथवा हे परमेश्वर ! ग्राप यशरूप हैं।

१८१. त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्। सा० २४८

हे परमेश्वर ! ग्राप ग्रकेले ही उपासक के काम-क्रोध ग्रादि वृत्रों का हनन करनेवाले हैं।

१८२. हवामह इन्द्र धनस्य सातये। सा० २४९

हम उपासक धन-सम्पत्तियों की प्राप्ति के लिए परमैश्वर्यशाली परमेश्वर का ग्राह्वान करते हैं, उसे पुकारते हैं।

१८३. विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत । सा० २५०

ज्ञानीजन स्तुतियों द्वारा प्रभु का स्तवन करते हैं ।

१८४. मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते । सा० २५०

भक्त लोग अत्यन्त मधुर वाणियों का ही उच्चारण करते हैं ।

१८५. वसुविदमनु शूर चरामसि । सा० २५३

हे काम-क्रोधादि असुरों के संहारक प्रभो ! आप जीवन-यापन के लिए आवश्यक धन प्राप्त कराने वाले हैं । हम उपासक आपके अनुचर हैं । हम आपका अनुगमन करते हैं । आपके दर्शाये वेदमार्ग पर चल रहे हैं ।

१८६. स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय । सा० २५४

हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! अपने स्तोता=उपासक को आप सर्वविध उन्नत कीजिए ।

१८७. मरुतो ब्रह्मार्चत । सा० २५७

हे मितभाषी तथा प्राणायाम के अभ्यासी उपासको ! वेद मन्त्रों द्वारा परमात्मा की खूब उपासना करो ।

१८८. वृत्रं हनति वृत्रहा । सा० २५७

पाप और अज्ञान का नाशक परमेश्वर पाप-ताप, दु:ख-दैन्य और काम-क्रोध आदि असुरों का हनन करता है ।

१८९. बृहदिन्द्राय गायत मरुतः । सा० २५८

हे प्राणायाम के अभ्यासी उपासको ! तुम परमेश्वर के लिए महासामगान गाया करो ।

१९०. इन्द्र क्रतुं न आ भर । साम० २५९

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! हमें कर्मशक्ति, संकल्पशक्ति और प्रज्ञा-ज्ञानशक्ति प्रदान कीजिए ।

१९१. शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि । सा० २५९

हे अनेक नामों से स्मरणीय प्रभो ! इस जीवन-यात्रा के मार्ग में आप हमें उत्तम प्रेरणा दीजिए ।

१९२. जीवा ज्योतिरशीमहि । सा० २५९

प्रभो ! आपकी कृपा से हम वर्तमान जीवन में ही ज्योति स्वरूप आपको प्राप्त करें ।

१९३. मा न इन्द्र परा वृणक् । सा० २६०

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! आप हमें अपने से पृथक् मत कीजिए, हमारा परित्याग मत कीजिए ।

१९४. भवा नः सधमाद्ये । सा० २६०

प्रभो ! आप हमारे साथ हर्ष सदन—हृदय-मन्दिर में विराजमान हूजिए ।

१९५. त्वं न ऊती । सा० २६०

हे परमेश्वर ! आप हमारे लिए रक्षा स्वरूप हैं ।

१९६. त्वमिन्न आप्यम् । सा० २६०

हे प्रभो ! आप ही हमारे प्रायणीय बन्धु हैं, हमारे जीवन का अन्तिम लक्ष्य हैं ।

१९७. वृत्रहन् परि स्तोतार आसते । सा० २६१

हे वृत्रहन् ! काम-क्रोधादि वासनाओं के संहारक ! स्तोता लोग निश्चय ही आपके चारों ओर आपके अत्यन्त समीप रहते हैं ।

१९७. सत्यमित्था वृषेदसि । सा० २६३

हे उपासक ! यह सत्य है कि तू अपने जीवन में ओज, बल आदि को धारण करता हुआ निश्चय ही शक्तिशाली और धर्मयुक्त है ।

१९९. छर्दिर्यच्छ: । सा० २६६

हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! आप हमें अपनी छत्र-छाया, अपना रक्षारूपघर, मोक्षपद प्राप्त कराइए ।

२००. नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते । सा० २७०

हे परमेश्वर ! इन्द्रियों के विषयों में रमनेवाला कोई भी व्यक्ति आपको नहीं वर सकता ।

२०१. पुरुत्रा चिद्धि ते मनः । सा० २७१

हे साधक ! निश्चय ही तेरा मन अनेक विषयों में भटक रहा है ।

२०२. प्र गायत्रा अगासिषु: । सा० २७१

परमेश्वर के स्तोत्रों के गान से अपना त्राण करनेवाले उपासक प्रभु के गुणों का खूब गान करते हैं ।

२०३. नूनं भूषत श्रुते । सा० २७२

हे उपासको ! [प्रभु-प्राप्ति के लिए] अपने आपको शास्त्रश्रवण और ज्ञान के विषय में निश्चय ही अलंकृत करो ।

२०४. नो अभयं कृधि । सा० २७४

हे शत्रुविदारक प्रभो ! हमें निर्भय कर दीजिए ।

२०५. वि द्वषो वि मृधो जहि । सा० २७४

हे प्रभो ! आप हमारी द्वेष की भावनाओं और हिंसा की वृत्तियों को मार भगाइये ।

२०६. इन्द्रो मुनीनां सखा । सा० २७५

परमेश्वर मौनव्रती, ज्ञानी, ध्यानी मुनियों का सखा है ।

२०७. वण्महाँ असि सूर्य । सा० २७६

हे सूर्यों के सूर्य परमदेव परमात्मन् ! सचमुच तू महान् है ।

२०८. मह्ना देव महाँ असि । सा० २७६

देवाधिदेव ! आप अपनी महिमा के कारण सचमुच महान् हो ।

२०९. वाजी वाजं सिषासति । सा० २८०

बलों का स्वामी परमात्मा उपासक को बल प्रदान करता है ।

२१०. इन्द्र नेदीय एदिहि । सा० २८२

हे इन्द्र ! परमैश्वर्यशाली प्रभो ! आप हमारे अत्यन्त निकट, हमारे हृदय मन्दिर में आइए, प्रकट हूजिए, अपने दर्शन दीजिए ।

२११. इह वा सन्तुप श्रुधि । सा० २८४

हे परमेश्वर ! यहाँ हमारे हृदय-मन्दिरों में विराजमान होते हुए हमारी प्रार्थनाओं को सुनिए ।

२१२. पृणन्नित् पृणते मयः । सा० २८५

वह परमेश्वर सबको देनेवाले हैं, सबकी पालना करनेवाले हैं, अतः दान देनेवाले और दूसरों का पालन करनेवालों को सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है ।

२१३. भवा समत्सु नो वृधे । सा० २८६

हे परमेश्वर ! देवासुर संग्रामों में, काम-क्रोध आदि से निरन्तर चलनेवाले युद्धों में, जीवन संघर्षों में आप हमारी पूर्ण वृद्धि के लिए हों ।

२१४. मा वां रातिरुप दसत् कदाचन । सा० २८७

हे दम्पती ! तुम दोनों की दान देने की प्रक्रिया कभी भी नष्ट न हो । तुम सदा दान देते रहो ।

२१५. यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः । सा० २८८

स्तोता=उपासक को जब भी समय मिले सुखवर्षक परमेश्वर की स्तुति किया करे ।

२१६. पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय । सा० २८९

हे उपासक ! तू अध्यात्मिक आनन्द की मस्ती में प्रभु-प्राप्ति के लिए अपनी इन्द्रियों को विषयों में भटकने से बचा ।

२१७. इन्द्रो वज्री हिरण्ययः । सा० २८९

परमैश्वर्यशाली परमात्मा ज्योतिर्मय है, ज्ञान का भण्डार है और दुष्टों के लिए दण्डधारी है ।

२१८. वस्याँ इन्द्रासि मे पितुः । सा० २९२

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! आप मेरे पिता से अधिक श्रेष्ठ और ऐश्वर्यशाली हैं ।

२१९. हरिभ्यां याह्योक आ । सा० २९३

प्रभो ! ऋक् और साम की स्तुतियों और सामगानों द्वारा आप मेरे हृदय-मन्दिर में आइए । अथवा हे उपासक ! तू ज्ञान और कर्मेन्द्रियरूपी घोड़ों से अपने शरीर रूपी घर में आ प्रत्याहार द्वारा अपनी इन्द्रियों का संयम कर, उन्हें बाहर=विषयों में मत भटकने दे ।

२२०. इम इन्द्र मदाय ते सोमाः । सा० २९४

हे इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव ! ये सोम—वीर्य बिन्दु, आनन्दमय भक्तिरस तेरे जीवन को हर्ष एवं उल्लासमय बनाने के लिए हैं ।

—शेष सूक्तियाँ अगले अंक में

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसी !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.००
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	७.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	२.५०
मानव जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	५.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.५०
The only way	३.००
Anand Gayatri Discoarses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्रीमहात्मा आनन्द स्वामी उर्दू	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू औषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा अजिल्द	२०.००
" सजिल्द	३०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

वैद्य गुरुदत्त

विश्वदेवा	६.००
अद्वैतमीमांसा	६.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश	७.००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	२०.००
दयानन्दप्रकाश **स्वामी सत्यानन्द**	१५.००

पं० भगवद्दत्त

भारतीय संस्कृति का इतिहास	७.००

डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था	८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय	१.५०

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज		५.००
महर्षि दयानन्द की देन		४.००
सत्यार्थप्रकाश **स्वामी दयानन्द**		२५.००
संस्कारविधि	,,	४.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	,,	८.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	,,	०.१५
आर्याभिविनय	,,	१.००
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण	,,	०.३७
आर्योद्देश्यरत्नमाला	,,	०.२५
बालशिक्षक	,,	०.३७
व्यवहारभानु	,,	१.००
सन्ध्या विनय **नित्यानन्द वेदालंकार**		१.५०
पूर्व और पश्चिम	,,	७.५०
जीवन की राहें	,,	४.००
सु-राज्य की रूपरेखा	,,	०.५०
प्राणायामविधि **नारायण स्वामी**		०.६०
आर्यसमाज क्या है ?	,,	१.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला	३.००
स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द**	४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य	०.५०

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास	४०.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास	३०.००
सांख्यसिद्धान्त	२४.००
सांख्यदर्शन	१६.००
वेदान्तदर्शन	३०.००
वैशेषिकदर्शन	२५.५०
न्यायदर्शन	२४.००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द	४.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान	१.५०
पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना	१.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता	१.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त)	१.००
कथा-पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द**	२.५०

बालोपयोगी

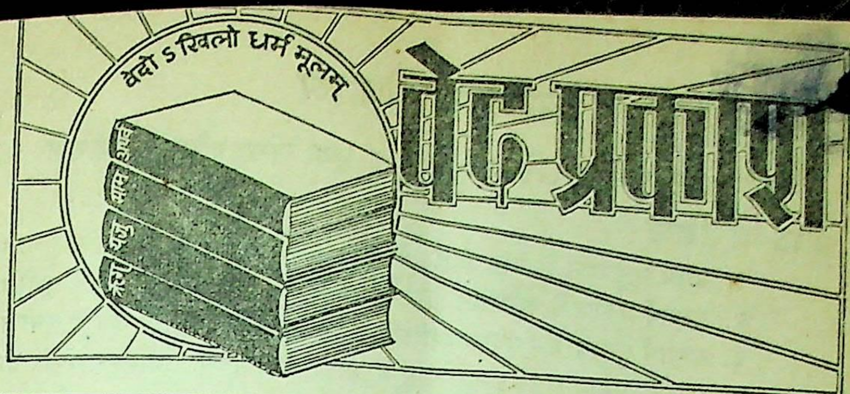
त्रिलोकचन्द विशारद

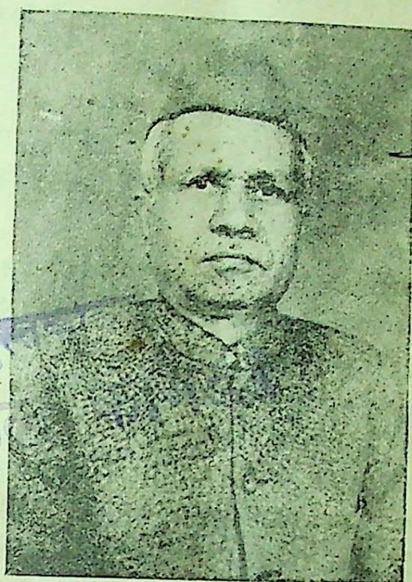
महर्षि दयानन्द	१.५०
स्वामी श्रद्धानन्द	१.००
गुरु विरजानन्द	१.००
पं० लेखराम	१.००
पं० गुरुदत्त	१.००
स्वामी दर्शनानन्द	१.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

वैदिक धर्मशिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
वैदिक धर्मशिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
वैदिक धर्मशिक्षा	तृतीय भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा	चतुर्थ भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा	पंचम भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा	षष्ठ भाग	१.००
वैदिक धर्मशिक्षा	सप्तम भाग	१.२५
वैदिक धर्मशिक्षा	अष्टम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	१.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।





आज से लगभग ५१ वर्ष पहले स्वर्गीय श्री गोविन्दराम जी ने इस प्रकाशन-संस्था की स्थापना की थी । आर्य साहित्य के प्रकाशन में वे मृत्युपर्यन्त लगे रहे ।

शिवरात्रि

को

श्री गोविन्दराम जी का देहावसान हुआ था। उनकी पुण्य तिथि पर हम उनके वंशज वैदिक साहित्य के प्रकाशन एवं प्रसार में लगे रहने की प्रतिज्ञा करते हैं।

गोविन्दराम हासानन्द

[वैदिक साहित्य के प्रमुख प्रकाशक व विक्रेता]

४४०८ नई सड़क, दिल्ली-११०००६

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष : २६ अंक ७] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [फरवरी, १९७७

सम्पादक : **विजयकुमार** आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

यज्ञ किसे कहते हैं ?

'यज्ञ' शब्द के विषय में निरुक्त भाष्य में लिखा है (क) 'यज्ञ' शब्द यजमानार्थक प्रसिद्ध है। 'यज' देवपूजा-संगतिकरणदानेषु धातु से 'नङ्' प्रत्यय (पाणि० ३-३-९०)। (ख) इससे किसी अभीष्ट वस्तु की याचना की जाती है। प्रत्येक यज्ञ किसी-न-किसी फल-लाभ के लिए किया जाता है। याञ्च-यज्ञ्न यज्ञ। (ग) यजुर्वेदीय मन्त्रों के उच्चारण से रसहवि की आहुतियाँ दी जाती हैं, अतः यज्ञ यजुर्मन्त्रों से क्लिन्न होता है। यजुष् उन्न-यज् न—यज्ञ। (घ) यज्ञ में बैठने के लिए कृष्णमृग-चर्म बिछाये जाते हैं, अतः अजिन (मृगचर्म) युक्त होने से इसे यज्ञ कहा गया। अजिन-इ अज् न-य् अज् न—यज्ञ (ङ) इस शुभकर्म को यजुर्मन्त्र ले जाते हैं अर्थात् अन्त तक पहुँचाते हैं। यजुर्नय-यज् न—यज्ञ।

उपर्युक्त सभी अर्थ व्याकरण की दृष्टि से ठीक हैं परन्तु यज्ञ शब्द का समुपयोगी अर्थ है देवपूजा, संगतिकरण और दान। देवपूजा शब्द का अर्थ है विद्वानों का, पिता, माता, गुरुजनों का आदर करना। उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करना अर्थात् दूसरे शब्दों में अनुशासन में रहना यज्ञ है। संगतिकरण का अर्थ संगठन है। यज्ञ का अर्थ हुआ संगठन। समाज के संचालन एवं निर्माण के लिए संगठन अत्यन्त आवश्यक है। बिना संगठन एवं एकता के कोई कार्य नहीं हो सकता। इसलिए संगठन भी यज्ञ है। प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि डाकुओं का संगठन भी तो अन्त को संगठन ही है, तो क्या उसे भी यज्ञ माना जाएगा ? वास्तव में संगठन उसी दशा में यज्ञ है जब उस संगठन के लिए मनुष्य अपना कुछ दान या बलिदान कर रहा हो। डाकुओं के संगठन में हरएक डाकू अपने स्वार्थ को अपने दल के लिए बलिदान कर

रहा होता है। जितने अंश में वह संगठन के लिए अपने को बलिदान कर रहा है, उस अंश में यह संगठन भी यज्ञ के अन्तर्गत ही माना जाएगा। परन्तु विचारणीय बात यह है कि यह स्वार्थ-त्याग या बलिदान अपने बड़े संगठन-राष्ट्र अथवा मानव-समाज के हित का विघात करता है अतः उसे हम यदि यज्ञ कहें तो यह उत्कृष्ट यज्ञ न होकर दूषित यज्ञ या हीन यज्ञ कहलाएगा। इसी प्रकार एक राष्ट्र बलात् दूसरे राष्ट्र पर अधिकार कर रहा हो, उस समय भी उस राष्ट्र का संगठन दूषित यज्ञ ही कहलाएगा क्योंकि उस समय वह विश्व के विशाल राष्ट्र के हित का नाश करता है इसलिए उसे भी वास्तविक यज्ञ नहीं कहा जा सकेगा। यज्ञ भावना का वास्तविक अर्थ है "छोटे समुदाय का बड़े समुदाय के लिए अपने आपको अर्पण करना।"

किसी भी संगठन के लिए दो मुख्य भाग होते हैं। एक देव और दूसरे पुजारी। अर्थात् एक आज्ञा देनेवाला और दूसरा आज्ञा पालन करनेवाला। श्री पं० बुद्धदेव विद्यालंकार ने इस विषय की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि संसार का कोई संगठन इन दो अंशों के बिना नहीं चल सकता। जिन संगठनों में सबके सब आज्ञा देते हों, वहाँ परस्पर कितनी भी प्रीति हो वह अपना काम नहीं चला सकते। सलाह सबकी सुनी जाय, समय-समय पर अपने-अपने विषयों के ज्ञाताओं की बात मानी भी जाय परन्तु संगठन में मानने, न मानने का अधिकार तो किसी को मिलना ही चाहिए। अर्थात् इसको हम इस प्रकार कह सकते हैं कि समाज में शिष्य और शास्ता का, विधेय-विधाता का भेद होना चाहिये और उनके कर्त्तव्यों में भी भेद स्वाभाविक है।

इसमें विधेय या शिष्य का एकमात्र कर्त्तव्य है आज्ञा-पालन और विधाता तथा शास्ता का कर्त्तव्य है कि वह जो आज्ञा पालन करवाना चाहता है, उसपर चलने के लिए स्वयं भी तैयार हो। दूसरे वह अपने विधेयों में किसी को अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के सिद्ध करने का साधन न बनावे। यज्ञ में जो देवपूजा की भावना है उसका भी यही भाव है। वह समाज या राष्ट्र जिसमें यह अनुशासन होगा वह अत्यन्त उत्कृष्ट रूप में प्रगति करेगा।

यज्ञ का वास्तविक अर्थ यही है। संसार भी यज्ञ है। संसार को संसार क्यों कहते हैं? 'सरति' इति संसारः। इसमें सृति है। एक जगह महाभारत में आया है कि युधिष्ठिर से यक्ष ने यह प्रश्न किया कि संसार क्या है? उन्होंने उत्तर दिया कि मैं संसार को कटाह पाता हूँ, यह भौतिक अग्नि द्वारा तपाया जा रहा है। इसमें धन-धान्य आदि भोज्य वस्तुएँ पकती हैं और अन्त को काल के गाल में ग्रास बनकर जाता है। संसार का वास्तविक रूप यही है। इसमें अग्नि है। संसार साहस का स्थान है। कोई निवृत्त हो, चाहे प्रवृत्त, इस कटाह (कड़ाही) में तपेगा। जो कर्म की कड़छुल हाथ में लेकर कटाह को चलाएगा वह जलने से बच जाएगा। जो व्यक्ति कर्मशून्य रहेगा वह

भोज्य पदार्थ की तरह बलात् कटाह में धकेला जायेगा। 'काम आओ अथवा काम करो' यह संसार का नारा है। पको अथवा पकाओ, इसके अतिरिक्त और विकल्प नहीं। यही कारण है कि वेद में संसार को यज्ञ कहा गया है। पुरुष सूक्त में आया है—

ओ३म् यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मशरद्धविः।

अर्थात् देवता जिस पुरुष के साथ मिलकर हवि से यज्ञ करते हैं, उसका वसन्त ऋतु घृत है, ग्रीष्म लकड़ी, शरद् ऋतु हवि है। अर्थात् इस ब्रह्माण्ड में ग्रीष्म, वर्षा, शरद् आदि भिन्न-भिन्न ऋतु एक दूसरे के सहायक होकर संसार रूपी यज्ञ कर रहे हैं अर्थात् उत्तम अनाज आदि सस्य सम्पत्ति तथा फल-फूल आदि द्वारा इस धरती को बसा रहे हैं। यदि इस संसार में केवल ग्रीष्म ऋतु ही होती तो यह संसार झुलस जाता। यदि केवल शरद् ऋतु होती तो सब-कुछ दबा का दबा रहता। ग्रीष्म से संसार की सफाई और सड़ांद का नाश होता है, सम्पूर्ण दोष भस्मीभूत होते हैं और फिर उससे चारों ओर हरियाली छा जाती है, बीज में अंकुर, अंकुर से पल्लव, पल्लव से शाखा, शाखा से फल और चारों ओर वृद्धि ही वृद्धि दिखाई देती है। इसीलिए तो इन ऋतुओं से बनने वाले वर्ष को 'संवत्सर' कहा जाता है। 'सम' का अर्थ है 'एक साथ मिलकर' और 'वत्सर' का अर्थ है—'वसने वाला'। इसी प्रकार पं० बुद्धदेव विद्यालंकार ने आगे बतलाया है कि इन ऋतुओं से जो यज्ञ सम्पन्न हुआ और उससे जो सस्य सम्पत्ति आदि उत्पन्न हुई, उनका भोजन-शाला में आकर पुनः संगठन हुआ। आटा आग्नेय पदार्थ था, जल सौम्य था, घृत अग्निषोमीय था। इनके साथ अग्नि का संयोग हुआ और उससे उत्तम भोजन का निर्माण हुआ। इस भोजन को खाने के लिए शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों ने प्रयत्न किया और उससे मानव शरीर में प्राणिजगत् में वीर्य की उत्पत्ति हुई। बालक का जन्म हुआ। बालक ने अपने आपको राष्ट्र के लिए अर्पण किया। राष्ट्र ने अपने आपको मानव विश्व के लिए अर्पण किया। मानव विश्व ने अपना कार्य ऐसी व्यवस्था से चलाया कि जिससे लता, वृक्ष, वनस्पति, पशु, पक्षी, जल, वायु आदि में किसीका अनुचित उपघात न हुआ और दोषों का नाश हुआ। इस प्रकार जिस पुरुष को ब्रह्माण्ड यज्ञ ने पैदा किया था फिर वह ब्रह्माण्ड यज्ञ को पूरा कर रहा है। इसीलिए वेद में कहा है 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा' अर्थात् देवताओं ने यज्ञ से यज्ञ किया। यही वास्तव में यज्ञ शब्द की संगठनात्मक तथा दानात्मक भावना है।

अभिप्राय यह है कि संसार यज्ञ है इसके अणु-अणु में गति है। इस वृक्ष की पत्ती-पत्ती कर्मशील है तो मनुष्य जिसका देह इन्हीं परमाणुओं से बना है, जो इस समष्टि शरीर का व्यष्टिमात्र अंश है, वह भी बिना कर्म के नहीं रह सकता। और उस कर्म के लिए संगतिकरण और दान की

आवश्यकता है । अतः प्राणियों को अपना सम्पूर्ण जीवन यज्ञमय बनाना चाहिए । यही यज्ञ की वास्तविक भावना है । अग्निहोत्र उसका प्रतीक है ।

संसार इसी यज्ञ भावना से चल रहा है । जब कोई वस्तु अपने को दूसरों के लिए मिटाती है तो उसकी अभिवृद्धि होती है । दीपक की बत्ती जब अपने को बलाकर मिटा देती है तब अँधेरे में भटकने वाले अपना मार्ग पहचानते हैं । जब बीज अपने को मिट्टी में मिला देता है तब वहाँ नया अंकुर पैदा होता है और एक दाने के स्थान पर सैकड़ों दाने उगते हैं । यही यज्ञचक्र है । यही यज्ञीय भावना है । यज्ञ या हवन इसी भावना का प्रतीक है । अग्नि में घृतादि पदार्थ डाले जाते हैं । अग्नि उनका भोजन करती है और स्वयं खाकर वह जिस प्रकार संसार को चेष्टा, तीव्रगति, उससे उत्पन्न होने वाला प्रकाश, चारों तरफ होने वाला सौरभ विस्तार, परस्पर उपकारता तथा आरम्भ और समर्पण की भावना का विस्तार करती है । यह यज्ञाग्नि यज्ञ के रूप में हमारी आत्मा में जलता पुरुषार्थ, जलता उत्साह, जलता तेज और जलती परोपकार की लगन लाती है ।

ब्रह्मयज्ञ—सन्ध्या

यज्ञ मानव जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु माने गये हैं । प्राचीन काल में वैदिक धर्मानुयायी पंच महायज्ञ किया करते थे । पंच महा-यज्ञों के ये नाम हैं—ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, भूत यज्ञ तथा नृयज्ञ अथवा अतिथि यज्ञ । ये नित्य-कर्म माने गये हैं । इन नित्य कर्मों के विषय में कहा गया है कि जो व्यक्ति इन कर्मों को अपने आत्मा, मन और शरीर को शुद्ध-शान्त करके करता है, उसे ज्ञान प्राप्ति से आत्मा की उन्नति प्राप्त होती है । शरीर के स्वास्थ्य से व्यवहार और परमार्थ के कार्यों की सिद्धि होती है । इनसे धर्मार्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति होती है । इनको प्राप्त होकर मनुष्यों को सुखी होना उचित है । इन यज्ञों में से हम सर्वप्रथम ब्रह्म यज्ञ पर विचार करेंगे । सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने लिखा है :—

"दो यज्ञ अर्थात् एक ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना-पढ़ाना, सन्ध्योपासना, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना-उपासना करना । दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ और विद्वानों की सेवात्संग करना । परन्तु ब्रह्मचर्य में केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का ही करना होता है ।"

ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका तथा पंच महायज्ञ विधि में स्वामी जी महाराज ने पंच महायज्ञ अर्थात् जो कर्म मनुष्यों को नित्य करने चाहिए उनका विधान संक्षेप में लिखा है । उनमें से प्रथम एक ब्रह्मयज्ञ कहलाता है । जिसमें अंगों के सहित वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना तथा सन्ध्योपासन

अर्थात् प्रातःकाल और सायंकाल में ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिए।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि यह ब्रह्मयज्ञ क्या है—इसके सम्बन्ध में स्वामी जी महाराज ने लिखा है :—

(१) **तत्रादौ ब्रह्म यज्ञान्तर्गत संध्या विधानं प्रोच्यते।**

(पंच महायज्ञ विधि)

अर्थात् ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत सन्ध्या का विधान कहते हैं।

(२) **तत्र ब्रह्म यज्ञास्यायं प्रकारः साङ्गाना वेदादि शास्त्राणां सम्यगध्ययनमध्यापनं संध्योपासनं च।** (ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका)

अर्थात् ब्रह्मयज्ञ की यह रीति है कि सम्पूर्ण वेदादि शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन और संध्योपासन।

(३) ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना-पढ़ाना, संध्योपासन, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना उपासना करना।

(सत्यार्थ प्रकाश समु० ३)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संध्या की अपेक्षा ब्रह्मयज्ञ का क्षेत्र विस्तृत है। सन्ध्या ब्रह्मयज्ञ का एक अंग है।

मनुस्मृति में भी ब्रह्मयज्ञ का उल्लेख है। वहाँ ब्रह्मयज्ञ के विषय में लिखा है—(१) अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः। (३.७०) (२) अहुतं च (३.७३) अहुत का अर्थ भी वहाँ दिया गया है—जपोऽहुतः (३.७४) (३) स्वाध्यायेनार्चयेतृषीन्।

इससे हमें पता चलता है कि मनुस्मृति के आधार पर अध्यापन, स्वाध्याय या अध्ययन और जप ये तीन ब्रह्मयज्ञ के अर्थ हैं। इस प्रकार अध्यापन और स्वाध्याय पठन और पाठन हुआ और जप का मतलब संध्योपासन हुआ।

मोनियर विलियम्ज ने भी अपनी संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी में ब्रह्म यज्ञ शब्द के विषय में लिखा है—

Recitation of portions of the Veda and Sacred books at the Sandhya.

अर्थात् सन्ध्या में वेद तथा वैदिक साहित्य के भागों का उच्चारण करना ब्रह्मयज्ञ है।

इस प्रकार ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत सन्ध्या भी मनुष्य के लिए आवश्यक कर्त्तव्य है। अब प्रश्न उठता है कि सन्ध्या का क्या अर्थ है? 'सन्ध्या' शब्द 'सं' तथा 'ध्यैङ्' शब्दों के मेल से बना है। 'सम्' उपसर्ग का अर्थ उत्तम प्रकार है। 'ध्यैङ्' का अर्थ है 'ध्यान करना'।

'सन्ध्या' शब्द का दूसरा अर्थ सन्धि, मेल व योग है। 'सन्ध्या' के समय साधक का प्रभु के साथ मेल व योग होता है इसलिए उसे सन्ध्या कहते हैं। 'सन्ध्या' शब्द का अर्थ 'संधौ भवा' सन्ध्या भी है। अर्थात् रात और दिन

के समय — दोनों सन्ध्याओं में—सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये।

सत्यार्थ प्रकाश तथा 'सन्ध्योपासनादि पंच महायज्ञ विधि' नामक पुस्तक में ऋषि ने सन्ध्या का अर्थ किया है : 'सन्ध्यायन्ति सन्ध्यायने वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या' भलीभाँति ध्यान करते हैं या ध्यान किया जाय परमेश्वर का जिसमें वह सन्ध्या है। परमेश्वर के ध्यान के लिए वातावरण का शुद्ध होना आवश्यक है। अतः मनुष्य को पहले अपने हृदय को शुद्ध बनाना होगा। और शुद्ध बनाने के लिए उसे प्रातः और सायं अपने किये हुए अच्छे और बुरे कर्मों का लेखा-जोखा तैयार करना होगा और प्रातःकालीन सन्ध्या के समय रात के पापों को दूर करने का निश्चय करना होगा। और उस समय भगवान् का सन्ध्या द्वारा स्मरण कर उसके गुणों को अपने में लाकर हमें व्यवहार करना होगा। इसलिए सन्ध्या का पहला प्रयोजन है, 'कृत-पापों के संस्कारों की निवृत्ति' अर्थात् मनुष्य के शुभाशुभ कर्मों के संस्कार उसके अन्तःकरण पर पड़ते हैं। अन्त-करण पर इकट्ठे होते हुए ये संस्कार ही मनुष्य के स्वभाव का निर्माण करते हैं। पुण्य संस्कारों का परिणाम पुण्य स्वभाव और पापी संस्कार का परिणाम पापी स्वभाव है। स्वभाव का परित्याग सहज नहीं अतः जो मनुष्य प्रतिदिन सन्ध्या करते हैं उनके पूर्व संचित पापों की मैल साफ होती जाती है। उनकी आत्मा स्वच्छ और बलयुक्त बनी रहती है। मनु महाराज ने मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में लिखा है:—

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्।

अर्थात् प्रातः की सन्ध्या से रात्रि भर के और सायंकाल की सन्ध्या से दिन भर के कुसंस्कार रूपी मल नष्ट होते हैं। सन्ध्या में बैठकर आत्म-निरीक्षण द्वारा अपने अंग-अंग के दोषों को खोजता है, पश्चात्ताप के आँसू बहाता है, अपने हृदय को शुद्ध करता है, तथा निर्मल, शान्त और तपोमय भगवान् के गुणों के चिन्तन से पाप रूपी मल प्रक्षालन होता है। इस प्रकार सन्ध्या का प्रथम उद्देश्य चरित्र-निर्माण है। जहाँ हम सन्ध्या द्वारा कृत पापों की निवृत्ति की कोशिश करते हैं वहाँ दूसरी ओर आत्म-निरीक्षण द्वारा अनागत पापों की प्रवृत्ति को नष्ट करने का प्रयत्न भी करते हैं। अपने में सुख, शान्ति लाने का सर्वोत्कृष्ट उपाय यही है कि हम अपना मुख प्रभु की ओर करें। जितने दर्जे तक हम अपनी एकता, अपना सम्बन्ध उस अनन्त प्रभु से करेंगे, जितने दर्जे तक हम उस ब्रह्मधारा को, प्रभु चिन्तन को अपने अन्तःकरण में स्थान देंगे उतने ही दर्जे तक हम उस महान् शक्तिशाली, सर्वोत्कृष्ट और सौन्दर्य-की मूर्ति के साथ सम्बन्ध कर शान्ति लाभ करेंगे। यही सन्ध्या के प्रमुख लाभ हैं। श्री नित्यानन्द वेदालंकार ने सन्ध्या के लाभ का वर्णन करते हुए लिखा है, "असीम के साथ सम्बन्ध स्थापित होने पर

शक्तियाँ विकसित और महान् बनती हैं। पानी की एक बूँद अपने आप में तुच्छ, अशक्त, सीमित और अनुपयोगी है परन्तु यही नन्ही बूँद जब विशाल समुद्र में गिरकर समुद्र के अनन्त जल के साथ अपने को मिला देती है तो समुद्र के स्वभाव, शक्ति, विशालता के साथ एकता प्राप्त कर लेती है; उस समय वह पानी की बूँद अशक्त नहीं, सीमित नहीं, तुच्छ नहीं। वैसे ही अग्नि तथा उपासना द्वारा असीम और महान् प्रभु से निकट सम्बन्ध स्थापित कर लेने पर मनुष्यों की शक्तियों की योग्यता बढ़ जाती है। यह भी सन्ध्या का एक लाभ है।

इसके अतिरिक्त अदीनता और निर्भयता की भावना भी संन्ध्या के द्वारा मन में आती है। सचमुच संध्या में जब मनुष्य का मन लग जाता है, उस समय वह अनुभव करता है कि यह पवित्र परमात्मा आनन्द-शान्ति का स्रोत है। ज्यों ही संन्ध्या में लीन होकर उपस्थान मन्त्रों के साथ हम इस प्रभु से एकता स्थापित कर लेते हैं त्योंही शान्ति और एकता की धारा का रसास्वादन हमें मिलने लगता है; क्योंकि शान्ति का अर्थ है प्रभु के साथ एकत्व की स्थापना। मनुष्य शान्ति और सुख चाहता है। वह इसके लिए दूसरे देशों की यात्रा करता है, पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है, तीर्थों की हवा खाता है, हरिद्वार में जाकर गंगाजी में डुबकियाँ लगाता है, मुक्ति की तलाश में काशी और प्रयाग की धूल फाँकता है। उसे चाहिए कि वह यदि शान्ति चाहता है, तो अपने अन्तःकरण में खोजे और यह बिना संध्या के सम्भव नहीं। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के शब्दों में आइए हम भी गान करें—

आओ प्यारे तुम्हें मिलावें,
वैद्यराज उस ईश्वर से।
जिसके निकट रोग नहीं आवे,
ऐसे उस जगदीश्वर से॥
सब दुःखों का हरने वाला,
जगन्नियन्ता स्वामी है।
जीवन-ज्योति जलाने वाला,
घट-घट अन्तर्यामी है॥
एक बार जब मन-मन्दिर में,
ब्रह्मज्ञान की धार बहे।
जन्म-जन्म के गन्द-फन्द का,
कुछ भी शेष न चिह्न रहे॥
बाह्य-जगत् से मन हट जाए,
अन्तर्नाद सुनाई दे।
हृदय पटों के खुल जाने से,
दिव्य प्रकाश दिखाई दे॥

परब्रह्म में श्रद्धा रख तू,
रोग निकट नहीं आवेगा ।
जीवन शुद्धि यदि हो जावे,
तभी मनुज पद पावेगा ।।
यही निवेदन देव करे,
अब दूर करो सब मनोविकार ।
नीरोगी यह मन हो जावे,
तभी मिलेगा ब्रह्मद्वार ।।

ब्रह्मयज्ञ—स्वाध्याय

संध्या शब्द का एक अर्थ है ब्रह्म का सम्यक् ध्यान । मनुस्मृति में ब्रह्म यज्ञ के जो तीन अर्थ बतलाये गये हैं उनमें अध्यापन, स्वाध्याय या अध्ययन तथा जप का उल्लेख है । अध्ययन-अध्यापन को हम स्वाध्याय और प्रवचन के अन्तर्गत रख सकते हैं । योग दर्शन में अध्ययन और अध्यापन को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है और नियमों के अन्तर्गत "शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय प्रणिधानानि नियमाः' के अनुसार स्वाध्याय को नियमों के अन्तर्गत माना गया है । उपनिषदों में भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां मा प्रमदितव्यम्' स्वाध्याय और प्रवचन के विषय में आलस्य नहीं करना चाहिए ।

मनुष्य जीवन में शिक्षा प्राप्त करता है परन्तु यदि उसने शिक्षा प्राप्त करने के बाद उसका मनन-चिन्तन और उसे क्रियारूप में परिणत न किया तो वह ज्ञान और वह शिक्षा मनुष्य को साक्षर तो बना देती है परन्तु वह 'राक्षस' बन जाता है । मनन की हुई शिक्षा और ज्ञान मनुष्य को मनुष्य बनाता है और यह बिना स्वाध्याय के सम्भव नहीं । इसीलिए प्राचीन लोगों ने और उपनिषद्कारों ने स्वाध्याय को बहुत अधिक महत्त्व दिया है । संसार में पुस्तकों का और शास्त्रों का चाहे कितना ही विकास क्यों न हो; लेकिन जब तक मनुष्य जीवन-कला नहीं साधता तब तक सब कुछ व्यर्थ होगा । महात्मा टालस्टाय कहते थे कि "पहले यह सीखो कि समाज में एक-दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए ।" संत लोग बताते हैं कि किस प्रकार जीवन मधुर बनाना चाहिये । रेडियो सुनने से संगीत नहीं सीखा जा सकता है । पुस्तकों और ग्रन्थों के पढ़ने से जीवन आनन्दमय नहीं बन सकता है । आनन्द अन्तरंग में ही शुरू हो जाना चाहिए । जीवन का यह संगीत स्वाध्याय सिखाता है । वह हृदय में प्रकाश करता है । बुद्धि को सम बनाता है । प्रेम की आँखें देता है और मानवता का मार्ग दिखलाता है । मन में काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष सभी सर्प के दाँतों को गिराता है । यह स्वाध्याय, द्वेष,

मत्सर ग्रादि सिंहों को बकरी बना देता है। इस प्रकार स्वाध्याय एक बहुत बड़ा जादूगर है।

इस 'स्वाध्याय' के दो रूप हैं—चिन्तन या मनन तथा सत्संग। चिन्तन ग्रौर मनन में सत्संग से बहुत सहायता मिलती है। किसी ने कहा है—

'बहुतसा सज्जन का सत्संग।
बनता भवसागर की नाव सुरंग'

सज्जन मनुष्यों के पास रहने से पुस्तकों में पढ़े हुए गुणों की सत्यता का भास होता है। भगवान् बुद्ध के जीवन की एक घटना याद ग्रा रही है—

एक बार भगवान् बुद्ध नगर के बाहर एक बड़े भारी बगीचे में ठहरे हुए थे। उनके दर्शनों के लिए सभी लोग जाते थे। एक दिन एक राजा ग्रकेला ही उनके दर्शनों के लिए जा रहा था। उसके साथ ही कुछ दूर पर एक धनी व्यापारी भी जा रहा था। उन्होंने रास्ते में कमल का फूल हाथ में लेकर ग्राते हुए एक माली को देखा। कमल सुगन्धित था। उन दिनों कमल दुर्लभ था। दोनों ने सोचा कि माली से फूल लेकर हम उसे भगवान् बुद्ध के चरणों पर चढ़ाएँगे ग्रतः माली से फूल का मोलभाव होने लगा ग्रौर दोनों ही एक-दूसरे से बढ़कर दाम बोलने लगे। कमल की बढ़ती हुई कीमत को देखकर माली ने मन में कहा, "ये लोग जिसके पास कमल ले जा रहे हैं, यदि उसके पास मैं ही कमल ले जाऊँ तो मुझे भी ज्यादा कीमत मिलेगी। इस विचार से वह माली बोला—"मैं किसी को भी नहीं दूँगा, ग्राप लोग जाइये।"

राजा ग्रौर साहूकार जाने लगे। माली भी उनके पीछे-पीछे चला। भगवान् बुद्ध एक शिलाखण्ड पर बैठे थे। हजारों लोग उनका उपदेश सुन रहे थे। राजा ने वन्दन किया ग्रौर शान्त भाव से दूर जाकर बैठ गया। उनके पीछे माली था। माली भी प्रणाम करके फूल वहाँ रखकर दूर बैठ गया। उसके मन में पैसों के स्वार्थी विचार ग्रा ही न सके। यह है सत्संग का प्रभाव। वास्तव में सत्संग द्वारा हम जिसके सहवास में रहते हैं, उसके जीवन का प्रभाव हम पर इस प्रकार पड़ता है कि जीवन की मिट्टी मोती के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

जीवन में सफलता प्राप्त करने में यह स्वाध्याय बड़ी सहायता करता है। बहुत से ग्रादमी योग्यता रहते हुए भी ग्रपने सारे जीवन में बहुत ही कम काम कर पाते हैं क्योंकि वे स्वाध्याय के ग्रभाव के कारण निराशाजनक प्रेरणाग्रों के बुरी तरह शिकार हो जाते हैं। वे चिन्तन ग्रौर मनन के ग्रभाव तथा सत्संग की कमी के कारण लाचारी के विचारों के शिकार हो जाते हैं ग्रौर उनकी कार्य-शक्ति समाप्त हो जाती है। यदि हम स्वाध्याय या मनन करेंगे तो हमें ग्रपनी ग्रात्मिक शक्ति का बोध होगा। उस दशा में यदि

आप समृद्ध होना चाहते होंगे तो समृद्धि के मार्गों का मनन करेंगे, शूरवीर और बहादुर होना चाहेंगे तो ऐसे ही विचारों का चिन्तन करेंगे। आत्म-प्रेरणा में बड़ी शक्ति भरी हुई है। आप स्वाध्याय द्वारा ऐसा मार्ग चुनिये जिससे आपकी मानसिक प्रेरणा अपने आप विजय, वृद्धि, उन्नति, उच्चता के लिए स्फुरित हो। स्वाध्याय आत्मा के उस प्रकाशमय मार्ग का दर्शन कराता है, उस जीवन के कक्ष में ले जाकर बैठा देता है जहाँ दुःख, दरिद्रता, कष्ट और हीनता की भावना कभी आ ही नहीं सकती। विचार ही शक्ति है। और स्वाध्याय विचारों का उद्बोधन करता है। हम और हमारी आवश्यकताएँ विचारों के फल हैं। हम अपने विचारों के बाहर नहीं जा सकते और इन उत्तम विचारों का जनक यह स्वाध्याय है।

किसी व्यक्ति का कथन है, "मानवीय कर्त्तव्य बस इस बात में समा गया है कि पहले यह जान लेना कि हम क्या होना चाहते हैं और फिर निरन्तर उसी का विचार करते रहना।"

एक पौराणिक कथा है। एक बार सब देवताओं में विश्व की परिक्रमा करने की होड़ लगी। कौन सबसे पहले सारी पृथ्वी का चक्कर लगाकर आता है—इसका निश्चय करने के लिए सभी देवता अपने-अपने वाहन पर बैठकर चल पड़े। सभी के वाहन तेज चलने वाले थे—रथ, घोड़ा, सिंह आदि। गणेश जी का वाहन चूहा था। सभी गणेश जी पर हँसे। दौड़ शुरू हुई। गणेश जी सबसे अन्त में वापस पहुँचे। जब निर्णायक ने गणेश जी को विजयी घोषित किया तो सबके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने कारण पूछा। निर्णायक ने कहा—"गणेश जी की विजय का रहस्य इस बात में है कि उन्होंने आप सबकी तरह केवल विश्व की परिक्रमा नहीं की बल्कि अपने चारों ओर भी एक चक्कर लगाया है। आप सब तो संसार का चक्कर लगाकर जल्दी पहुँचने की उत्सुकता में अपने आप को भूल गये थे। गणेशजी ने इस ज्ञान को समझा कि संसार का ज्ञान अधूरा है जब तक मनुष्य को अपने आपका ज्ञान न हो। यह है 'स्वाध्याय' या 'आत्म साक्षात्कार' का तात्पर्य। बाहरी सहायता से हम आत्म-विकास नहीं कर सकते। जैसे-जैसे मनुष्य अपने को अधिक जानता है, वैसे-वैसे उसका अधिक विकास होता जाता है। यह स्वाध्याय के द्वारा ही सम्भव है।

ग्रीक देश के विशाल डैलफिन मन्दिर के द्वार पर अंकित ये अमर शब्द 'अपने को पहचानो—आत्म-साक्षात्कार करो या स्वाध्याय करो' उस देश के सात बुद्धिमान् महापुरुषों के ज्ञान का सार है। इसीलिए उपनिषदों में भी कहा है—'स्वाध्यायान्मा प्रमदः'। स्वाध्याय में आलस्य मत करो। ब्रह्मयज्ञ के अन्दर स्वाध्याय ही नहीं आता, वहाँ अध्यापन या प्रवचन भी ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत आता है। हमने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उस ज्ञान का विस्तार और प्रचार करना, यह भी स्वाध्याय है। प्रवचन के लिए ज्ञान की

स्पष्टता आवश्यक है और यह स्पष्टता बिना स्वाध्याय के सम्भव नहीं। गुरु अपना सारा ज्ञान शिष्य को दे देता है। वह अपने पास छिपाकर कुछ भी नहीं रखता है। अपना महत्त्व कहीं कम न हो जाय, इस डर से अपने ज्ञान की सारी पूँजी न देने वाले अहंभावी गुरु बहुत हैं, वे गुरु नहीं हैं। उनका ज्ञान उनके साथ ही मर जाता है। ऐसा कौन चाहेगा कि हमने जिस ज्ञान की उपासना की वह मिट जाय? सच्चा ज्ञानी या गुरु तो यही चाहता रहता है कि ज्ञान का वृक्ष बढ़ता रहे। हमने जो कुछ कमाया है उसे दे डालना चाहिए। एक दिन रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द से कहा "मैं आज तुझे सब कुछ दे डालता हूँ। मैं अपनी सारी साधना आज तुझमें उंडेल देता हूँ।" यह है प्रवचन का स्वरूप।

हमारे गुरुओं या पूर्वजों से जो ज्ञान हमें प्राप्त हुआ है, उसके प्रति आदर, उनके सदनुभवों के प्रति आदर, उनके प्रयत्नों के लिए आदर, उनके साहस और उनकी ज्ञान-निष्ठा के लिए आदर यही प्रवचन है। गुरु की वास्तविक पूजा यही है कि हम अपने गुरुओं के विचारों को, उनके अनुभवों को और उनके ज्ञान को जीवित रखें। यह प्रवचन द्वारा ही सम्भव है। इसीलिए कहा है, 'स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां मा प्रमदितव्यम'। स्वाध्याय और प्रवचन के प्रति प्रमाद मत करो—आलस्य मत करो।

यही ब्रह्मयज्ञ है।

उत्कर्ष की राह : देवयज्ञ

पंच महायज्ञों के नाम हैं ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ। सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास में लिखा है कि दो यज्ञ अर्थात् एक ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना, पढ़ाना, सन्ध्योपासना, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना है। दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ और विद्वानों की सेवा, संग करना है। परन्तु ब्रह्मचर्य में केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का ही करना होता है।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में आया है, "संन्यासियों के लिए अग्निहोत्र है प्राण और अपान का परस्पर होम तथा दोषों से मन और इन्द्रियों का सदा निवर्तन और सत्यधर्म का अनुष्ठान।"

इस प्रकार देवयज्ञ के दो रूप हमारे सामने आते हैं; एक अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ और दूसरा विद्वानों की सेवा-संग करना। इसमें अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ वास्तव में अनेक भावनाओं के प्रतीक हैं। उन भावनाओं का मूल त्याग है। इस संसार में जो मनुष्य उत्पन्न हुआ है, वह कर्म छोड़कर जीवित नहीं रह सकता है। कर्म करना मनुष्य की प्रकृति में निहित है। परन्तु यज्ञ हमें वह भावना अपने में लाने की प्रेरणा

करता है जिससे हम कर्म करते हुए भी उसके फल की ग्राशा न करें। इसीलिए गीता में कृष्ण भगवान् ने कहा है कि जो लोग जीवन को यज्ञमय बना लेते हैं, वे ग्रपने ग्राप 'निष्काम कर्म' करने लगते हैं। गीता में लिखा है—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तः मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः।
भुंजते ते त्वघं पापाः ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

जीवन को यज्ञ समझकर चलो। यज्ञ का ग्रभिप्राय है त्याग। जो मनुष्य ग्रपने हृदय से स्वार्थ के भावों को निकाल देता है, जो ग्रपने भौतिक सुखों के लिए दूसरों को कष्ट नहीं देता, वह पुरुष यज्ञमय हो जाता है। वह मनुष्य ग्रपने को परमेश्वर के सहारे छोड़ देता है ग्रौर हम यह कहें कि जिस प्रकार परमेश्वर इस संसार में ग्रपने लिए कोई स्वार्थ नहीं रखता, उसी प्रकार हो जाता है तब वह ग्रपने घमण्ड को, ग्रभिमान को, मैं पने को मिटा देता है। उस समय वह मैं कुछ नहीं, तू ही सब कुछ है, मेरा कुछ नहीं, सब तेरा ही तेरा है—'इदन्न मम' यही भावना उसमें ग्रा जाती है ग्रौर उस समय कबीर के शब्दों में हम कह सकते हैं, "ग्रापा मेट जीवित मरे तो पावे करतार।" उसे भगवान् की प्राप्ति हो जाती है। 'इदन्न मम' यही यज्ञ की वास्तविक भावना है। यदि यही भावना हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य में ग्रनुप्राणित कर दी जाय, तब तो प्रत्येक कार्य यज्ञ हो गया, जीवन ही यज्ञमय हो गया। यज्ञमय नि:स्वार्थ जीवन बिताने वालों को गीता में 'ग्रात्मरत', 'ग्रात्मतृप्त', 'ग्रात्म-संतुष्ट' कहा गया है। वह ग्रपने में रमा हुग्रा है, ग्रात्म में भरा हुग्रा, ग्रपने ग्रात्मा में संतुष्ट है। स्वार्थमय जीवन बिताने वाले को 'इन्द्रियाराम' कहा गया है। वह इन्द्रियों के साथ खेलता है। ग्रात्मा से दूर भागता है।

इस 'इन्द्रियाराम' व्यक्ति को जीवन का वास्तविक ग्रानन्द कभी प्राप्त नहीं होता। वह तो सांसारिक भोग-विलासों के प्रति भटकता रहता है ग्रौर वे उसे प्राप्त नहीं होते। स्वामी रामतीर्थ ने ठीक ही लिखा है कि जो मनुष्य छाया के पीछे भागता है वह छाया को कभी नहीं पकड़ सकता। छाया को ग्रपने पीछे चलाने की इच्छा वाले को चाहिए कि वह छाया से मुँह मोड़ ले तो छाया उसके पीछे भाग रही होगी। साँसारिक ऐश्वर्य ग्रौर कामनाएँ भी तो ऐसी ही हैं। उनके पीछे जो व्यक्ति भागता है, उससे ये भागती हैं ग्रौर जो इनसे मुख मोड़ लेता है उसका ये ग्रनुसरण करती हैं।

'देवयज्ञ' भी त्याग का सूचक है। हम यज्ञ में ग्राहुति डालते हैं। इस ग्राहुति द्वारा हमें त्याग की प्रेरणा ग्रपने हृदय में रखनी चाहिए। यज्ञ शब्द के तीन ग्रर्थ हैं, देवपूजा, संगतिकरण ग्रौर दान। दान का ग्रर्थ है त्याग। यह त्याग शरीर का हो सकता है, शक्ति का, प्राण का, जीवन का ग्रौर धन

का हो सकता है। प्रत्येक आहुति 'इदन्न मम' के साथ यज्ञकर्त्ता में त्याग की भावना भरती है। यह आहुति सिखलाती है कि अधीर मत बनो, फल के लिए लालायित मत रहो, विह्वल मत बनो। महान् फल चुटकी मारते ही नहीं मिलते। उसके लिए अनन्त साधना और अखण्ड अविरत श्रम की आवश्यकता रहती है। बरगद का बड़ा पेड़ दो दिन में इतना नहीं बढ़ता। मेथी की सब्जी दो दिन में उग आती है और चार दिन में सूख जाती है लेकिन एक बार बरगद का पेड़ जम जाता है तो फिर हजारों लोगों को छाया देता है। उसकी शाखाएँ आकाश को छूने लगती हैं। उसका सिर आकाश से लग जाता है और जड़ें पाताल में चली जाती हैं। लेकिन यह स्पृहणीय और महान् प्रसार, इस महान् वैभव को प्राप्त करने के लिए पत्थर-कंकर में जड़ें जमाने के लिए उस वट वृक्ष को कितने ही वर्षों तक प्रयत्न करना पड़ता है।

यज्ञ इसी कर्म भावना का सूचक है। फल के त्याग की आवश्यकता है। फल का सतत् चिन्तन करने की अपेक्षा जो व्यक्ति अपने को कर्म में ही लगा लेता है उसे अधिक बड़ा फल मिलता है क्योंकि पद-पद पर फल की चिन्ता करते रहने वाले का बहुत-सा समय चिन्तन में ही चला जाता है। जो किसान पद-पद पर यह चिन्ता करता हुआ बैठा रहे कि यदि वर्षा न हुई तो, अच्छा भाव नहीं हुआ तो, चूहे लग गये तो, और फल की चिन्ता करता रहे तो उसके मन में अनन्त आशा नहीं रह सकेगी, उसके कर्म उत्कृष्ट नहीं हो सकेंगे। इसके विरुद्ध जो किसान कर्म में रंग गया है, खाद डालता है, सिंचाई करता है, निराई करता है और दूसरी बात सोचने का जिसके पास समय नहीं, इसमें शंका नहीं, कि उसे उत्कृष्ट फल मिलेगा। यही त्याग की भावना 'आत्मतुष्टि' होने की भावना को जन्म देती है।

यज्ञ भावना का सबसे सुन्दर उपदेश यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में दिया गया है, 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्वित्-द्धनम्!' "इसलिए वैराग्य भाव से भोग करो, लालच मत करो, यह धन किसका है?" आनन्द स्वामी जी महाराज ने 'तत्वज्ञान' नामक पुस्तक में लिखा है "वैराग्य यह नहीं कि सब कुछ छोड़-छाड़ और त्यागकर राख को वस्त्र बनाकर वन के वृक्ष के मूल में डेरा लगा लिया जाय। सनातन वैदिक संस्कृति में ऐसे वैराग्य का विधान है, जो क्रिया में आ सके।" यही वैराग्य ऊपर के मन्त्र में बतलाया गया है। भगवान् ने अपने सामर्थ्य से जो संसार रचा है, वह जीव के भोग तथा अपवर्ग के लिए है। भोग तो भोगने ही होंगे, इन्हें प्रसन्नता से भोगो परन्तु त्याग भाव से भोगो। इनमें फँस न जाओ। यह शरीर एक नाव है। इस पर बैठकर संसार सागर से पार तभी जा सकोगे जब भोगों का जल नाव में भरने न पाए। यदि भोगों का जल भर गया तो नाव डूब जायेगी। डूब मरने से बचने का एक ही उपाय है कि

संसार के सारे कार्य यज्ञ की भावना से किए जाएँ। वेद में इसीलिए तो आदेश दिया गया है :—

'यज्ञो यज्ञेन कल्पन्ताम्' 'सारे यज्ञ प्रभु की प्रसन्नता में समर्पण कर।' इसी बात को स्वामी दयानन्द महाराज ने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में लिखा है, "जो प्रत्यक्ष प्रमाण और आँख, जो श्रवण विद्या और शब्द प्रमाणादि, वाणी, मन और विज्ञान, जीव तथा चारों वेदों को पढ़ के जो पुरुषार्थ किया है, जो प्रकाश, जो सब सुख, जो उत्तम कर्मों का फल और स्थान, जो तीन प्रकार का यज्ञ किया जाता है, ये सब ईश्वर की प्रसन्नता के अर्थ समर्पित कर देना आवश्यक है। जो स्तुति का समूह, सब क्रियाओं की विद्या, ऋग्वेद अर्थात् स्तुति-स्तोत्र, सब भान करने की विद्या, अथर्ववेद की विद्या, बड़े-बड़े सब पदार्थ और शिल्प विद्या आदि के फलों में से जो फल अपने अधीन हों वे सब परमेश्वर के समर्पण कर देवे क्योंकि सब वस्तु ईश्वर ही की बनाई है।"

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागत है मोर॥

अग्नि होत्र इसी संकल्प या भावना को जागृत करने के लिए किया जाता है। अग्निहोत्र दोनों समय करने के पीछे भी यही भावना है। देव-यज्ञ का मुख्य पदार्थ अग्नि है। इस अग्नि को अविश्रान्त परिस्पन्द के द्वारा धीरे-धीरे सूर्य की अवस्था तक पहुँचाना यही अग्नि होत्र की सफलता है। और जिस समय यह संकल्पाग्नि सूर्य की तरह प्रकाशित हो जायेगी, उस समय अपने और पराये की भावना समाप्त हो जायेगी। यज्ञ भी प्रभु-भक्ति का रूप है। व्यवस्थित जीवन और व्यवस्थित समाज का सूचक है। पं० बुद्धदेव विद्यालंकार ने यज्ञ के सिद्धान्तों का निम्न रूप में वर्णन किया है :—

१. **उद्देश्य प्रणिधान**—यज्ञ का उद्देश्य संगठन है। संगठन किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है। इसलिए यज्ञ का उद्देश्य है, जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यज्ञ किया जाय उसके लिए अपने को अर्पित करना। इस प्रकार समान उद्देश्य के लिए अपने आपको अर्पित करने को हम यज्ञ भावना या उद्देश्य प्रणिधान कह सकते हैं।

२. **ईर्ष्या-विजय**—यज्ञ भावना का सबसे बड़ा शत्रु ईर्ष्या है। ईर्ष्या स्वार्थ का रूप है। क्योंकि मनुष्य जब दूसरे को अपनी अपेक्षा उन्नत होते देखता है, तब वह ईर्ष्या करता है और संगठन को सबसे बड़ी क्षति इसी ईर्ष्या से पहुँचती है। ईर्ष्या संगठन की परवाह नहीं करती। संगठन भले ही नष्ट हो जाय परन्तु ईर्ष्यालु मनुष्य उसके नाश में आनन्द अनुभव करेगा। इसलिए संगठन को मजबूत बनाने के लिए ईर्ष्या-विजय आवश्यक है।

३. **विश्वेदेवाः यजमानश्च**—यज्ञ में यजमान और ब्रह्मा इत्यादि दोनों का होना आवश्यक है। यजमान के बिना यज्ञ हो नहीं सकता। ब्रह्मा

इत्यादि के बिना यज्ञ चल नहीं सकता। ऋत्विक् यजमान के पूज्य हैं और यजमान ऋत्वजों का पूज्य है। इस तरह संगठन में भी यदि सभी त्यागी हों और नेता हों तब भी वह संगठन व्यवस्था के बिना नहीं चल सकेगा। यज्ञ को ठीक तरह चलाने के लिए नेता और पीछे चलने वालों की व्यवस्था होनी चाहिए। इसलिए अग्निहोत्र के दूसरे मन्त्र में कहा गया है—

अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत। "इस मिलकर बैठने के स्थान में सब देव और यजमान बैठो।" यही यजमान का अन्य देवों से पृथक्करण संगठन के इस मौलिक रहस्य को बता रहा है कि जब एक शासन करने वाला पृथक् न हो, यज्ञ नहीं हो सकता।

४. अनासक्ति—'इदन्न मम' में अनासक्ति की भावना का ध्यान है। फल की प्राप्ति होने पर यदि हम मदोन्मत्त हो जायेंगे तो यह प्राप्त फल भी नष्ट हो जायेगा।

५. निचुम्पुण भावना—प्राय: मनुष्य जोश में आते हैं तो कार्य बड़ी तेजी से प्रारम्भ कर देते हैं। दो-चार दिन खूब ठीक कार्य करके वे जब फल की प्राप्ति नहीं देखते तो हताश हो जाते हैं। वेद में कहा है—

"आ नो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धास: उद्भिद:" अर्थात् हमारे सब कार्य उद्भिद हों। जिस प्रकार वृक्ष पहले बीज मात्र होता है और फिर अंकुर, शाखा, प्रशाखा क्रम से ऊपर की ओर बढ़ते हैं। इसी प्रकार पहिले छोटे हों और फिर धीरे-धीरे बढ़ते जावें। इससे उल्टा न हो। अग्निहोत्र में इसी भाव को सामने रखकर हवनकुण्ड की रचना नीचे से छोटी और ऊपर से चौड़ी (Growing upwords) की गई है। इसलिए जो इसके विपरीत चलते हैं वे आरम्भशूर नष्ट हो जाते हैं।

६. अदब्धता—अदब्धता का अर्थ है कार्य को करने के लिए कम-से-कम समय और शक्ति का खर्च करना। यज्ञकुण्ड जिस प्रकार 'उद्भिद' होता है वैसे ही 'विश्वतो अदब्धास:' भी होता है। अर्थात् चारों ओर से वर्णाकार, अदब्ध (Uncrooked) होता है।

७. वषट्कार और स्वाहाकार—कर्म इस प्रकार करना चाहिए कि प्रत्येक कदम के बाद हम 'स्वाहा' ठीक हो गया, यह कह सकें। 'वषट्कार' का अर्थ है अधकचरा काम करके सन्तुष्ट न रहना। वषट्कार का स्वरूप भी पं० बुद्धदेव विद्यालंकार ने ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर इस प्रकार बतलाया है :—

वज्रो वै वषट्कार:	श० १. ३. ३. १४।
देव्यानां वा एष यद् वषट्कार:	श० १. ७. २. १३।
एते वै वषट्कारस्य प्रियतमे तनू यदोजश्च सहश्च	कौ० ३. ५।
ओजश्च वै सहश्च वषट्कारस्य प्रियतमे तन्वौ	ऐतरेय ३. ८।

वषट्कार के दो रूप हैं। एक भड़कीली और तीव्र गामिनी है, दूसरी अड़ियल। किसी कार्य को पूर्णता तक पहुँचाने के लिए इन दोनों गुणों की आवश्यकता होती है। कुछ मनुष्यों में उड़ान होती है पर धैर्य नहीं होता और कुछ में धैर्य होता है परन्तु पुरानी प्रथाओं से चिपटे रहते हैं। वे 'तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणः क्षारं जलं कापुरुषा पिबन्ति'। बाप दादों का कूप है अतः खारा पानी पीते रहते हैं। यज्ञशील मनुष्य में ओजस्विता और सहिष्णुता होनी चाहिए।

८. **स्विष्टकार**—'वषट्कार' का भाव है कार्य का कोई अंग न छूटे। स्विष्टकार का अर्थ है कि नियत क्रम से न्यून अथवा अधिक न हो। स्विष्टकार का भाव स्विष्टकृत मन्त्र में स्पष्ट है :

'यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचम् यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत् स्विष्टकृद्विद्यात्।

अर्थात् अग्नि स्विष्टकृत् है, मैंने यदि इस कार्य में कुछ अधिक किया अथवा न्यून किया तो स्विष्टकृत अग्नि जाने।

९. **यज्ञ चक्र**—यज्ञ का तात्पर्य है, बड़े समुदाय के लिए छोटे समुदाय का अपने को अर्पण करना। इस संसार में यज्ञ चक्र चल रहा है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के लिए सहयोग दे रहा है। इसी बात को ध्यान में रखकर हमें समाज में रहना है।

१०. **ब्रह्म प्रणिधान**—सम्पूर्ण कार्य अन्त में परमेश्वर के प्रति अर्पित करने से मनुष्य में निरभिमानिता आती है। वह समाज से बदले में उपकार का बदला नहीं चाहता। उसे प्रभु की प्रसन्नता का मधुरतम फल प्राप्त होता है। दादू दयाल के शब्दों में हम कह सकते हैं :—

जो कुछ तुम हमको दिया, सो सब तुम्हीं लेहु।
तुम बिन मन मानै नहीं, दरस आपणा देहु॥

प्यारे प्रभु जो कुछ तुमने दिया, वह सब तुम्हीं ले लो। हमें तो बस तुम्हारा दीदार चाहिए।

क्या करें बिना तुम्हें देखे यह निगोड़ा मन मानता ही नहीं।

इन भावनाओं को ध्यान में रखकर यज्ञ करने से हमें यज्ञ में सफलता मिल सकती है।

पितृ-यज्ञ

पितर कौन है? माता, पिता, गुरु, आचार्य, संन्यासी पितर हैं। या वे सभी लोग जो हमारा उपकार करते-करते क्षीण हो गए हैं, असमर्थ हो गए हैं, जिनके शरीर में अपने जीवन-यापन का कोई सामर्थ्य शेष नहीं है, पितर कहलाते हैं। जिन्होंने हमें पाल-पोस कर बड़ा किया, जिन्होंने हमारे

जीवन के लिए सब प्रकार की सुविधायें और सुख दिये, जिन्होंने हमें अप अनुभव और ज्ञान दिया और जो अब अपनी शारीरिक क्षीणता के कार भले ही कुछ न दे सकें, वे सभी हमारी सहायता के पात्र हैं। वास्तव में उन सहायता कर हम उन पर कोई अहसान नहीं करते हैं परन्तु वहाँ उन सेवाओं के प्रति हम अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे होते हैं, उनके उपकारों का स्मरण करते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में, प्राचीन साहित्य में लोगों के लिए दिया गया अन्न या सम्पत्ति "स्वधा" नाम से कही जाती है स्वधा शब्द का अर्थ होता है स्व—का अर्थात् अपनों को धारण करने वा अन्न। इन पितरों को हम इन भागों में बाँट सकते हैं।

(१) माता (२) पिता और (३) आचार्य।

भारतीय या वैदिक संस्कृति में माता-पिता, गुरु, वन्दनीय औ पूजनीय पुरुषों की पूजा तथा शुश्रूषा करना भी सर्वमान्य धर्मों में से ए प्रधान धर्म माना गया है। यदि ऐसा न हो तो समाज, कुटुम्ब औ विद्यालयों की व्यवस्था ठीक-ठीक न चल सकेगी। यही कारण है कि सि स्मृति ग्रन्थों में ही नहीं अपितु उपनिषदों में भी 'सत्यं वद', 'धर्म चर' व उपदेश देने के बाद घर जाते हुए विद्यार्थी को गुरु यही उपदेश देता थ कि 'मातृ देवो भव', 'पितृ देवो भव', 'आचार्य देवो भव' (१. ११. १ और ४ महाभारत के ब्राह्मण-व्याध आख्यान का तात्पर्य भी यही है (वन अ० ३१३) इन तीनों में कौन अधिक श्रेष्ठ है, यह वास्तव में तुलना का विषय नहीं पर, मानव का सम्बन्ध सबसे अधिक माता से होता है। पिता दूसरी स्त्र से विवाह कर लेने के बाद अपनी पहली स्त्री के पुत्र के साथ दुर्व्यवहार क सकता है परन्तु माता कभी अपने पुत्र के प्रति कुमाता नहीं हो सकती है इसलिए तो गुप्त जी ने कहा है, "माता न कुमाता पुत्र कुपुत्र भले ही।" मनु स्मृति में मनु महाराज कहते हैं :—

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

मनु० २। १४५

दस उपाध्यायों से आचार्य और सौ आचार्यों से पिता एवं हजा पिताओं से माता का गौरव अधिक है। ऐसा क्यों है? माता शब्द का अ ही होता है 'माता निर्माता भवति'। वास्तव में बालक का निर्माण करने वाल माता ही तो होती है। वैदिक रीति से किए जाने वाले संस्कारों में मात का महत्त्व बहुत अधिक प्रतिपादित है। पुँसवन संस्कार के समय माता क सम्बोधन करके कहा जाता है, "आ वीरो जायताम् पुत्रस्ते दशमास्य: अर्थात् दस मास तेरी कोख में रह कर तेरा वीर पुत्र उत्पन्न हो। जीवन प्रारम्भ से ही माता अपने प्रबल सशक्त विचारों से, अपनी वेगवती संस्कार की धारा में अपने पुत्र को जीवन की दिशा देने लगती थी। पुँसवन संस्का

०

ालक के भौतिक शरीर के निर्माण के समय का संस्कार है। सीमन्तोन्नयन स्कार के समय बालक के मस्तिष्क या मानसिक शरीर का निर्माण प्रारम्भ ाता था। माता के बाल सँवारे जाते थे, उसे अपने सिर का, मस्तिष्क का वशेष ध्यान रखने को कहा जाता था। माता के सामने घी का कटोरा खकर पिता पूछता था, "किं पश्यसि" इस कटोरे में क्या देखती हो? माता हती थी, "प्रजां पश्यामि" मैं इसमें अपनी सन्तान को देखती हूँ। दिन-रात पनी सन्तान के निर्माण में माता लीन रहती है। माता के गर्भ में बने बालक ा परिवर्तन सम्भव नहीं। अमेरिका के प्रैसिडेन्ट गारफील्ड का घातक गीटू ब पेट में था तब उसकी माता गर्भपात की औषधियाँ खाकर उसे गिराना ाहती थी। वह न गिरा परन्तु माता के संस्कारों ने उसे हत्यारा बना दिया। स बिस्मार्क जिस माता के गर्भ में था वह अपने घर-द्वार पर लगे हुए पोलियन की सेना के तलवारों के चिह्नों को जब देखा करती थी तब उसके दय में फ्रांस से बदला लेने की इच्छा ने बिस्मार्क को उत्पन्न किया। वाजी के निर्माण में माता का ही हाथ था। अभिमन्यु ने गर्भ में ही चक्र-यूह भेदने की कला सीखी। इन सब बातों के अतिरिक्त इस जन्म में माता े किए हुए उपकारों का मनुष्य कुछ भी बदला नहीं चुका सकता परन्तु नकी पूजा, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति सेवा द्वारा कर सकता, यही ितरों की पूजा है।

पिता के उपकार मनुष्य पर कम नहीं होते। पुत्र के बाहरी जीवन ौर निर्माण का उत्तरदायी तो पिता ही होता है। पिता के ऊपर मनुष्य का कतना निर्माण निर्भर है, यह सब जानते हैं। पिता की आज्ञा पालन के लिए ाम जंगल को गए। यह राम की पितृ-सेवा "पितर यज्ञ" का ही रूप है। ाज प्रत्येक घर में माता-पिता की जो दुर्दशा देखने में आती है, वह हमारी ृतघ्नता की ही सूचक है। ज्ञान देने वाला आचार्य या गुरु होता है। गुरु-क्ति, ज्ञानभक्ति है। पूर्वजों के सदनुभव के प्रति आदर, उनके प्रयत्नों के ाए आदर, उनके प्रति साहस, उनकी ज्ञाननिष्ठा के लिए आदर। गुरु की ूजा मानो सत्य की पूजा, ज्ञान की पूजा, अनुभव की पूजा, विचारों की पूजा ै। जब तक मनुष्यों में ज्ञान-पिपासा है, ज्ञान के लिए आदर की भावना ै तब तक संसार में गुरुभक्ति रहेगी।

भारत में सद्गुरु के महत्त्व का बड़ा प्रतिपादन किया गया है। गुरु में जीवन की कला सिखाता है। गुरु हृदय में प्रकाश करते हैं। बुद्धि को ाम बनाते हैं। प्रेम की आँखें देते हैं। वे काम-क्रोधादि सर्पों के दाँत गिराते ैं। वे द्वेष-मत्सर आदि सिंहों को बकरी बना देते हैं। इस प्रकार सद्गुरु ेक बड़ा जादूगर है। माता-पिता शरीर देते हैं। लेकिन मिट्टी के शरीर ो सोना बनाने की शिक्षा सद्गुरु देता है। वह पशु से मनुष्य बनाता है। ्चारिक शक्ति प्रदान करता है, सत्य सृष्टि देता है। उस सद्गुरु का ऋण

चुकाना सम्भव नहीं। किन शब्दों में उसका स्तवन करें! उसका कितन वर्णन करें। उसे कितना मानें? उसकी कितनी प्रशंसा करें! कबीर ने त इस गुरु को ब्रह्म से भी बड़ा माना है। कहा है :—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पांय।
बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो मिलाय॥

गुरु इसलिए धन्य है कि उसने गोविन्द के दर्शन करा दिये। इसलि गुरुओं की पूजा 'पितृ-यज्ञ' के अन्तर्गत ही है। इसलिए शतपथ ब्राह्मण के आधार पर श्री पं० बुद्धदेव विद्यालंकार ने लिखा है कि इस यज्ञ के तीन काल हैं :—

(१) अपराह्ने पिण्ड पितृ यज्ञः
कुर्यादहरहः श्राद्धं पितृभ्य प्रीतिमावहन्।
पयोमूल फलैर्वापि मुन्यन्नैश्चाभि सर्वशः॥
(२) अमावस्य में पितृ यज्ञ
(३) वार्षिक पितृ यज्ञ

अर्थात् प्रतिदिन पितरों को भोज दे। मास में एक बार पितरों का श्राद्ध करें और जो न कर सकें वे वर्ष में एक बार इस पितृश्रद्धा अर्थात् जीवित पितृ की श्रद्धा से सेवा करें। मृतकों को अन्न-दान उपयोगी नहीं अतः अनुचित है। उनकी श्रद्धांजलि तो यही होगी कि उनके सदुद्देश्यों को हम पूरा करने के लिए तत्पर रहें। क्योंकि तर्पण अर्थात् तृप्ति तो जीवित पितरों का ही सम्भव है, मरे हुए पितरों का नहीं।

इसलिए पितृ-यज्ञ का तात्पर्य जीवित माता, पिता, आचार्य आदि की सेवा और पूजा है। वह हमें करनी चाहिए। मरे पितरों को पिण्डदान करके तृप्त करना आज के वैज्ञानिक युग में सम्भव नहीं। अतः प्रत्येक आर्य आदर्श समाज के निर्माण के लिए इस पितृ यज्ञ की प्रथा चालू करें। माता-पिता और आचार्य के अनादर से समाज शिथिल हो जायगा। अनुशासन समाप्त हो जायगा और इस प्रकार राष्ट्र अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जायगा और इसलिए समाज के बड़ों की आज्ञा और उपदेश हमारा मार्ग प्रदर्शन करें, इसलिए हमें इस यज्ञ की ओर झुकना है।

अतिथि-यज्ञ

अतिथि यज्ञ को नृ यज्ञ भी कहते हैं—मनुष्य यज्ञ भी यही है। प्राचीन काल में, अनजाने रूप में भी मनुष्य समाज का कुछ भला करता चला जाए, इसके लिये उन्होंने जो योजनायें बना रखी थीं उनमें यज्ञों का विधान है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज के मनुष्य पर हजारों ऋण हैं। उन ऋणों को चुकाने के जो अनेक उपाय हैं उनमें से एक अतिथि यज्ञ भी

। प्राचीन काल में यह 'अतिथि सेवा' कुल परम्पराओं में गिनी जाती थी। ुवंश में एक इस प्रकार का वर्णन है कि राम सीता को विमान में से नीचे स्थान दिखाते हैं। एक तपोवन की ओर उँगली दिखाकर राम कहते हैं क यहाँ एक ऋषि रहते हैं। वे सब अतिथियों का मन से अतिथि-सत्कार रते हैं, लेकिन उनके बच्चे नहीं थे। वे मर गए; लेकिन उनके अतिथि-त्कार का व्रत ये वृक्ष पालन करते हैं। जो कोई आता है, उन्हें यह फल-फूल ौर छाया देते हैं।

कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीयोपनिषद् तो आर्य संस्कृति और शिष्टाचार ा गढ़ ही है। इसकी प्रथम वल्ली के ग्यारहवें अनुवाक का प्रथम मन्त्र पदेशामृत से भरा हुआ है। वेद शिक्षा देकर आचार्य शिष्य को अनुशासित करते हैं—

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। ×× सत्यान्न प्रमदि-तव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। × × स्वाध्याय प्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यम्।

सत्य बोलना। धर्म करना। कभी भी ज्ञानोपार्जन से विरत नहीं होना। कभी भी सत्य से दूर नहीं जाना। धर्म-पालन से कभी भी नहीं भागना। वेदाध्ययन और वेद-प्रचार से कभी भी असावधान नहीं होना। इसका अगला मन्त्र है—

देवपितृ कार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि।

देवों और पितरों के सन्तोषकारी कार्य से कभी निवृत्त नहीं होना। माता-पिता को पूजनीय देवता जानना। आचार्य और अतिथि को भी उपास्य देवता जानना। प्रशंसनीय कर्म ही करना, अन्य नहीं।

यही आदेश और उपदेश है। यही वेदोपनिषद् है और यही अनुशासन है। इसके अनुसार ही अनुष्ठान और आचरण करना।

इस उपनिषद् के उपदेशों में अतिथि-सेवा की महत्ता को ध्यान में रखते हुए उसका भी शिष्टाचार के अन्तर्गत ग्रहण किया गया है। अब प्रश्न होता है अतिथि किसे कहते हैं। मनु ने अतिथि का लक्षण करते हुए लिखा है :—

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणाः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात् तस्मादतिथिरुच्यते॥

मनुस्मृति ३।१०२

"ऐसा ब्राह्मण जो एक रात्रि भर ठहरता है, अतिथि कहलाता है। क्योंकि उसका ठहरना कुछ ही काल के लिए है, इसीलिए उसे अतिथि कहा जाता है।"

अतिथि के आगमन की कोई तिथि निश्चित नहीं होती। यह बिना तिथि-ज्ञान के भी आ सकता है और आजकल तथा पहले भी निश्चित समय पर भी अतिथि आया करते थे। चाहे वह किसी भी रूप में आया हो, उसका सत्कार करना परम धर्म है। परन्तु अतिथि सदाचारी व्यक्ति ही हो सकते हैं या आतुर व्यक्ति हो सकते हैं। धूर्त और चालाक, छद्मवेशी और कपटाचारी का तो वाणी से भी सत्कार करना उचित नहीं। मनु ने लिखा है—

पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालवृत्तिकान् शठान्।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मत्रेणापि नार्चयेत्॥

पाखण्डी, दुराचारी, दूसरों को हानि पहुँचाकर स्वार्थ सिद्ध करनेवाले, शठ, कुतर्की, बगलाभगत व्यक्तियों का वाणी से भी सत्कार नहीं करना चाहिए। परन्तु अतिथि सत्कार का आदेश वेदों में भी दिया गया है। अथर्ववेद ९। ६। ३ का मन्त्र है—

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति। १। पयश्च वा एष रसं च०। २। ऊर्जां च वा एष स्फूर्तिं च। ३। प्रजां च वा एष पशूंश्च। ४। कीर्तिं च वा एष यशश्च०। ५। श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति। ६।

इस मन्त्र में लिखा है कि जो अतिथि से पहले खाता है, वह घरों का इष्ट सुख, पूर्णता, दूध, रस, पराक्रम, वृद्धि, प्रजा, पशु, कीर्ति, यश, श्री ज्ञान खाता है। फिर आगे इसी सूक्त में कहा है—

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वोनाश्नीयात्। ७। अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम्। ८।

अतिथि कौन है ? जो वेदज्ञानी है, वही अतिथि है। इसलिए उससे पहले भोजन नहीं करना चाहिए। अतिथि के भोजन करने के पश्चात् भोजन करें। यज्ञ के जीवन के लिए, यज्ञ के निरन्तर चलने के लिए यही नियम है।

अतिथि का सत्कार किस प्रकार करना चाहिए, इसका भी विधान अथर्ववेद १५। ११। १। २ में इस प्रकार किया गया है—

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिगृहानागच्छेत्। स्वयमेनमभ्युपेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वावात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयंतु व्रात्य यथा ते प्रियं तथाऽस्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति॥

जिसके घर में इस प्रकार का ज्ञानी, व्रतशील विद्वान् अतिथि घर में आ जाए, स्वयं उठकर उसे यह कहे कि हे व्रतशील विद्वान्! तू कहाँ था? यह जल है, तुझे तृप्त करें, जो तुझे अभीष्ट हो, वह हो जाएगा। जो तुझे चाहिए वही होगा। जो तेरी इच्छा है, वैसा ही करेंगे। इस प्रकार अतिथि सत्कार करना चाहिए।

अतिथि-सत्कार के लिए जल की आवश्यकता का प्रतिपादन साधारण रीति-रिवाज और व्यवहार की दृष्टि से तो आवश्यक है ही, मनु जी ने भी

इसका उल्लेख किया है और लिखा है—

भिक्षामत्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ।
वेद तत्वार्थं विदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ।। ३।९६

भिक्षा का केवल पात्र भर जल भी विधिपूर्वक सत्कार कर तत्त्व को समझने योग्य व्यक्ति को समर्पित करना चाहिए। और यदि किसी ऐसे स्थान पर जहाँ व्यक्ति से उसके भोजन के लिए, जल के लिए कोई व्यवस्था न हो तो उसे मीठी वाणी द्वारा ही सत्कार करना चाहिए। अतिथि कभी-कभी शरणागत के रूप में भी आ उपस्थित होते हैं। शेरशाह से पराजित हुमायूँ को 'ममता' नाम की एक स्त्री ने अपने अतिथि धर्म के पालने के लिए अपने पास कुछ भी न होते हुए मीठा वचन, पानी और आश्रय दिया था। दधीचि ने अपने अतिथि धर्म का पालन करने के लिए अपने शरीर और हड्डियों का बलिदान कर दिया। महाराज शिवि ने बाज से डरे हुए कबूतर को बचाने के लिए अपने शरीर का मांस तक तराजू के पलड़े पर चढ़ा दिया। महाराज बलि ने अतिथि के दान के लिए अपने तीनों लोकों का राज्य भी समर्पित कर दिया। इसलिये अतिथि सेवा, अतिथि यज्ञ, एक आवश्यक यज्ञ है और इस यज्ञ के पीछे हमारी यह भावना कार्य कर रही होती है कि समाज ने जो हमारे ऊपर उपकार किये हैं, उस अतिथि को उस समाज का एक अंग समझकर हम अपने ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करते हैं। इस अतिथि सेवा में मनुष्य की अपने लाभ को छोड़कर दूसरों को लाभ पहुँचाने की भावना रहती है। और निश्चित रूप में संसार में आगे बढ़ने का यह एक कदम है। भर्तृहरि जी ने लिखा है—

एके सत्पुरुषाः परार्थ घटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये;
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाऽविरोधेन ये ।
तेऽमी मानस राक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये ।
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ।

"जो अपने लाभ को त्यागकर दूसरों का हित करते हैं, वे ही सच्चे सत्पुरुष हैं, स्वार्थ को न छोड़कर जो लोग लोकहित के लिए प्रयत्न करते हैं, वे पुरुष सामान्य हैं और अपने लाभ के लिए जो दूसरों को हानि पहुँचाते हैं, वे नीच, मनुष्य नहीं हैं—उनको मनुष्याकृति राक्षस समझना चाहिए। परन्तु एक प्रकार के मनुष्य और भी हैं जो लोकहित का निरर्थक नाश किया करते हैं—मालूम नहीं पड़ता कि ऐसे मनुष्यों को क्या नाम दिया जाय।" (भर्तृहरि नी० श० ७४)

इसी प्रकार राजधर्म की उत्तम स्थिति का वर्णन करते समय कालिदास ने भी कहा है—

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोक हेतोः ।
प्रतिदिन अथवा तेवृत्तिरेवं विधैव ।। (शाकुं० ५-७)

अर्थात् तू अपने सुख की परवाह न करके लोकहित के लिए प्रतिदिन कष्ट उठाया करता है। अथवा तेरी वृत्ति ही यही है।

अतिथि यज्ञ के पीछे यही लोकोपकार की भावना काम कर रही है।

इसीलिए व्यास महाराज ने महाभारत के विदुर नीति प्रकरण में लिखा है—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति॥

अर्थात् जिसके घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, वह अपने सम्पूर्ण दुष्कृत गृहपति को दे देता है और उसके सम्पूर्ण पुण्य लेकर चला जाता है। यहाँ यह बात इस प्रकार समझनी चाहिये कि जब कोई व्यक्ति किसीका आतिथ्य नहीं करना चाहता है तो उसके प्रति रुखाई धारण करता है, उससे मधुर भाषिता नष्ट होती है और मधुर भाषिता के अभाव में वह विद्वानों के सत्संग से वंचित होता है और सत्संग के अभाव में दुराचार आदि का प्रवेश होता है। परिणामत: उसके पुत्रादि और वह स्वयं मूर्ख, दुराचारी बनते हैं। यह है अतिथि-सत्कार के पीछे छिपी भावना।

अतिथि का ठीक तरह सत्कार न करने से कठोपनिषद् में लिखा है कि वर्तमान तथा भावी सभी सम्पत्तियों का नाश होता है। 'कठोपनिषद्' १।१।८ में आया है—

आशा प्रतीक्षे सूनृतां चेष्टापूर्ते पशूंश्च सर्वान् एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे।

अर्थात् यम नचिकेता से कहता है कि जिसके घर में ब्राह्मण अतिथि बिना भोजन किये निवास करता है, उस गृहस्थी की आशाएँ, प्रतीक्षा, सत्कर्म, यज्ञ तथा पुण्य, पुत्र, पशु आदि सभी सम्पत्तियों का नाश हो जाता है। इसीलिए नचिकेता को तीन वर देने की बात यमराज ने कही। कठोपनिषद् १।१।९ में लिखा है—

तिस्रो रात्रीर्यदवासीर्गृहे मेऽनश्नन् ब्रह्मन् अतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात् प्रतित्रीन्वरान् वृणीष्व॥

हे नमस्कार योग्य ब्राह्मण अतिथि नचिकेता! तुम मेरे घर तीन रात्रि तक बिना भोजनादि के रहे हो इसलिए मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ, मेरा कल्याण हो, इसलिए तुम मुझसे तीन वरदान माँग लो।

अत: आज जब अतिथि प्रत्येक व्यक्ति के लिए भार हो रहा है, हमें अतिथि यज्ञ का महत्त्व समझकर इस यज्ञ को करने के लिए तत्पर होना चाहिए।

भूतयज्ञ अथवा बलिवैश्वदेव यज्ञ

मनुष्य एक मननशील प्राणी है। प्रत्यक्षतः उपकारी दैवी शक्तियों एवं मनुष्यों के लिए तो चार यज्ञों का विधान किया गया है। परन्तु यह मनुष्यता की बात नहीं होगी यदि मनुष्य के नीति-शास्त्र में सारी चराचर सृष्टि का विचार न किया जाय। यदि मनुष्य केवल मनुष्य के हित की बातों को ही देखे, तब वह अन्य पशु-पक्षियों की कोटि में आ जायगा। जब मानव मानवेतर सृष्टि का जहाँ तक सम्भव हो, पालन-पोषण करेगा, मानवेतर सृष्टि के साथ भी आत्मीयता और अपनत्व का सम्बन्ध स्थापित करेगा तभी वह सारी सृष्टि में श्रेष्ठ सिद्ध होगा। अप्रत्यक्ष रूप में उपकार करनेवाले प्राणियों के प्रति प्रेम और उनकी कल्याण करने की भावना से प्रेरित होकर प्राचीन लोगों ने भूतयज्ञ या बलिवैश्वदेव यज्ञ की विधि का निर्माण किया था। पशु-पक्षियों के हम पर किये जाने वाले उपकारों की गणना सम्भव नहीं। गाय, कुत्ते, खरगोश, घोड़े, गधे आदि जानवर तो प्रत्यक्ष रूप में हमारा उपकार करते ही हैं, सांप इत्यादि विषैले जन्तुओं का भी हम पर बहुत अधिक उपकार है। सांप खेतों की रखवाली करता है। वह खेत में चूहे आदि नहीं लगने देता। इन सर्पों के उपकार का बदला चुकाना मानव का कर्त्तव्य है। प्राचीनकाल में पशुओं और पक्षियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए हमने भोजन करने से पूर्व 'गो ग्रास' और 'काक' को अन्न देने की प्रणाली का भी आविष्कार कर रखा था। वैदिक संस्कृति में प्राणिमात्र की सेवा आवश्यक कर्त्तव्य के रूप में मानी गई है। हिन्दुओं ने पुराणों के अनुसार पशुओं, पक्षियों और यहाँ तक तृण-वृक्ष और वनस्पतियों तक की पूजा का विधान किया है। मोर को पवित्र माना है। सरस्वती के हाथ में वीणा देकर हमने उसे मोर पर बैठाया है।

कोकिल की मधुर आवाज किसे मुग्ध नहीं कर लेती! आठ महीने मौन रहकर वसन्त ऋतु आते ही कुहू-कुहू की ध्वनि से सम्पूर्ण प्रदेश को गुंजानेवाली कोयल की आवाज कितनी मनभावनी प्रतीत होती है। वसन्त ऋतु के बाद ग्रीष्म ऋतु में पेड़-पौधों में नव-पल्लव फूटने लगते हैं और कुहू-कुहू के गीत से वह नगर, ग्राम, वन, उपवनों को गुंजित कर देती है। वह विनयी होती है। वह लजीली होती है। वृक्षों की हरी डालियों में छिपकर वह कुहू-कुहू करती रहती है। वह पवित्र, मधुर, गम्भीर और उत्कट स्वर ऐसा प्रतीत होता है मानो सामगान हो, उपनिषद् ही हो।

मैना, तोता कितने सुन्दर होते हैं! हरे-हरे पत्तों के रंग वाले उस तोते की कितनी लाल और घुमावदार चोंच है! कितने सुन्दर पंख हैं! वह कैसे गर्दन मोड़ता है! कैसे सीटी बजाता है! उसके नेत्र कितने छोटे और गोल-गोल हैं! उसका काला कण्ठ कैसा है? यद्यपि वह पिंजड़े में रहना

नहीं चाहता तो भी मनुष्य प्रेम में आकर उसे पिंजड़े में रखता है और अपने मुख का अमरूद पकड़कर उसे देता है, अपना कौर उसे खिलाता है। यह सब मनुष्य प्रेम से करता है। यह इस बात का उदाहरण है कि मनुष्य की आत्मा इतर प्राणियों के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए व्याकुल रहती है। इसी भावना से बलिवैश्वदेव यज्ञ या भूतयज्ञ करने का विधान है।

जीवों के प्रति प्रेम की भावना वैदिक धर्म और हिन्दू धर्म में प्रारम्भ से पाई जाती है। वाल्मीकि ने इसी भावना से प्रेरित होकर रामायण की कथा में देवता, मनुष्य, राक्षस आदि के साथ पशु-पक्षियों को भी बराबरी का स्थान दिया है। तिर्यक् योनि में भी वीर, कूटनीतिज्ञ, साधु और प्रेम-सेवक होते हैं। इसके विषय में वाल्मीकि ने ऐसे ढंग से गीत गाए हैं मानो वे कोई नई बात कहते ही न हों—मानो बिल्कुल स्वाभाविक बातें लिख रहे हों! भक्त-शिरोमणि हनुमान, उग्रशासन सुग्रीव, आर्तमाण जटायु और सेनापति जाम्बवान् के विषय में मन में दयाभाव नहीं आदर भाव ही उत्पन्न होता है। हम यह भी भूल जाते हैं कि ये पशु-पक्षी हैं। यह समभाव ही जीव-प्रेम की सच्ची बुनियाद है।

प्राचीन कथाओं और पुराणों में भी वसिष्ठ और कामधेनु, दिलीप और नन्दिनी, नेवला और राजसूय यज्ञ, गज और ग्राह, धर्मराज का श्वान, नलदमयन्ती के हंस और कर्कोटक, भगवान् को बचाने वाला मत्स्य, प्रभु रामचन्द्र की मदद करनेवाली गिलहरी ऐसी एक-दो नहीं बल्कि असंख्य घटनाओं के वर्णन हमारे पुराने ग्रन्थों में मिलते हैं। ये प्राणियों के प्रति हमारी दया और उनके प्रति प्रेम तथा समभाव के उदाहरण हैं।

इस यज्ञ के विषय में स्वामी दयानन्द ने मनु महाराज के निम्नलिखित वचन का उद्धरण देते हुए सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में लिखा है—

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृहेऽग्नौ विधिपूर्वकम्।
आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्॥

अर्थात् जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने उनमें से खट्टा लवणान्न और क्षार को छोड़ के घृत मिष्टयुक्त अन्न लेकर चूल्हे से अग्नि अलग धर निम्नलिखित मन्त्रों से प्रतिदिन विधिपूर्वक होम करे—

ओ३म् अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। अग्निषोमाभ्यां स्वाहा। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। धन्वन्तरये स्वाहा। कुह्वै स्वाहा। अनुमत्यै स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। सह द्यावा पृथिवीभ्यां स्वाहा। स्विष्टकृते स्वाहा।

इन मंत्रों से एक-एक बार आहुति प्रज्वलित अग्नि में छोड़े पश्चात् थाली अथवा भूमि में पत्ता रखके पूर्व दिशादि क्रमानुसार यथाक्रम इन मंत्रो

से भाग रखे :—

ओ३म् सानुगायेन्द्राय नमः । सानुगाय यमाय नमः । सानुगाय वरुणाय नमः । सानुगाय सोमाय नमः । मरुद्भ्यो नमः । अद्भ्यो नमः । वनस्पतिभ्यो नमः । श्रियै नमः । भद्रकाल्यै नमः । वास्तुपतये नमः । विश्वेभ्यो नमः । दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । नक्तं चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः । सर्वात्म भूतये नमः ।

इन भागों को जो अतिथि हो उसको जिमा देवे अथवा अग्नि में छोड़ देवे । इसके अनन्तर लवणान्न अर्थात दाल, भात, शाक, रोटी आदि लेकर छः भाग भूमि में धरे । इसमें प्रमाण :—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पाप-रोगिणाम् ।
वायसानां च कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि ॥
(मनु० ३-९२)

'इस प्रकार श्वभ्वो नमः, पतितेभ्यो नमः, श्वपचभ्यो नमः, पापरोगिभ्यो नमः, वायसेभ्यो नमः, कृमिभ्यो नमः' धर कर पश्चात् किसी दुखी, बुभुक्षित, कुत्ते, पापी, चण्डाल, पापरोगी, कौवे आदि को देवे । यहाँ नमः शब्द का अर्थ अन्न अर्थात् कुत्ते, पापी, चण्डाल, पापरोगी कौवे और कृमि अर्थात् चींटी आदि को अन्न देना यह मनुस्मृति आदि की विधि है । हवन करने का प्रयोजन यह है कि पाकशालास्थ वायु का शुद्ध होना और जो अज्ञात अदृष्ट जीवों की हत्या होती है उसका प्रत्युपकार कर देना ।

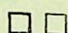
इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने इस विधि का उल्लेख सत्यार्थ प्रकाश में किया है ।

इस यज्ञ के मूल में मानव ने अपनी आत्मा का विस्तार किया है । मनुस्मृति ३-६८-१२३ में लिखा है—ऋषियों, पितरों, देवताओं, प्राणियों तथा मनुष्यों को तृप्त करके फिर किसी गृहस्थ को स्वयं भोजन करना चाहिए । मनुस्मृति के ३-२८५ में कहा है, इन यज्ञों के कर लेने पर जो अन्न बच जाता है उसको 'अमृत' कहते हैं और पहले सब मनुष्यों के भोजन कर लेने पर जो अन्न बचे उसे 'विघस' कहते हैं । यह 'अमृत' और 'विघस' अन्न ही गृहस्थ के लिए विहित एवं श्रेयकर है । ऐसा न करके जो कोई सिर्फ अपने पेट के लिए ही भोजन पका कर खावे तो वह 'अघ' अर्थात् पाप का भक्षण करता है और उसे क्या मनुस्मृति, क्या ऋग्वेद और गीता, सभी ग्रन्थों में 'अघाशी' कहा गया है । (ऋ० १०-११७-६; मनु० ३-११८ गीता ३-१३)

इस प्रकार यह यज्ञ हमें 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः' सब सुखी हों, सब स्वस्थ हों की भावना अपने हृदयों में लाने की प्रेरणा देता है । हृदय में जब सबके प्रति प्रेम की भावना का उदय हो जाता है तो सर्प और चूहे, शेर और मृग एक ही स्थान पर रहने लग जाते हैं । उस समय हम

विश्व में अपने को और अपने में विश्व को देखने लगते हैं। अपने आसपास पशु-पक्षी, मनुष्य किसी को भी अन्न-वस्त्र हीन देख कर हमारा हृदय दुःख-पूर्ण हो जाता है। उस समय हम नामदेव की भाँति भूखे कुत्ते को घी-रोटी खिलाने लगते हैं। उस समय हम अपने में और दूसरों में अन्तर नहीं करते हैं। उस समय जिस प्रकार बादल सारा पानी दे डालते हैं, वृक्ष अपने फल दे देते हैं, वैसे मनुष्य भी दूसरों के लिए अपना सर्वस्व दे देता है।

इस प्रकार यह यज्ञ भी मनुष्य को करना चाहिये।



गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्टियुत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसी !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहवली लेखावली	७.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.००
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	७.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	२.५०
मानव जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	५.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.५०
The only way	३.००
Anand Gayatri Discoarses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्रीमहात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती	८.००
" " उर्दू	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिव संकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेद सौरभ	४.००
वेद सौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू औषधियाँ	३.००
वैदिक विवाह पद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
चतुर्वेदशतक	८.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा अजिल्द	२०.००
" सजिल्द	३०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

वैद्य गुरुदत्त

विश्वदेवा	६.००
अद्वैत मीमांसा	६.००

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५.००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र और सूक्त अन्वयार्थ और सरल स्पष्ट भाषा में व्याख्या सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रवुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवास युक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

✧ ओ३म् ✧

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २७, अंक ११] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [जून, १९७८

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

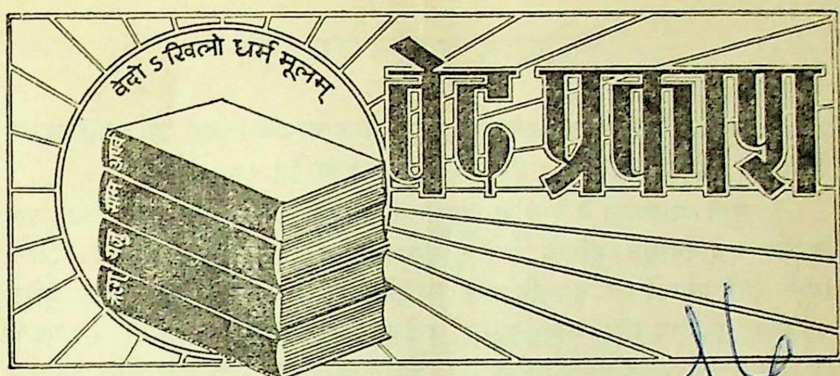
परमात्मा क्या है ?

वेदान्त-दर्शन आर्य सभ्यता तथा ऋषिमुनियों की प्रतिभा और तपस्या की परमोत्तम विभूति है। उस परम-तत्त्व का, जिसे परमात्मा, परब्रह्म परमेश्वर आदि अनेक नामों से पुकारते हैं, जैसा विशुद्ध विवेचन वेदान्त-दर्शन में है, वैसा संसार के किसी भी अन्य दर्शन या ग्रन्थ में नहीं है। वेदान्त-दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले उपनिषद्, गीता आदि अनेक ग्रन्थ हैं, इन ग्रन्थों में परमात्मा अथवा परब्रह्म के स्वरूप का जैसा सुन्दर, स्पष्ट, सरल और सरस वर्णन वह अपने ढंग का बिलकुल अनोखा है। परब्रह्म परमात्मा का निम्नलिखित विवेचन इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर है, जिसे ब्रह्म के जिज्ञासुओं और आध्यात्मिक ज्ञान के पिपासुओं की सेवा में समर्पित किया जाता है।

ब्रह्म क्या है ?

ब्रह्म वह परम-तत्त्व है, जिसमें सब कुछ है, जो सब ओर है, जिससे जगत् के सब पदार्थों की उत्पत्ति होती है, जिसमें सब पदार्थ वर्तमान रहते हैं, जिसमें सब लीन हो जाते हैं और जो सब स्थानों, सब कालों और सब वस्तुओं में विद्यमान है। ब्रह्म वह ज्ञान-स्वरूप तत्त्व है, जिससे ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय का; द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्य का; और कर्ता, हेतु, तथा क्रिया का उदय होता है, ब्रह्म वह सत्, चित् और आनन्द-मय तत्त्व है जिससे पृथ्वी और स्वर्ग में आनन्द की वर्षा होती है। ब्रह्म केवल ज्ञानियों के अनुभव में ही आ सकता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। वह अवर्णनीय अनभि-व्यक्त, अप्रगट और इन्द्रियों से परे है। उसका कोई चिह्न नहीं है और वह प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा जाना नहीं जा सकता। वह वाद-विवाद से भी जाना नहीं जा सकता।

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।



वेद-आज्ञा

युक्त आहार-विहार

**जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् ।
हव्या जुह्वान आसनि ।। ऋ० १ । ७५ । १ ।।**

पदार्थः—हे विद्वन् ! (आसनि) अपने मुख में (हव्या) भोजन करने योग्य पदार्थों को (जुह्वानः) खानेवाले आप जो विद्वानों का (सप्रथस्तमम्) अति विस्तारयुक्त (देवप्सरस्तमम्) विद्वानों को अत्यन्त ग्रहण करने योग्य व्यवहार वा (वचः) वचन है (तम्) उसको (जुषस्व) सेवन करो ।

भावार्थः—जो मनुष्य युक्तिपूर्वक भोजन-पान और चेष्टाओं से युक्त ब्रह्मचारी हों वे शरीर और आत्मा के सुख को प्राप्त होते हैं ।

हमारा भोजन

**दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् ।
तव द्युक्षास इन्द्रवः ।। ऋ० ३ । ४० । ५ ।।**

पदार्थः—हे (इन्द्र) पूर्ण अवस्था की कामना करनेवाले जो (तव) आपके (द्युक्षास) प्रकाश में रहने (इन्द्रवः) और स्नेह करने-वाले होवें उनके समीप से (वरेण्यम्) भोग करने योग्य (सुतम्) उत्तम प्रकार बनाया (सोमम्) श्रेष्ठ ओषधियों से युक्त अन्न को (जठरे) उत्पन्न हो सुख जिसमें उस पेट में आप (दधिष्व) धरो ।

भावार्थः—राजा आदि मनुष्यों को सम्पूर्ण पदार्थों के मध्य से उन्हीं पदार्थों का खान और पान करना चाहिए कि जो बुद्धि, अवस्था और बल को निरन्तर बढ़ावें ।

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

लेखक : वेदमार्तण्ड ग्राचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति । प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली । पृ० सं० २४८ । मूल्य १५.००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है । मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति ग्रौर क्रम दृष्टिगोचर होता है । वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य ग्रौर जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ ग्रौर राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है । इहलोक-परलोक, भुक्ति ग्रौर मुक्ति, समष्टि ग्रौर व्यष्टि, व्यक्ति ग्रौर राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र ग्रौर सूक्त ग्रन्वयार्थ ग्रौर सरल स्पष्ट भाषा में व्याख्या सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है ।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह ग्रौर ऐसे ग्रन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे । यह बात नये ग्रध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है । इसमें ग्रापको पद, ग्रर्थ, रस ग्रौर संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा । 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक ग्रापको इन मन्त्रों में मिलेगी ।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन ग्रौर गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना ग्रौर ग्राध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है । सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप ग्रौर सुवास युक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं ।

—सन्तराम वत्स्य

✧ ओ३म् ✧

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २७, अंक ११] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [जून, १६७८

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

परमात्मा क्या है ?

वेदान्त-दर्शन आर्य सभ्यता तथा ऋषिमुनियों की प्रतिभा और तपस्या की परमोत्तम विभूति है। उस परम-तत्त्व का, जिसे परमात्मा, परब्रह्म परमेश्वर आदि अनेक नामों से पुकारते हैं, जैसा विशुद्ध विवेचन वेदान्त-दर्शन में है, वैसा संसार के किसी भी अन्य दर्शन या ग्रन्थ में नहीं है। वेदान्त-दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले उपनिषद्, गीता आदि अनेक ग्रन्थ हैं, इन ग्रन्थों में परमात्मा अथवा परब्रह्म के स्वरूप का जैसा सुन्दर, स्पष्ट, सरल और सरस वर्णन वह अपने ढंग का बिलकुल अनोखा है। परब्रह्म परमात्मा का निम्नलिखित विवेचन इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर है, जिसे ब्रह्म के जिज्ञासुओं और आध्यात्मिक ज्ञान के पिपासुओं की सेवा में समर्पित किया जाता है।

ब्रह्म क्या है ?

ब्रह्म वह परम-तत्त्व है, जिसमें सब कुछ है, जो सब ओर है, जिससे जगत् के सब पदार्थों की उत्पत्ति होती है, जिसमें सब पदार्थ वर्तमान रहते हैं, जिसमें सब लीन हो जाते हैं और जो सब स्थानों, सब कालों और सब वस्तुओं में विद्यमान है। ब्रह्म वह ज्ञान-स्वरूप तत्त्व है, जिससे ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय का; द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्य का; और कर्ता, हेतु, तथा क्रिया का उदय होता है, ब्रह्म वह सत्, चित् और आनन्दमय तत्त्व है जिससे पृथ्वी और स्वर्ग में आनन्द की वर्षा होती है। ब्रह्म केवल ज्ञानियों के अनुभव में ही आ सकता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। वह अवर्णनीय अनभिव्यक्त, अप्रगट और इन्द्रियों से परे है। उसका कोई चिह्न नहीं है और वह प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा जाना नहीं जा सकता। वह वाद-विवाद से भी जाना नहीं जा सकता।

मुण्डकोपनिषद् में कहा है कि वह ब्रह्म सत्य, तपस्या, सम्यक्ज्ञान तथा ब्रह्मचर्य से ही जाना जा सकता है। जब ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है तो मनुष्य उसे अपने हृदय में प्रकाशमान ज्योति की तरह अनुभव करने लगता है :—

"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यक्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥"

श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी यही कहा है :—

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतस्वरणीषु चाग्निः ।
एवमात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥

अर्थात् जिस प्रकार तिल में तेल, दही में घृत, नदी में जल और यज्ञकाष्ठ में अग्नि रहती है उसी प्रकार वह ब्रह्म सब प्राणियों की आत्मा में निवास करता है। उसे मनुष्य सत्य और तप से प्राप्त कर सकता है।

ब्रह्म न है और न नहीं है

जैसा कि हम ब्रह्म के सम्बन्ध में यह नहीं कह सकते कि वह नहीं है, वैसे ही हम उसके सम्बन्ध में यह भी नहीं कह सकते कि वह है। यह परमतत्त्व वह है जिसमें कि सत्ता और असत्ता दोनों भावों का समावेश है। न वह सत् है न असत्, न दोनों के बीच की स्थिति। न वह है और न नहीं है। उसको किसी प्रकार वर्णन नहीं कर सकते। शून्य और अशून्य सापेक्षक शब्द है। जिसको शून्य नहीं कह सकते उसके सम्बन्ध में शून्यता और अशून्यता का भला क्या विचार ? भला वह तत्त्व शून्य कैसे कहा जा सकता है, जिसमें सारा जगत् इस प्रकार मौजूद रहता है जैसे कि जल में तरंग और मिट्टी में घड़ा। भला उस तत्त्व को शून्य कैसे कहें जिसके भीतर तमाम विश्व इस प्रकार वर्तमान है जैसे लकड़ी के टुकड़े के भीतर उससे बनाई जाने वाली वस्तुएँ ? लेकिन हमारे दृष्टिकोण से वह शान्त और अजरतत्त्व, जिसमें कि सारी सृष्टि वर्तमान है, आकाश से भी अधिक शून्य और सूक्ष्म है। इसलिए उसे हम शून्य से भी शून्य कह सकते हैं।

ब्रह्म का शाब्दिक वर्णन

यद्यपि ब्रह्म का किसी प्रकार भी वास्तविक वर्णन नहीं हो सकता, तब भी हम उसका शाब्दिक वर्णन यदि करना चाहें तो यह कह सकते हैं कि छोटे से छोटे परमाणु के हजारवें भाग के भीतर जो चिन्मात्र सत्ता वर्तमान है वही ब्रह्म है। वह सत्ता न तो दिखाई देती है और न वर्णन की जा सकती है। न वह समीप है और न दूर। शुद्ध आत्मा का चित् रूप केवल अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नहीं। वह सब कुछ है। वह सब का आत्मा है और सब से रहित भी है। वह सब भूतों का आत्मा, शून्य और सत् तथा असत् दोनों ही है। वह न वायु है, न आकाश है, न बुद्धि है, न शून्य है।

वह कुछ नहीं है, तो भी सबका आत्मा है। वह कोई ऐसा पदार्थ है जो आकाश से भी सूक्ष्म है। न वह काल है, न वह मन है, न वह आत्मा है, न वह सत्ता है, न असत्ता, न देश, न दिशाएँ, और न वह ज्ञान है और न अन्य पदार्थ। वह संवेद्य रहित संवित् है, चैत्य रहित चिति है, वह संसार की पराकाष्ठा है, वह सब दृष्टियों की सर्वोत्तम दृष्टि है, वह सब महिमाओं की महिमा है, और सब गुरुओं का गुरु है। वह सब प्राणी रूप मोतियों का तागा है, जो उनके हृदय रूपी छेदों में पिरोया हुआ है। वह सब प्राणीरूपी मिर्चों की तीक्ष्णता है। वह पदार्थ का पदार्थत्व है, वह सर्वोत्तम तत्त्व है। वह वर्तमान वस्तुओं की सत्ता है और स्वयं सत्ता और असत्ता दोनों है। वह सब जगह, सब वस्तुओं से युक्त तथा सर्व भावों से मुक्त है। सब ओर उसके हाथ और पैर हैं। सब ओर उसके सिर और मुख हैं। सब ओर उसके कान हैं। संसार की सब वस्तुओं को घेर कर वह स्थित है।

गीता में भी श्रीभगवान् ने कहा है :—

"सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥"

वह इन्द्रियों द्वारा जाने जानेवाले सब गुणों से रहित है और उनसे युक्त भी है। वह सब का भरण करने वाला किन्तु असक्त है। सब गुणों का भोगने वाला, किन्तु निर्गुण है। सब प्राणियों के भीतर और बाहर है। वह चर और अचर दोनों है। अति सूक्ष्म होने के कारण अविज्ञेय (जानने योग्य नहीं) है। वह दूर भी है और समीप भी। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, स्थूल से भी स्थूल, भारी से भी भारी और अच्छे से भी अच्छा है। वह इतना बड़ा है कि उसके आगे सारा जगत् भी परमाणु के समान दिखाई पड़ता है, वरन् दिखाई भी नहीं पड़ता। वह इतना सूक्ष्म है कि उसके सामने सूक्ष्म आकाश-तत्त्व भी अणु की तुलना में महामेरु जैसा स्थूल मालूम पड़ता है। वह आत्मा है, वह विज्ञान है, वह शून्य है, वह परमब्रह्म है, वह श्रेय है, वह शिव है, वह विद्या है, और वही परम-स्थिति है। वह सबका अनुभव-रूप अन्तरात्मा है। शरीर में वह सदा चिन्मात्र रूप से स्थित है। वह जगत् रूपी तिल का तेल है, जगत् रूपी घर का दीपक है, जगत् रूपी वृक्ष का रस है, जगत् रूपी पशु का पालने वाला ग्वाला है। वह जगत् में वर्तमान् होते हुए भी नहीं है, वह शरीर में रहते हुए भी अत्यन्त दूर है, वह ऐसा प्रकाश है जिससे सूर्य का प्रकाश उत्पन्न होता है। उससे विष्णु आदि देवता ऐसे उत्पन्न हैं जैसे कि सूर्य से उसकी किरणें। उससे अनन्त जगत् ऐसे उत्पन्न होते हैं जैसे कि समुद्र से बुलबुले। उसकी ओर तमाम दृश्य पदार्थ इस प्रकार जा रहे हैं जैसे कि महासमुद्र की ओर नदियाँ। वह सब पदार्थों और आत्माओं को दीपक की नाईं प्रकाशित करता है। वह आकाश में, शरीर में, पत्थरों में, लताओं में, घाटियों में, पहाड़ों में, हवाओं में और पाताल में वर्तमान है। उसने आकाश को शून्य बनाया, पहाड़ों को कठिन बनाया और जलों को बहनेवाला बनाया। उपनिषद् में भी कहा है कि पहाड़ और समुद्र, नदियाँ और पेड़-पौधे तथा रस पदार्थ सब उसी आदि ब्रह्म से उत्पन्न हैं—

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मा-
त्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः।
अतश्च सर्वा औषधयो रसाश्च
येनैष भूतैस्तिष्ठन्ते ह्यन्तरात्मा ॥ मुण्डकोपनिषद्

सूर्य उसके वश में एक दीपक है। जैसे बादल से वर्षा की बूँदें गिरती हैं, वैसे ही उस अक्षय और पूर्ण अमृत से नाना प्रकार के असार संसारों के दृश्य उदय होते हैं। जैसे मरुस्थल में मृगतृष्णा की नदियाँ दिखाई पड़ती हैं वैसे ही उसमें भी त्रिभुवन के उदय और अस्त रूपी लहरें उठा करती हैं। वह सब प्राणियों के भीतर रह कर उनका संहार करने वाला काल है। वह सर्व भावों में गुप्त रूप से वर्तमान रहता हुआ भी सब से अतिरिक्त है। वह हर एक के शरीररूपी पिटारी में चिति रूपी मणि के रूप में मौजूद है। उससे नानाप्रकार के जगत् ऐसे उदय होते रहते हैं, जैसे कि चन्द्रमा से उसकी किरणें। वह अनन्त, अजर, आदि, मध्य और अन्त रहित निरामय शिव है। सब समय और सब जगह वह बिना कान के सुनता है, बिना आँख के देखता है, बिना जिह्वा के स्वाद लेता है, बिना त्वचा के स्पर्श करता है, बिना नाक के सूँघता है। उसका कोई कारण नहीं है, जगत् उसका वैसा ही कार्य है जैसे कि तरंगें जल का। जैसे मशाल के घुमाने से उसमें चक्र दिखाई पड़ने लगता है और उसको स्थिर कर देने पर चक्र गायब हो जाता है, वैसे ही ब्रह्म में जब स्पन्दन होता है तब संसार की शोभा उदय हो जाती है और जब शान्ति हो जाती है तो जगत् का दृश्य लोप हो जाता है। उसका यह व्यापक, महान्, अक्षय और शुद्ध स्वभाव है कि जब उसमें स्पन्दन होता है, तो जगत् की सृष्टि हो जाती है और जब स्पन्दन की शान्ति होती है, तो जगत् का प्रलय हो जाता है। जैसे हवा की सत्ता सब जगह या तो शान्त रूप में है या चलते हुए रूप में, उसी प्रकार ब्रह्म अपने शान्त और स्पन्दयुक्त रूप से सर्वत्र वर्तमान् है; उन दोनों सत्ताओं में व्यवहार के कारण ही नाममात्र का भेद है, वास्तविक भेद नहीं है। ज्ञान का, प्रकाश का, दृश्य का और तम का जो अनादि ज्ञान रूप भाव है वही परमात्मा का रूप है। परब्रह्म वह तत्त्व है जो कुछ भी नहीं होता हुआ भी सदा सब कुछ है, जो यह या वह कुछ न होता हुआ भी सब ही है। परमात्मा वह पदार्थ है जो कल्पना से मुक्त, शान्त और प्रकाशमय सब का आत्मा है। जो अमूक होता हुआ भी मूक है, मनन करता हुआ भी पत्थर के तुल्य जड़ है, भोक्ता होने पर भी नित्य तृप्त है और कर्त्ता होने पर भी कुछ न करने वाला है। जो अंग-हीन होते हुए भी सब अंगों वाला और हजारों हाथ वाला है, जो किसी वस्तु में न रहते हुए भी सारे जगत् में व्याप्त है, जिसमें किसी इन्द्रिय की शक्ति नहीं रहते हुए भी सब इन्द्रियों की क्रियाएँ होती रहती हैं। जिसमें मनन न होते हुए भी मन की सब कल्पनाएँ होती रहती हैं। जैसे समुद्र से तरंगें, भँवर और लहरें उदय होती हैं वैसे ही उससे घट-पट आदि के आकार वाले अनेक पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं। जैसे कटक, अंगद, केयूर और नूपुर आदि अनेक आभूषणों के रूप में सोना प्रकट होता है, वैसे ही वह भी सैंकड़ों पदार्थों के झूठे आकार में प्रकट हो रहा है। उससे ही काल की गति है, दृश्य

जब यह टापू आबाद हुआ, इसके प्रथम शासकों ने भारतीय कौए यहाँ के वनों में देखे थे। ये उन पक्षियों के वंशज थे जो भारतीय व्यापारी अपने साथ सर्वत्र ले जाया करते थे।

जो पक्षी सावधान रहा करते थे वे जहाज से उड़कर अति दूर जाते न थे। सीटी सुनते ही वे जहाज पर आया करते थे। सावधानी से काम न लेने वाले बहुत दूर पहुँचते थे और सीटी सुन ही नहीं पाते थे।

श्रोताओं को कहा जाता था, हम भी पक्षी हैं। वेदों में आत्मा को पक्षी कहा गया है। पक्षी की कथा विदेशों में सुनायी गई थी, पर मनोरञ्जनार्थ सुनायी गई कथा का एक अंग भूलकर लोग कहने लगे कि परमात्मा पिता हैं, आत्मा मनुष्य है और तीसरा जो पवित्रात्मा है कबूतर है। यह हमारे त्रैतवाद का बिगाड़ा गया रूप है। फिर भी इसमें पक्षी की चर्चा होती है।

जो हम में से सावधान होंगे वे सीटी सुनकर जहाँ लौटना चाहिए वहाँ लौट जायेंगे। स्वामी जी ने कहा, वैदिक काल में लौटना अभीष्ट है। वैदिक युग हम पक्षियों का जहाज है जिसमें रहकर लहरों का सामना कर सकेंगे, सुरक्षित रह पावेंगे।

स्वामी जी जोर-शोर से वेदों का आश्रय लेने का आग्रह अपने प्रवचनों तथा ग्रन्थों में किया करते थे। उस बलपूर्वक किये गये आग्रह की तुलना सीटी से की जा सकती है।

बीसवीं सदी में फिर सीटी बजी है। महात्मा गांधी ने वैदिक युग को महत्त्व देकर उसे इस युग में पुनर्जीवित करने की इच्छा उन शब्दों में व्यक्त न की जो ऋषि के शब्द थे।

वे विलायत में अपनी युवावस्था में रह चुके थे। जो उनमें प्रतिक्रिया हुई वह हमें इस मत के होने की इजाजत देती है कि ऋषि ने रोग का जो निदान किया था उसी का इन्होंने भी किया था।

महात्मा जी का कहना था कि पश्चिम की सभ्यता रोगग्रस्त है, नहीं-नहीं विष है। यह मानती[2] है कि वस्तु सबकुछ है, आत्मा का कोई स्थान नहीं है। ऐसी स्थिति में भारत की संस्कृति नई मांग के अनुसार होनी चाहिए, यह उनकी धारणा थी। नई माँग है कि वस्तु से जो भिन्न है उसे पहचाना जाय।

---

a subsequent voyage they took a wonderful performing peacock, and the poor crow found himself quite eclipsed !

—Long ago merchants sailed far out of sight of the coast, taking "shore-sighting" birds, which were released from time to time, in order that they might guide the mariners to land.

—H. G. Rawlinson, *India and the Western World*

2. Gandhi realised that, in this age of fast changes and quick means of communication, India was busy with evoling a culture which should be worthy of her and able to meet the new challenges of the world...

ऋषि ने जो कहा, वह उस महापुरुष द्वारा दोहराया गया जो जगत में पूजे जाते थे।

धन को येन केन प्रकारेण जुटाना, यह वर्तमान युग के मानवों का उद्देश्य हो गया है। पश्चिम के अनेक चिन्तक यह देखते आ रहे हैं। वे अब चिन्तित हो उठे हैं।

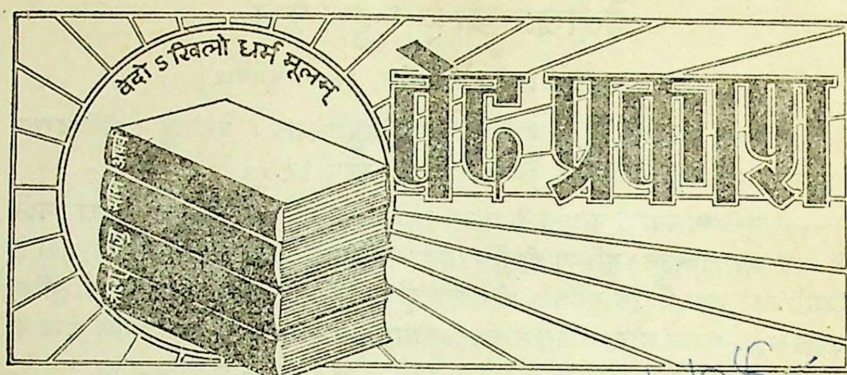
महात्मा बुद्ध दुःख का निवारण करने में प्रयत्नशील थे। स्वा० दयानन्द तथा महात्मा गांधी ने दुःख से छुटकारा पाने के लिए वैदिक युग तथा रामायण युग से शिक्षा ग्रहण करने को कहा। हम एकदम बहरे होंगे तो सीटी न सुनेंगे। जिसने दोनों कानों में रुई भर दी है वही सत्यार्थ को नहीं अपनायेगा। मॉरीशस तक ने इस ग्रन्थ को छपवाया, इसके फ्रेन्च उल्था को मुद्रित करवाया। जब आदर्श गुरू दण्डी जी को आदर्श शिष्य प्राप्त हुए थे तब गुरू अस्सी वर्ष की अवस्था के हो गये थे। उनका स्वर क्षीण था। शिष्य का स्वर तीव्र था। आवाज में तीव्रता न होती तो हमारी निद्रा भंग न होती।

He agreed with Tagore that what he called the 'thing' stifile the spirit.

Some persons have bluntly put the question. Ban Gandhism set back the hands of the clock of time and revert to the simplicity of a by gone age ?

Many of the great thinkers of the west are beginning to ask themselves whether their life is based on sound and sensible foundations whether the loss of its basic sensililties and their substitution by a mad rush for speed and the crazy pursuit of wealth, real by makes sense.

—*Dr. K. Z. Saiyidain*



11/4/78/
68

श्री स्वामी विद्यानन्द विदेह भी नहीं रहे !

आर्यसमाज खालापार सहारनपुर का उत्सव मनाया जा रहा था। स्वामीजी का व्याख्यान ५ मार्च १९७८ को रात्रि के दस बजे समाप्त हुआ। अपना व्याख्यान समाप्त कर स्वामीजी उठे और स्टेज पर पीछे जाकर बैठ गये। उसी समय स्टेज पर ही स्वामी जी का निधन हो गया।

स्वामीजी का जन्म पन्द्रह नवम्बर १८९९ में अलीगढ़ जिले के टप्पल गाँव में हुआ था। पुलिस आफिस आबूरोड में कर्मठ और ईमानदार हैडक्लर्क के रूप में उन्होंने ख्याति अर्जित की। सेवाकाल में ही उनका झुकाव योग तथा वेद की ओर हुआ। सन् १९४९ में उन्होंने संन्यास आश्रम में प्रवेश किया। वेद का प्रचार करने के लिए अजमेर में वेद संस्थान की नींव डाली। १९५८ में राजौरी गार्डन नई दिल्ली में वेद संस्थान की स्थापना करके यहीं से वेद प्रचार करने में संलग्न रहे। लगभग पिछले २५ वर्षों से 'सविता' नामक मासिक-पत्र भी उनकी देख-रेख में प्रकाशित हो रहा था।

स्वर्गीय स्वामी विद्यानन्द जी विदेह ने न केवल भारत के कोने-कोने में वेद की दुन्दुभि बजाई बल्कि अफ्रीका, मॉरीशस, इंगलैंड आदि का भ्रमण कर वेद का प्रचार किया। स्वामीजी की वेद भाष्य की शैली बड़ी सरल और सुबोध थी। वेद, गीता, योग आदि पर उनकी ८० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

सर्वश्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी, स्वामी ब्रह्ममुनि जी महात्मा आनन्दस्वामी सरस्वती, पं० प्रकाशवीर शास्त्री, कविरत्न प्रकाश की मृत्यु को अभी आर्यजगत् भूल भी नहीं पाया था। श्री स्वामी विद्यानन्द विदेह जी के निधन से आर्यसमाज का एक और स्तम्भ गिर गया।

वेदप्रकाश परिवार उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है।

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

[नवभारत टाइम्स १३ अप्रैल, १९७७ बुधवार]

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५.००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र और सूक्त अन्वयार्थ और सरल स्पष्ट भाषा में व्याख्या सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवास युक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

◈ ओ३म् ◈

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २७, अंक ६] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [अप्रैल, १९७८

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका : एक सरल अध्ययन

लेखक

वेदोपाध्याय पं० श्री विश्वनाथ विद्यालंकार

ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना समर्पण विषय

ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि से ईश्वर यद्यपि अपना नियम छोड़ कर, स्तुति प्रार्थना और उपासना आदि के करने वाले का पाप स्वयं नहीं छुड़ा देता, तो भी स्तुति आदि से यह लाभ होता है कि कि स्तुति से ईश्वर में प्रीति उत्पन्न होती है और स्तुति करनेवाला ईश्वर के आदर्श गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव को सुधार सकता है।

प्रार्थना से निरभिमानता होती है, और परमात्मा की सहायता मिलती है।

उपासना द्वारा परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होता है।

समर्पण द्वारा ईश्वर के प्रति सर्वस्व समर्पण करना होता है। अर्थात् अपनी आयु, प्राण, कर्मफल आदि को ईश्वर की सेवा और उसकी आज्ञा के पालन में समर्पित करना। अर्थात् ईश्वर की प्रसन्नता के निमित्त अपने सब सांसारिक तथा आध्यात्मिक कर्मों तथा कर्मफलों को परमेश्वर के समर्पण कर देना। जो मनुष्य अपनी सब चीजें परमेश्वर के अर्थ समर्पण कर देता है उसके लिये परमकारुणिक पमेश्वर सब सुख देता है।

स्तुति के दो प्रकार और तदनुसार यत्न

स्तुति दो प्रकार की होती है। एक सगुण-स्तुति और दूसरी निर्गुण-स्तुति। आप शुद्ध हैं, सर्वज्ञ हैं, सनातन हैं—इस प्रकार की स्तुति सगुण-स्तुति कहलाती है। क्योंकि इस प्रकार की स्तुति में ईश्वर के उन-उन गुणों का वर्णन किया जाता है जो गुण कि ईश्वर में विद्यमान हैं। आप शरीररहित हैं, मृत्युरहित हैं, पाप से विद्ध नहीं हैं, आकाररहित हैं—इस प्रकार की स्तुति निर्गुण-स्तुति कहलाती है। क्योंकि इस प्रकार की स्तुति में शरीर, मृत्यु, पाप आकार आदि गुणों से ईश्वर को पृथक् मानकर उसकी स्तुति की जाती है। स्तुति करनेवाले को चाहिये कि वह अपने गुण-कर्म-स्वभाव को भी ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश बनाने का यत्न करता रहे।

प्रार्थना के दो प्रकार और तदनुसार यत्न

प्रार्थना भी सगुण और निर्गुण रूप से दो प्रकार की होती है। भक्त ईश्वर को जिस सद्गुण से युक्त जानता है उस सद्गुण से अपने आप को भी युक्त करने की प्रार्थना को सगुण-प्रार्थना कहते हैं। तथा भक्त ईश्वर को जिस दोष या दुर्गुण से पृथक् जानता है उस दोष या दुर्गुण से अपने-आपको भी पृथक् रखने की प्रार्थना को निर्गुण-प्रार्थना कहते हैं। जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उसे वैसा व्यवहार भी करना चाहिये। जैसे कोई सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता है तो उसे चाहिये कि वह जितना अपने से प्रयत्न हो सके अपनी बुद्धि को सर्वोत्तम बनाता भी रहे अर्थात् अपने प्रयत्न और पुरुषार्थ के उपरान्त ईश्वर से सर्वोत्तम बुद्धि की प्रार्थना करना उचित है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष की सहायता दूसरा भी करता है, वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष की सहायता ईश्वर भी करता है।

परन्तु ईश्वर से ऐसी प्रार्थना न करनी चाहिये कि हे ईश्वर! आप मेरे शत्रुओं का नाश करो, मुझको सबसे बड़ा करो, मेरी ही प्रतिष्ठा हो, और मेरे अधीन सब हो जाँय—इत्यादि। ऐसी प्रार्थना ईश्वर स्वीकार नहीं करता। क्योंकि ईश्वर उपकार करने की प्रार्थना में तो सहायक होता है, हानिकारक कर्मों में नहीं।

उपासना के दो प्रकार

उपासना भी दो प्रकार की होती है। सगुण-उपासना और निर्गुण-उपासना। सर्वज्ञत्व आदि गुणों के साथ ईश्वर की उपासना करनी सगुण उपासना है। द्वेष, रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्श आदि गुणों से ईश्वर को पृथक् मानकर उसमें दृढ़ स्थिति हो जाना निर्गुण-उपासना

है। उपासना का अर्थ है "समीप स्थिति होना"। उप (समीप), आसना (स्थित होना)।

उपासना की रीति

जब उपासना करना चाहे तब शुद्ध एकान्त देश में जाकर आसन लगा, प्राणायाम कर, बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोककर मन को नाभि प्रदेश में या हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा में, अथवा पीठ की हड्डी के मध्य स्थान में स्थिति कर, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को वार-वार करके, अपनी आत्मा को भली-भाँति ईश्वर में लगाकर उसमें मग्न हो जाय। इस प्रकार उपासक का आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से परिपूर्ण हो जाते हैं, और उपासक नित्यप्रति ज्ञान-विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुँच जाता है। जो उपासक आठ प्रहर[1] में एक घड़ी[2] भर इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त होता है।

उपासना में अपने मन और बुद्धिवृत्तियों को ईश्वर में स्थित करना होता है। उपासक अपने मन और बुद्धिवृत्तियों को, उपासना द्वारा, जब पहिले ईश्वर में युक्त करता है और ऐसा यत्न लगातार करता रहता है, तब ईश्वर अपनी कृपा से उसके मन और बुद्धिवृत्तियों को अपने में युक्त कर लेता है। तदनन्तर उपासक ज्योति-स्वरूप ईश्वर की ज्योति का साक्षात् कर लेता है। उपासना-योग द्वारा मन शुद्ध होकर, प्रभु के प्रकाश को प्राप्त हो, आनन्द लाभ करता है। इसमें अन्तर्यामी ईश्वर अपनी असीम कृपा से योगाभ्यासी को योगयुक्त करके उसकी आत्मा में महाप्रकाश प्रकट कर देता है। इसके लिये आवश्यक है कि अभ्यासी सच्चे प्रेम और भक्ति से ईश्वर की उपासना किया करे। साथ ही मंगलमय परमात्मा से प्रार्थना भी करते रहना चाहिये कि आपकी कृपा से हमें उपासना-योग प्राप्त हो, तथा आपकी कृपा से हमारी १० इन्द्रियाँ, १० प्राण, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल—ये २८ हमारी शक्तियाँ कल्याणमार्ग में प्रवृत्ति रहें। हे प्रभो ! आप कृपादृष्टि से हमें सदा देखिये। हम लोग आपको सदा नमस्कार करते हैं।

उपासना का फल यह भी है कि जैसे शीत से आतुर मनुष्य का शीत अग्नि के पास जाने से निवृत्त हो जाता है, वैसे ईश्वर के समीप स्थित होने से जीव के सब दोष-दुःख छूट जाते हैं, और जीव ईश्वर

---

२. ३ घण्टों का एक प्रहर होता है। २. २४ मिनट की एक घड़ी होती है।

के गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश पवित्र गुण-कर्म-स्वभाव वाला हो जाता है। साथ ही आत्मा का बल इतना बढ़ जाता है कि पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी मनुष्य घबराता नहीं। उपासना मुक्ति का सर्वोत्तम साधन है।

समर्पण

समर्पण के स्वरूप का वर्णन आरम्भ में कर दिया गया है।

स्तुति, प्रार्थना, उपासना के न करने में दोष

जो ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख है। क्योंकि जिस ईश्वर ने जगत् के सब पदार्थ हमारे सुखों के लिये दे रखे हैं उनका गुण और उपकार भूल जाना ईश्वर ही को न मानने के समान है। यही कृतघ्नता और मूर्खता है।

स्तुति, प्रार्थना आदि के कतिपय स्वरूप

[१]

ओ३म् सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

(तै० आ०, ६प्रपा०, १अनु०)

हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर! आपकी कृपा, रक्षा और सहायता से हम परस्पर एक-दूसरे की रक्षा करें! हे पालना करनेवाले! आपके अनुग्रह से हम सब परम प्रीति से मिलकर सर्वोत्तम-ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्त्तिराज्य आदि द्वारा आनन्द को सदा भोगें। हे कृपानिधे! आप की कृपा से हम एक-दूसरे के सामर्थ्य को सदा बढ़ाते रहें। हे प्रकाशमय तथा सब विद्याओं के देनेवाले परमेश्वर! आपके सामर्थ्य से हमारा पढ़ा-पढ़ाया संसार में प्रकाश को प्राप्त हो, और हमारी विद्या सदा बढ़ती रहे। हे प्रीति के उत्पादक प्रभो! आप ऐसी कृपा कीजिये जिससे हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें, किन्तु एक-दूसरे के मित्र होकर सदा वर्तें। हे भगवन्! आप अपनी करुणा से हम लोगों के तीनों तापों को शान्त कीजिये अर्थात् आध्यात्मिक ताप जो ज्वर आदि से होनेवाले शारीरिक ताप हैं, आधिभौतिक ताप जो कि दूसरे प्राणियों द्वारा कष्ट और क्लेश प्राप्त होते हैं, तथा आधिदैविक ताप जो कि मन और इन्द्रियों के विकारों से उत्पन्न होते हैं—इन तीनों तापों को आप शान्त कीजिये।

[२]

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव।।

(यजुर्वेद अ० ३०। मं० ३)

हे देव ! आप सूर्यादि सकल जगत् और वेद विद्या का प्रकाश करनेवाले हो, तथा सब आनन्दों के देनेवाले हो। हे सर्वशक्तिसम्पन्न ! आप सकल जगत् के उत्पादक हो। हमारे सब दुःखों और सब दुर्गुणों को आप-अपनी कृपा से दूर कर दीजिये। तथा सब दुःखों से रहित जो निःश्रेयस का सुख अर्थात् मोक्ष है, और जो सत्यविद्या की प्राप्ति द्वारा अभ्युदय-सुख का होना है, अर्थात् चक्रवर्तिराज्य, इष्टमित्र, धन, पुत्र, स्त्री और शरीर से अत्यन्त सुख का होना है—इन दोनों प्रकार के सुखों को आप हमारे लिये सब दिनों में प्राप्त कराइये।

[३]

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

(यजु० अ० २५, मं० १३)

हे जगदीश्वर ! आप अपनी कृपा से वेदविद्या के दाता तथा अपने स्वरूप का विज्ञान देनेवाले हो। आप शरीर, इन्द्रिय प्राण, आत्मा और मन में पुष्टि, उत्साह, पराक्रम और दृढ़ता के दाता हो। सब विद्वान् लोग आपकी ही उपासना करते आए हैं, और आपका उत्तम अनुशासन जो कि वेदोक्त शिक्षा है उसे सदा स्वीकार करते आये हैं। आपका आश्रय मोक्षसुख का साधन है, और आपका अनाश्रय अर्थात् परित्याग जन्म-मरण रूप दुःखों का कारण है। आप सुखस्वरूप हैं। सब प्रजाओं के पति हैं। आप सच्चे देव हैं। आपकी प्राप्ति के लिये प्रेम-और-भक्तिरूपी सामग्री द्वारा हम आपका नित्य भजन करें, नित्य आपकी उपासना करें। हे प्रभो ! यह वरदान हमें दो।

[४]

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष७ँशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व७ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

(यजु० अ० ३६, मं० १७)

ओ३म् यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ (यजु० अ० ३६, मं० २२)

हे सर्वशक्तिमान् ! आपकी भक्ति और कृपा से सूर्यादि लोकों का प्रकाश तथा विद्याविज्ञान सब दिन हमको शान्ति प्रदान करें, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल ओषधियाँ और वनस्पतियाँ हमें शान्तिदायक हों। संसार के सब विद्वान् और दिव्यशक्तियाँ हमें शान्ति देवें। वेदशास्त्र तथा संसार के सब पदार्थ हमें शान्ति प्रदान करें। हे भगवन् ! हमारे जीवन में शान्ति-ही-शान्ति हो। हे प्रभो ! ऐसी सुखमयी शान्ति हमें सदा प्राप्त रहे।

हे अभयदान के दाता परमेश्वर ? देश देशान्तरों तथा दिग्-दिगन्तरों में आपको ही शक्ति और आपका ही सामर्थ्य कार्य कर रहा है। हे प्रभो ! इन देश-देशान्तरों तथा दिग्-दिगन्तरों से हमें अभय प्रदान कीजिये। हे शान्ति के स्रोत ! आपकी कृपा से समग्र प्रजाजनों से हमारे लिये शान्ति की लहरें उठें। हे रक्षक ! पशुओं तथा प्राणियों से हमारी रक्षा कीजिये।

[५]

ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि॥ (यजु० अ० १६, मं० ९)

हे परमेश्वर ! आप अनन्त विद्या आदि गुणों से प्रकाशमय हैं हमारे हृदयों में भी आप विज्ञान का प्रकाश कीजिये। आप अनन्तपराक्रम से युक्त हैं, हमें भी पूर्ण पराक्रम से युक्त कीजिये। हे महाबलेश्वर ! आप अनन्त बलवाले हैं, आप-अपने अनुग्रह से हमारे शरीरों और आत्माओं में भी पूर्ण बल दीजिये। हे सर्वशक्तिमन् ! आप सत्य और विद्या के बल के भण्डार हैं, हममें भी अपनी करुणा से सत्य और विद्या का बल स्थापित कीजिये। हे परमेश्वर ! आप दुष्टों पर क्रोध करने-वाले हैं, हमें भी दुष्टों पर क्रोध करने का स्वभाव प्रदान कीजिये। हे सहनशील ईश्वर ! आप हमें सुख-दुःख, हानि-लाभ, सरदी-गरमी, भूख-प्यास आदि को सहन करने की शक्ति प्रदान कीजिये।

[६]

ओ३म् इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावा पृथिवीभ्यां पिन्वस्व। धर्मासि सुधर्मा मेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय॥ (यजु० अ० ३८, मं० १४)

हे भगवन् ! आप की दया से हमारी शुभ कर्म करने की ही इच्छा हो और आप हमारे शरीरों को उत्तम अन्न द्वारा सदा परिपुष्ट कीजिये। आप अपनी कृपा से हमें उत्तम पराक्रम से युक्त तथा प्रयत्न-शील कीजिये। हे आदिगुरु ! वेदविद्या के पढ़ने-पढ़ाने और उस से यथागत् उपकार लेने में हमें पूर्ण सामर्थ्य प्रदान कीजिये, ताकि हम उत्तम ब्राह्मण बन सकें। हे परमेश्वर ! आपके अनुग्रह से हम लोग चक्रवर्तिराज्य को प्राप्त करें और शूरवीर सेना से युक्त होकर क्षत्रिय-वर्ण के अधिकारी बनें। हे भगवन् ! जैसे पृथिवी, सूर्य, अग्नि, जल और वायु आदि पदार्थों से सब जगत् का उपकार होता है वैसे कला-कौशल, विमान आदि साधनों द्वारा हम सृष्टि का उपकार करनेवाले हों। हे न्यायकारी ईश्वर ! हमें न्यायबुद्धि प्रदान कीजिये। हे भगवन्

आप जैसे निर्वैर होकर सबसे वर्ताव करते हैं वैसे ही हम भी वैररहित होकर सबसे वर्ताव करें। हे परमकारुणिक ! हमें उत्तम राज्य, उत्तम धन, और शुभगुण प्रदान कीजिए। हे परमेश्वर ! हमारे राष्ट्र में वेद-विद्या से सम्पन्नउत्तम ब्राह्मण हों, हमारे राज्य और क्षत्रियवर्ण का आप धारण-पोषण कीजिये, वैश्यवर्ण और हमारी प्रजा का धारण-पोषण कीजिये। अर्थात् सर्वोत्तम गुणों को आप हम में स्थापित कीजिये।

[७]

ओ३म् यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु॥ (यजु० अ० ३४, मं० ५)

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

(यजु० अ० ३४, मं० १)

हे भगवन् दयानिधे ! जिस मन में ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद स्थित होते हैं, तथा जिस मन में अथर्ववेद अर्थात् मोक्षविद्या, ब्रह्मविद्या और सत्यासत्य का प्रकाश स्थित होता है, जिस मन में प्रजाजनों की स्मृति-वृत्तियाँ गठी रहती हैं, जैसे कि सूत्र में माला की मणियाँ, तथा पहिये की नाभि में अरे गठे रहते हैं—हे प्रभो ! वह हमारा मन आपकी कृपा से शुद्ध पवित्र हो तथा मोक्ष और सत्यधर्म के अनुष्ठान और असत्य के परित्याग करने के शुभ संकल्पों से सदा युक्त हो।

हे सर्व व्यापक ईश्वर ! जो हमारा मन जाग्रत अवस्था में दूर-दूर के विषयों में जाता है, जो ज्ञान आदि दिव्यगुणों से युक्त और प्रकाशमान है, जो निद्रावस्था में दूर-दूर के पदार्थों के स्वप्न लेता, और सुषुप्ति में दिव्य आनन्द को भोगता है, जो दूर से दूर वस्तुओं का चिन्तन करता, जो ज्योतिर्मय इन्द्रियों को भी ज्योति प्रदान करता, तथा सूर्य आदि ज्योतिर्मय पदार्थों के ज्ञान का साधन है, वह हमारा मन,—जोकि एक शरीर में एक है,—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से कल्याणमार्गी हो, और शुद्ध-पवित्र हो।

उपासना तथा नमस्कार

ओ३म् अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम्॥
अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम्॥
उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम्॥
प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम्॥

(अथर्व० १३।४।५०-५३)

भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः
प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥

(अथर्व० १३।४७-४९)

ओ३म् यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

(अथर्व० का० १०, सू० ८)

हे भगवन् ! आप सब में व्यापक, शान्तस्वरूप तथा जल की भाँति प्राणों के भी प्राण हैं, आप ज्ञानस्वरूप तथा ज्ञानप्रदाता हैं, सबके पूज्य, सबसे बड़े तथा सहनशील हैं—इस प्रकार आपको जानकर हम सदा आपकी उपासना करते हैं ॥

आप प्रकाशस्वरूप, प्रेमास्पद, आनन्दस्वरूप, सर्वैश्वर्यों के स्वामी, तथा सहनशक्ति के प्रदाता हैं । इसलिए हम लोग आपकी निरन्तर उपासना करते हैं ॥

आप महाविस्तारी, आदि-अन्त-रहित, सर्वत्र परिपूर्ण, अन्तरिक्ष की भाँति अवकाशप्रदान द्वारा सबके निवास के स्थान हैं । इसलिए हम लोग आपकी उपासना करके आपके ही आश्रय में रहते हैं ॥

आप सब जगत् के प्रसारक, सर्वश्रेष्ठ, विविध जगत् के ज्ञाता, दर्शनीय तथा सर्वद्रष्टा हैं । इस प्रकार हम आपकी उपासना करते हैं ॥

हे प्रभो ! आप काम-क्रोध आदि शत्रुओं के निवारक हैं, वेदवाणी और शक्ति के आप पति हैं, व्यापक हैं, सामर्थ्यवान् हैं । इसलिए हम लोग आपकी उपासना करते हैं ॥

हे सर्वद्रष्टा जगदीश्वर ! आपको बार-बार नमस्कार हो, आप कृपादृष्टि से हमको देखिये । हम प्रेमभाव से अपनी आत्माओं में आप-का साक्षात्कार करें । हे कृपालो ! अन्न आदि ऐश्वर्य, उत्तम कीर्ति तथा सम्पूर्ण विद्या के प्रदान द्वारा आप हमपर सदा कृपादृष्टि रखिये ॥

हे भगवन् ! आप भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् की सब घटनाओं और व्यवहारों के ज्ञाता हैं, आप समग्र जगत् के रचयिता, पालनकर्त्ता, तथा प्रलयकर्त्ता हैं, आप सब जगत् के अधिष्ठाता हैं, आप केवल सुख-स्वरूप हैं, आपमें दुःख का लेशमात्र भी नहीं, आप मोक्षसुख के दाता, तथा व्यावहारिक सुखों के प्रदाता हैं, आप ज्येष्ठशक्ति हैं, महासामर्थ्य-वान् हैं । हे परब्रह्म ! आपको अत्यन्त प्रेम और अगाध श्रद्धाभक्ति से हम सदा नमस्कार करते हैं ।

वेदोत्पत्ति विषय

चार ऋषियों द्वारा वेदों का प्रकाश

वेद चार हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन वेदों को मन्त्रसंहिताएँ भी कहते हैं। मनुष्य-सृष्टि जब हुई तब परमेश्वर ने अग्नि नामक ऋषि के मन में ऋग्वेद का ज्ञान दिया, वायु नामक ऋषि के मन में यजुर्वेद का ज्ञान, आदित्य नामक ऋषि के मन में सामवेद का ज्ञान तथा अङ्गिरा नामक ऋषि के मन में अथर्ववेद का ज्ञान दिया। अथर्ववेद को आङ्गिरसवेद भी कहते हैं। अथर्ववेद को "छन्दांसि" भी कहते हैं।

वेदों का प्रकाश और लय

जैसे सहज स्वभाव से श्वास और प्रश्वास मनुष्य के शरीर से बाहिर आकर फिर उसी के भीतर चला जाता है, इसी प्रकार सृष्टि के आदि में वेद ईश्वर से उत्पन्न होकर संसार में ज्ञान का प्रकाश करते हैं, और प्रलय में फिर उसी ईश्वर में विलीन हो जाते हैं, अर्थात् उसके ज्ञान में सदा बने रहते हैं।

परमेश्वर से शब्दमय वेदों की उत्पत्ति

परमेश्वर निराकार है, उसके मुख आदि अवयव नहीं है, तब भी परमेश्वर से शब्दमय वेदों की उत्पत्ति हुई है। निराकार तथा हाथ-पैर आदि से रहित परमेश्वर ने जैसे सम्पूर्ण जगत् की रचना की है, वैसे ही मुख आदि अवयवों के विना उसने वेदों की भी रचना की है।

तथा यह भी जानना चाहिये कि मनुष्य के मन में मुख आदि अवयव नहीं हैं, तथापि मन के भीतर प्रश्नोत्तर आदि शब्दों का मानसिक उच्चारण होता है, वैसे परमेश्वर के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

वेद मनुष्यरचित नहीं

वेदों के रचने में मनुष्यों का सामर्थ्य नहीं है। ईश्वर द्वारा रचे वेदों के पढ़ने-पढ़ाने के पश्चात् ही विद्वान् बनकर मनुष्य में ग्रन्थ रचने का सामर्थ्य हो सकता है, अन्यथा नहीं। वर्तमान समय में भी किसी शास्त्र को पढ़कर या किसी का उपदेश सुनकर तथा मनुष्यों के परस्पर व्यवहारों को देखकर ही ज्ञानलाभ कर, मनुष्य ग्रन्थ रचते हैं। यदि किसी मनुष्य के बालक को जन्म से ही एकान्त में रखा जाय, और उसे अन्न जल आदि किसी प्रकार दिया जाता रहे, परन्तु उससे भाषण आदि व्यवहार लेशमात्र भी कोई मनुष्य न करे जबतक कि उसकी

मृत्यु न हो जाय, तो उस बालक को मनुष्यपन का भी ज्ञान न हो सकेगा। ज्ञानी-विज्ञानी बनकर ग्रन्थ रचना कर सकने का सामर्थ्य तो उसे कैसे हो सकता है।

साथ ही यह भी जानना चाहिये कि बड़े-बड़े वनों में रहनेवाले जंगली जाति के मनुष्यों को, उपदेश के विना, यथार्थ-ज्ञान होते नहीं देखा जाता, और न ही उन्हें सभ्य लोक व्यवहारों का ही ज्ञान होता है, किन्तु उनमें केवल पशुओं की-सी प्रवृत्तियाँ ही देखने में आती हैं। ऐसे ही वेदों के उपदेश के बिना सब मनुष्यों में जङ्गली प्रवृत्तियाँ देखने में आतीं, ग्रन्थ रच सकने के सामर्थ्य की तो कथा ही क्या कहनी।

स्वाभाविक ज्ञानग्रहण-शक्ति तथा विद्वानों द्वारा शिक्षाग्रहण

यद्यपि मनुष्यों में ज्ञानग्रहण करने की शक्ति स्वाभाविक है, परन्तु ज्ञानदाता के विना "स्वाभाविक ज्ञानग्रहण-शक्ति" ज्ञान ग्रहण कराने में असमर्थ है। उपरिलिखित दो दृष्टान्तों द्वारा, अर्थात् एकान्त में रखे बालक और वनवासियों के दृष्टान्तों द्वारा, यह बात प्रमाणित होता है। जैसे मन के संयोग के विना आँख से कुछ भी दीख नहीं पड़ता, तथा आत्मा के संयोग के बिना मन से भी कोई कार्य नहीं होता, वैसे ही वेदों और विद्वानों से शिक्षा ग्रहण किये विना मनुष्यस्थित स्वाभाविक ज्ञान धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की विद्याओं के ग्रहण कराने में असमर्थ है। किसी द्वारा उच्चज्ञान के ग्रहण किये विना स्वाभाविकज्ञान मनुष्यों में केवल पाशविक प्रवृत्तियों को ही जागरित कर सकता है। स्वाभाविक ज्ञानमात्र उच्चज्ञान की प्राप्ति का साधन कभी नहीं हो सकता।

विद्या के दो प्रयोजन

परमेश्वर ने मनुष्यों के उपकार के लिए वेदों का प्रकाश किया है। यह परमेश्वर की परम कृपा है। परमेश्वर में अनन्त विद्या है। विद्या के दो प्रयोजन होते हैं, स्वार्थ और परार्थ। परमेश्वर अपनी अनन्त विद्या के सामर्थ्य से सब जगत् को रचता तथा उसे जानता है। यह उसकी विद्या का स्वार्थ-प्रयोजन है। विद्या का प्रयोजन परार्थ भी होता है। परमेश्वर ने अपनी अनन्त विद्या से मनुष्यों को वेदविद्या प्रदानकर अपनी अनन्त विद्या का दूसरा प्रयोजन जो कि "परार्थ" है उसे भी सफल बनाया है। यह परमेश्वर का महान् उपकार है जोकि उसने हमें वेदविद्या प्रदान की है।

जैसे परम कृपालु परमेश्वर ने प्रजा के सुख के लिए कन्द, मूल, फल और घास आदि छोटे-छोटे भी पदार्थ रचे हैं, वैसे उसने सब सुखों का प्रकाश करनेवाली सत्यविद्याओं में युक्त वेदविद्या का भी उपदेश प्रजा के सुख के लिए किया है.

परमेश्वर माता-पिता के समान है

परमेश्वर हम लोगों के लिए माता-पिता के समान है। जैसे माता-पिता सदैव करुणापूर्वक अपनी सन्तानों के लिए सुख चाहते हैं, जैसे परमेश्वर भी मनुष्य आदि सब सृष्टि पर सदैव कृपादृष्टि रखता है। इसीलिए परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में वेदों का उपदेश किया है। परमेश्वर यदि अपनी वेदविद्या का उपदेश न करता तो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की सिद्धि किसी को प्राप्त न होती, और उसके विना किसी को परमानन्द को प्राप्ति न होती।

वेद पुस्तक रूप नहीं

यहाँ यह जान लेना चाहिए कि वेदों का प्रदान पुस्तक के रूप में न हुआ था, अपितु अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा नामक ऋषियों के ज्ञान में वेदविद्या का उपदेश किया गया था। जैसे कि गुरुपरम्परा द्वारा, विना पुस्तकों के भी, शिष्यपरम्परा को ज्ञान प्रदान होता चला आया है। जैसे हाथ-पैर अवयवों के विना, तथा जैसे काष्ठ, लोह आदि साधन-सामग्री के विना परमेश्वर ने समस्त जगत् की रचना की है, वैसे सुख, जिह्वा आदि अवयवों के विना परमेश्वर ने ऋषियों को वेदोपदेश किया है, चूँकि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है।

वेद विद्या के प्रदान में परमेश्वर पक्षपाती नहीं

वेदविद्या का प्रकाश चार ऋषियों द्वारा हुआ। परमेश्वर ने सब मनुष्यों को वेदज्ञान का प्रकाश नहीं दिया। इससे परमेश्वर पर पक्षपात का दोष नहीं आता। इससे तो परमेश्वर की न्यायकारिता प्रकट होती है क्योंकि न्याय का अभिप्राय है कि जो जैसा कर्म करे उसे वैसा ही फल दिया जाय। इन्हीं चार ऋषियों के ऐसे पूर्वसंचित पुण्य कर्म थे कि उनके हृदयों में वेदों का प्रकाश किया गया, उनसे भिन्न मनुष्यों के ऐसे पुण्यकर्म न थे कि उनके हृदयों में भी वेदविद्या का प्रकाश किया जाता।

वेद तथा श्रुति

ऋग्वेद आदि चारों द्वारा सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य आदि का ज्ञान होता है, और इनमें नाना विषयों का वर्णन है, इसलिए इन्हें वेद कहते हैं (विद् ज्ञाने)। वेदों का श्रुति भी है। सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज पर्यन्त वेदों द्वारा, उपदेश परम्परा से, हम सत्यविद्याओं का श्रवण करते आये हैं, इसलिए वेदों को श्रुति भी कहते हैं (श्रु श्रवणे) वेदों के ऋषि वेदों के कर्ता नहीं हैं, वे भी इसी उपदेशपरम्परा से अनादि वेदों को सुनते ही चले आ रहे हैं। अग्नि, वायु, आदित्य,

अङ्गिरा को, वेद के प्रकाश के लिए, परमेश्वर ने केवल निमित्तमात्र बनाया था, अतः ये भी वेदों के कर्ता नहीं हैं। अपितु वेदरूपी परमात्मा-सन्देशों के प्रसार में केवल माध्यम रूप हैं।

वेदों का नित्यत्व-विचार

वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए वेद स्वतः नित्य-स्वरूप है, क्योंकि ईश्वर का सब सामर्थ्य नित्य है। वेद शब्द हैं तो भी लौकिक शब्दों की भाँति शब्दमय वेद अनित्य नहीं हैं। क्योंकि शब्द दो प्रकार के होते हैं एक नित्य और दूसरे अनित्य। जो शब्द परमेश्वर के ज्ञान में हैं वे सब नित्य ही होते हैं। परन्तु हमारे बोलचाल तथा साहित्य के शब्द अनित्य होते हैं। परमेश्वर का ज्ञान और स्वभाव नित्य हैं, इसलिए वेद भी, जो कि परमेश्वर के ज्ञान स्वरूप हैं, नित्य हैं। वेद ईश्वर के ज्ञान में सदा बने रहते हैं, प्रलयकाल में भी उनका विनाश या अभाव नहीं होता। प्रलयकाल में केवल वेदों की अप्रसिद्धि होती है, अभाव नहीं। वेदों में जिस प्रकार शब्द और अर्थ हैं तथा पद और अक्षर जिस-जिस क्रम में है वे सदा इसी प्रकार से बने रहते हैं। पूर्व-कालों में भी ऐसे थे और भविष्य में भी ऐसे ही रहेंगे। चूंकि वेद ईश्वर की विद्या है अतः वे नित्य एक रस ही बने रहते हैं।

भारत के प्राचीन ऋषि मुनि वेदों को नित्य ही मानते चले आये हैं। योग-दर्शन में लिखा है कि गुरुशिष्यपरम्परा में आदि गुरु ईश्वर ही है, जिसने कि सृष्टि के आदि में अग्नि आदि चार ऋषियों द्वारा वेदविद्या को प्रकट किया है। इस प्रकार योगदर्शन की दृष्टि में भी वेद नित्य हैं, क्योंकि वे आदिगुरु ईश्वर द्वारा उपदिष्ट किये गए हैं।

वेदान्तदर्शन में "शास्त्रयोनित्वात्" सूत्र पर श्री शंकराचार्य जी लिखते हैं कि ऋग्वेद आदि चारों वेद अनेक विद्याओं से युक्त हैं, ये सूर्य के समान सब सत्य अर्थों का प्रकाश करनेवाले हैं अतः उनका रचनेवाला सर्वज्ञत्व आदि गुणों से युक्त परब्रह्म है। क्योंकि सर्वज्ञ ब्रह्म से भिन्न कोई जीव सर्वज्ञगुणों से युक्त इन वेदों को बना सके, ऐसा सम्भव नहीं है। ये वेद स्वतः प्रमाण हैं। इनमें जिस-जिस विद्या का वर्णन है उस-उस विद्या की सत्यता के लिए किसी अन्य प्रमाण की साक्षी की आवश्यकता नहीं है। वेद से भिन्न सब ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं, अर्थात् वेदों के अनुकूल होने पर ही वे प्रमाण समझे जा सकते हैं। परमेश्वर जब-जब सृष्टि रचता है तब-तब प्रजा के हित के लिए सृष्टि की आदि में सब विद्याओं से युक्त वेदों का भी उपदेश करता है, और जब-जब सृष्टि की प्रलय होती है तब-तब वेद परमेश्वर के ज्ञान में सदा बने रहते हैं। इससे वेद नित्य हैं, अनित्य नहीं।

वेद स्वतः-प्रमाण विषय

स्वतः प्रमाण और परतः प्रमाण

प्राचीन आर्य विद्वानों ने परमेश्वर द्वारा प्रोक्त ४ वेद ही स्वतः प्रमाण माने हैं। अर्थात् चारों वेद अपने आप ही प्रमाण हैं। वेदों से भिन्न ग्रन्थ, जो कि जीवों के रचे हुए हैं, वेदों के अनुकूल होने पर ही प्रमाण माने जाते हैं। इसलिए जीवरचित ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं चूंकि वेद परमेश्वर के रचे हुए हैं और परमेश्वर सर्वज्ञ, सर्वविद्यायुक्त तथा सर्वशक्तिमान् है, इस कारण उसका कथन भी निर्भ्रम और प्रमाण के योग्य है। जीवों के बनाए ग्रन्थ स्वतः प्रमाण के योन्य नहीं होते, क्योंकि जीव सर्वविद्यायुक्त और सर्वशक्तिमान् नहीं होते। इसलिए उनका कहना स्वतः प्रमाण के योग्य नहीं हो सकता।

स्वतः प्रमाण में दृष्टान्त

वेद, सूर्य के समान, प्रमाणभूत है। अर्थात् जैसे सूर्य अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान होकर सबको प्रकाशित करता है वैसे ही वेद भी अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होकर अन्य ग्रन्थों को भी प्रकाशित करते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो-जो ग्रन्थ वेदों के विरुद्ध हैं वे कभी प्रमाण वा स्वीकार करने के योग्य नहीं हैं, और वेदों का यदि अन्य ग्रन्थों के साथ विरोध भी हो तब भी वेद अप्रमाण के योग्य नहीं ठहर सकते, क्योंकि वे तो अपने ही प्रमाण से प्रमाणयुक्त हैं। इसलिए वेदों से भिन्न जो-जो ग्रन्थ हैं वे वेदों के अनुकूल होने से ही प्रमाण हैं, अन्यथा नहीं।

वेदविषय-विचार

वेदों में मुख्य विषय चार हैं। (१) विज्ञान काण्ड, (२) कर्म काण्ड, (३) उपासना काण्ड, (४) ज्ञान काण्ड। इन्हीं चार विषयों के अङ्गरूप में और भी नाना विषयों का वर्णन वेदों में हुआ है।

विज्ञानकाण्ड और ज्ञानकाण्ड

विज्ञान काण्ड में परमेश्वर से लेकर तृण पर्यन्त पदार्थों का जो साक्षात्कार (योग्य विधि से साक्षात् अनुभव) रूपी बोध है उसका वर्णन होता है। विज्ञान का प्रधान प्रयोजन है परमेश्वर का साक्षात्कार परमेश्वर की प्राप्ति के उद्देश्य से निष्काम-कर्मों अर्थात् आसक्तिरहित कर्मों का करना तथा परमेश्वर की उपासना—ये भी "विज्ञान" के ही

अङ्ग हैं। जिन कर्मों के करने में सांसारिक लाभ मुख्य ध्येय होता है उन्हें सकाम कर्म कहते हैं। सकामकर्म विज्ञान के अङ्ग नहीं होते। सांसारिक पदार्थों के गुणधर्मों को जानना और उनसे यथावत् उपयोग लेना "ज्ञान" कहलाता है। ज्ञान काण्ड में इसी ज्ञान का वर्णन होता है, अर्थात् लौकिक ज्ञान का। ज्ञान काण्ड सम्बन्धी कर्मों को सकामकर्म कहते हैं।

परा-विद्या और अपरा-विद्या

वेदों के विषयों को अन्य प्रकार से भी विभक्त किया जाता है। परा-विद्या और अपरा-विद्या। विज्ञान का दूसरा नाम परा-विद्या है, और ज्ञान का दूसरा नाम अपरा-विद्या है। परा-विद्या अपरा-विद्या से अत्यन्त श्रेष्ठ है, क्योंकि अपरा-विद्या का भी अन्तिम प्रयोजन परा-विद्या ही है। परा-विद्या में ब्रह्म का जाप और उसकी उपासना "ओ३म्" द्वारा की जाती है। क्योंकि "ओ३म्" ब्रह्म का निज नाम है।

वेदों में अवान्तर रूप से नाना विषयों का वर्णन हुआ है। परन्तु चारों वेदों का मुख्य तात्पर्य ईश्वर का ज्ञान और ईश्वर की प्राप्ति कराने में ही है। सब वेदमन्त्रों में ब्रह्म का ही विशेष करके प्रतिपादन है, कहीं साक्षात् रूप से और कहीं परम्परा से। इसी कारण परब्रह्म वेदों का परम-अर्थ है, अर्थात् मुख्य-अर्थ है। परब्रह्म से पृथक् जो यह जगत् और जगत् के पदार्थ हैं वे वेदों के गौण-अर्थ हैं।

कर्म काण्ड

वेदों में कर्मकाण्ड का भी वर्णन है। कर्मकाण्ड क्रियाप्रधान होता है। इसके बिना विद्याभ्यास और ज्ञान पूर्ण नहीं हो सकते। धर्म का ज्ञान और उसका यथावत् अनुष्ठान तथा धर्मपूर्वक अर्थ और काम की सिद्धि करना कर्मकाण्ड का प्रधान विषय है। कर्मकाण्ड के दो भेद मुख्य हैं। एक परमार्थ और दूसरा लोकव्यवहार। परमार्थ में परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना होती है। स्तुति में परमेश्वर के सर्वज्ञत्व आदि गुणों का कीर्तन, उपदेश और श्रवण होता है। प्रार्थना में परमेश्वर की सहायता माँगनी होती है। उपासना में परमेश्वर के स्वरूप में मग्न होकर उसकी आज्ञा का यथावत् पालन करना होता है। परमार्थ में निष्कामकर्म किये जाते हैं। निष्काम में परमेश्वर की ही प्राप्ति के उद्देश्य से धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान करना होता है। इसमें संसार के भोगों की कामना नहीं की जाती।

कर्मकाण्ड का दूसरा भेद लोकव्यवहार है। लोकव्यवहार में सकाम-कर्म किये जाते हैं। जब संसार के भोगों की इच्छा से धर्मयुक्त कर्म

किये जाते हैं तो इन्हें सकामकर्म कहते हैं। सकाम-कर्मों का फल नाशवान् होता है। अग्निहोत्र आदि कर्म भी जब परमात्मप्राप्ति के उद्देश्य से किये जाते हैं तब वे निष्काम-कर्म कहलाते हैं। और जब वायु और वृष्टिजल की शुद्धि आदि के उद्देश्य से किये जाते हैं तब इन्हें सकाम-कर्म कहते हैं। होम से वायु, जल और ओषधि आदि शुद्ध हो जाते हैं, शरीर का स्वास्थ्य और नीरोगता बढ़ती है तथा सब जगत् को सुख मिलता है।

वायु, जल आदि की शुद्धि के दो साधन हैं। एक ईश्वरीय और दूसरा मनुष्यकृत। ईश्वर ने अग्नि रूप सूर्य और सुगन्धरूप पुष्पादि पदार्थों को उत्पन्न किया है। इन द्वारा जगत् की शुद्धि होती रहती है। सुगन्धरूप पुष्पादि द्वारा जल वायु शुद्धि यथावत् नहीं हो सकती। क्योंकि इस द्वारा तो वायु और जल में सुगन्धांश तथा दुर्गन्धांश दोनों परस्पर मिले-जुले रहते हैं। परिणाम यह होता है कि वृष्टिजल, वायु, ओषधियाँ, वीर्य, शरीर, बुद्धि, बल, पराक्रम आदि भी मध्यम गुणवाले ही रहते हैं।

सुगन्ध और दुर्गन्ध का मेल ईश्वरीय सृष्टि के कारण नहीं होता। अपितु यह दोष मनुष्यकृत है। जहाँ जितने मनुष्यादि समुदाय अधिक होते हैं वहाँ उतना ही दुर्गन्ध भी अधिक होता है। यह दुर्गन्ध मनुष्यादि प्राणियों के निमित्त से ही उत्पन्न होता है। गौ, भैंस आदि प्राणियों के समुदायों को मनुष्य ही अपने सुख के लिए इकट्ठा करते हैं। इसलिए इन पशुओं के कारण भी जो दुर्गन्ध उत्पन्न होता है उसके कारण भी मनुष्य ही हैं। जल, वायु और वृष्टिजल को बिगाड़ने वाला सब दुर्गन्ध मनुष्यों के ही निमित्त से उत्पन्न होता है तब उसका निवारण करना भी मनुष्यों का ही कर्त्तव्य है। इसलिए सबके उपकार के लिए यज्ञों के करने की आज्ञा मनुष्यों को वेदों द्वारा दी है।

कई लोग कहते हैं कि घृत तथा मिष्ठान्न आदि पदार्थों को अग्नि में डालने से उन पदार्थों का विनाश क्यों किया जाए। ये उत्तमोत्तम पदार्थ मनुष्यों को यदि भोजनादि के लिए दें तो अधिक उपकार हो सकता है। इसलिए होम आदि यज्ञों का करना व्यर्थ है।

इसका समाधान यह है कि घृत आदि पदार्थ अग्नि में डालने से उनका विनाश नहीं होता, अपितु अग्नि के कारण उन पदार्थों के सूक्ष्म अवयव अलग होकर, वायु में फैलकर, वायु में रहते और दुर्गन्ध तथा रोग के कीटाणुओं का निवारण करते हैं। इसमें वायु और वृष्टिजल शुद्ध होते और जगत् का महान् उपकार होता तथा जगत् को सुख मिलता है। अतर और पुष्प आदि द्वारा इनका सुगन्ध तो वायु के दुर्गन्ध के साथ मिला-जुला ही रहता है। यह सुगन्ध-दुर्गन्ध का छेदन-

भेदन नहीं कर सकता और न घर की गन्दी वायु को बाहर निकाल सकता है, और न ऊपर आकाश में अधिक दूरी तक जा सकता है, क्योंकि इसमें हलकापन नहीं होता। अतर आदि द्वारा घर की दुर्गन्धित वायु न घर से बाहर निकलती है, न बाहर की शुद्ध वायु का घर में प्रवेश होता है। इसप्रकार सुगन्धयुक्त तथा दुर्गन्धयुक्त वायु के घर में बने रहने से रोग-नाश आदि फल भी नहीं होते। अग्नि तो वायु को हलका करके दुर्गन्धयुक्त वायु को घर से बाहर निकाल देती है, और रिक्त हुए स्थान में बाहर की शुद्ध वायु का प्रवेश हो जाता है। यह फल यज्ञों द्वारा ही हो सकता है। यज्ञ के द्रव्यों से उत्पन्न शुद्ध वायु पूर्वस्थित दुर्गन्धित वायु को घर से निकाल देती, घर में शुद्ध वायु को भर देती और इसप्रकार रोगों का विनाश कर देती है। अग्नि द्वारा सुगन्धि आदि द्रव्यों के सूक्ष्म अवयव होकर आकाश में जाकर वृष्टिजल और वायु को शुद्धकर वृष्टि भी अधिक करते हैं। शुद्ध जल और शुद्ध वायु के द्वारा अन्नादि ओषधियाँ भी शुद्ध हो जाती हैं। इसप्रकार जगत् में नित्य-प्रति अधिकाधिक सुख बढ़ता है। यह फल अग्नि में होम करने के बिना दूसरे प्रकार से होना असम्भव है।

होम करने से द्रव्य का विनाश नहीं होता। कारण यह कि किसी पुरुष ने दूर देश में यदि सुगन्ध वस्तुओं का अग्नि में होम किया हो तो उस सुगन्ध से युक्त जो वायु है वह होम के स्थान से दूर देश में स्थित हुए मनुष्य की नाक इन्द्रिय के साथ संयुक्त होने से उसको यह ज्ञान होता है कि यहाँ सुगन्धित वायु है। इससे यह जाना जाता है कि द्रव्यों के अलग-अलग हो जाने में भी स्थूल-द्रव्यों के गुण उनके सूक्ष्म-अवयवों के साथ बने ही रहते हैं। वे सूक्ष्म होकर वायु में फैलकर महान् उपकार करते हैं।

होम करते समय वेदमन्त्रों का उच्चारण इसलिये करते हैं कि इससे वेदों की रक्षा होती है, और ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना उपासना होती, तथा वेदमन्त्रों में होम के जिन-जिन लाभों का वर्णन हुआ है उनका भी साथ-साथ ज्ञान होता रहता है। तथा वेदमन्त्र कण्ठस्थ हो जाते और आस्तिक भावना दृढ़ होती रहती है।

कर्मकाण्ड के देवता

कर्मकाण्ड में जो यज्ञकर्म हैं उनका मुख्य देवता ईश्वर ही है जिसकी प्राप्ति और प्रसादन के लिये यज्ञकर्मों में आहुतियाँ दी जाती हैं, और उच्चारण किये जानेवाले मन्त्रों द्वारा जिसके गुणों का स्मरण किया जाता है। परन्तु कर्मकाण्ड में यज्ञ शब्द का जब व्यापी अर्थ लिया जाता है तब यज्ञकर्म में अन्य नाना देवताओं का भी परिगणन किया जाता है।

इस व्यापी अर्थ में यज्ञ तीन प्रकार के होते हैं। (१) एक तो अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ। (२) दूसरा प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त जगत् की रचना और शिल्पविद्या। (३) तीसरा सत्संग अर्थात् परमात्मा और सज्जनों का संग। इन व्यापी अर्थों में अग्नि, वायु, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह, पृथिवी आदि की रचना के नाना तत्त्व; माता, पिता, आचार्य, विद्वान् तथा अतिथि आदि—भिन्न-भिन्न कर्मों के नाना रूप देवता हैं। परन्तु अग्निहोत्र आदि यज्ञों में मुख्य देवता परमेश्वर ही है।

देव या देवता का अर्थ

देव और देवता पर्यायवाची शब्द हैं। इन दोनों शब्दों का अर्थ और भाव एक ही हैं। 'देव' शब्द के तीन अर्थ होते हैं। (१) दान देनेवाला, (२) प्रकाश करनेवाला, सत्योपदेश करनेवाला। दान का दाता (३) तो मुख्य एक ईश्वर ही है, जिसने कि जगत् के सब पदार्थ दे रखे हैं। विद्वान् मनुष्य भी विद्या आदि पदार्थों को देने से देव कहलाते हैं। प्रकाश करने से सूर्य आदि लोकों का नाम भी देव है। तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सत्यासत्य, इत्यादि अर्थों का प्रकाश करने से पाँच इन्द्रियों और मन को भी देव कहते है। सत्योपदेश करने से माता, पिता, आचार्य, अतिथि—देव कहाते हैं। परन्तु उपासना में तो इष्टदेव परमेश्वर ही है, जो कि महादानी, सूर्य आदि लोकों का भी प्रकाशक, तथा वेदों द्वारा सत्योपदेश करता है। इसलिए परमेश्वर ही मुख्य देव है।

उपर्युक्त का सार

उपर्युक्त सूर्य आदि; ५ इन्द्रियाँ तथा तथा मन; तथा माता, पिता, आचार्य आदि; सांसारिक व्यवहारों की सिद्धि में, अर्थात् सांसारिक कर्मकाण्ड में देव कहाते हैं। परन्तु यज्ञकर्मों, उपासना और विज्ञान-काण्ड में एकमात्र परमेश्वर ही सबका इष्टदेव है, क्योंकि वही स्तुति, प्रार्थना, पूजा और उपासना के योग्य है। परन्तु सांसारिक व्यवहारों अर्थात् सांसारिक कर्मकाण्ड में भी इष्ट भोगों की प्राप्ति के लिये ईश्वर ही सहायक और सामर्थ्यदाता है। इसलिये सकामकर्मों में भी ईश्वर का परित्याग नहीं होता। क्योंकि संसार के कार्यों का कारण एक ईश्वर ही है। अतः कारणरूप से सब कार्यों, कर्मों, और व्यवहारों में उसका सम्बन्ध सर्वत्र विद्यमान है। परमेश्वर के ही प्रकाशन, धारण, और उत्पादन सामर्थ्य से व्यवहार के देव प्रकाशित हो रहे हैं। इन व्यावहारिक देवों का जन्म तथा कर्म ईश्वर के सामर्थ्य से ही होता है।

परमेश्वर ने जिस-जिस पदार्थ में जितना-जितना दिव्यगुण रखा है उतना-उतना ही उस-उस पदार्थ में देवपन है, अधिक नहीं। अतः उन सबका उत्पादन, धारण, तथा प्रकाशन करने से केवल परमेश्वर ही एक मुख्य देव है।

३३ देव

वेदों तथा सत्यशास्त्रों में व्यवहार सिद्धि के हेतुभूत ३३ देव माने हैं। वे हैं ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र और प्रजापति। ८ वसु हैं अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, चन्द्रमा और नक्षत्र। ये आठों पदार्थ सबके वास (रहने) के हेतु हैं इसलिये इन्हें 'वसु' कहते हैं।

११ रुद्र हैं शरीर में १० प्राण और ११वां जीवात्मा। शरीर से १० प्राण और जीवात्मा जब निकल जाते हैं और प्राणी की मृत्यु हो जाती है तब ये सम्बन्धियों को रुलाते हैं। अतः रोदन कराने से इन ११ शक्तियों को 'रुद्र' कहते हैं।

१२ आदित्य हैं १२ महीने। ये १२ महीने सबकी आयु का 'आदान' करते रहते हैं, अर्थात् क्षय करते रहते हैं, इसलिये इनका नाम 'आदित्य' है (आदित्य=आदान करनेवाले, हरनेवाले, क्षय करनेवाले)। इसी-प्रकार इन्द्र अर्थात् बिजुली, और प्रजापति अर्थात् यज्ञ के ये दो और देवता हैं। बिजुली ऐश्वर्यदाता है इसलिये इन्द्र है (इदि परमैश्वर्य)। 'यज्ञ' वायुशुद्धि तथा वृष्टि प्रदान का हेतु होने से प्रजाओं का पालक है, इसलिये प्रजापति है। इस प्रकार ८+११+१२+१+१=३३ व्यवहार सिद्धि के हेतु देवता हैं, इन्हीं के आश्रय संसार का व्यवहार चल रहा है।

परन्तु स्तुति, प्रार्थना और उपासना के योग्य तो एकमात्र ब्रह्म ही है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि "जो मनुष्य ईश्वर से भिन्न दूसरे किसी तत्त्व की उपासना करता है वह कुछ भी नहीं जानता, वह विद्वानों के बीच में पशु अर्थात् गधों के समान हैं यथा—"योऽन्यां देवतामुपास्ते न स वेद। यथा पशुः एवं स देवानाम्"

वेदों में व्यवहारसिद्धि के हेतुभूत अग्नि आदि प्राकृतिक देवों का जब वर्णन होता है तब इन वर्णनों में भी सर्वत्र परमात्मसत्ता अन्वित हुई समझी जानी चाहिये। क्योंकि अग्नि आदि प्राकृतिक देव परमेश्वर की ही व्यापकता और रचनाशक्ति द्वारा दिव्य गुणोंवाले हुए हैं। अग्नि आदि पदार्थों में जितना-जितना प्रकाश है, तथा इनमें जितने-जितने दिव्य गुण हैं उतना-उतना उनमें देवपन भी है—इस बात के मानने में कोई हानि नहीं। परन्तु वेदों में जहाँ-जहाँ उपासना का वर्णन हुआ है वहाँ-वहाँ एक अद्वितीय परमेश्वर का ही ग्रहण करना उचित है।

मूर्त्तिमान् तथा मूर्त्तिरहित देवता

देवता दो प्रकार के हैं—एक मूर्त्तिमान् और दूसरे अमूर्त्तिमान् अर्थात् मूर्त्तिरहित। माता, पिता, आचार्य, अतिथि ये चार मूर्त्तिमान् देवता हैं और ब्रह्म अमूर्त्तिमान् देवता है। पूर्वोक्त आठ वसुओं में अग्नि, पृथिवी, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र,—ये मूर्त्तिमान् देवता हैं। यथा ११ रुद्र, १२ आदित्य, मन, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौः, मन्त्र—ये मूर्त्तिरहित देवता हैं। ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, बिजुली, और यज्ञ—ये देवता मूर्त्तिमान् और मूर्त्तिरहित अर्थात् दोनों प्रकार के देवता हैं।

उपासनाकाण्ड

कई विचारक यह कहते हैं कि वेदों में पृथिवी आदि जड़ पदार्थों की पूजा कही गई है। वे कहते हैं कि पहिले आर्य लोग पृथिवी आदि पंचभूतों की ही पूजा करते थे। कालान्तर में आर्यों ने परमेश्वर को भी पूज्य जाना था। परन्तु यह कथन असत्य है। आर्य लोग सृष्टि के आरम्भ से ही आज पर्यन्त इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि नामों द्वारा एक परमेश्वर की ही उपासना करते चले आये हैं। इस सम्बन्ध में वेदों तथा शास्त्रों में नाना प्रमाण मिलते हैं यथा—

[१]

ओ३म् इन्द्रं मित्रंवरुणमग्निमाहुः अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

(ऋ० १। १६४। ४६)

अर्थात् जो एक अद्वितीय सत्य ब्रह्म है, विद्वान् लोग उसी के नाम इन्द्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्वा आदि कहते हैं।

[२]

एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥

(मनु० १२, १२३)

अर्थात् प्रकाश स्वरूप होने से वह परमेश्वर अग्नि है, विज्ञानस्वरूप होने से मनु, सबका पालन करने से प्रजापति, परमैश्वर्यवान् होने से इन्द्र, सबका जीवनमूल होने से प्राण, और निरन्तर व्यापक होने से परमेश्वर का नाम ब्रह्म है।

□□

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

प्रो० विष्णुदयाल

वेद भगवान् बोले ६.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश ७.००

स्वामी सत्यानन्द

दयानन्दप्रकाश १५.००

डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००
महर्षि दयानन्द की देन ४.००
सत्यार्थप्रकाश **स्वामी दयानन्द** २५.००
संस्कारविधि ,, ४.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ,, १०.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ,, ०.१५
आर्याभिविनय ,, २.००
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण ,, ०.३७
आर्योद्देश्यरत्नमाला ,, ०.२५
बालशिक्षक ,, ०.३७
व्यवहारभानु ,, १.००
सन्ध्या विनय **नित्यानन्द वेदालंकार** २.००
पूर्व और पश्चिम ,, ७.५०
जीवन की राहें ,, ४.००
सु-राज्य की रूपरेखा ,, ०.५०
प्राणायामविधि **नारायण स्वामी** ०.६०
आर्यसमाज क्या है ? ,, १.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००
स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द** ४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य ०.५०

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या २० पैसे सैंकड़ा १५.००
सत्संग गुटका ५० पैसे(छोटा) ,, ४०.००
आर्य सत्संग गुटका (बड़ा) ८० पैसे ,, ६०.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका २.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान १.५०
पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता १.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त) १.००
कथा-पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द** २.५०
बाल शिक्षा ०.६०
उपनिषद् प्रकाश १२.००
वैशेषिक दर्शन ८.००
न्याय दर्शन ६.००
सांख्य दर्शन २.००

बालोपयोगी

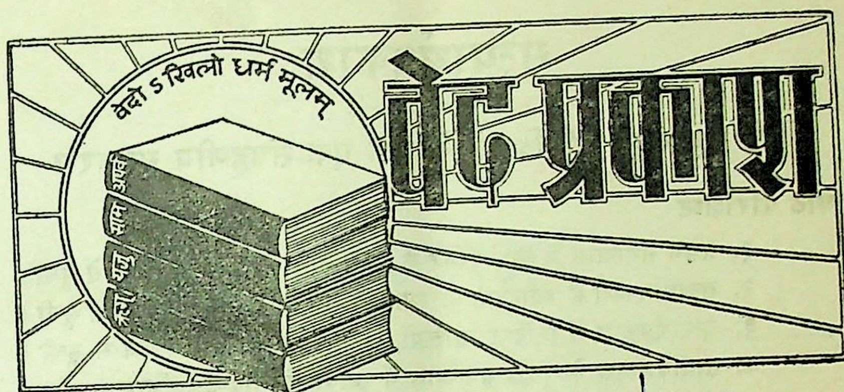
त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.००
स्वामी श्रद्धानन्द १.००
गुरु विरजानन्द १.००
पं० लेखराम १.००
पं० गुरुदत्त १.००
स्वामी दर्शनानन्द १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	तृतीय भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	पंचम भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	सप्तम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	अष्टम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	१.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।



नैरोबी (पूर्वी अफ्रीका) में आर्य सम्मेलन

आर्य प्रतिनिधि सभा पूर्वी अफ्रीका नैरोबी में २१ से २४ सितम्बर तक हीरक जयन्ती मना रहा है। इस अवसर पर सारे संसार से आर्य भाई वहाँ एकत्र होंगे।

भारत से भी लगभग दो सौ यात्री वहाँ जायेंगे। सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधिसभा नई दिल्ली ने हवाई जहाज के किराये में काफी रियायत का प्रबन्ध किया है। साधारणतः ३३००.०० एक तरफ का किराया है। सभा के प्रयत्नों से ४०००.०० रुपये के लगभग दोनों ओर का किराया लगेगा। जो सज्जन चाहें वे रुपये सभा को भेजकर सीट बुक करा लें।

पासपोर्ट, पी-फार्म, स्वास्थ्य सर्टीफिकेट, चेचक, येलोफीवर के टीके के सर्टीफीकेट की व्यवस्था करनी होगी। प्रस्थान ८, १०, १३, १५ सितम्बर को चार समूहों में होगा।

□□

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी भारत वापस

फिजी द्वीप के कोने-कोने में जनता को वेदामृत का पान कराके ३५० व्याख्यान, यज्ञ, और संस्कार करके अनेक व्यक्तियों को वैदिक धर्म में दीक्षित तथा बहुतों का मद्य, मांस और धूम्रपान आदि छुड़ाकर

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

१० जुलाई रात्रि २-३० बजे भारत पहुँच गये हैं।

✧ ओ३म् ✧

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २८, अंक १]   वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया   [अगस्त, १९७८

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

मनुष्य की पाँच इच्छाएँ

इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत्किञ्चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ।।
ऋ० ६ । ४७ । १०

शब्दार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यशाली ! सब सुखों के दाता परमेश्वर ! तू (मह्यम्) मुझे (मृळ) सुखी कर तथा मेरे लिए (जीवातुम्) दीर्घ जीवन (इच्छ) प्रदान कर। मेरी (धियम्) बुद्धि को (अयसः धाराम् न) लोहे=कुल्हाड़ी की धार के समान (चोदय) तीक्ष्ण बना। (त्वायुः) तेरा अभिलाषी, तुझे मन से चाहने वाला (अहम्) मैं (इदम्) यह (यत् किम् च) जो कुछ भी (वदामि) माँगूं, निवेदन करुं (तत्) वह (जुषस्व) मुझे प्रदान कीजिए और (मा) मुझे (देववन्तम्) आस्तिक, भगवद्भक्त दिव्यगुणों से युक्त (कृधि) बनाइए।

व्याख्या—मनुष्य की कुछ स्वाभाविक इच्छाएं होती हैं। इस मन्त्र में मनुष्य की पाँच इच्छाओं का वर्णन है। हम यहाँ प्रत्येक इच्छा पर कुछ विचार प्रस्तुत करते हैं—

१. इन्द्र मह्यं मृळ

हे सब सुखों के दाता ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तू मुझे सुखी कर।

सुख मनुष्य की पहली स्वाभाविक इच्छा है। संसार का प्रत्येक मनुष्य वरन् प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। भक्त कहता है—

इमं मे वरुण श्रुधी हतमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युराचके ।। ऋ० १ । २५ । १९

हे वरणीय प्रभो ! मैं आत्मरक्षा चाहता हुआ आपको पुकारता हूँ । मुझे आज ही, इसी जीवन में सुखी कीजिए और मेरे दुःखों को दूर कीजिए—देव ! मेरी इस पुकार को सुनो और मुझे शीघ्र सुखी करो ।

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् ।
मृळा सुक्षत्र मृळय ।। —ऋ० ७।८९।४

मैं अथाह जल के मध्य में खड़ा हुआ हूँ फिर भी मुझ स्तोता=स्तुति करने-वाले भक्त को प्यास लगी हुई है । हे संरक्षक प्रभो ! मेरी रक्षा करो । आनन्दघन प्रभो ! मुझे शान्ति प्रदान करो ।

सुख प्राप्ति के लिए दो बातें अत्यन्त आवश्यक हैं—

१. हम सदा, सर्वत्र परमात्मा की सर्वव्यापकता का अनुभव करें । जो मनुष्य परमात्मा को अणु-अणु और कण-कण में देखता है, उसे सदा अपने साथ समझता है, वह पाप नहीं कर सकता । जब मनुष्य पापों से बच जाएगा तो उनके फल=दुःखों से भी छूट जाएगा । जब हम सुख की प्रार्थना करें तो मन, वचन और कर्म से बुरा कर्म न करें ।

२. सन्तोषी बनें । जिसके जीवन में सन्तोष नहीं है, वह सुखी नहीं हो सकता ।

महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ।। योग द० २ । ४२

सन्तोष से सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ सुख का लाभ होता है ।

महर्षि मनु का कथन है—

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ।। —मनु० ४ । १२

सुख चाहनेवाला मनुष्य अत्यन्त सन्तोष धारण कर संयमी बने क्योंकि सन्तोष सुख का कारण है और असन्तोष दुःख का कारण है ।

परमात्मा हमें धन दे सकता है, सन्तोष नहीं । यह सन्तोष तो हमें स्वयं उत्पन्न करना होगा । सन्तोष का अर्थ आलसी होना नहीं है । हाथ-पर-हाथ धरकर निठल्ले बैठने का नाम भी सन्तोष नहीं । सन्तोष का अर्थ पूर्ण पुरुषार्थ करके जो फल मिले उसके सम्बन्ध में कोई गिला न करके उसे स्वीकार कर लेना और आगे फिर पुरुषार्थ करना ।

२. जीवातुम् इच्छ

प्रभो ! मुझे दीर्घ जीवन प्रदान कीजिए । दीर्घ जीवन किसलिए ? जिससे मैं अपने जीवन के उद्देश्य को पूरा कर सकूँ ।

वेद के अनुसार हमारी आयु है सौ वर्ष । अथर्ववेद में कहा है—

जीवेम शरदः शतम् । —अथर्व० १९ । ६७ । २

हम सौ वर्ष तक जीएँ ।

मानव आयु सौ वर्ष की है परन्तु पुरुषार्थ, शुभकर्म, सदाचार और ओषधि-सेवन आदि द्वारा उसे बढ़ाया जा सकता है। संसार में मरना कोई नहीं चाहता। मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी और चींटी जैसा क्षुद्र प्राणी भी मरना नहीं चाहता। मनुष्य की अवस्था तो यह है कि वह शरीर को त्यागकर इन्द्र पद भी नहीं पाना चाहता।

एक माता की पुत्री बीमार हो गई। माता ने प्रार्थना की—मैं बूढ़ी हूँ, अतः मौत तू मुझे उठा ले और यह पुत्री जीवित हो जाए। कहते हैं, उसी समय मृत्यु वहाँ प्रकट हो गई (मृत्यु कोई वस्तु नहीं है जो प्रकट हो, यह तो समझाने के लिए एक दृष्टान्त है) और माता से कहा, "चलो मैं तुम्हें लेने आई हूँ।" माता बोली—"वह पड़ी है, उसे उठा ले जा।"

अथर्ववेद में तीन शब्दों में गागर में सागर भर दिया है—

अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवः। —अथर्व० ८।२।२६

हे मानव! तू अक्षीण=हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ, अमर और दीर्घजीवी बन।

परन्तु दीर्घ जीवन का कुछ उपयोग भी होना चाहिए। उसका कुछ उद्देश्य होना चाहिए। कार सुन्दर है, सुदृढ़ है परन्तु जाना कहीं नहीं है तो ऐसी कार का क्या लाभ? प्रत्येक वस्तु के तीन गुण बहुत आवश्यक है—१. उपयोग, २. दृढ़ता और ३. सौन्दर्य। इनमें सबसे प्रमुख है उपयोग। इस शरीर का उपयोग क्या है? यह शरीर मिला है हमें प्रभु प्राप्ति के लिए। वेद में कहा है—

इयं ते यज्ञिया तनूः। —यजु० ४।१३

हे मानव! तुझे तेरा शरीर प्रभु-प्राप्ति के लिए मिला है।

जिस कार्य के लिए यह शरीररूपी रथ हमें मिला है, हम इसे उसी उपयोग में लगा दें। आज तो हम अपने जीवन के उद्देश्य को ही भूल गए हैं। हमारी अवस्था तो यह है—

आए थे हरि भजन को ओटन लगे कपास।

३. चोदय धियमयसो न धाराम्

परमात्मन्! मेरी बुद्धि को कुल्हाड़ी की धार के समान तीक्ष्ण बना।

संसार में बुद्धिबल सर्वश्रेष्ठ है। बुद्धि के बल पर मनुष्य ने क्या कुछ कर डाला है। बुद्धि के बल से मनुष्य पक्षियों की भाँति आकाश में उड़ता है और मछलियों की भाँति पानी में तैरता है। बुद्धि वैभव से मनुष्य चन्द्रलोक तक पहुँच गया है और मंगल-गृह में जाने की तैयारी कर रहा है। बुद्धि की सहायता से मनुष्य सिंह जैसे हिंसक पशुओं को पकड़कर उन्हें सरकस में नचाता है। वैदिक धर्मी उत्तम दन्त चिकित्सक (good dentists) नहीं माँगता अपितु वह तो—**अशोणा दन्ताः।** अथर्व० १६।६०।१ नीरोग दाँत माँगता है। वैदिक धर्मी अच्छे डाक्टर नहीं अच्छे शरीर माँगता है। वैदिक धर्मी यह प्रार्थना नहीं करता—O god! give me the daily bread—हे ईश्वर! तू मुझे आज की रोटी दे। वह तो यह प्रार्थना करता है—**धियो यो नः**

प्रचोदयात् । (यजु० ३६।३) हे प्रभो ! तू हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठ मार्ग पर चला। वैदिक धर्मी प्रार्थना करता है—

मेधां मे वरुणो ददातु । यजु० ३२।१५

वरणीय परमात्मा मुझे मेधा = धारणवती बुद्धि प्रदान करे।

महात्मा विदुर ने बुद्धि की महत्ता का वर्णन करते हुए बहुत सुन्दर कहा है—

न देवाय दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संविभजन्तितम् ।।

—महा० उद्यो० ३५।४०

देवता लोग ग्वालों की भाँति डण्डा लेकर किसी की रक्षा नहीं करते अपितु वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे उत्तम बुद्धि से युक्त कर देते हैं। और—

यस्मै देवा प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् ।
बुद्धि तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति ।।

महा० उद्यो० ३४ । ८१

देवता लोग जिसका पराभव करना चाहते हैं, उसकी बुद्धि को पहले ही हर लेते हैं, इससे वह नीच कर्मों पर ही अधिक दृष्टि रखता है।

बहुत-से मतों में बुद्धि की अवहेलना की गई है। वैदिक धर्म में तर्क को ऋषि कहा गया है। हमें सत्य को जानने के लिए बुद्धि का उपयोग करना चाहिए। बुद्धि का उपयोग न करने पर उसमें जंग लग जाएगा।

४. यत् किंचाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व

तुझे चाहनेवाला, तेरा अभिलाषी मैं जो कुछ माँगूँ, वह मुझे प्रदान कीजिए।

भगवान् को चाहनेवाला भक्त वह वस्तु माँगता है जो प्रभु को प्यारी है। भक्त की भावना तो यह होती है—

राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।
यहाँ यूँ भी वाह वाह है और वूँ भी वाह वाह है ।।

मत-मतान्तरों में हम देखते हैं कि भक्त अड़ जाता है। लीजिए एक अड़ियल भक्त की भावना देखिए—

तारिहों न शम्भो तो हम अम्ब की अदालत में,
नेह को वकील कर नालिश लगाएँगे।
वादा सदा तारबेको कीन्हों त्रिपुरारी आप,
अब इन्कार यही दावा लिखवाएँगे।
दावा जो जवाब में कहोगे यह पातकी है,
तो अनेक पापिन नजीर दिखलाएँगे।
ऐसे हू पै नहिन जो तारोगे दिगम्बर तो,
कोष करुणा को सबै कुरक कराएँगे ।।

ये भावनाएँ अवैदिक हैं। प्रभु के भण्डार तो खुले हैं, वह तो निरन्तर दे रहा है। कमी हमारी है। हम लेते नहीं हैं। हमारी अवस्था सीपी की भाँति है। एक कवि ने समुद्र पर व्यङ्ग कसते हुए कहा था—

बस समुद्र देख ली तेरी दरयाये दिली।[1]
तिष्णा लब[2] रखा सदफ[3] इक बूंद पानी के लिए॥

समुद्र ने भी एक कवि के शब्दों में उत्तर दिया—

मुँह में था मोती सदफ के वो न गिर जाए कहीं।
मुंह नहीं खोला सदफ ने मेरे पानी के लिए॥

परमात्मा देव है, वह निरन्तर देता है अतः भक्त को प्रेम में मग्न होकर यह प्रार्थना करनी चाहिए—

न यह चाहता हूँ न वह चाहता हूँ।
फ़कत[1] अपने रब[2] की रज़ा चाहता हूँ॥

५. कृधि मा देववन्तम्

प्रभो! मुझे आस्तिक, भगवद्भक्त और दिव्यगुणों से युक्त देव बना दे।

जीवन का उद्देश्य है उन्नति करना, ऊँचा और ऊँचा उठना। हम मनुष्य से देव बनें। देव बनने का उपाय क्या है? प्राणियों पर दया करो, दान दो और इन्द्रियों का दमन करो।

हम प्रभुभक्त बनें, आस्तिक बनें, प्रभु-उपासक बनें। उपासना क्या है? उपास्य के गुणों के अपने जीवन में धारण करना। जैसे लोहे का गोला अग्नि में जाकर अग्नि-मय हो जाता है, उसी प्रकार उपनिषद् कहती है—

यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति। —मुण्डक० ३।२।९

जो उस परम ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्म के समान हो जाता है।

इस बात को एक उर्दू कवि ने कहा है—

खुदा की है यह इबादत खुदा-सा बन जाऊँ।

परमात्मा की सच्ची भक्ति, सच्चा नाम स्मरण क्या है, इस विषय में भक्त-शिरोमणि महर्षि दयानन्द ने बहुत सुन्दर लिखा है—

"जैसे परमेश्वर के गुण हैं, वैसे गुण-कर्म स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे। और जो केवल भाँड के समान परमेश्वर के गुण-कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता, उसका स्तुति करना व्यर्थ है।"
—सत्यार्थ० सातवां समुल्लास

परमात्मा को गुणों को जीवन में धारण करके देव बनो।



१. उदारता। २. प्यासा। ३. सीप।

वीरभोग्या वसुन्धरा

ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ।।
—ऋ० ७ । २९ । २

शब्दार्थः—(ब्रह्मन्) हे चतुर्वेदवित् वेदज्ञ विद्वन् ! (वीर) शूरवीर ! तू (ब्रह्म-कृतिम्) परमेश्वर द्वारा निर्मित संसार को (जुषाणः) प्रेमपूर्वक भोगते हुए (हरिभिः) उत्तम गुणों से युक्त साथियों के सहित (तूयम्) शीघ्र (अर्वाचीनः) हमारे सम्मुख (याहि) आ । (अस्मिन्) इस (सवने) संसाररूप यज्ञ में (नु सु मादयस्व) स्वयं प्रसन्न रह और (नः) हम लोगों को भी आनन्दित कर । (इमा) इन (ब्रह्माणि) वेद-वचनों को (उप श्रणवः) उत्तम प्रकार तर्क-वितर्क सहित श्रवण कर ।

व्याख्या—मन्त्र में कई दिव्य सन्देश और शिक्षाएँ हैं । हम प्रत्येक पर कुछ विचार प्रस्तुत करते हैं—

१. ब्रह्मकृतिं जुषाणः

परमेश्वर द्वारा निर्मित यह संसार भोगने योग्य है । यह सृष्टि परमेश्वर की अति मनोरम, अद्भुत, सुन्दर और वैज्ञानिक रचना है । यह संसार त्याज्य नहीं है अपितु भोग्य है । वेद का आदेश है—

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः ।—यजु० ४० । १

परमात्मा द्वारा प्रदत्त पदार्थों को त्याग भाव से भोगो ।

महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

भोगापवर्गार्थं दृश्यम् । यो० २ । १८

यह दृश्य=संसार भोग और मोक्ष दोनों को देनेवाला है ।

महाभारत युद्ध के पश्चात् लोगों में अनेक दूषित मनोवृत्तियाँ आईं । अनेक महन्तों, पण्डे-पुजारियों और पाखण्डियों ने इस प्रकार की घोषणाएँ कीं—यह संसार जंजाल है, यह मनुष्य को जकड़ लेता है अतः संसार से भागो । शरीर को मारो, मन को मारो आदि ।

एक व्यक्ति साबुन और तेल लगाकर और शरीर को मल-मलकर स्नान कर रहा था । उसी समय एक वेदान्ती उधर से निकला और उसे कहने लगा—"इस नर कंकाल को क्या धोता है, अन्त में तो एक दिन मिट्टी में मिल जाना है ।"

इन वेदान्तियों की अवस्था बड़ी विचित्र है । ये संसार के लोगों को उपदेश देते हैं—

रूखी सूखी खाय के ठण्डा पानी पी ।
देख पराई चूपड़ी मत ललचावे जी ।।

परन्तु स्वयं बढ़िया खाते हैं, बढ़िया पहनते हैं, और मौज मारते हैं ।

ऐसे पाखण्डियों से सावधान रहना चाहिए । संसार का कोई भी मनुष्य संसार से बाहर नहीं जा सकता । अतः प्रीतिपूर्वक इसका भोग करना चाहिए ।

२. ब्रह्मन् वीर

संसार त्याज्य नहीं भोग्य है परन्तु इसका भोग कौन कर सकता है। वेद दो सम्बोधन देकर बताता है जो ज्ञानी और वीर है वही संसार को भोग सकता है। अतः मनुष्य ज्ञान और शौर्य, बुद्धि और शक्ति—दोनों को प्राप्त करना चाहिए। जातकर्म-संस्कार में पिता पुत्र को यही तो कहता है—

अश्माभव परशुर्भव । आश्व० गृह्य० १ । १५ । ३

शरीर से पत्थर के समाज दृढ़ और बुद्धि में कुल्हाड़ी के समान तीक्ष्ण बनो।

वेद में कहा है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ —यजु० २० । २५

जिस राष्ट्र में ब्रह्म शक्ति और क्षात्रबल दोनों संयुक्त होकर साथ-साथ विचरते हैं, जिस राष्ट्र के सुनागरिक अपने मस्तिष्क में ज्ञान दीप्ति और हृदय में अदम्य उत्साह अग्नि को प्रज्वलित करके सर्वत्र विचरते हैं, मैं उसी राष्ट्र को पुण्य लोक अथवा भाग्य-शाली राष्ट्र समझता हूँ।

इसी मन्त्र की व्याख्या करते हुए गीता के अन्त में संजय कहते हैं—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धराः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥—गीता० १८ । ७८

जहाँ ब्रह्मशक्ति के प्रतीक योगेश्वर श्रीकृष्ण और क्षात्रबल के मूर्तिमान् स्वरूप धनुर्धारी अर्जुन हों, वहाँ श्री, विजय, भूति और ध्रुवा नीति ये सदा विराजते हैं, यह मेरा मत है।

पराशरस्मृति १ । ५९ में कहा है—**वीरभोग्या वसुन्धरा** । यह संसार वीरों के भोगने योग्य है। परन्तु वीरता के साथ ज्ञान की आवश्यकता है। जब वीर अर्जुन युद्ध छोड़कर भागने लगा था, तब श्रीकृष्ण ने उसे ज्ञान प्रदान कर उसे युद्ध में प्रवृत्त कराया था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन में ज्ञान और शक्ति दोनों का ही समन्वय किया था। जहाँ उन्होंने तर्क के तीरों से काशी के पण्डितों का मान मर्दन किया वहाँ उन्होंने कर्णसिंह की तलवार के दो टुकड़े कर दिये।

३. अर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम्

उत्तम गुणों से युक्त साथियों के साथ हमारे पास आओ।

अपने साथी बनाओ। कैसे साथी ? जो उत्तम गुणों से युक्त हों। जो शील से युक्त हों, मर्यादाओं में बँधे हों और सदाचार से सुभूषित हों। ऐसे साथियों को तैयार करके निकल पड़ो जनता-जनार्दन की सेवा के लिए। महर्षि दयानन्द ने ठीक ही लिखा है—

"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।" —आर्यसमाज का नवाँ नियम

आपके बच्चे गाली न दें इसके लिए आपको दूसरों के, मोहल्ले के बच्चों को ठीक करना होगा, उन्हें सभ्य और सुशिक्षित करना होगा। आप बीमार न हों, इसके लिए आपको अपने घर की सफाई के साथ मोहल्ले की भी सफाई करनी होगी। दूसरों को उन्नत करो, दूसरों को उठाओ। वेद का सन्देश है—

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः॥
—ऋ० १०। १३७। १

हे विद्वान् तेजस्वी लोगो ! आप नीचे गिरे हुए को, पतित को ऊपर उठाओ। हे गुणी जनो ! बार-बार उठाओ। हे ज्ञानी जनो ! अपराध और पाप करने वाले को भी ऊपर उठाओ। हे उदार पुरुषो ! पतितों को बारम्बार उठाकर, उन्हें गले लगाकर उन्हें जीवन प्रदान करो।

जन-जन के पास पहुँचो, उन्हें वेद का सन्देश दो। जो बिछुड़े हैं उन्हें गले लगाओ जो गिरे हैं उन्हें ऊँचा उठाओ। घृणा और द्वेष मत करो। सभी से प्रेम करो।

४. अस्मिन् सवने नु सु मादयस्व नः

इस संसार रूपी यज्ञ में स्वयं प्रसन्न रहो और दूसरों को प्रसन्न करो।

कैसी भी स्थिति और परिस्थिति हो सदा हँसते और मुस्कराते रहो। यह तो संसार है। यहाँ सुख और दुःख तो आते ही रहते हैं। किसी ने सुन्दर कहा है—

सुखस्यान्तरं दुःखं दुःखस्यान्तरं सुखम्।
न नित्यं लभते दुःखं न नित्यं लभते सुखम्॥

सुख के बाद दुःख होता है और दुःख के बाद सुख होता है। न तो मनुष्य नित्य दुःख पाता है और न नित्य सुख पाता है।

किसी उर्दू के कवि ने भी सुन्दर कहा है—

फलक़[1] देता है जिसको एश[2] उसको ग़म भी होते हैं।
जहाँ बजते हैं नक्क़ारे वहाँ मातम[3] भी होते हैं॥

एक हिन्दी भाषा के कवि ने कहा—

संसार में किसका समय है एक-सा रहता सदा।
है निशि-दिवा-सी घूमती सर्वत्र विपदा सम्पदा॥
जो आज एक अनाथ है, नर-नाथ कल होता वही।
जो आज उत्सवमग्न है कल शोक से रोता वही॥

जब दुःख आएँ तो—Hide it in the cave of your heart but walk in the street with a smiling face. उन दुःखों को अपने हृदय में छिपा लो और गलियों में मुस्कराते हुए मुखमण्डल से निकलो।

सदा हँसते और मुस्कराते रहो। रोओ कभी मत। महर्षि दयानन्द जयपुर से हरद्वार जाने लगे तो भक्त रोने लगे। स्वामीजी ने कहा—"हमने रोने का नहीं हँसने

१. आकाश, यहाँ भाग्य, २. विलास सामग्री, ३. शोक।

का उपदेश दिया है।" वेद भी हँसने का, नाचने और गाने का, सदा प्रसन्न और आनन्दित रहने का उपदेश देता है।

प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥

—ऋ० १०।१८।३

हम दीर्घ और अति उत्कृष्ट जीवन को धारण करते हुए नृत्य, हास्य, आनन्द और प्रमोद प्राप्त करने के लिए श्रेष्ठ मार्ग पर अग्रसर हों।

और देखिए—

स्योनाद् योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥

—अथर्व० १४।२।४३

सुखकारी सेजों से उठते हुए परस्पर हँसी-विनोद युक्त होकर तेज और बल से आनन्दयुक्त होते हुए उत्तम इन्द्रियों अथवा गौओं से सम्पन्न तथा उत्तम पुत्रों से युक्त उत्तम घर में—वर-वधू उत्तम जीवन को बिताते हुए विविध रूप से प्रकाशमान उपायों को व्यतीत करें।

वेद के अनुसार तो मनुष्य की सदा यह भव्य भावना होनी चाहिए—

विश्वदानीं सुमनसः स्याम । —ऋ० ६।५२।५

हम सदा पुष्प की भाँति खिले हुए, सुप्रसन्न रहें।

५. इमा ब्रह्माणि उप शृण्वः

तू तर्क-वितर्क पूर्वक वेद वचनों को सुन। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज के तीसरे नियम में लिखा—

"वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

प्रत्येक आर्य को अपने परम धर्म का पालन करना चाहिए। स्वयं वेद पढ़ो और दूसरों को पढ़ाओ। वेद सुनो और दूसरों को सुनाओ। महर्षि मनु कहते हैं—

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् । मनु० २।६

ऋग्वेदादि चारों वेद सम्पूर्ण धर्मों के मूल हैं, धर्म के विषय में परम प्रमाण हैं।

वेद का अर्थ है ज्ञान। वेद में तृण से लेकर ब्रह्मपर्यन्त सभी ज्ञान-विज्ञान दिया हुआ है। ज्ञान की बातें सुनने से कल्याण ही होता है। वेद कठिनाइयों में हमें मार्ग दिखाता है। जब हम गिरने लगते हैं तो हमें ऊपर उठाता है। वेद हमें निराशा से बचाता है, हमें उद्बोधन देकर सावधान करता है। वेद का स्वाध्याय हमारे जीवन में नव-चेतना और शक्ति का संचार करता है। ऐसे वेद का खूब पठन-पाठन, श्रवण और मनन होना चाहिए। वेद के शब्दों में हमारी यह भावना होनी चाहिए—

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्यइव ततनः ।
गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥ ऋ० १।३८।१४

मैं वेद मन्त्रों से अपना मुख भर लूं, वेद मन्त्रों को खूब कण्ठस्थ कर लूं। फिर जैसे मेघ सर्वत्र वृष्टि करता है मैं भी वेद का सर्वत्र प्रचार और प्रसार करूँ। मैं स्वयं वेदमन्त्रों का गान करूँ और दूसरों से गवाऊँ। □

उपासना-यज्ञ की सामग्री

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधिः कः आसीत् ।
छन्दः किमासीत् प्रउगम् किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥

—ऋ० १०।१३०।३

शब्दार्थः—(यत्) जब (विश्वे देवाः) सब देव, समस्त विद्वान् लोग (देवम्) परम देव परमात्मा की (अयजन्त) उपासना करते हैं तब उस उपासना यज्ञ का (प्रमा का आसीत्) परिमाण, इयत्ता, Measure क्या था ? और (प्रतिमा) उस यज्ञ को मापने का साधन क्या था ? (निदानम् किम्) उस यज्ञ का कारण क्या था ? वह यज्ञ किस लिए आरम्भ किया गया था, उस यज्ञ का इष्ट क्षेत्रफल क्या था ? (आज्यम् किम् आसीत्) उस यज्ञ में उस परम फल तक पहुँचने के लिए घृत के सदृश क्या वस्तु थी। (परिधिः कः आसीत्) उस यज्ञ की परिधि क्या थी ? यज्ञशाला की सीमा क्या थी ? (छन्दः किम् आसीत्) गायत्री आदि छन्दों की भाँति उस यज्ञ में कौन से छन्द प्रयुक्त थे ? (प्रउगम् उक्थम् किम्) प्रयोग में लाने योग्य, क्रिया में लाने योग्य प्रशंसनीय बातें क्या थी ?

व्याख्या—जिस सूक्त से यह मन्त्र लिया गया है, वहाँ आगे और पीछे के मन्त्रों में इन प्रश्नों का उत्तर कहीं नहीं है। यह मन्त्र वेद का एक कूट मन्त्र है। संस्कृत साहित्य में भी कूट श्लोक बहुत हैं। कूट श्लोकों में भी अनेक प्रकार की शैलियाँ हैं। लीजिए, मन्त्र की व्याख्या से पूर्व भूमिका रूप में दो-चार कूट श्लोकों का रसास्वादन कीजिए।

कस्तूरी जायते कस्मात् को हन्ति करिणां कुलम् :
किं कुर्यात् कातरो युद्धे मृगात् सिंहः पलायनम् ॥

इस श्लोक के तीन चरणों में तीन प्रश्न हैं और अन्तिम चरण में क्रमशः उनके उत्तर हैं। प्रश्न और उत्तर निम्न हैं—

१. कस्तूरी किससे उत्पन्न होती है ? उत्तर है—मृग से।
२. हाथियों के कुल का संहार कौन करता है ? सिंह।
३. कायर युद्ध में क्या करता है ? युद्ध से भाग जाता है।

इस दूसरी शैली का कूट श्लोक देखिए—

वृक्षाग्रवासी न च पक्षिराजस्
त्रिनेत्रधारी न च शूलपाणिः ।
त्वग्वस्त्रधारी न च सिद्धयोगी
जलं च बिभ्रन्न घटो न मेघः ॥

वृक्ष पर निवास करता है परन्तु पक्षी नहीं है। तीन नेत्रों वाला है परन्तु शिवजी नहीं है। वल्कल वस्त्र पहनता है परन्तु सिद्ध योगी नहीं है। उसमें जल भरा हुआ है परन्तु वह न तो घड़ा ही है और न बादल है। बताओ, वह क्या है ? इस पहेली का

उत्तर श्लोक में नहीं है, उत्तर हमें ढूंढना है। आप उत्तर खोजिए और उत्तर न मिले तो नीचे देखिए।[1]

हिन्दी भाषा में भी ऐसी अनेक पहेलियाँ हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

पीली है बेसन की नहीं बनाते हैं।
खाने की वो चीज नहीं पर खाते हैं।

अपनी बुद्धि को दौड़ाइए और उत्तर ढूंढिए। दौड़ते-दौड़ते बुद्धि थक जाए तो नीचे उत्तर पढ़ लीजिए।[2]

प्रस्तुत वेदमन्त्र में जो प्रश्न हैं, जो पहेलियाँ हैं, उनके उत्तर हमें खोजने हैं। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने वेद पर गवेषणा=खोज करके अनेक गुत्थियों को सुलझा दिया है। इस मन्त्र की पहेलियों का उत्तर महर्षि याज्ञवाल्क्य ने "शतपथ ब्राह्मण" में दिया हुआ है। आइए, क्रम से प्रत्येक प्रश्न का अवलोकन कीजिए और उसका उत्तर लीजिए।

१. का प्रमा आसीत्

देव लोग जब उपासन यज्ञ करने लगे तब उस यज्ञ का परिमाण, माप क्या था? प्रमा का अर्थ बताते हुए याज्ञवल्क्य ने कहा—

अन्तरिक्ष लोको वै प्रमा। श० ८।३।३।५

अर्थात् प्रमा का अर्थ है अन्तरिक्ष लोक। शरीर में हृदय को अन्तरिक्ष कहते हैं। हृदय ही उसकी माप है। हृदय जितना पवित्र होगा, उपासना उतनी ही उत्तम होगी। इसीलिए हृदय को शुद्ध, पवित्र और निर्मल बनाने पर बल दिया जाता है। किसी कवि ने कहा है—

सफाई कल्ब[3] पैदा कर कि यह आइना[4] है लासानी[5]।
इसी में मुनअक्स[6] ऐ मित्र[7] अक्से यार[8] होता है॥

हृदय को निर्मल बनाकर इसमें विशालता लाओ। यदि हृदय में विशालता नहीं तो कुछ नहीं।

एक़बा[9] तुम्हारे गाँव का मीलों हुआ, तो क्या।
रक़बा तुम्हारे दिल का को दो इन्च भी नहीं॥

हम सन्ध्या करते हुए पढ़ते हैं—**ओम् महः पुनातु हृदये।** वह महतो-महान् परमात्मा मेरे हृदय में पवित्रता और विशालता प्रदान करे। हम जो कुछ वाणी से कहते हैं उसे आचरण में लाते हुए अपने हृदय को विशाल बनाएँ। हमारे हृदय-मन्दिर में क्षुद्रता, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य की भावनाएँ न हों। प्रभु का दर्शन हृदय-मन्दिर में ही होता है। वह इस हृदय-मन्दिर में ही समा सकता है। किसी कवि ने कहा है—

---

१. नारियल २. गिन्नी [अशरफी, Gold coin] यह पीली होती है, इसमें कोई सन्=वर्ष भी अवश्य पड़ा होता है और इसे परखते हैं खरी है या खोटी। ३. हृदय ४. दर्पण ५. अद्वितीय, ६. प्रतिबिम्बित, ७. प्रेमी ८. प्रभु-दर्शन ९. क्षेत्रफल

अर्जो समा[1] कहाँ तेरी वुस्अत[2] को पा सके।
मेरी ही दिल वो है कि जहाँ तू समा सके ॥

परमात्मा हृदय-मन्दिर में समाता है, परन्तु उस समय जब हृदय-मन्दिर पवित्र और विशाल हो जाता है।

बाइबल में भी कहा है—

Blessed are pure in heart for that shall see god.

—Matthew 5/8

जिसके हृदय शुद्ध एवं पवित्र हैं, वे सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि वे ही प्रभु-दर्शन के अधिकारी हैं।

२. प्रतिमा का आसीत्

उस उपासना यज्ञ को मापने का साधन क्या था? उस यज्ञ की उपमा किससे दी जा सकती थी। उसकी समता=तुलना किससे की जा सकती थी।

उस यज्ञ को मापने का साधन था प्रतिमा। प्रतिमा का अर्थ शतपथ ब्राह्मण में इन शब्दों में दिया है—

असौ वै लोकः प्रतिमा।—शत० ८।३।३५

सुदूर लोक को प्रतिमा कहते हैं।

शरीर में दूरस्थ लोक है मस्तिष्क। जैसे द्युलोक सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों की ज्योति से जगमगाता है, ऐसे ही मेरा मस्तिष्क भी ज्ञान-ज्योति से ज्ञान के सूर्य से जगमगाना चाहिए। जैसा ज्ञान होता है, उपासना भी वैसी ही होती है। ज्ञानी काशी और मथुरा में जाकर परमात्मा को नहीं खोजता। वह मन्दिर और मस्जिदों में गिरजा और गुरुद्वारों में भी उसे नहीं ढूंढता। ज्ञानी तो उस परमेश्वर को अणु-अणु और कण-कण में देखता है। इस प्रकार ज्ञान ही उस उपासक यज्ञ को मापने वाला साधन है जितना ज्ञान अधिक होगा उतना ही उपासक चमकेगा।

३. किं निदानम्।

वह उपासना यज्ञ किस लिए आरम्भ किया गया था?

इस प्रश्न का उत्तर है—**देवा देवमयजन्त**—देवों ने देव बनने के लिए इस यज्ञ को आरम्भ किया देव=विद्वान् देव=परमदेव परमात्मा की उपासना इसलिए करते हैं कि हम भी देव बन जाएँ, हम भी परमात्मा जैसे बन जाएँ। देव बनने के लिए खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय परमात्मा का ध्यान रखना चाहिए।

ध्यान के विषय में 'हनुमन्नाटक' में एक सुन्दर कथानक है। रावण सीता को उठा कर लंका में ले गया। उसने बहुत प्रयत्न किया कि सीता मेरे अनुकूल हो जाए परन्तु सीता राम की ही रट लगाती रही। एक दिन सरमा नामक राक्षसी ने कहा—

१. पृथिवी और आकाश २. विस्तार, लम्बाई-चौड़ाई

"हे सखि ! भ्रमर के ध्यान से भ्रमर बने हुए कीट को देखकर मुझे डर लगता है कि श्रीराम के निरन्तर ध्यान से तुममें भी पुरुषत्व आ जाने से फिर उनके साथ तुम्हारा प्रेम कैसे होगा ?" फिर वह स्वयं ही उत्तर देती है—"चिन्ता मत करो। तुम्हारा निरन्तर ध्यान से श्रीराम में भी स्त्रीत्व आ जाएगा फिर दोनों में प्रेम होगा ही।"

उपासना कब पूर्ण होती है ? उपासना तब पूर्ण होती है जब स्थान बदल जाता है। वेद में कितना सुन्दर कहा है—

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥—ऋ० ८।४४।२३

हे प्रकाशस्वरूप ज्ञानमय प्रभो ! यदि मैं तू जाऊँ अथवा तू मैं बन जाए तब इस जीवन में तेरे आदेश (मैं तेरे गुणों को धारण करूँ) और तेरी हितभावनाएँ (संसार के झमेलों से दूर होकर मैं तेरे साथ मोक्षानन्द भोगूँ) सत्य हो जाएँ।

उपासना की तीन अवस्थाएँ हैं—१. समीपता २. गोद में और ३. अन्दर (गर्भ की भाँति) उपासना से जीवन में १. पवित्रता आती है। २. जीवन शक्तिसम्पन्न बनता है, और उपासक ३. देव बनता है, ब्रह्म-इव बन जाता है

निदान का अर्थ होता है—नि=निश्चय से दा=काटना। इस उपासना यज्ञ का प्रयोजन यह है कि इस यज्ञ से उपासक की सभी वासनाएँ कट जाती हैं।

४. आज्यम् किम्।

उस यज्ञ में घृत क्या था ? इस का उत्तर है—

सत्यमाज्यम्। शत० ११।३।१।१

उस यज्ञ में सत्य ही घृत था। उपासना सत्य से चमकती है। परमात्मा का उपासक असत्य थोड़े ही बोलेगा। सत्य भाषण का परिणाम क्या होता है—

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। योग द० ३।३६

सत्य में प्रतिष्ठित होने पर मनुष्य की वाणी अमोघ हो जाती है, वह जो कह देता है वैसा ही हो जाता है।

अजातशत्रु युधिष्ठिर का व्रत था—

सत्यं तु मे रक्ष्यतमं न राज्यम्। महा० वन० १२०।२७

मेरे लिए सत्य की रक्षा ही प्रधान है, राज्य की नहीं।

इसका परिणाम क्या था ? युधिष्ठिर **'चक्षुर्हणः'**=दृष्टि उठाकर देखने मात्र से ही दूसरे को भस्म करनेवाले बन गए थे।

५. परिधिः कः आसीत्

उस उपासना यज्ञ की परिधि क्या थी ? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं—

गुप्त्यै वा अभितः परिधयो भवन्ति। शत० १।३।४।८

इन्द्रियों की रक्षा ही उस उपासना यज्ञ की सीमा थी। इन्द्रियाँ चञ्चल हैं। ये अपने विषयों की ओर भागती हैं। इन इन्द्रियों को विषयों में न जाने देना—यही उस उपासना यज्ञ की परिधि थी।

६. छन्दः कः आसीत्

गायत्री यज्ञ में गायत्री छन्द की आहुतियाँ होंगी। जगती, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द के मन्त्रों की नहीं। इस उपासना-यज्ञ में कौन-से छन्द का प्रयोग किया गया था? उत्तर है—

वीर्यं छन्दाꣳसि। तां० ६।६।२६

शक्ति का ही छन्द के रूप में प्रयोग किया गया था। शक्ति होगी तभी उपासना यज्ञ चलेगा। शक्ति से ही उपासना-यज्ञ में उत्साह भी होगा। उपनिषद् में घोषणापूर्वक कहा है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। मुण्डको० ३।२।४

बलहीन मनुष्य उस परमात्मा को नहीं पा सकता।

सनत्कुमार जी कहते हैं—

बलमुपास्व। छान्दो० ७।८।२

हे नारद! तू बल की प्राप्ति कर।

७. प्रउगं उक्थं किम्

प्रयोग में, क्रिया में लाने योग्य प्रशंसनीय बात क्या थी? उत्तर है—

यज्ञियं वै कर्मोक्थ्यम्। ऐ० १।२६

यज्ञीय कर्मों को ही करना। उत्तम कर्म, परोपकारमय कर्म करना ही सच्ची उपासना है। उपासना और क्रोध दोनों का समन्वय नहीं हो सकता। एक ओर प्रभु-भक्ति करना दूसरी ओर बुरे कर्म करना—इन दोनों का मेल नहीं है। नारायण कवि ने ठीक ही कहा है—

भजन करे नित नेम से पाप करे दिन रात।
नारायण ऐसे भक्त से प्रभु करे नहीं बात॥

अपने कर्मों द्वारा परमात्मा की उपासना करो।

हमारे जीवन में उपासना मूर्त्तरूप धारण करे इसके लिए हम चलना शुरू कर दें फिर एक-न-एक दिन पहुंचेंगे ही।

□

सुखी गृहस्थ

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥

—ऋ० १०।८५।४२

पदार्थ—हे दम्पति! पति-पत्नी! तुम दोनों (इह एव) यहाँ ही, इसी घर में (स्तम्) रहो। (मा वि यौष्टम्) तुम कभी पृथक् मत होओ तथा एक-दूसरे से द्वेष मत करो। (पुत्रैः) पुत्रों और (नप्तृभिः) पोतों और नातियों के साथ (क्रीळन्तौ) क्रीड़ा करते हुए, खेलते हुए (स्वे गृहे मोदमानौ) अपने घर में आनन्दपूर्वक रहते हुए (विश्वम् आयुः) पूर्ण आयु को (व्यश्नुतम्) प्राप्त करो, भोगो।

व्याख्या—मन्त्र में गृहस्थियों के लिए पाँच दिव्य उपदेश हैं—१. हे दम्पति तुम दोनों इसी घर में रहो। २. तुम कभी पृथक् मत होओ और एक-दूसरे से द्वेष मत करो। ३. दोनों पूर्ण आयु को प्राप्त करो। ४. पुत्र और नातियों के साथ खेलते हुए। ५. अपने घर में आनन्दपूर्वक रहो। इस प्रकार मन्त्र में पाँच उपदेश हैं। प्रथम चार साधन हैं और पाँचवाँ साध्य है।

गृहस्थ में पति-पत्नी आनन्दपूर्वक रहें। घर में आनन्द, उल्लास और प्रसन्नता का वातावरण हो। घर में आनन्द का सागर ठाठें मारता हो। परन्तु यह आनन्द और प्रसन्नता कैसे प्राप्त होगी? वेद ने उसके चार साधन बताये हैं—

१. इह एव स्तम्

हे पति-पत्नी! तुम दोनों इसी घर में रहो। पति-पत्नी एक साथ रहें, अलग-अलग नहीं। यदि पति को चिरकाल तक प्रवास में रहना हो, तो पत्नी को भी साथ ले जाए। गृहस्थ की पूर्णता इस बात में है कि पति-पत्नी साथ-साथ रहें। पति-पत्नी एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। शतपथ आदि ब्राह्मणों में कहा है—**पुरुषो वै यज्ञः।** श० १।३।२१ अर्थात् पुरुष यज्ञ है। फिर तैत्तरीय ब्राह्मण में कहा है—**अयज्ञो वा एषः। योऽपत्नीकः।** २।२।२।६। मनुष्य निश्चय ही यज्ञकर्म के अयोग्य है जो पत्नी से रहित है। आगे कहा है—**अर्धो वा एष आत्मनः। यत्पत्नी।** तै० ३।३।३५ क्योंकि पत्नी पुरुष के शरीर का आधा भाग है।

शतपथ ब्राह्मण में कहा है—

अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जायां न विन्दते नैव तावत् प्रजापतेऽसर्वो हि तावद् भवति ॥ शत० ५।२।१।१०

पत्नी पुरुष का आधा अङ्ग है (अंग्रेजी में भी पत्नी को Better half कहते हैं) अतः मनुष्य जब तक पत्नी को नहीं पाता, तब तक वह सन्तान उत्पादन में भी असमर्थ रहता है, अतः वह अधूरा रहता है।

इह एव स्तम्—का अर्थ यह भी है—तुम गृहस्थ के धर्मों में स्थित रहो। गृहस्थ के प्रमुख धर्म हैं—पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान, सुप्रजा का निर्माण, ईमानदारी से धनोपार्जन तथा घर की सर्वविध समृद्धि।

स्तम्—द्विवचन है। यह द्विवचन एक समय में एक पुरुष की एक स्त्री और एक स्त्री के एक पति का विधान कर रहा है। यदि एक समय में एक से अधिक पति या पत्नी का विधान होता तो 'स्तम्' द्विवचन न होकर 'स्त' बहुवचन होता। एक पतिव्रत और एक पत्नीव्रत गृहस्थ कल्याण का मूल है। एक पत्नीव्रत को जिसने तोड़ा उसे सुख नहीं मिला। महाराज दशरथ ने तीन विवाह किये परिणाम श्रीराम को वन में भेजना पड़ा और स्वयं को परलोक सिधारना पड़ा। हजरत मोहम्मद को भी गृह-कलह का शिकार होना पड़ा।

इहैव स्तम्—वैवाहिक सम्बन्ध जीवन पर्यन्त होता है। पाश्चात्य देशों में पति और पत्नी के होते हुए भी अन्य स्त्री और पुरुषों के साथ नाता जोड़ लिया जाता

है। इस कुरीति ने विवाह की पवित्रता को नष्ट कर दिया है। महर्षि मनु ने कहा है—स्वदारनिरतः सदा। [मनु० ३।४५] अपनी पत्नी से ही सदा सन्तुष्ट रहे।

२. मा वि यौष्टम्

हे दम्पति ! तुम दोनों कभी पृथक् मत होओ तथा एक-दूसरे से द्वेष मत करो। वैदिक धर्म में तलाक नहीं है। वैदिक धर्म में जिस दिन विवाह होता है उस दिन पति-पत्नी एक-दूसरे के हाथ बिक जाते हैं। वैदिक धर्म में विवाह दो शरीरों का नहीं दो आत्माओं का मिलन है। विवाह के समय पति और पत्नी निम्न प्रतिज्ञा मन्त्र पढ़ते हैं—

समापो हृदयानि नौ। ऋ० १०।८५।४७

हम दोनों के हृदय मिलकर इस प्रकार एक हो जाएँ जैसे दो जल अपने नाम और रूप को छोड़कर एक हो जाते हैं। जैसे दो मिले हुए जलों को संसार की कोई शक्ति पृथक् नहीं कर सकती, उसी प्रकार हम भी कभी अलग न हों।

गृहस्थ में पति एवं पत्नी के मन, विचार और चित्त सब समान हों। पति-पत्नी में प्रेम हो। प्रेम भी कैसा ? वेद के अनुसार पति-पत्नी की भावना हो—

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम्।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति॥

—अथर्व० ७।३६।१

पति और पत्नी हम दोनों की आँखें मधुर मधु के समान प्रेममय अमृत से सिंची हों। हम दोनों का मुखमण्डल स्नेह, प्रेम ज्ञान-ज्योति से लावण्ययुक्त हो। हे प्रियतम ! हे प्रियतमे ! तू मुझे अपने हृदय में रमा ले। हम दोनों का मन भी सदा समान भाव और विचारों वाला हो।

वियोग उसी स्थिति में नहीं होता जब पति-पत्नी में परस्पर ईर्ष्या-द्वेष न हो कर परस्पर प्रेम होता है। मनु महर्षि कहते हैं—

सन्तुष्टो भर्यया भर्ता-भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वैध्रुवम्॥ —मनु० ३।६०

हे गृहस्थो ! जिस कुल में पत्नी से पति और पति से पत्नी सदा प्रसन्न रहती हैं उसी कुल में निश्चित कल्याण होता है।

इस स्थिति को जीवन में घटाया कैसे जाए ? इसके लिए निम्न बातों पर ध्यान दें—१. पति और पत्नी एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करें। २. दोनों एक दूसरे का सम्मान करें। ३. समन्वयवाद को लेकर चलें कभी पति-पत्नी के परामर्श को मान ले तो कभी पत्नी, पति के आदेश को शिरोधार्य कर ले। ४. अपने विचारों को एक-दूसरे पर थोपने और लादने का प्रयत्न न करें। ५. मस्तिष्क को सदा ठण्डा रखें और सदा मीठा एवं मधुर ही बोलें। ६. छिपाकर काम न करें। यदि किसी से कोई भूल हो गयी है, तो उसे एक-दूसरे को बता दें।

३. विश्वम् आयुः व्यश्नुतम्

सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करो। वेद ने अनेक स्थानों पर सौ वर्ष और उससे भी अधिक जीने का उल्लेख किया है। ऋग्वेद [१०।१८।२३] में कहा है—**शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीः**। सभी मनुष्य सौ शरद्-ऋतुओं तक और उससे भी अधिक जीएँ।

वेद तो यहाँ तक कहता है—

मृत्योः पदं योपयन्त एत। अथर्व० १२।२।३०

हे मनुष्यो! मौत के कारणों को परे धकेलते हुए आगे बढ़ो।

सौ वर्ष की आयु प्राप्ति के लिए शरीर दृढ़ होना चाहिए। शरीर को नीरोग, स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट बनाने के साधन निम्न हैं—

१. सात्विक आहार—आहार और स्वास्थ्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है अतः आहार शुद्ध एवं सात्विक होना चाहिए। उपनिषत्कार कह गये हैं—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः। छन्दो० ७।२६।२

आहार शुद्ध होने पर अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

महर्षि मनु ने कहा है—

वर्जयेन्मधु मांसं च। मनु० २।१७७

शराब और मांस मछली, अण्डों का सेवन त्याग देना चाहिए।

इसी प्रकार बुद्धि को भ्रष्ट करने वाले अफीम, गाँजा, चरस, चाय, काफी, धूम्रपान आदि का भी परित्याग कर देना चाहिए।

२. व्यायाम—स्वस्थ जीवन के लिए व्यायाम भी अत्यावश्यक है। व्यायाम से शरीर में बल और स्फूर्ति आती है। मुखमण्डल पर ओज, तेज, आभा और कान्ति आती है। व्यायाम से शरीर रोगों से सुरक्षित बन जाता है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में कहा है—

लाघवं कर्मसामर्थ्यं विभक्तघनगात्रता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते॥ —भावप्रकाश ४।५७

प्रतिदिन व्यायाम करने से शरीर में लघुता=चुस्ती और स्फूर्ति, कार्य करने में शक्ति गात्रों की पुष्टि, वात आदि दोषों का नाश और जठराग्नि की वृद्धि होती है।

३. नियमित दिनचर्या—स्वास्थ्य के लिए नियमित दिनचर्या का होना भी परमावश्यक है। योगेश्वर श्री कृष्ण कहते हैं—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ —गीता ६।१७

जिसका आहार नियमित है, जिसका विहार भ्रमणादि नियमित है, कार्यों में जिसकी चेष्टा नियत है, तथा जिसकी निद्रा और जागरण नियत है, इस प्रकार के पुरुष का योग-अनुशासित जीवन उसके दुःखों को दूर कर देता है।

प्रकृति के नियमों को तोड़कर कोई भी सौ वर्ष नहीं जी सकता।

४. प्रसन्नता और निश्चिन्तता—स्वस्थ रहने के लिए सदा प्रसन्न, हँसते और मुस्कराते हुए रहना चाहिए। निश्चितता परम योग है। चिन्ता शरीर को जलाती है। चिन्ता से एक ही रात्रि में मनुष्य के बालों को सफेद होते देखा गया है।

४. क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः

अपने पुत्र-पौत्र और नातियों के साथ क्रीड़ा करते हुए जीवन व्यतीत करो। सन्तान कैसी हो। सन्तान योग्य और सदाचारी होनी चाहिए। किसी कवि ने कहा है—

अजातमृतमूर्खाणां वरमाद्यो न चान्तिमः।
सकृद् दुःखकरावाद्यावन्तिमस्तु पद पदे॥

हितोपदेश कथामुख श्लोक ८

'पुत्र का उत्पन्न नहीं होना', 'उत्पन्न होकर मर जाना' और जीवन-पर्यन्त मूर्ख रहना—इन तीनों प्रकार के पुत्रों में से आदि के दो अच्छे हैं किन्तु तीसरा अच्छा नहीं है क्योंकि उत्पन्न न होने और मर जाने पर तो क्षणमात्र का दुःख होता है परन्तु मूर्ख पुत्र से तो क्षण-क्षण में दुःख होता है।

और भी—

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतैरपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणैरपि॥

—हितो० श्लोक १८

जैसे एक ही चन्द्रमा अपने तेज से अन्धकार को मार भगाता है परन्तु तारागणों का समूह अन्धकार को नष्ट नहीं कर सकता, वैसे ही कुल का चार चाँद लगाने वाला एक ही पुत्र श्रेष्ठ है, सैकड़ों मूर्ख पुत्र किसी काम के नहीं।

वेद का आदेश है मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्। —ऋ० १०।५३।६

मनुष्य बनो और दिव्य सन्तान उत्पन्न करो।

सन्तान दिव्य कैसे बने, उनका निर्माण कैसे हो। इसके लिए तीन बातें आवश्यक हैं—

१. उच्चादर्श—माता-पिता सन्तान के समक्ष सदा उच्च, महान्, दिव्य आदर्श प्रस्तुत करें। यदि माता-पिता विलासी हैं, शराबी और जुआरी हैं तो सन्तानें भी वैसी ही बनेंगी।

२. सत्सङ्गति—बच्चों की संगति का विशेष ध्यान रखा जाए। माता-पिता इस बात का सदा निरीक्षण करते रहें कि बच्चे कहाँ जाते हैं, किसके साथ बैठते हैं, किनके साथ खेलते हैं। बच्चों में धार्मिक सत्सङ्गों में जाने का स्वभाव डालें।

३. बच्चों के साथ हँसें और खेलें। बच्चों के साथ प्रेम का, सौम्यता का व्यवहार करें। बालक माता-पिता से भयभीत न हों—ऐसा वातावरण घर में बनाएँ।

वेद में वर्णित चार साधनों को अपने से हमारे गृहस्थ आनन्द धाम बन जाएँगे।

□□

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६
के प्रकाशन

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.५०
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	१०.००
प्रभुमिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	३.००
मानव-जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	६.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र (उर्दू)	३.५०
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्री महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०.००

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास	४५.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास	३०.००
सांख्य सिद्धान्त	२५.००
सांख्य दर्शन	२०.००
वेदान्त दर्शन	३५.००
वैशेषिक दर्शन	२५.००
न्याय दर्शन	३०.००
योग दर्शन	३०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू औषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
चतुर्वेद शतकम्	८.००
सामवेद सूक्ति-सुधा	३.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा (अजिल्द)	२०.००

पं सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश (जीवन-चरित्र)	१५.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसे !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

दो नई पुस्तकें

सामवेद सूक्तिसुधा	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३.००
ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका एक सरल अध्ययन	प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार	२.००

बहुत दिनों बाद दुबारा प्रकाशित

वेद भगवान बोले	प्रो० विष्णुदयाल एम० ए०	६.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३.००
दिव्य दयानन्द	,,	३.००
चतुर्वेद शतकम्	,,	८.००
कर्त्तव्यदर्पण	म० नारायण स्वामी	४.००
गीत भण्डार	पं० नन्दलाल वानप्रस्थी	४.००

एक विशिष्ट प्रकाशन

पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कॉलर द्वारा सम्पादित

सत्यार्थप्रकाश (आठ परिशिष्ट, मोटे अक्षर) सजिल्द — २५.००

सत्यार्थप्रकाश (आर्ट पेपर पर छपी सुनहरी जिल्द, उपहार में देने योग्य राज संस्करण) — १०१.००

दयानन्द चित्रावली — रामगोपाल विद्यालंकार — ८.००

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१.००
स्वामी श्रद्धानन्द	१.००
गुरु विरजानन्द	१.००
पं० लेखराम	१.००
पं० गुरुदत्त	१.००
स्वामी दर्शनानन्द	१.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	तृतीय भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	पंचम भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	सप्तम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	अष्टम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	१.५०

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था — ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय — १.५०

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा प्रसारित

अन्य प्रकाशन

वैद्य गुरुदत्त

वेद प्रवेशिका	६.००
सांख्य दर्शन	४०.००
विश्वेदेवाः	६.००
अद्वैत मीमांसा	६.००
इतिहास की परम्परा	१२.००
भारत गांधी नेहरू की छाया में	१८.००
भारत में राष्ट्र	४.००
ब्रह्मसूत्र I	३०.००
,, II	२४.००
प्रजातन्त्र अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था	५.००
धर्म तथा समाजवाद	१४.००
द्वितीय विश्वयुद्ध	३.००
महर्षि दयानन्द	३.००
विज्ञान और विज्ञान	८.००
श्रीमद्भगवतगीता	२४.००
दो लहरों की टक्कर (दो खण्ड)	६६.००

बलराज मधोक

भारत में लोकतन्त्र	१२.००
भारत की सुरक्षा	६.००
भारत की विदेशनीति	६.००
हिन्दू राष्ट्र	२.००
भारत और संसार	८.००
डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी	१०.००
पाकिस्तान का आदि और अन्त	५.००

स्वामी वेदानन्द

स्वाध्याय सन्दोह	१५.००
स्वाध्याय सन्दीप	१०.००
स्वाध्याय संग्रह	४.००
सावित्री प्रकाश [गायत्री]	२.००
सत्यार्थ प्रकाश का प्रभाव	२.००
सन्ध्यालोक	२.५०
ब्रह्मोद्योपनिषत्	२.५०
जीवन की भूलें	१.००

स्वामी योगेश्वरानन्द जी

आत्मविज्ञान	१८.००
ब्रह्मविज्ञान	२०.००
हिमालय का योगी	१०.००
बहिरंग योग	१८.००
निर्गुण ब्रह्म	१२.००
Nirgun Brahma	१५.००
Science of Soul	१८.००
Science of Divinity	२५.००
First Step to Yoga	२५.००
Himalaya Ka Yogi	१५.००

वेदभाष्य

महर्षि दयानन्द कृत

महर्षि ने ऋग्वेद के दस मण्डल में से साढ़े छः मण्डलों का भाष्य ९ जिल्दों में किया है।

ऋग्वेद भाष्यम् प्रथम खण्ड	१८.००
,, ,, द्वितीय ,,	१५.५०
,, ,, तृतीय ,,	१४.००
,, ,, चतुर्थ ,,	१२.००
,, ,, पंचम ,,	१४.००
,, ,, षष्ठ ,,	१०.००
,, ,, सप्तम ,,	१७.००
,, ,, अष्टम ,,	१८.००
,, ,, नवम ,,	१२.००
,, ,, दसवां मण्डल भाग I	३०.००

इन सभी भागों में संस्कृत भाष्य एवं हिन्दी भाष्य दोनों हैं।

केवल हिन्दी भाषा भाष्य भी पृथक् उपलब्ध हैं।

ऋग्वेद भाषा भाष्य प्रथम	८.००
,, ,, ,, द्वितीय	७.००
,, ,, ,, तृतीय	७.००

ऋग्वेद भाषा भाष्य चतुर्थ	६.००
,, ,, ,, पंचम	७.००
,, ,, ,, षष्ठ	७.५०
,, ,, ,, सप्तम	८.००
,, ,, ,, अष्टम	८.००
,, ,, ,, नवम	६.००
,, ,, दसवां मण्डल I भाग	१५.००
यजुर्वेद भाष्यम् प्रथम	१६.००
,, ,, द्वितीय	२४.००
,, ,, तृतीय	१६.००
,, ,, चतुर्थ	१४.००
यजुर्वेद भाषा भाष्य २ खण्डों में महर्षि दयानन्द I	१५.००
भाग II	२५.००

पं० जयदेव विद्यालंकार कृत

चारों वेद भाष्य

ऋग्वेद	७ खण्डों में	११६.००
अथर्ववेद	४ ,,	६४.००
यजुर्वेद	२ ,,	२४.००
सामवेद	१ ,,	२०.००

दर्शन ग्रन्थ

आचार्य श्रीराम कृत

योग	५.७५
वैशेषिक	५.७५
सांख्य	५.७५
न्याय	५.७५
वेदान्त	५.७५
मीमांसा	७.००
वेद महाविज्ञान	१२.००

उपनिषद्

महात्मा नारायण स्वामी

ईश	०.६०	केन	०.६०
कठ	१.००	प्रश्न	०.६०
मुण्डक	०.५०	माण्डूक्य	०.२५
ऐतरेय	०.५०	तैत्तिरीय	१.५०

गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	७.००
शंकर भाष्यालोचन	७.००
जीवन चक्र	७.००
धर्म तर्क की कसौटी पर	२.००
सन्ध्या क्या क्यों कैसे	३.००
भारतीय पतन और [illegible] कहानी	२.५०
आर्य स्मृति	३.००
भगवत् कथा	१.५०
सनातन धर्म	१.००
धर्म सुधासार	०.६०
राष्ट्र निर्माता स्वामी दयानन्द	१.००
कम्यूनिज़म	३.००
Philosophy of Dayanand	१५.००
Life & Teaching	४.००
Vedic Culture	५.००

विश्वप्रकाश बी० ए० एल० एल० बी०

उपनयन वेदारम्भ संस्कार	०.६०
मृतक संस्कार	०.६०
चूड़ाकर्म ,,	०.६०
अन्नप्राशन ,,	०.६०
नामकरण ,,	०.७०
विवाह पद्धति	१.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या २० पैसे सैंकड़ा	१५.००
सत्संग गुटका ५० पैसे (छोटा) ,,	४०.००
आर्य सत्संग गुटका (बड़ा) ८० पैसे ,,	६०.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	२.००
सन्ध्या-हवन-दर्पण (उर्दू में)	२.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	४.००

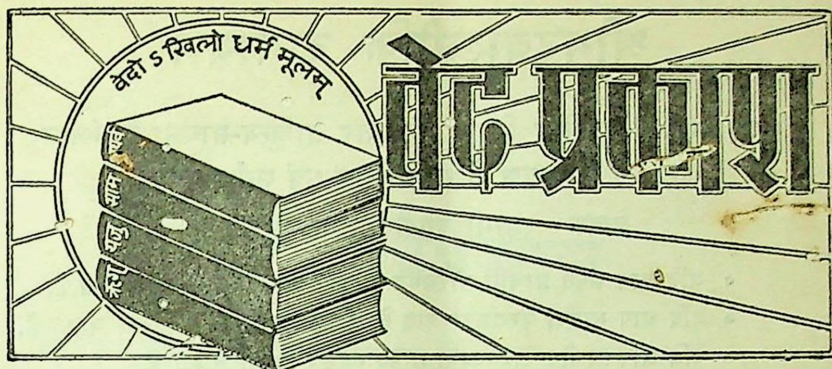
स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला	३.००
स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द**	४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य	०.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।



'वेद प्रकाश' के २६वें वर्ष के विशेषांक

१ वेदाङ्क—अगस्त मास में श्रावणी के पावन पर्व पर ५ वेदमन्त्रों की सुललित व्याख्या स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा

२-३. 'वैदिक राजनीति अंक' सितम्बर-अक्तूबर में, पं० सुरेशचन्द्र वेदालंकार द्वारा

४. 'वैदिक संस्कृति अंक' नवम्बर में स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा

५. 'संख्या अंक' दिसम्बर में स्वामी वेदव्रतानन्द जी द्वारा

६-७. 'अथर्ववेद सूक्ति-सुधा अंक' जनवरी-फरवरी में स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा

८. नारी अंक—मार्च मास में स्वासी जगदीश्वरानन्द द्वारा।

अपना शुल्क शीघ्र भेजें

—व्यवस्थापक

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में संलग्न, रामायण के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

- यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की झाँकी देखना चाहते हैं,
- यदि आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का अध्ययन करना चाहते हैं,
- यदि आप प्राचीन राज्यव्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं,
- यदि आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं,
- यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं,
- यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं,

तो यह रामायण पढ़ जाइए। सैकड़ों टिप्पणियों से समलंकृत सम्पूर्ण रामायण ६००० श्लोकों में समाप्त।

मूल्य : ४० रुपये

आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा लिखते हैं—

"सम्पादन और टीका-टिप्पणी लौह-लेखनीधारी स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा हुई है। पं० आर्यमुनि, पं० राजाराम शास्त्री, पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार ने भी रामायण की टीका क्षेपक-रहित प्रकाशित की थीं। उनमें पादटिप्पणियों का अभाव था। इस टीका में टिप्पणियों की भरमार है, जिनसे विषय का प्रतिपादन भलीभाँति हो जाता है।···स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का परिश्रम, स्वाध्याय, विद्वत्ता प्रत्येक अध्याय में दृष्टिगोचर होते हैं।"

श्री अमर स्वामी जी महाराज (भूतपूर्व ठा० अमरसिंह जी महाराज) लिखते हैं—

"रामायण को देखकर ऐसा लगा कि इसमें कोई आवश्यक बात छूटी नहीं तथा कोई अनावश्यक और अनर्गल बात रहने नहीं पाई। टिप्पणियों तथा शंकाओं के समाधानों ने तो सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर दी है।"

महात्मा नारायण स्वामी जी की अनुपम पुस्तक

कर्त्तव्य-दर्पण

छपकर तैयार, पूरी कपड़े की जिल्द, मूल्य ४·००

✧ ओ३म् ✧

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २८, अंक १२] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [जुलाई १९७९

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सम्पादकीय

प्रिय पाठकगण ! इस अंक के साथ 'वेदप्रकाश' अपने जीवन के २८ वर्ष पूर्ण कर रहा है। 'वेदप्रकाश' ने २८ वर्षों में विशेषाङ्कों के रूप में जो साहित्य पाठकों को दिया है, उसकी सभी ने भूरि-भूरि प्रशंशा की है।

पिछले कई वर्षों से 'वेदप्रकाश' के सभी अंक प्रायः विशेषांक ही होते हैं। 'वेदप्रकाश' की लोकप्रियता हमें प्राप्त होनेवाले पाठकों के पत्रों से भली-भाँति जानी जा सकती है।

श्री विजय शास्त्री जी जालन्धर से लिखते हैं—

"मैं वर्षों से 'वेदप्रकाश' पढ़ रहा हूं। कुछ वर्ष से आपके विद्वत्तापूर्ण लेख इसमें प्रकाशित हो रहे हैं। अन्य किसी विद्वान् के लेख न होने पर भी पत्रिका केवल आपके विचारों की महत्ता के कारण मुझे अत्यन्त प्रिय लगती है, अतः मैं इसे संग्रहणीय समझता हूँ।"

जालन्धर से ही काशीराम अग्रवाल लिखते हैं—

मई मास का 'वेदप्रकाश' अंक मिला, पढ़कर कुछ ज्ञान वृद्धि हुई। 'आत्मा की खोज' शीर्षक से लिखा गया श्री रामशरण वासिष्ठ का लेख अत्यन्त रोचक एवं इस विषय में ज्ञानवृद्धि में सहायक है।"

पं० गंगाजी राव विद्यावाचस्पति हिसार से लिखते हैं—

'वेदप्रकाश' पत्रिका प्राप्त हुई। 'यजुर्वेद सूक्ति सुधा' अंक अच्छा लगा, पढ़कर प्रसन्नता हुई।

श्री कर्त्तारसिंह जी लिखते हैं—

मैं 'वेदप्रकाश' से पिछले पांच वर्ष से संपृक्त हूँ तथा एक-एक अंक को बहुत

ही सुरक्षित भी रखता हूँ, निज सम्पत्ति रूप में। यही आशा मुझे 'वेदप्रकाश' के अन्यान्य प्रबुद्ध पाठकों से भी है। चूंकि पिछले चार वर्षों से तो वेदप्रकाश का प्रत्येक अंक मात्र अंक न होकर विशेषांक के रूप में आ रहा है, यह बहुत ही अच्छी परिपाटी आपने डाली है, इसके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। आशा है 'वेदप्रकाश' इसी भाँति विशेषांक के रूप में उपलब्ध होता रहेगा।"

इस प्रकार के अनेक पत्र उद्धृत किये जा सकते हैं। 'वेदप्रकाश' की इसी परम्परा में इसी बार निम्न लघु विशेषांक देने की योजना है—

१. वेदाङ्क अगस्त मास में।

२—३. वैदिक राजनीति अंक, दो अंकों में समाप्त। लेखक सुरेशचन्द्रजी वेदालंकार।

४—५. अथर्ववेद सूक्ति सुधा।

६. वैदिक संस्कृति अंक।

७. नारी अंक।

इसी प्रकार के अन्य भी कई रोचक एवं पठनीय अंक।

वेदप्रकाश का बृहद् विशेषांक—

पिछले कई वर्षों से हम 'वेदप्रकाश' का बृहद् विशेषांक नहीं दे पाये। इस बार दीपावली के पावन पर्व पर हम 'वेदोपदेश' नाम से वेदप्रकाश का बृहद् विशेषांक अपने पाठकों को भेंट कर रहे हैं। इस विशेषांक में चारों वेदों के चुने हुए ५४ मन्त्रों की सुललित एवं मनोहर व्याख्या होगी। आपने वेदप्रकाश में अनेक बार वेदमन्त्रों की लम्बी-लम्बी व्याख्याएँ पढ़ी हैं। इस विशेषांक में ऐसी ही ५४ मन्त्रों की व्याख्या होगी। वेदप्रकाश साइज में लगभग ३०० पृष्ठों का यह अंक होगा। यह अंक उपदेशकों के लिए उनका साथी होगा। जिन समाजों में उपदेशक नहीं पहुँच पाते, वहाँ इस अंक से वेदोपदेश किया जा सकेगा। पुस्तक-रूप में इस ग्रन्थ का मूल्य २० रुपये होगा, परन्तु 'वेदप्रकाश' के ग्राहकों को यह ग्रन्थ २५% कमीशन काटकर मिलेगा। स्वयं ग्राहक बनें और अपने इष्ट मित्रों को ग्राहक बनाएँ।

अपना वार्षिक शुल्क भेजें—जैसे 'वेदप्रकाश' नियमित रूप से आपके पास पहुँचता है, आप भी अपने कर्त्तव्य का पालन करें। इस अंक के प्राप्त होते ही अपना शुल्क मनीआर्डर द्वारा शीघ्र भेजें। जो पाठक विशेषांक लेना चाहते हैं वे २० रुपये भेजें।

मेरी प्रचार यात्राएँ—मुझे प्रचार के लिए भारत में और भारत से बाहर भी जाना पड़ता है। जून मास में तो निरन्तर कथाएँ और वेदोपदेश करता रहा हूँ। जून में सुभाषनगर दिल्ली, आर्यसमाज रुड़की, आर्यसमाज नगर शाहदरा, आर्यसमाज रघुवरपुरा आदि में कार्यक्रम हुए हैं। इस वर्ष लंका और नेपाल की भी यात्राएँ कीं; इनके संस्मरण भी पाठकों की ज्ञानवृद्धि के लिए अगले किसी अंक में विस्तारपूर्वक लिखूंगा।

मुझे इतना अवकाश नहीं होता कि लेखों की नकल करके विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भेजता रहूँ। मेरे लेख प्रायः वेदप्रकाश में ही छपते हैं। मेरे कार्यक्रमों की सूचना भी इसी के माध्यम से प्रसारित होती है, अतः मेरे साथ सम्पर्क रखने के इच्छुक सभी पाठकों से आग्रह है कि वे पूर्व की भाँति 'वेदप्रकाश' का अपना सहयोग देते रहेंगे।

शुभ कामनाओं के साथ
जगदीश्वरानन्द

वैदिक प्रार्थनाएँ

(रामकृष्ण 'भारती')

सब करते हैं तेरा ध्यान

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥
(ऋ० १, २२, २०)

ज्ञानी, ध्यानी, तपी-तपीश्वर, सब करते हैं तेरा ध्यान ॥
तेरा ही सिमरन करते वे, सदा माँगते हैं वरदान ॥
विष्णु-रूप हो भगवन्, प्रियतम ! तेरा पद सबसे ऊँचा ॥
सभी चाहते तुझको पाना, कौन बने जग में नीचा ॥
धर्मात्मा, विद्वान्, वहाँ से, दुःख में कभी नहीं गिरते ॥
कायर-नास्तिक तुझे न पाते, ये पीछे हैं पछताते ॥
सूर्य-नेत्र आकाश लोक का, ज्योति प्रसारित चारों ओर ॥
व्यापक आप दयामय जित-तित, कहीं न है अग-जग का छोर ॥
तेरी चरण शरण में स्वामिन् ! जो निज को अर्पित करता ॥
सब दुःखों से तर जाता है, परम मोक्ष वह है पाता ॥
हम पर भी हे नाथ, कृपालो ! दयादृष्टि इक बार करो ॥
प्रियतम हम तेरे बच्चे हैं, हमें नाथ स्वीकार करो ॥

आदर्श वैदिक परिवार

—प्रो० रामप्रसाद
अध्यक्ष वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी

यजुर्वेद अध्याय ३३ में एक मन्त्र आता है जिसके अनुसार सब वेदानुयायी चाहते हैं कि—

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृडीका भवन्तु नः ।।

यजुः ३३. ७७ ।।

(ये नः सूनवः) जो हमारी सन्तान हैं, पुत्र-पौत्रादि हैं, वे (अमृतस्य गिरः उप-शृण्वन्तु) अमृतस्वरूप परमेश्वर की वेदवाणियों को गुरुचरण में बैठकर या ज्ञानी वेदज्ञ विद्वान् उपदेशक या संन्यासी महात्माओं के समीप बैठकर श्रवण करें जिससे कि वे (नः सुमृडीकाः भवन्तु) हमारे लिए सुखकर हों, उत्तमविध सुखकारी हों।

इस मन्त्र से एक उपदेश हमें यह मिलता है कि हम अपने परिवारों में महर्षि दयानन्द के आदेशानुसार "वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है—" वेद के स्वाध्याय को अपना परमधर्म मानकर नित्यप्रति उसका स्वाध्याय करें, श्रवण, मनन और निदिध्यासन करें। समय-समय पर ज्ञानी वेदज्ञ विद्वानों एवं संन्यासी-महात्माओं को अपने परिवारों में बुला-बुलाकर उनके प्रवचन कराएँ, जिससे कि हमारी आनेवाली सन्तति उन्हें सुने, समझे और उनके अनुकूल आचरण करे। इस प्रकार आचरण करनेवाली सन्तति निःसन्देह हमारे लिए सुखकर होगी—यशस्कर होगी।

वेद में पारिवारिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए सामूहिक रूप में तथा व्यक्तिगत रूप में भी बहुत-सी सुन्दर प्रेरणाएँ दी गई हैं। आइये, इस प्रसंग में आज अथर्ववेद के **"साम्मनस्य सूक्त"** पर विचार करते हैं।

इस सूक्त में परस्पर मिलकर द्वेषभाव को छोड़कर इस प्रकार कार्य करने का उपदेश दिया गया है, जिससे कि हम सबमें 'सांमनस्य' उत्पन्न हो, सबके मन में एकीकरण की भावना हो, सहृदयता हो अर्थात् एक-दूसरे के दुःख में दुःख और सुख में सुख अनुभव करने की भावना सदा बढ़ती रहे। इस प्रकार के विस्तृत सामाजिक जीवन का आरम्भ घर से होता है। अतः निम्न मन्त्रों में कुटुम्बीजन किस प्रकार परस्पर सहृदयता, सांमनस्य और अविद्वेष की भावना को अपने में उत्पन्न करें, इसका उपदेश दिया गया है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में वेद हमें उपदेश देता है—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ।। अथर्व ३.३०.१ ।।

हे मनुष्यो ! (वः अविद्वेषं कृणोमि) मैं तुम्हारे विद्वेषभाव को दूर करता हूँ और उसके स्थान पर (सहृदयं सांमनस्यं कृणोमि) तुममें सहृदयता तथा सांमनस्य को

के प्रति किया हुआ चिन्तन आत्मीयतापूर्वक हो। और (अन्यः अन्यम् अभिहर्यत) तुम परस्पर एक-दूसरे को ऐसे चाहो, ऐसे स्नेह करो (जातम् वत्सम् इव अघ्न्या) जैसे नवजात बछड़े को गौ माता स्नेह करती है।

इस मन्त्र के द्वारा वेद भगवान् उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो, तुम्हारे अन्दर किन्हीं भी कारणों से जो विद्वेष 'वि+द्विष अप्रीतौ' एक-दूसरे के प्रति वैरभाव—बिल्कुल भी प्रीति न करने की प्रवृत्ति आ गई है, जिसके कारण परस्पर एक-दूसरे को देखकर तुम्हारे अन्दर प्रीति या तृप्ति नहीं उत्पन्न होती; ऐसे विद्वेष भाव को मैं सर्वथा बाहर निकालकर तुम्हारे अन्दर वे भाव भरना चाहता हूँ जिनके परिणामस्वरूप तुम्हें एक-दूसरे को देखकर ऐसी प्रीति, ऐसी तृप्ति अनुभव हो जैसी कि ग्रीष्म ऋतु में एक प्यासे को शीतल जल के प्राप्त हो जाने से मिल जाती है। इसके लिए मैं तुममें 'सहृदयता' लाना चाहता हूँ। सहृदयता क्या है? समान हृदयता—हृदयगत भावना की समानता, परिवार में एक-दूसरे के दुःख को देखकर दुःख और सुख को देखकर सुख अनुभव करना ही सहृदयता कहाती है। जिस परिवार के सदस्यों में सहृदयता नहीं होती उस परिवार के सदस्यों में प्रीति अर्थात् एक-दूसरे को देखकर तृप्ति का अनुभव होना असम्भव है। इसलिए जो महानुभाव अपने परिवार में प्रीति की बेल बोना चाहते हैं, उन्हें उसकी जड़ों को सहृदयता के जल से सींचना होगा, तभी वह बेल हरी-भरी अर्थात् फूल-फल सकेगी।

जहाँ सहृदयता होगी वहीं पर सांमनस्य पनप सकेगा अर्थात् एक-दूसरे के प्रति स्वाभाविक रूप से मन में शुभ विचारों की सृष्टि होगी। चूंकि मन के अधीन सम्पूर्ण इन्द्रियाँ होती हैं इसलिए जैसे मन के विचार होते हैं वैसे ही अन्य सब इन्द्रियों के व्यवहार होते हैं। अतः अन्य सब इन्द्रियों से उत्तम और प्रशस्त व्यवहारों की सृष्टि उत्पन्न करने के लिए मन में शुभ विचारों का होना आवश्यक है तथा शुभ विचारों के लिए परस्पर सहृदयता की आवश्यकता होती है और सहृदयता तब उत्पन्न होती है जब मनुष्य विद्वेष को छोड़कर एक-दूसरे के दुःख में दुःख और सुख में सुख अनुभव करने लगें। ऐसा करने पर हमारे जीवन में अगला उपदेश सहज ही समा सकेगा। वह क्या कि तुम एक-दूसरे को ऐसे चाहो—एक-दूसरे से ऐसा स्नेहपूर्ण व्यवहार करो जैसे गौ अपने नवजात बछड़े से करती है।

पारिवारिक जीवन में आगे वेद एक सन्तानरूप में विद्यमान पुत्र एवं पत्नी आदि के व्यावहारिक जीवन पर प्रकाश डालता है—

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शंतिवाम्॥ ३.३०.२।

(पुत्रः पितुः अनुव्रतः) पुत्र पिता का अनुव्रती—अनुकूल कर्म करनेवाला अर्थात् आज्ञाकारी हो। (मात्रा संमनाः भवतु) और माता के साथ एकमन होकर आचरण करनेवाला हो। (जाया पत्ये मधुमतीम् शन्तिवाम् वाचम् वदतु) पत्नी पति के प्रति मधुमयी शान्तिजनक वाणी बोले।

इस मन्त्र में वेद ने आदेश दिया है कि परिवार में पुत्र का कर्त्तव्य है कि वह पिता का अनुवर्ती हो। इस वाक्य से पुत्री भी पिता के अनुकूल आचरण करे, ऐसा ग्रहण कर लेना चाहिये।

वेद के इस उपदेश से मनुष्य के मन में यह संदेह उत्पन्न हो सकता है कि क्या पिता की सभी आज्ञाओं का पालन करना चाहिये ? लेखक को स्वयं कई बार ऐसा सन्देह हुआ जबकि उसने कई ऐसी घटनाएँ देखीं जिनमें एक पिता पुत्र को गोदी में बिठाकर स्वयं बीड़ी पीता हुआ उसे भी पीने को प्रेरित करता हुआ प्यार से उसके मुख में अपने ही हाथ से बीड़ी रखता है। इसी प्रकार एक पिता अपने बेटे को ऋषि दयानन्द के साहित्य के पढ़ने और आर्यसमाज में जाने से रोकता है, एक बेटे को मांस-अण्डे खाने को प्रेरित करता है—यह सोचकर कि बेटा शक्तिशाली बनेगा इत्यादि। इस प्रकार के संदेहों का वेद ने बहुत ही सुन्दर रूप से निवारण कर दिया है। वेद ने यहाँ 'अनुव्रत' शब्द दिया है जिसका तात्पर्य यह है कि उसके पिता के जीवन में जो व्रत हो, श्रेष्ठ कर्म हो; वरणीय कर्म हो या उनके जो आदेश श्रेष्ठ हों "व्रतमनु इति अनुव्रतः" उन्हीं के अनुकूल चलना, उन्हीं को मानना ही पुत्र का धर्म है। इसके विपरीत अपने पिता के असद् उपदेशों और उलटे कार्यों का शिष्टाचार एवं मधुरतापूर्वक समझा-बुझाकर परित्याग करना ही उसका कर्तव्य है। इसी प्रकार पुत्र (एवं पुत्री भी) अपनी माता के मन से अपना मन एक करके अर्थात् उनकी मनोभावनाओं का यथेष्ट सम्मान करते हुए व्यवहार करें।

परिवार में जहाँ भी माता-पिता अपनी आनेवाली सन्तान से यह आशा रखें वहाँ उनका स्वयं का भी कर्तव्य है कि उनके सम्मुख जीवन में पग-पग पर अपने व्यवहार द्वारा ऐसा आदर्श उपस्थित करें कि जिसे देखकर उन्हें अर्थात् बालकों को अपने माता-पिता पर गर्व अनुभव हो और वे अपने-आपको भाग्यशाली समझें तथा प्रभु का हृदय से धन्यवाद करें जिसने उन्हें ऐसे अच्छे आदर्श धार्मिक माता-पिता प्रदान किये। उनका सन्तान के प्रति उपदेश शब्दों से नहीं अपितु व्यवहारों से प्रस्फुटित हो। इसलिए वेद ने कहा कि पत्नी को पति से मधु के समान मधुर शान्तिमय सम्भाषण करना चाहिए और ऐसा ही पति को भी। पति-पत्नी का परस्पर का यह आदर्श दिव्य व्यवहार आनेवाली सन्तति के लिए जीवन में पग-पग पर प्रेरणा का स्रोत बनता रहेगा। ऐसा आदर्श जीवन होने पर, समय-समय पर यदि आवश्यकता पड़ने पर कुछ उपदेश भी माता-पिता द्वारा दिया जायेगा तो सन्तान उस उपदेश को श्रद्धापूर्वक शिरोधार्य करने में सुख अनुभव करेगी।

इसके अनन्तर परिवार में एक पुत्र वा पुत्रों के उत्पन्न होने के पश्चात् यदि दूसरा पुत्र या पुत्री उत्पन्न हो, तो उसका माता-पिता के प्रति तो वही व्यवहार रहना चाहिये जो उपयुक्त मन्त्र में निर्देश किया गया है; परन्तु उनका परस्पर में कैसा व्यवहार होना चाहिये, इसके सम्बन्ध में वेद उपदेश देता है—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ ३. ३०. ३॥

(भ्राता भ्रातरं मा द्विक्षत्) भाई भाई से द्वेष न करे, (उत स्वसा स्वसारं माद्विक्षत्) बहिन बहिन से द्वेष न करे। (साम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा) [समान गति से एक-दूसरे का आदर सम्मान करते हुए परस्पर मिल-जुलकर कर्मों के करनेवाले होकर अथवा] एकमत से प्रत्येक कार्य करनेवाले होकर (भद्रया वाचं वदत) भद्रभाव से परिपूर्ण होकर सम्भाषण करो।

इस मन्त्र में जहाँ यह बतलाया गया है कि भाई भाई से और बहिन बहिन से द्वेष न करे, वहाँ इससे यह उपदेश भी ग्रहण करना चाहिये कि भाई बहिन से और बहिन भाई से भी द्वेष न करे। यहाँ 'मा द्विक्षत्' में "द्विष अप्रीतौ" धातु का प्रयोग है जिसका अर्थ हुआ अप्रीति न करे। अब अप्रीति न करे तो क्या ? अर्थापत्ति से निकाला कि प्रीति करे। "प्रीति" में "प्रञ्ा् तर्पणे" धातु है अर्थात् भाई भाई को, बहिन बहिन को, भाई बहिन को और बहिन भाई को परस्पर ऐसा व्यवहार करना चाहिये जिससे वे एक-दूसरे को देखकर तृप्त हों—गद्‌गद हों। "सम्यञ्चः" सम् इत्येकीभावे सम् एकीभूय अञ्चन्ति गच्छन्तीति सम्यञ्चः। वे सदा एक-दूसरे का आदर-सम्मान करते हुए स्नेहपूर्वक मिल-जुलकर कार्य करें और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समान रूप से प्रयत्नशील रहें। "सव्रताः" उनके व्रत-कर्म समान हों, श्रेष्ठ हों। यह समान कर्म और समान भाव से उसका किया हुआ पुरुषार्थ उनको निश्चित रूप से अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर करता रहेगा।

इस प्रकार पारिवारिक अभ्युत्थान में संलग्न भाई-बहिनों को परस्पर सम्भाषण भी ऐसा करना चाहिये जो भद्रभाव से परिपूर्ण हो अर्थात् बोलते समय यह विचारकर सब बोलें कि हमारे बोलने से कल्याण हो। क्वचिद् अपवाद को छोड़कर दुर्भाग्य से आज परिवारों में वर्तमान भाई-भाई आदि वह वाणी भी नहीं बोल पाते जो उनके इस लोक को सुखमय बना सके, परलोक की बात तो क्या कहें! फिर भी आश्चर्य है कि आज हम अपने-आप को सभ्यता के उच्च शिखर पर विराजमान अनुभव करते हैं।

वास्तव में इन वैदिक दिव्य व्यवहारों से जो परिवार सम्पन्न रहेगा, वह कितना धन्य होगा!

सूक्त के अग्रिम मन्त्र में वेद उपदेश देता है कि—

येन देवा न वियन्ति न च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥ ३,३०.४॥

हे मनुष्यो! (येन देवा न वियन्ति) जिससे देवजन परस्पर-विरुद्ध पृथक्-पृथक् नहीं होते (न च मिथः विद्विषते) और न ही परस्पर विद्वेष करते हैं अर्थात् जिसको पाकर देवजन सदा संगठित रहते हैं और एक-दूसरे को देखकर फूले नहीं समाते (तत् संज्ञानं ब्रह्म) वह परस्पर एकता उत्पन्न करनेवाला दिव्य ज्ञान (वः गृहे पुरुषेभ्यः) तुम्हारे घर में सबके लिए समान रूप से प्रदान करते हैं।

इस मन्त्र से यह भाव निकलता है कि जो दिव्य ज्ञान सदा देवों को एकसूत्र में पिरोए रखता है, उनमें परस्पर प्रेम की गंगा बहाए रखता है, जिसके कारण न तो वे एक-दूसरे के विपरीत आचरण करते हैं और न ही परस्पर वे द्वेष करते हैं, तब

वह दिव्य पावन ज्ञान हम एक ही कुटुम्ब के वासी मनुष्यों को, जो रक्त-सम्बन्ध से वैसे ही एक-दूसरे के साथ अपनत्व अनुभव करते हैं, क्यों नहीं संगठन और स्नेह के पावन सूत्र में हमें पिरो सकेगा ? अवश्य ही वह दिव्य ज्ञान हमें परस्पर इतना निकट ले आएगा—ऐसे स्नेह सूत्र में पिरो देगा कि यह परिवार एक आदर्श परिवार के रूप में खड़ा होकर दूसरों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बन जाएगा ।

वेद पुनः आगे उपदेश देता है—

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ।।

हे परिवार में निवास करनेवाले मनुष्यो ! (ज्यायस्वन्तः चित्तिनः, संराधयन्तः, सधुराश्चरन्तः मा वियौष्ट) परिवार में वृद्धों का सम्मान करनेवाले, सम्यक् ज्ञान के धनी, एक-साथ मिलकर कार्य को सिद्ध करनेवाले, एक धुरी के नीचे रहकर कार्य करनेवाले अर्थात् कार्यभार को मिलकर आगे बढ़ानेवाले तुम लोग परस्पर पृथक् मत होवो। (अन्यः अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत) तुम सब कार्य करते हुए एक-दूसरे से सदा स्नेह आदि सम्मानपूर्वक बातचीत करते हुए आगे बढ़ो, (वः सध्रीचीनान् सम्मनसः कृणोमि) मैं तुम सबको एक-साथ मिल-जुलकर कार्य करनेवालों को समान मनवाला, एक मनवाला—समान संकल्पवाला बनाता हूँ, जिससे तुम अपने उद्देश्य में सदा सफल होते रहो ।

इस प्रकार एक परिवार में वृद्धों को सम्मान मिलता रहे और छोटों को प्यार और आशीर्वाद तथा उत्साह मिलता रहे और सब मिल-जुलकर प्रेम-पूर्वक परिवार के अभ्युत्थान में कृतसंकल्प हो जायें, तो उस परिवार के सुख-सौभाग्य में सन्देह रह नहीं सकता ।

परन्तु इस प्रकार परिवार में मिल-जुलकर प्रेमपूर्वक कार्य करने के परिणाम-स्वरूप घर में जो वैभव आए, उसके उपभोग में यदि कहीं भी द्वेषभाव आ गया तो परिवार के संगठन को ठेस लगने की सम्भावना हो सकती है । अतः वेद अग्रिम मन्त्र में उपदेश देता है—

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ।। ३. ३०. ६ ।

हे परिवार में प्रेमपूर्वक निवास करनेवाले मनुष्यो ! (प्रपा समानी) तुम्हारा दुग्धादि पदार्थों का पान समान हो (वः अन्नभागः सह) तुम्हारा भोजन एक-जैसा हो और साथ-साथ ही अर्थात् तुम्हारा खानपान एक-जैसा हो, उसमें किसी प्रकार का भेदभाव न हो । प्रेमपूर्वक सब एक-साथ मिलकर खाओ-पीओ, भले ही तुम्हारे पात्र पृथक्-पृथक् हों, क्योंकि इस प्रकार मिलकर साथ बैठकर खाने का भी एक अपने ढंग का आनन्द है । (समाने योक्त्रे वः सह युनज्मि) एक जुए में मैं तुम सबको साथ-साथ जोड़ता हूँ अर्थात् तुम सब अपने-आपको एक ही परिवार के बन्धन में, संगठन में बंधा हुआ समझो (नाभिम् अभितः अरा इव) ऐसे जैसे कि रथ की नाभि के चहुँ ओर अरे जुड़े हुए होते हैं । इस प्रकार तुम सब (सम्यंचः अग्निं सपर्यत) मिलकर एक-दूसरे का आदर-सम्मान करते हुए प्रकाशस्वरूप प्रभु की पूजा करो, अग्निहोत्र अर्थात् यज्ञ

करो अथवा मिल-जुलकर एक-जैसी संकल्पाग्नि को मन में प्रज्वलित करो और उसमें अपनी-अपनी सेवा की आहुति प्रदान कर घर के वातावरण को सुगन्धित करो।

इस मन्त्र के आधार पर जिस परिवार में सभी मनुष्य प्रातःकाल उठकर नहा-धोकर मिलकर एक-साथ बैठकर जब संध्या-उपासना और भजन करते होंगे, सब मिलकर वेद के पावन मन्त्रों से अग्नि देवता के चहुँ ओर बैठकर यज्ञ करते होंगे, अपने-अपने भाग की आहुति देते होंगे, सब मिलकर परिवार के अभ्युत्थान के लिए मनों में संकल्पाग्नि को प्रज्वलित करते होंगे, पुनः सब एक-साथ बैठकर दुग्धादि पदार्थों का पान वा भोजन करते होंगे, मिलकर कार्य करते होंगे, मिलकर स्वाध्याय-सत्संग तथा शयनादि के पावन मन्त्रों का पाठ करने के उपरान्त जब सो जाते होंगे तो उनका दैनिक व्यवहार ही मात्र प्रसन्नता और प्रेरणा का स्रोत नहीं रहेगा बल्कि उनका चैन से सोना भी सबको अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहेगा।

वेद आगे कहता है कि—

सध्रीचीनान् वः सम्मनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवाऽमृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु॥ ३.३०.७॥

(संवननेन) इस प्रकार मिल-जुलकर पदार्थों के सेवन से या उत्तम सेवा-भाव से (वः सर्वान् सध्रीचीनान्-संमनसः एकश्नुष्टीन् कृणोमि) तुम सब को एक-साथ मिलकर पुरुषार्थ करनेवाला, एकमन होकर विचार करनेवाला तथा परिवार में एक को अपना बड़ा मानकर उसकी आज्ञा में चलनेवाला या एक ध्येय को लेकर कार्य करनेवाला बनाता हूँ। (अमृतं रक्षमाणाः देवाः इव) अपने अमरत्व की रक्षा करते हुए देवों के समान (सायं प्रातः वः सौमनसः अस्तु) प्रातः-सायं तुम सबका सौमनस्य बना रहे।

इस मन्त्र का भाव यह है कि परिवार के सभी सदस्य जब एक-साथ मिलकर बिना भेदभाव के परिवार के पदार्थों का उपभोग करते हैं, तो वे सब उस घर के अभ्युत्थान के लिए अपनी-अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार समान रूप से एक मन होकर एक पताका के नीचे उद्योग करते रहते हैं। ऐसा करते हुए वे सब अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल होते हैं। □

वेद शब्द पर एक विचार

प्रो० भद्रसेन, होशियारपुर

हमारा पारस्परिक भावों के आदान-प्रदान का सारा व्यवहार शब्दों से होता है। तभी तो कहा है—शब्देष्वाश्रिता शक्ति विश्वस्यास्य निबन्धनी—(वाक्यपदीय १,११८) अर्थात् परस्पर के भावों के आदान-प्रदान की शक्ति शब्दों पर ही निर्भर है, क्योंकि (नास्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमाहृते, वा० १,१२३) ऐसा कोई भी बोध नहीं है जो शब्दों के बिना हो। अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए हम जो शब्द बोलते हैं, वे तीन प्रकार के हैं—यौगिक, योगरूढ़ और रूढ़। यौगिक शब्द वे कहलाते हैं, जो प्रकृति-प्रत्यय के योग से बनते हैं या किसी कारण के आधार पर जिनका व्यवहार होता है। जैसे भोजन पकानेवाले को पाचक या रसोइया, घास काटनेवाले को घसियारा, हल चलानेवाले को हाली, ऐसे ही कारक, कर्त्ता, मालाकार, लोहकार आदि शब्द हैं अर्थात् जो भी कोई वह कार्य करता है, उसको तत्सम्बन्धी नाम से पुकारते हैं।

दूसरे प्रकार के शब्द हैं—योगरूढ़, ये शब्द बनते या प्रयुक्त तो पहले शब्दों की तरह होते हैं, परन्तु उस कार्य से सम्बन्ध रखनेवालों में से किसी एक के लिए ही प्रयुक्त होते हैं। वैसा ही कार्य करने पर दूसरे उस नाम से नहीं पुकारे जाते हैं। जैसे जल से बहुत सारी चीजें उत्पन्न होती हैं, परन्तु केवल कमल को ही जलज, सरसिज, अम्बुज कहते हैं। ऐसे ही साधु, गौ, अश्व आदि शब्द हैं। तीसरे प्रकार के शब्द हैं—रूढ़, ये शब्द किसी कारण या आधार पर नहीं बनते या प्रयुक्त होते, अपितु ऐसे ही प्रयुक्त होते हैं; अथवा जिनके प्रकृति-प्रत्यय का कोई ज्ञान नहीं होता, जैसे कि डित्थ, कपित्थ, कागज, दवात आदि तथा हमारे नाम जो कि बिना आधार के प्रयुक्त होते हैं।

इन तीनों प्रकार के शब्दों में से वेद शब्द योगरूढ़ है। जैसे साधु शब्द का अर्थ है—अच्छा, परन्तु वह अब प्रायः केवल गेरवे वस्त्र धारण करनेवाले संन्यासी के लिए ही प्रयुक्त होता है। ऐसे ही वेद शब्द का अर्थ ज्ञान, शास्त्र होते हुए भी केवल ऋग्-यजुः-साम और अथर्ववेद के लिए ही पारिभाषिक रूप में प्रयुक्त होता है। वैसे तो आयुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद में भी वेद शब्द प्रयुक्त होता है। वेद शब्द को पारिभाषिक, योगरूढ़ न मानकर केवल ज्ञान अर्थ में मानने पर व्यवहार-निर्णय का फिर कोई आधार न होगा, तथा इससे परस्पर का भावबोधक व्यवहार अस्त-व्यस्त हो जाएगा। भारतीय साहित्य में अधिकतर वेद विशेष ग्रन्थ के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

वेद-महिमा—सारा भारतीय साहित्य एक स्वर से वेद को प्रमाण और समादरणीय मानता है। विविध विषयों के भारतीय वाङ्मय का उद्भव और विकास वेद से ही हुआ है। तभी तो प्रत्येक क्षेत्र के शास्त्रकार ने वेद को प्रमाण-रूप में अंगीकार

करके अपने शास्त्र में समादरणीय स्थान दिया है। अतः वेद भारतीयों की पवित्र धरोहर, भारतीय साहित्य के मूलस्रोत एवं भारतीय संस्कृति तथा धर्म के अक्षय कोष हैं। तभी तो मनुस्मृति में कहा है—वेदोऽखिलो धर्ममूलम् २,६=सम्पूर्ण धर्म का मूल आधार वेद है, इसलिए ही आगे कहा है—धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः २,१३=धर्म के रहस्यों को जाननेवालों के लिए वेद परम प्रमाण है, क्योंकि—ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां हि धर्मो निर्बभौ २,१०=वेद और वेदानुकूल स्मृति-ग्रन्थ धर्म के सम्बन्ध में बिना ननु,-नच के प्रामाण्य हैं यतोहि उनसे ही धर्म का विधि-विधान प्रकट हुआ है, अर्थात् धर्म का मूल आधार वेद ही है। इसी भाव को मीमांसा दर्शन-कार ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः १,१,२।

मनु की दृष्टि से समाज के हर वर्ग के लिए चाहे वे (पितृदेव मनुष्याणां वेदचक्षुः सनातनम् १२,९४) समाज में पालन-पोषण, ज्ञानप्रसार और सामान्य कार्य करनेवाले हों, सभी के लिए समान रूप से कल्प-अनुकल्प से आनेवाला चक्षु है, क्योंकि आँख की तरह सभी व्यवहार्य वस्तुओं के यथार्थ दर्शन कराता है। क्योंकि वेद "सर्वज्ञानमयो हि सः" २,७ सब प्रकार के अपेक्षित ज्ञानों से पूर्ण हैं, तभी तो सर्वं वेदात् प्रसिध्यति" १२,९७ सर्वविध क्षेत्रीय ज्ञान वेद से ही प्रसारित होता है अर्थात् भारतीय साहित्य के विविध विषयों के शास्त्रकारों ने वेद से ही प्रेरणा, विषय, बोध पाकर स्वग्रन्थ का प्रणयन किया है। तस्मादेतत् परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् १२,९९ इसीलिए मैं इसको मानव के लिए परम हितकर साधन मानता हूँ। मनुस्मृतिकार ने ही नहीं अपितु सभी भारतीय शास्त्रकारों ने वेद को बड़ी आदर की दृष्टि से देखा है और बारम्बार स्मरण किया है। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद ने वेद के स्वरूप और विषय को सामने रखकर क्या ही मार्मिक कहा है—"बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" ६,१ अर्थात् वेद की वाक्य एवं वाक्यों की अन्तर्गभित विषयरचना बुद्धिपूर्वक है। अतः बुद्धिपूर्वक ही वेद के सर्वविध भाव और स्वरूप को हृदयंगम किया जा सकता है।

वेद के पर्यायवाची शब्द

संस्कृत साहित्य में वेद को निगम, आगम, छन्द, आम्नाय, अन्वध्याय और श्रुति शब्दों से स्मरण किया गया है। वेद शब्द विचार, ज्ञान, सत्ता, लाभ अर्थ वाली विद् धातु से घञ् प्रत्यय होकर बनता है। श्री सायणाचार्य ने वेद शब्द का भाव दर्शाते हुए लिखा है कि इष्टि और आपूर्त कर्मों की सिद्धि का जो अलौकिक उपाय बताए वह वेद है अथवा जो ज्ञान या उपाय प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण से प्राप्त नहीं होता, उसको बताने से ही वेद का वेदपन है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेद शब्द का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—सारी सत्य विद्याओं का जिनमें ज्ञान और विचार है, तथा जिनसे इन सत्य विद्याओं को प्राप्त करते हैं वे वेद हैं। इन दोनों परिभाषाओं से सायणाचार्य और महर्षि दयानन्द सरस्वती का वेद-सम्बन्धी दृष्टिकोण स्पष्ट सामने आ जाता है।

निगम—निश्चित, निर्णीत ज्ञान के देने से वेद को निगम नाम से स्मरण किया

जाता है। **आगम** शब्द का अभिप्राय है मूल ग्रन्थ। जैनी बन्धु आज भी अपने मूल ग्रन्थों को आगम नाम से स्मरण करते हैं। वेद जहाँ भारतीयों और उनके सर्वविध साहित्य के मूल ग्रन्थ हैं, वहाँ धात्वर्थ के अनुसार मर्यादित, व्यवस्थित ज्ञान के अक्षय कोष होने के कारण आगम शब्द से पुकारे जाते हैं। **छन्दः**—छन्द शब्द लोक में किसी भाव को विशिष्ट ढंग से बँधे हुए शब्दों में कहने पर पद्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है। तथैव वेद में कहे गए भाव, विषय-विवेचन या शब्द गायत्री, उष्णिक्, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती और जगती आदि वैदिक छन्दों में निबद्ध हैं। वेद के छन्द अपने-आप में अद्भुत एवं प्राचीनतम हैं। छन्दोबद्ध होने से ही वेद को छन्द के नाम से स्मरण किया जाता है।

आम्नाय—मर्यादा अर्थवाले आङ् उपसर्गपूर्वक म्ना (अभ्यासे) धातु से आम्नाय शब्द बनता है, जिसका अभिप्राय है कि उदात्त, अनुदात्त और स्वरित आदि स्वरों की मर्यादा का ध्यान रखते हुए वेद के मन्त्रों का पाठ, अभ्यास किया जाता है। अतः वेद को आम्नाय भी कहते हैं। **अन्वध्याय**—गुरु के उच्चारण के अनन्तर या निर्देश के अनुसार शिष्य मन्त्रों का पाठ करता है। इसीलिए वेद को अन्वध्याय के नाम से याद किया जाता है। इसी तरह अनुश्रव भी संज्ञा है, जैसे कि योगदर्शन में १,१५ की भोजवृत्ति में कहा है—गुरुमुखादनुश्रूयते इति अनुश्रवो वेदः। गुरुमुख से इनका श्रवण किया जाता है, अतः वेद अनुश्रव शब्द से संकेतित किए जाते हैं। **श्रुतिः**—वेद अपने प्रादुर्भाव के समय से ही गुरु-परम्परा से स्मरण करके सुरक्षित रखे गए हैं अर्थात् श्रवण करके विशेष रूप से कण्ठस्थ किए जाते हैं। अतः आज भी कुछ वेदपाठी मिलते हैं, जिन्होंने सस्वर एक या अधिक वेदों को स्मरण किया हुआ है। प्राचीन काल में मुद्रण की सुविधा न होने से तथा कण्ठस्थ करने की महिमा के कारण श्रवण-परम्परा से ही अधिकतर वेदों का संरक्षण, अध्ययन होता था। अतः श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः (मनु २,१०) वेदों को श्रुति भी कहते हैं।

भारतीय साहित्य की यह दृढ़ धारणा और मान्यस्पद आर्यसिद्धान्त है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। चिकित्सक जैसे रोगी से उसका हाल जानने के बाद केवल औषधि देकर भेज नहीं देता, अपितु औषधि की सेवनविधि तथा पथ्यापथ्य भी बताता है अन्यथा दवा लाभ देने के स्थान पर हानिकारक भी हो सकती है। यन्त्र के साथ जैसे उसके प्रयोग के सम्बन्ध में यथोचित ज्ञान की उपयोगिता होती है, वैसे ही परमेश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में मानवों के कल्याण के लिए जहाँ सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, पृथिवीस्थ पदार्थ दिए, वहाँ उनसे यथोचित उपयोग लेने के लिए अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा नामवाले ऋषियों के हृदयों में क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान दिया—ईश्वरीय ज्ञान दिया। ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण ईश्वरप्रदत्त अग्नि, वायु आदि की तरह इन पर मानवमात्र का समान अधिकार है। जगदीश्वर ने नेत्रों की सहायता के लिए जहाँ सूर्य, अग्नि आदि का प्रकाश दिया, वहाँ मानव-बुद्धि के सहाय तथा विकास के लिए वेदज्ञान दिया, क्योंकि मनुष्यों का अधिकार ज्ञान-नैमित्तिक है। जैसा-जैसा निमित्त प्राप्त होता है, वैसा ही मानव के ज्ञान का विकास होता है।

ज्ञान के प्रसार का मुख्य आधार भाषा है। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के साथ तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का भी सूत्रपात हुआ। इसमें जहाँ भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन और रचनात्मक स्वरूप तथा भाषा-विकास पर अच्छा प्रकाश डाला गया है, वहाँ संसार में सर्वप्रथम भाषा का प्रादुर्भाव कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में भी अनेक कल्पनायें की गईं। वे सारी कल्पनायें स्वयं ही एक-दूसरे पक्ष ने दोषयुक्त मान ली हैं तथा एकांगी हैं, क्योंकि वे सब कल्पनायें भाषा के विकसित रूप को सामने रखकर आज की जा रही हैं और केवल अनुमान ही हैं। अब तो भाषा के प्रारम्भिक प्रादुर्भाव के विचार को, भाषाशास्त्रियों ने अतीतकाल की घटना होने से छोड़ दिया है। कुछ भाषा-वैज्ञानिकों का विचार है कि निर्णय का कोई आधार न होने से यह भाषा-विज्ञान का विषय ही नहीं है।

वेद में मानव-जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक के प्रत्येक पहलू पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। अतः वेद सार्वकालिक, सार्वभौमिक और विश्वजनीन सन्देशों का स्रोत है। तभी तो देशी-विदेशी सभी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से वेदों की प्रशंसा की है। वेदरूपी अनुपम सागर में गोते लगाने का एकमात्र आधार संस्कृत भाषा ही है। इसी द्वारा ही हम वेद की भावनाओं को हृदयंगम कर सकते हैं। अतः वेदों के अनमोल रत्नों को प्राप्त करने के लिए संस्कृत भाषा का तन-मन व धन से संवर्धन और संरक्षण करना चाहिए। विशेष रूप से संस्कृत के लेखकों को प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे वे आज के विज्ञापन के युग में पत्र-पत्रिकाओं के सक्षम, सरल, विस्तृत, शीघ्रव्यापी और सर्वजन-सुविधापूर्ण माध्यम का सहारा लेकर संस्कृत साहित्य के अनुपम रत्नों को जनता के समक्ष प्रस्तुत कर सकें। क्या धनी-मानी जन और ट्रस्ट-संगठन एक-एक संस्कृत-लेखक को भी संरक्षण और प्रोत्साहन देने का शुभ प्रयास करेंगे? देखें, इस क्षेत्र में कौन पहल करता है! □

वेदप्रकाश के व्यवस्थापक श्री सोमदेव जी को मातृशोक

श्री सोमदेव जी की माता जी का देहान्त २६ जून को ३-३० बजे हो गया। हम वेदप्रकाश परिवार की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। प्रभु दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करें और शोक-सन्तप्त परिवार को धैर्य।

गोरक्षा-रहस्य

(ले०—श्री अम्बिका सहायजी, किला ग्वालियर)

साधारण कृषक गोरक्षा के लाभ जानता है—

प्रश्न—ओ कृषक, बतलाओ तो गोरक्षा से क्या लाभ-हानि है ?

उत्तर—सब प्रकार लाभ ही लाभ है, हानि कुछ नहीं।

प्रश्न—क्या-क्या लाभ होते हैं ?

उत्तर—गोमाता की प्रजा बैलों की जोड़ी से हम खेती करते हैं। नाना प्रकार के अन्न, गेहूँ, चना, ज्वार, बाजरा, मटर, अरहर, उड़द, मूँग, धान, ईख आदि भोजन के पदार्थ और वस्त्रों के निमित्त कपास, बोरियों के लिए सन, पाट आदि उत्पन्न करते हैं। हम अनाज गाड़ियों में भरकर बेचने को ले जाते हैं। वे गाड़ियाँ बैल चलाते हैं। बैल हमारे भारवाहक हैं।

गौ से उत्पन्न बछियाँ बड़ी होकर अर्थात् स्वयं गौवें बनकर हमें निज माता के समान ही स्नेह और स्वास्थ्यवर्द्धक दूध देने लगती हैं। शुद्ध दूध से हम दही, मक्खन, छाछ, घृत, मलाई, रबड़ी, मिष्ठान्न, पकवान बना लेते हैं। हमारे जीवन-निर्वाह के प्रायः सभी पदार्थ गौमाता और उसकी प्रजा द्वारा उपलब्ध होते हैं।

प्रश्न—गोपालन में व्यय क्या होता है ?

उत्तर—गेहूँ हम खाते हैं, भूसा गाय-बैलों को देते हैं। हम फसल पर गेहूँ की बालें और चने भूनकर खुद खाते हैं और चनों के हरे पत्ते गौओं-बैलों को देते हैं। ज्वार-बाजरा हम खाते हैं, उनके डण्ठलों की कुट्टी पशुवर्ग के काम आती है। सरसों, तिल आदि से जो तेल निकलता है, वह हमारे काम आता है और खली पशु खाते हैं। ईख से रस निकालकर हम अपने लिए गुड़, राब, खांड बना लेते हैं, डण्ठल पशु खा लेते हैं। इस प्रकार जो वस्तु हमारे काम से बच रहती है, वह हमारे पशुवर्ग के काम में आ जाती है। इसके अतिरिक्त हम उन्हें दाना और भोजन के कुछ पदार्थ भी देते रहते हैं। परम्परा की रीति है कि रसोई में पहिली रोटी गाय के लिए निकाली जाती है। केवल घास के लिए कुछ व्यय करना होता है।

हम गौ आदि की पूजा इसलिए करते हैं कि उनसे हमको और उनको भी जीवन-निर्वाह के पदार्थ मिलते रहते हैं। गौ-संवर्धन हमारा कर्त्तव्य है, गोधन हमारा मुख्य धन होता है।

गौ से होनेवाले लाभों के विषय में एक लेख प्रोफेसर श्यामकुमार राव ने 'आर्य संसार' नामक मासिक पत्रिका में जो आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा प्रकाशित होती है निकाला है। उसमें कतिपय पाश्चात्य विद्वानों की सम्मतियाँ दी हैं, जो साभार उद्धृत की जाती हैं—

Ralph Hayne (Agricultural expert U.S.A.)

"Where cow is kept and cared for, civilization advances, lands grow richer, homes grow better, debts grow fewer; the cow is one of the greatest blessings to the human race."

भाषान्तर—संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि-कला के दक्ष श्री रॉल्फ हेय ने कहा है कि "जहाँ गौ पाली और भली प्रकार देखी जाती हैं, वहाँ सभ्यता प्रगति करती है, भूमियाँ अधिक उपजाऊ हो जाती हैं, घरों में समृद्धि बढ़ती है, ऋण कम होने लगते हैं। गौ मानव-जाति के किए एक बहुत बड़ा वरदान है।"

प्रश्न—गौ आदि पशुवर्ग के गोबर और गोमूत्र से भी क्या कुछ लाभ होते हैं ?

उत्तर—गोबर और गोमूत्र दोनों खाद के काम में आते हैं। गोबर से कण्डे भी पाथे जाते हैं जो ईंधन के काम आता है।

प्रश्न—कतिपय व्यक्ति कहते हैं कि जब कोई गौ दूध देना बन्द कर दे तब उसे मार डालना चाहिये। ऐसी गौवें बहुत हैं, क्या आप यह बहुत उचित समझते हैं ?

उत्तर—गौ-वध हमारी संस्कृति में महापाप है। दूध न देनेवाली गौ से होनेवाले लाभ भी 'आर्य संसार' में लिखे हैं—

One ton of dry cow-dung produces 155 lbs of Ammonium sulphate and 8000 lbs of cow's urine contains as much Nitrogen as there is in 18000 lbs of dry cow-dung. In India annually mil. tons of cow-dung is used as fuel and 700 mil. tons is simply wasted. Properly utilized this can more than meet the total fertilizer requirements of the country. Thus it is not in the least uneconomic to save even the old and non-milch cows.

भाषान्तर—'गाय के एक टन सूखे गोबर से १५५ पाउण्ड अमोनियम सल्फेट (नौसादर) निकलता है और गाय के ८००० पाउण्ड मूत्र में इतना नाइट्रोजन होता है जितना १८००० पाउण्ड सूखे गोबर में। भारत में हर साल ४० करोड़ टन गोबर ईंधन के काम में आता है और ७० करोड़ टन यों ही नष्ट हो जाता है। यदि उसका ठीक ढंग से प्रयोग किया जाय तो देश की खेती की भूमि उर्वरा बनाने की सामग्री आवश्यकता से भी अधिक प्राप्त हो सकती है। इसका निष्कर्ष यह है कि बूढ़ी और दूध न देनेवाली गौओं की रक्षा तनिक भी आर्थिक लाभरहित नहीं है।'

1. ARMSBY

Only 3·5% of the total digested food is recovered in the form of beef while of milk 18% of solid material is obtained.

आर्म्सबाई—गौमांस से केवल ३·५% सुपाच्य भोजन की प्राप्ति होती है जबकि गौदुग्ध से अठारह प्रतिशत ठोस पौष्टिक पदार्थ मिल जाता है।

काम

काम से तात्पर्य अपने शरीर, माता, पिता, स्त्री, सन्तान आदि परिवार, नगर-निवासी, देशवासी तथा मनुष्यमात्र के लिये शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक सुख की सामग्री की उपलब्धि है। पशुवर्ग का रक्षण, भूमण्डल पर ऐसे चक्रवर्ती राज्य की स्थापना जिसमें व्यवस्था ऐसी रहे कि परिवार का प्रत्येक व्यक्ति निज कार्य में स्वतन्त्र रहे किन्तु परिवार में उसका अंग बनकर सहानुभूतिपूर्वक रहे; प्रत्येक परिवार अपने आन्तरिक कार्य में स्वतन्त्र रहे किन्तु नगर के सब निवासी मिलकर रहें; ऐसे ही देश-देशान्तर और फिर भूतल के सब मनुष्य व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्र रहकर भी सामूहिक रूप से संगठित रहें; भूमण्डल पर प्रेम का साम्राज्य हो; सर्वत्र शान्ति रहे।

मनुष्य और अन्य चरों में यह भेद है कि मनुष्येतर जीवधारी अपने स्वाभाविक ज्ञान के सहारे जीवन-निर्वाह करते हैं। कारागार में रहनेवाले अपराधियों के समान उनके कार्य-क्षेत्र सीमित हैं। वे दैवी न्यायालय की व्यवस्था के अनुसार भोग-योनि के जीवन बिताते हैं। कोई घटना हो जाय तो वे एकत्र होकर विचार-विनिमय नहीं कर सकते। उन्हें उन्नति के साधन उपलब्ध नहीं।

एक सर्वज्ञ अद्भुत रचयिता ने मनुष्य को विवेक-बुद्धि प्रदान की और कर्मशील जीवन दिया। उसी अन्तर्यामी ने मनुष्य को माता-पिता, आचार्य आदि के निमित्त से भाषासहित नैमित्तिक ज्ञान दिलाकर इस योग्य बनने की व्यवस्था की कि वह उस ज्ञान को विकसित करके कर्मशील बने और सन्मार्ग पर चलकर ब्रह्मानन्द प्राप्त कर सके।

वेद से पुराना कोई ग्रन्थ मनुष्य के पुस्तकालय में नहीं। वेद का ज्ञान मनुष्य-मात्र के लिये जैसा लाभकारी सृष्टि के आदि में था, वैसा अब भी है और आगे भी रहेगा।

वेद मानव-समाज के लिये ईश्वर-प्रदत्त विधान है। सामाजिक जीवन में शासन भी आवश्यक है। वेद में शासक के गुण ये लिखे हैं—

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। (अथर्ववेद काण्ड २१ सूक्त ५ मन्त्र १७)

ब्रह्मचर्य और तप के बल पर राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। राजा शब्द का अर्थ है वह प्रकाशमान अग्रणी जो अपने सदाचरण के रंग में जनसाधारण के हृदयों को रंग सके; प्रकाशित कर सके।

शुभ गुणयुक्त तपस्वी शासक ही भलीभाँति राष्ट्र की रक्षा कर सकता है।

रक्षा मा किर्नो अघशंसः ईशत मानो दुःशंसः ईशत।
मा नो अद्य गवां स्तेनो माऽवीनां वृक ईशत॥

(अथर्ववेद काण्ड १६ सूक्त ४७ मन्त्र ६)

अर्थ—रक्षा करो कि कोई पापी या पाप-चिन्तक शासक न बने, न कोई दुराचारी बुरा शासन कर सके। गाय-बैल की चोरी करनेवाला और कोई भेड़िया आज एक दिन को भी भेड़ों का स्वामी न बने। शासक अत्याचारी न हो।

जब तक वेदों का प्रचार रहा, मानवता की महत्ता रही, वेद-प्रचार रुक जाने पर मनुष्य सहृदय न रहकर निर्दयी हो चला।

आज मनुष्य ने बड़े-बड़े प्रासाद, विविध प्रकार के यन्त्र और यान बना लिये और अपने आराम के साधन जुटा लिये, किन्तु मानवता के नाते उसने कोई उन्नति नहीं की। मनुष्य उत्थान की ओर न जाकर पतन की ओर चला जा रहा है। मानव दानव बनता जा रहा है।

इसका मुख्य कारण यह है कि मनुष्य अपने स्वाभाविक भोजन, अन्न, फल, दूध आदि पर सन्तोष न करके मांसाहार की ओर प्रवृत्त होता जाता है और व्यसनों में फँसता जा रहा है। उसकी मनोवृत्ति तामसी हो गई और होती जा रही है।

काम शब्द से तात्पर्य यह है कि कर्म योनिवाला मनुष्य वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में व्यवहारकुशल हो, मनुष्य-जन्म को सार्थक करे।

हमारे वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में सात्विक तथा स्वास्थ्य-प्रद दूध देनेवाली गौ का मुख्य स्थान है। अतः गौ को काम की सिद्धि का मुख्य साधन समझा जाना चाहिये।

□

बाबू पूर्णचन्द जी एडवोकेट

सार्वदेशिक सभा के भूतपूर्व प्रधान का ८ जून को निधन हो गया। आप जीवन-भर आर्यसमाज की सेवा करते रहे। आपने अनेक ग्रन्थ भी लिखे। परम पिता परमात्मा दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करें और उनके शोकसन्तप्त परिवार को इस दुःख को सहन करने की शक्ति एवं सामर्थ्य। 'वेदप्रकाश'-परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

—जगदीश्वरानन्द

मन्युरसि मन्युं मयि धेहि

पं० श्री सत्यपाल जीविद्यालंकार

उपर्युक्त वेदमन्त्र का अर्थ जो प्रायः सब जगह देखने में आता है वह यह है—"हे प्रभो ! तुम क्रोध रूप हो, हम में क्रोध का आधान करो।" किसी भाष्यकार ने अपराध-चेतना (Guilty conscience) से ग्रस्त होकर "क्रोध-रूप" के स्थान पर "रौद्र-रूप" अर्थ करके उस चेतना से मानो मुक्ति पा ली है। पर बात वहीं-की-वहीं है। रौद्र रस का स्थायीभाव भी तो क्रोध ही है। किसी भारी-भरकम शब्द की पनाह लेकर गलत बात ठीक तो नहीं हो जाती। उपर्युक्त वेद-मन्त्र में क्या सचमुच क्रोध की प्रार्थना की गई है ?

मनु महाराज कहते हैं—

दशकामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च। व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥

प्राचीन मनीषियों ने क्रोध को "अनर्थों का मूल" कहा है। भगवान् कृष्ण ने इसे महापाप (महाशनो महापाप) कहकर पुकारा। तब सोचने की बात यह है कि यहाँ 'मन्यु' का अर्थ कुछ और तो नहीं है ? 'मन्त्र' शब्द की व्युत्पत्ति ही यह है—"मननात् त्रायते इति मन्त्रः।" अर्थात् मनन और चिन्तन के बिना वेदमन्त्रों का भीतरी रहस्य उद्घाटित नहीं हो सकता। सौन्दर्य तो और भी दूर की बात है।

क्रोध है क्या ?

क्रोध मन का वह आवेग है जो बुद्धि पर पर्दा डाल दे, उसे मोहाच्छन्न कर दे। गीता कहती है—

"क्रोधात् भवति संमोहः।"

काम और क्रोध रजोगुणी विकार हैं। लोभ और मोह तमोगुणी और अहंकार सतोगुणी। यहाँ प्रसंग क्रोध का है। अतः शेष की विवेचना अप्रासंगिक होगी। क्रोध में रजोगुण सर्वाधिक प्रधान रहता है। यही कारण है कि क्रोध आने पर पानी पी लेने की सलाह दी जाती है। त्रिदोष-सिद्धान्त के अनुसार क्रोधी व्यक्ति में पित्त प्रकुपित रहता है और उसमें पित्त-जन्य रोगों की आशंका अधिक रहती है। क्रोधी व्यक्ति कम मोटा होता है। इसे यों भी कह सकते हैं कि मोटे आदमी को क्रोध कम आता है। रजोगुण अग्नि का गुण है। जो सदा जलता ही रहेगा उस पर मांस कहाँ से चढ़ेगा ? स्वामी विरजानन्द जी महाक्रोधी थे। शायद यही कारण हो कि वे हड्डियों का ढाँचा थे। आँख मूँदकर किसी मोटे आदमी की कल्पना करो तो हँसता नजर आयेगा। पागल अक्सर मोटे होते हैं, क्योंकि उन्हें कोई बात चुभती ही नहीं। मस्ती और मोटापन शायद पर्यायवाची हैं।

मन के किसी भी विकार का सामने से होकर मुकाबला नहीं किया जा सकता। करना लाभप्रद भी नहीं है। योगदर्शन व्यास-भाष्य का नुस्खा है—"प्रतिपक्ष-भावनम्।" किसी भी विकार के उदय होने पर उसकी विरोधी भावना का संकल्प अधिक प्रभावी होता है। कामवासना में वात्सल्य, क्रोध में धैर्य, लोभ में उदारता, मोह में विवेक और अहंकार में नम्रता का संकल्प ही महौषध है। इसे ही सकारात्मक चिंतन (Positive thinking) कहते हैं। विकारों के सामने अखाड़े में उतर आना नकारात्मक चिंतन (Negative thinking) है। अखाड़े में उतरे भी क्यों? मन के आगे ताल ठोककर अखाड़े में उतर आना ऐसा ही उपहासास्पद है, जैसा कि दारासिंह का किसी बच्चे को चुनौती देना। हम भूल जाते हैं कि हम जीवात्मा हैं और जीवन-भर भूले रहते हैं। यही स्मृति अर्जुन के नहीं रही थी और भगवद्गीता के सात सौ श्लोक इसी स्मृति के पुनरुद्धार में लगे रहे। ज्यों ही वह स्मृति लौटी, हर्षातिरेक से गद्गद होकर अर्जुन कह उठा—नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा। गीता के प्रसिद्ध श्लोकांश—"संमोहात्स्मृतिविभ्रमः" में भी स्मृति का अर्थ यही है। जेठ की भरी दुपहरी में ऋषि दयानन्द ने गुरु विरजानन्द का द्वार खटखटाया। क्रोध में भरकर गुरु ने पूछा—कौन? ऋषि बोले—भगवन्! मुझे यही याद रहता कि मैं कौन हूँ, तब मैं यहाँ आता ही क्यों? इसी के लिए योग-सूत्र के व्यास-भाष्य में कहा गया है—"एकमेव दर्शनं ख्यातिरेव दर्शनम्" अर्थात्, सच्चा ज्ञान तो वही है जिसमें जीवात्मा अपने-आपको जीवात्मा समझता रहे। अद्वैतवादियों का "अहं ब्रह्मास्मि" का घोष वास्तव में जीवात्मा को निरन्तर अपनी गरिमा स्मरण कराने की "ओवरडोज़" है और कुछ नहीं।

ऊपर कहा गया है कि क्रोध की प्रतिपक्षी भावना धैर्य है। कहावत है कि "क्रोध अन्धा होता है।" इतना ही नहीं बल्कि वह बुद्धि की आँखों पर पट्टी बाँध देता है। धैर्य ही उस पट्टी का प्रतिकार है। वैदिक साहित्य हो या लौकिक साहित्य—बुद्धिमान के लिए 'धीर' शब्द का प्रयोग सर्वत्र पाया जाता है। यजुर्वेद के ३४वें अध्याय का दूसरा मन्त्र है—

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।

यहाँ 'मनीषी' और 'धीर' पर्यायवाची हैं। इसी प्रकार महाकवि भर्तृहरि के निम्नलिखित श्लोक में भी 'धीर' शब्द बुद्धिमान् के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

क्रोध के अंधड़ के आगे धैर्य जबर्दस्त ब्रेक है। नीचे की घाटी में दौड़ती हुई साइकल का सवार जिस प्रकार अपना सम्पूर्ण ध्यान ब्रेक पर केन्द्रित कर लेता है, उसी प्रकार क्रोध आने पर धैर्य को कसकर पकड़ लेना चाहिए। एक बार नियन्त्रण में

आया हुआ क्रोध अगले नियन्त्रण को सहज बना देता है, वह उससे अगले को, और वह उससे अगले को। सफलता अवश्यम्भावी है, क्योंकि जीवात्मा मन से बलवान् है और संकल्प जीवात्मा का ब्रह्मास्त्र है। पर इस सारी प्रक्रिया में ध्यान की दिशा 'क्रोध' की नहीं, 'धैर्य' की रहनी चाहिए। 'मैं क्रोध नहीं करूँगा' यह नकारात्मक चिंतन है; 'मैं हर हालत में शान्त रहूँगा' यह सकारात्मक। ज्वर चढ़ जाने पर बार-बार थर्मामीटर नहीं लगाया जाता। औषध और पथ्य का ही सदैव ध्यान रखना चाहिए। थर्मामीटर हाय-तौबः है, औषध शामक। बात यह छोटी-सी लगती है, पर दरअस्ल बहुत बड़ी बात है।

मन एक ग्रहणशील (Receptive) बालक की तरह है। एक बूढ़ा आदमी रेलवे के पास एक संडास में जाने लगा। बाहर बालक खेल रहे थे। बोला—"देखो बच्चो! मैं संडास में जा रहा हूँ, मुझे पत्थर न मारना।" अपने उपदेश की गलती उसे तब महसूस हुई जब भीतर जाते ही उस पर पत्थर बरसने लगे।

समस्त दैवी गुणों में धैर्य सबसे बड़ा गुण है। धर्म के दस लक्षणों में उसकी प्रतिष्ठा सबसे पहले की गयी है, अक्रोध की सबसे अन्त में। अक्रोध तो स्वयं सध जाता है, साधना धैर्य की करनी चाहिए। पूरा श्लोक इस प्रकार है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

'धैर्य' एक व्यापक अर्थों वाला शब्द है। संकटकाल में अच्छे दिनों का इन्तजार भी धैर्य है। फलाफल में 'मन को सम रखना' भी धैर्य है। पीड़ा और अपमान में 'कोई बात नहीं' ऐसा कह सकना भी धैर्य है और क्रोध में 'शान्ति का आह्वान' भी धैर्य है।

मन्यु क्या है ?

क्रोध में सोच-विचार नहीं रहता पर 'मन्यु' शब्द तो बना ही 'मनन' से है। सोच-विचारकर किया गया क्रोध मन्यु है, जबकि सोच-विचार पर हावी हो जानेवाला आवेग क्रोध। ऊपर से सूरत-शक्ल दोनों की एक-सी लगती हैं पर मन्यु भीतर से ठंडा होता है। क्रोध में भीतर और बाहर दोनों जल उठते हैं। एक को हम 'सयाना गुस्सा' और दूसरे को 'अयाना गुस्सा' कहें तो शायद बात के हम काफी नजदीक होंगे।

क्रोध में (अहं) को पलीता लगता है, मन्यु में परार्थ-भावना प्रबल हो उठती है। माँ, बाप और गुरु के लिए मन्यु एक साधना है और क्रोध तो किसी भी साधना का शत्रु है।

संस्कृत का शब्द 'अमर्ष' मन्यु के अधिक निकट है यद्यपि मन्यु के 'मनन' का भाव-गांभीर्य उससे नहीं है। अंग्रेजी में भी राथ (Wrath) शब्द करीब-करीब मन्यु का अर्थ देता है। प्रियजन के अमंगल की आशंका जब असहनीय हो उठे तो मन्यु को जन्म देती है। उससे क्रोध नहीं, पर क्रोध का अभिनय अवश्य होता है। सफल अभिनय उसी बात का सम्भव है जिसकी अनुभूति वस्तु-जगत् में पहले हो चुकी हो।

बालब्रह्मचारी से दुष्यन्त के सफल अभिनय की आशा रखना व्यर्थ है। जिसे कभी क्रोध नहीं आया उसके लिए 'मन्यु' की साधना कुछ अर्थ नहीं रखती। क्रोध का ऊर्ध्वीकरण (Sublimation) ही मन्यु है। इस दृष्टि से क्रोध सर्वथा तिरस्करणीय न होकर कल्याणमार्ग का संकेतवाहक भी हो सकता है। उस संकेत का ग्रहण कर सकना ही पुरुषार्थ है। ऊर्ध्वीकृत 'काम' कलाओं को जन्म देता है, ऊर्ध्वीकृत 'क्रोध' मन्यु को, ऊर्ध्वीकृत 'लोभ' मितव्ययिता को, ऊर्ध्वीकृत 'मोह' कष्टसहन या तितिक्षा को और ऊर्ध्वीकृत 'अहंकार' आत्मविश्वास को जन्म देनेवाला है। मन के ये पाँचों विकार पहली नजर में बेशक शत्रु हैं, पर समझबूझ के द्वारा इन्हें महा-उपयोगी मित्र भी बनाया जा सकता है। इसीलिए, इन्हें मनोविकार (Mental pollutions) न कहकर मानसिक आवेग (Mental Aberrations) पुकारना अधिक समीचीन होगा। विकार शब्द तो कदर्यता का द्योतक है, ये पाँचों आवेग नितान्त कदर्यता नहीं हैं।

मन्यु की साधना में एक बात का सदा ध्यान रखना चाहिए। क्रोध के अभिनय का नाम मन्यु है, पर होता यह है कि अभिनय करते-करते सचमुच का क्रोध भी पदार्पण करने लगता है। आँखों में उग्रता हो, वाणी भी परुष हो, तर्जनी भी सहयोग दे रही हो, पर भीतर-ही-भीतर मन मुस्करा रहा हो। दूसरे शब्दों में 'जल बिच अगिन' लगी हो। यह साधना कठिन अवश्य है, पर भरपूर पुरस्कार देनेवाली भी है। साधना से किसी भी गुण का धीरे-धीरे विकास होता है। क्रमिक विकास का नाम ही 'आधान' है। इसलिए वैदिक ऋषि की प्रार्थना 'धेहि' है, 'देहि' नहीं। मन्युदान में प्राप्त होनेवाली चीज नहीं, साधना से प्रकट होनेवाली सिद्धि है। इस सिद्धि के हस्तगत होते ही घरों और कक्षाओं की उच्छृङ्खलता अनायास उड़नछू हो जाती है। इतना ही क्यों, मनस्वी व्यक्ति के आगे संसार हाथ बाँधे खड़ा हो जाता है। क्रोध का विशेषण क्रोधी है और मन्यु का विशेषण मनस्वी।

मन्यु अपनी ऊपरी सतह पर तो क्रोध का अभिनय है, पर भीतरी सतह पर वह तीव्र हितचिन्ता और सच्चा प्यार है। भीतरी सतह अगर खोखली है तो केवल ऊपरी सतह को सान पर चढ़ाने से कोई फायदा नहीं। कीमती चाकू का फलक अपनी धार ही में तेज नहीं होता, उसका स्टील भी दामी होता है। ऐसा चाकू पेंसिल को छीलता नहीं, गढ़ता है। क्रोध छीलता है, मन्यु गढ़ता है। क्रोध रार मोल ले लेता है, मन्यु सावधान शल्यचिकित्सक है। क्रोध होली जलाता है, मन्यु यज्ञ रचता है। क्रोधाग्नि में ईंधन की चिरचिराहट है, मन्यु की अग्नि से उठता है मन्त्र-पूत सुरभित धूम।

दोनों में समानता है जरूर, पर दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है।

सुकरात की पत्नी बड़े क्रोधी स्वभाव की थी। उतने ही शान्त स्वभाव का सुकरात था। एक बार किसी बात पर पत्नी आपे से बाहर हो गयी। उसकी बकझक का अन्त नहीं था। उधर, सुकरात की शान्ति अटूट थी। खीझ से भरकर पत्नी ने पानी की गागर उठाई और सुकरात के सिर पर उँडेल दी।

सुकरात बोला—भागवान! सुना है, जो गरजते हैं सो बरसते नहीं। पर आज मालूम हुआ, यह जरूरी नहीं है।

फूल तोड़ना मना है

(महामहोपाध्याय आचार्य विश्वश्रवाः व्यास वेदाचार्य एम० ए०)

एक छोटा-सा फूलों का बाग था, उस पर एक बोर्ड लगा था कि "फूल तोड़ना मना है", "यहाँ कूड़ा डालना मना है"। जब मैं काश्मीर गया तो वहाँ श्रीनगर में एक बहुत बड़ा फूलों का बाग देखा। उसके चारों तरफ ऐसे ही बोर्ड लगे थे। दस या पन्द्रह बोर्ड थे जिन पर लिखा था "फूल तोड़ना मना है", "यहाँ कूड़ा डालना मना है"।

पुलिस के सुपुर्द

बाग के मालिक को चिन्ता है कि मैंने परिश्रम करके इतना सुन्दर फूलों का बाग बनाया। यदि इसके फूलों को कोई तोड़ डाले या यहाँ गन्दगी डाल जाये तो मेरी सारी पुष्पवाटिका बर्बाद हो जायेगी, अतः उसने एक और बोर्ड लगा दिया जिस पर लिखा था "यदि कोई फूल तोड़ेगा या गन्दगी डालेगा तो वह पुलिस के सुपुर्द किया जायेगा।"

वहाँ एक व्यक्ति आया, गन्दगी डाल गया, फूलों को तोड़ने लगा। बाग के मालिक ने उसको पुलिस के सुपुर्द कर दिया। उस व्यक्ति ने जवाब दिया कि मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ, मुझे नहीं पता कि इन बोर्डों पर क्या लिखा है। पुलिस ने कहा कि अगर तू नहीं पढ़ा है तो किसी से पढ़वाकर सुन लेता कि इस पर क्या लिखा है। पुलिस ने उसे क्षमा नहीं किया।

प्रभु की सुन्दर सृष्टि

जब हम प्रभु की सृष्टि पर दृष्टि डालते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि परमात्मा को सौन्दर्य अति प्रिय है। संसार के प्राणियों को अपना सौन्दर्य-सृजन दिखाने के लिए उस जगत्कर्ता ने अपनी सृष्टि में दो महान् दीपक जला दिए हैं—दिन में सूर्य और रात्रि में चन्द्र। देखो ! देखो संसार के प्राणियो ! मेरा रचा सौन्दर्य ! जब हम रात्रि में आकाश की ओर दृष्टि डालते हैं तो चन्द्र-नक्षत्र जड़े हुए रत्नों जैसे दीखते हैं।

१—नाना रंग के फूल और एक-एक फूल में कई-कई रंग।

२—नाना रंग के फल, कोई हरा, कोई लाल, कोई पीला, एक-एक फल में कई-कई रंग।

३—नाना रंग के पत्ते, लाल, पीले, गुलाबी, हरे, एक-एक पत्ते में कई-कई रंग।

४—पक्षियों के पर कई रंग के, मोर के पंखों में कितने रंग प्रभु ने दिखाए हैं।

५—कितने ही रंग की मछलियाँ, अजायबघर में जाकर देखो देखते ही रहोगे।

६—नाना रंग के पक्षी, एक-एक पक्षी में कई-कई रंग प्रभु ने दिखाये हैं।

७—जंगल के भयानक पशु भी कितने सुन्दर रचे हैं।

८—हिरनों की श्रेणी अपने नाना प्रकार के सींगों से सुशोभित है।

९—समुद्र की लहरें देखते ही बनती हैं, कभी समुद्रतट पर जाकर बैठ जाओ।

१०—पहाड़ों की उच्च अट्टालिकाओं पर जहाँ मनुष्य पहुँच नहीं पाता है वहाँ न जाने किसको भेजकर प्रभु ने सुन्दर फूल-पत्तों का बाग रचा है।

११—और किसकी कहें, हमारे बच्चे जो प्रभु ने पैदा किये कितने सुन्दर, कितने भोले, छलकपट-रहित। गधे का, सुअर का भी बच्चा कितना सुन्दर रचा। फिर संसार में आकर हमारे सम्पर्क में रहकर सब धीरे-धीरे बिगड़ते हैं। हम उनके बिगाड़ने-वाले हैं। हम उन्हें झूठ बोलना सिखाते हैं। जब कोई हमसे मिलने आता है, हम बच्चे से कहते हैं जाओ दरवाजे पर जाकर कह आओ बाबू जी नहीं हैं। बच्चा जाकर कह आता है कि बाबूजी कह रहे हैं बाबूजी नहीं हैं। धीरे-धीरे वह झूठ बोलना सीख जाता है, छलकपट जान जाता है। उसकी शक्ल भी बदलती जाती है; पर प्रभु ने इसे अत्यन्त सुन्दर रचा था।

प्रभु की सुन्दर पुष्प-वाटिका में बोर्ड

हे प्रभो! तूने इतनी सुन्दर सृष्टि रची। तुझे भी बोर्ड लगाने चाहिए थे कि "फूल तोड़ना मना है", "यहाँ कूड़ा-करकट डालना मना है"। पर तेरी सृष्टि तो विशाल है, अति महान् है। इसमें तो कई हजार बोर्ड लगाने पड़ेंगे।

चारों वेदों में जो लगभग बीस हजार मन्त्र हैं, ये बोर्ड ही तो हैं। हे प्राणी! ऐसा कर, ऐसा मत कर, नहीं तो मेरी पुष्प-वाटिका बिगड़ जाएगी! अगर तू वेद नहीं पढ़ सकता है तो किसी से सुन ले कि मैंने क्या लिखा है। तुझे सन्देशवाहक भेजा जिसने तुझको कहा कि—

"वेद का पढ़ना-पढ़ाना सुनना-सुनाना सबका परम धर्म है।" यदि तू न पढ़कर
जानेगा और न सुनकर जानेगा और मेरी पुष्प-वाटिका को बिगाड़ेगा अपने दुष्कर्मों से
तो मैं तुझे अपनी पुलिस के सुपुर्द कर दूंगा। प्रभु का दण्ड-विधान प्रभु का कर्म-फल-
प्रदान पुलिस ही तो है और क्या। यदि तूने मेरी पुष्प-वाटिका को अपनी गन्दगी से
अपवित्र किया तो तुझे सुअर बना दूंगा, जो डाला था उसे मुख से खा। जो तूने
मूत्रादि के द्वारा मेरा रचा पवित्र जल गन्दा किया तो मछली-कछुआ बन जा, पानी
साफ कर। मेरे रचे शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु को अपने प्रश्वासों से विषैला बनाया था,
अब साँप-बिच्छू आदि बन और वायु को शुद्ध कर।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। (अथर्व०)

अर्थात्, पृथिवी माता है और हम सब उसके सगे पुत्र हैं।

हे बुद्धि का दुरुपयोग करनेवाले मूर्ख मनुष्य! अपने गन्दे शरीर पर विचार

यज्ञ की उत्पत्ति

सहयज्ञा प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ (गीता)

अर्थात्—प्रभु ने सृष्टि रचकर यज्ञ को साथ में लगा दिया और प्रजापति परमात्मा ने कहा कि इसके द्वारा सकल सिद्धियाँ प्राप्त करो। ये यज्ञ तुम्हारी कामनाओं को पूर्ण करनेवाले होंगे।

यह ठीक है कि मैंने ही तेरे शरीर को गन्दा बनाया पर यह सब-कुछ तेरे कल्याण के लिए किया है। तेरे शरीर के द्वारा जो मेरी सृष्टि गन्दी होती है, नित्य सायं-प्रातः यज्ञ करके मेरी सृष्टि को शुद्ध कर दिया कर। तुझे कोई दण्ड नहीं मिलेगा। विवशता से किये हुए कर्म का प्रायश्चित्त मेरी सृष्टि में है। यज्ञ करके तू निष्पाप रहेगा। इस यज्ञ के द्वारा तुझे मेरी सृष्टि-रचना का ज्ञान भी हो जावेगा। यज्ञ में डाली आहुतियाँ सृष्टि को शुद्ध करके प्रायश्चित्त करा देती हैं और यज्ञ की पद्धति का ज्ञान सृष्टि-रचना को समझाता है। इस यज्ञ से दुहरा लाभ है।

पर हे प्रभो ! मेरी समझ में यह नहीं आ सकता कि मेरे संसार में लाखों की संख्या नर-नारियों की है और सब ही संसार को गन्दा कर रहे हैं। एक मेरे यज्ञ करने से क्या तेरी सृष्टि शुद्ध हो जायेगी ?

हे महाबुद्धि मनुष्य सुन ! एक उदाहरण देकर तुझे समझाता हूँ। दस महिलाएँ अपने-अपने गोद के बच्चे को लिए किसी बहन के यहाँ किसी पर्व पर गईं। उसके आँगन में गाना-बजाना हो रहा है। पर वहाँ उन सब अबोध बच्चों ने उस बहन के आँगन को अपने-अपने मल-मूत्र से गन्दा कर दिया। उन दस महिलाओं में से नौ महिलाएँ आँगन गन्दा छोड़कर चली गईं। पर एक महिला ने अपने बच्चे की गन्दगी उठाकर साफ की और तब गई। उस बहन का आँगन तो गन्दा ही रहा। एक के साफ करने से उसका आँगन साफ नहीं हुआ। पर घर की मालकिन, वह बहन यह तो अवश्य कहेगी कि एक महिला बहुत सभ्य थी। जब कभी यह दुबारा आवेगी तो उसका स्वागत करेगी, और वे नौ महिलाएँ जब कभी दुबारा आवेंगी तो उन्हें वह बहन अपने घर में घुसने भी नहीं देगी। घर गन्दा रहने पर भी वह बहन उस एक महिला से अत्यन्त प्रसन्न होगी। इसी प्रकार सब सृष्टि गन्दी करते रहें पर तू अपनी फैलाई गन्दगी की शुद्धि कर दिया कर, मैं तुझसे प्रसन्न रहूँगा, और बार-बार मनुष्य-योनि ही दूंगा। यज्ञ न करनेवाले को दुबारा मनुष्य-योनि में घुसने नहीं दूंगा।

ठीक, अब बात समझ में आई ! मैं तो यज्ञ का लाभ हवा शुद्ध करना ही समझता था। क्या महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पञ्चमहायज्ञविधि में इसीलिए लिखा है कि—

प्रभु की प्रसन्नता के लिए मैं यज्ञ करता हूँ (पञ्चमहायज्ञविधि)

जिससे प्रभु प्रसन्न हो जावें उसे क्या नहीं मिल जाता ! ठीक इसीलिए प्राचीन

"यमेवैष वृणुते तेनैव लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्" (कठोपनिषत्)
अर्थात्, जिसको भगवान् स्वीकार करता है वही परमात्मा को प्राप्त करता है।

यज्ञ के अन्त में वामदेव्य गान

यज्ञ करने के बाद महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने नीचे लिखा वामदेव्यगान बोलने को लिखा है; वे मन्त्र ये हैं—

कया नश्चित्र आभुवदूती सदा वृध सखा:।
कया शचिष्ठया वृता ॥

भावार्थ—हे प्रभो! मैं तुझे कैसे प्रसन्न करूँ? तुम या तो उससे प्रसन्न होते हो जो अपनी बहुत बड़ी सम्पत्ति परोपकार के कार्य में लगा देता है या उससे प्रसन्न होते हो जो आपकी वेदवाणी का रक्षक विद्वान् है। पर मुझमें वे दोनों गुण नहीं अतः कैसे तुझे रिझाऊँ?

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढा चिदारुजे वसु ॥

भावार्थ—परन्तु मैं जानता हूँ कि सबसे अधिक प्रसन्न आप उससे होते हो जो आपकी सुन्दर सृष्टि को सुन्दर और हरा-भरा रखने के लिए यज्ञों को करता है। वह मैंने आपकी प्रसन्नता के लिये कर लिया।

अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम्।
शन्तते भवास्यूतये ॥

भावार्थ—मैं अपना यज्ञ करानेवाले पुरोहितों का भार अपने ऊपर लेता हूँ जिससे यह यज्ञ-प्रक्रिया जीवित रहे। उस यज्ञ-विद्या को जाननेवाले विद्वानों की वंश-परम्परा सुरक्षित रहे और प्रभु मेरी रक्षा का भार आप अपने ऊपर ले ले।

संस्कारविधि में कितने सुन्दर मन्त्र यज्ञ के अन्त में बोलने को महर्षि ने लिखे हैं! पर यह यज्ञ करनेवाला आर्यसमाज सारी यज्ञ-प्रक्रिया करके अन्त में द्यौः शान्ति बोल देता है कि सब शान्त, सब समाप्त। यज्ञ के अन्त में द्यौः शान्ति बोलना महर्षि ने कहीं नहीं लिखा है। महावामदेव्यगान का विधान संस्कारविधि में है जिसका भावार्थ ही यहाँ दिया है। हमारे यज्ञमहाभाष्यम् में इन मन्त्रों तथा अन्य समस्त मन्त्रों के पद-पदार्थ प्रत्येक शब्द को देखो तथा सम्पूर्ण यज्ञ की बड़ी पद्धति पर मीमांसा पढ़ो।

१. आओ प्रभु की सुन्दर वाटिका इस सृष्टि को सुगन्धित बनावें।
२. उसकी प्रसन्नता प्राप्त करें।
३. उसकी प्रसन्नता से उसके दरबार का सब-कुछ हमें मिल जावेगा।

◆◆

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६
के प्रकाशन

नये प्रकाशन

षड्दर्शन	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३५.००
सत्यार्थ सरस्वती	पं० मदनमोहन विद्यासागर	२५.००
वेदभगवान बोले	प्रो० विष्णु दयाल (मोरीशस)	६.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (सरल अध्ययन)	प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार	२.००

एक विशिष्ट प्रकाशन
पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कॉलर द्वारा सम्पादित

सत्यार्थप्रकाश (आठ परिशिष्ट, मोटे अक्षर) सजिल्द	२५.००
सत्यार्थप्रकाश (आर्ट पेपर पर छपी सुनहरी जिल्द, उपहार में देने योग्य राज संस्करण)	१०१.००
दयानन्द चित्रावली — रामगोपाल विद्यालंकार	८.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.५०
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	१०.००
प्रभुमिलन की राह	८.००
घोर घने जंगल में	८.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	६.००
एक ही रास्ता	३.००
मानव-जीवन-गाथा	४.००
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु-दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	६.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
Anand Gayatri	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्री महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या २० पैसे सैंकड़ा	१५.००
आर्य सतसंग गुटका (बड़ा) १०० पैसे ,,	७५.००
वैदिक यज्ञ प्रकाश ७५ पैसे ,,	५५.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	२.५०
सन्ध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	२.००

चित्र - चित्र - चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २० × ३०	२.००
महर्षि दयानन्द एक रंग १८ × २२	१.००
गुरु विरजानन्द एक रंग १८ × २२	१.००
स्वामी श्रद्धानन्द ,, ,,	१.००
स्वामी दर्शनानन्द ,, ,,	१.००
मं० हंसराज ,, ,,	१.००
पं० लेखराम ,, ,,	१.००

पं० बिहारीलाल शास्त्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल के रहस्य	१.५०

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

हृदयरोग कारण निवारण	८.००

नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम	०.५०

स्वामी दर्शनानन्द

कथा-पच्चीसी २.५०
बालशिक्षा-धर्मशिक्षा ०.६०

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश २५.००
आर्योद्देश्यरत्नमाला ०.२५
व्यवहारभानु १.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण ४०.००
शिवसंकल्प ४.००
ब्रह्मचर्य गौरव ३.००
वेदसौरभ ४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त) १.००
घरेलू ओषधियाँ ३.५०
वैदिक विवाहपद्धति २.५०
विद्यार्थियों की दिनचर्या ३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ ३.००
ऋग्वेदशतक २.००
यजुर्वेदशतक २.००
सामवेदशतक २.००
अथर्ववेदशतक २.००
कुछ करो कुछ बनो ३.००
चतुर्वेद शतकम् ८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम ३.००
दिव्य दयानन्द ३.००
सत्यनारायणव्रतकथा ०.५०
सामवेद सूक्ति-सुधा ३.००
यजुर्वेद-सूक्ति-सुधा ३.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा २०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन ७.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश (जीवन-चरित्र) २५.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

रामचन्द्र देहलवी लेखावली ७.००
वेद व्यावहारिक है ०.७५
शंका-समाधान ०.७५
पूजा क्या क्यों कैसे ! ०.७५
ईश्वर ने दुनियाँ क्यों बनाई ०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव ०.७५

भजन पुस्तकें

गीत भण्डार नन्दलाल वानप्रस्थी ४.००
गीत श्रद्धांजलि १.५०

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार ०.५०

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता १.५०

पं० इन्द्रविद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

श्री रामशरण वासिष्ठ

पशुहिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००
वेदों में मूल प्रकृति विज्ञान १.५०
वेदार्थ विज्ञान १.००
वेद और आत्मा २.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल १५.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

स्वाध्यायसंग्रह ४.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथिवी सूक्त) १.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए०

यज्ञ की महिमा १.५०

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.५०
स्वामी श्रद्धानन्द १.००
गुरु विरजानन्द १.००
पं० लेखराम १.००
पं० गुरुदत्त १.००
स्वामी दर्शनानन्द १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	तृतीय भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	पंचम भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	सप्तम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	अष्टम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	१.५०

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन

आप क्या नहीं कर सकते ?		२.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ?		२.००
हँसते-हँसते कैसे जियें ?		२.००
जो चाहें सो कैसे पायें ?		२.००
अपना खर्च कैसे घटायें ?		२.००
अवसर को पहचानो !		२.००
अपने आपको पहचानिए !		२.००
आप सफल कैसे हों ?		२.००
उन्नति कैसे करें ?		२.००
धनकुबेर कैसे बनें ?		२.००
अमर भारती	सीताराम सहगल	३.००
महाभारत	मनहर चौहान	३.००
रामायण		३.००

महिला-उपयोगी

सुबोध मेक-अप		४.००

विविध पुस्तकें

सुबोध टेलिविजन गाइड	हयात	४.००
रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक	,,	४.००
सुबोध ट्रांजिस्टर गाइड	,,	४.००
सुबोध ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	,,	४.००
अंग्रेजी बोलना कैसे सीखें	अनिल कुमार	४.००
स्वास्थ्य और योगासन	भगवानदेव	४.००
घरेलू इलाज	डा० समरसेन	४.००
मोटापा कैसे घटायें		४.००
जूडो कुंगफू कराटे		४.००
प्राकृतिक चिकित्सा		४.००

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद्-सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति—

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

स० नारायण स्वामी

प्राणायामविधि		१.००
कर्त्तव्य-दर्पण		४.००

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली		८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय	,,	१.००

पहली बार पूरे छह दर्शन एक साथ

षड्दर्शनम्

सरल-सुबोध संक्षिप्त हिन्दी-भाष्य

मूल्य : मात्र पैन्तीस रुपये



गोविन्दराम हासानन्द द्वारा प्रसारित

अन्य प्रकाशन

वैद्य गुरुदत्त

वेद प्रवेशिका	६.००
सांख्य दर्शन	४०.००
विश्वेदेवा:	६.००
अद्वैत मीमांसा	६.००
इतिहास की परम्परा	१२.००
भारत गांधी-नेहरू की छाया में	१८.००
भारत में राष्ट्र	४.००
ब्रह्मसूत्र I	३०.००
,, II	२४.००
प्रजातन्त्र अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था	५.००
धर्म तथा समाजवाद	१४.००
द्वितीय विश्वयुद्ध	३.००
महर्षि दयानन्द	३.००
विज्ञान और विज्ञान	८.००
श्रीमद्भगवतगीता	२४.००
दो लहरों की टक्कर (दो खण्ड)	६६.००

बलराज मधोक

भारत में लोकतन्त्र	१२.००
भारत की सुरक्षा	६.००
भारत की विदेशनीति	६.००
हिन्दू राष्ट्र	२.००
भारत और संसार	८.००
डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी	१०.००
पाकिस्तान का आदि और अन्त	५.००

स्वामी वेदानन्द

स्वाध्याय सन्दोह	२०.००
स्वाध्याय सन्दीप	१०.००
स्वाध्याय संग्रह	४.००
सावित्री प्रकाश [गायत्री]	२.००
सत्यार्थ प्रकाश का प्रभाव	२.००
सन्ध्यालोक	२.५०
ब्रह्मोद्योपनिषत्	२.५०
जीवन की भूलें	१.००

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास	५०.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास	३०.००
सांख्य सिद्धान्त	२५.००
सांख्य दर्शन	२०.००
वेदान्त दर्शन	३५.००
वैशेषिक दर्शन	२५.००
न्याय दर्शन	३०.००
योग दर्शन	३०.००

ब्र० वेद्रव्रत मीमांसक

ज्यौतिष विवेक	१६.००

नाथूराम गुप्त

वेद और जीवन	१२.००

ऋग्वेद भाषा भाष्य ५ भाग **स्वामी दयानन्द** १५०.००

अथर्ववेद ,, ३ **क्षेमकरणदास त्रिवेदी** ६०.००

यजुर्वेद ,, १ **स्वामी दयानन्द** ३०.००

सामवेद ,, १ **स्वामी तुलसीराम** ३०.००

चारों वेद एक साथ मंगाने पर रियायती मूल्य २२५.००

महर्षि दयानन्द कृत

महर्षि ने ऋग्वेद के दस मण्डल में से साढ़े छः मण्डलों का भाष्य ९ जिल्दों में किया है।

ऋग्वेद भाष्यम् प्रथम खण्ड	१८.००
,, ,, द्वितीय ,,	१५.५०
,, ,, तृतीय ,,	१४.००
,, ,, चतुर्थ ,,	१२.००
,, ,, पंचम ,,	१४.००
,, ,, षष्ठ ,,	१०.००
,, ,, सप्तम ,,	१७.००
,, ,, अष्टम ,,	१८.००
,, ,, नवम ,,	१२.००
,, ,, दसवां मण्डल भाग I	३०.००

इन सभी भागों में संस्कृत भाष्य एवं हिन्दी भाष्य दोनों हैं।

केवल हिन्दी भाषा भाष्य भी पृथक् उपलब्ध हैं।

ऋग्वेद भाषा भाष्य प्रथम	८.००
,, ,, ,, द्वितीय	७.००
,, ,, ,, तृतीय	७.००

योग दर्शन पं० तुलसीराम स्वामी	३.००
वैशेषिक दर्शन ,,	३.००
न्याय दर्शन ,,	४.००
वेदान्त दर्शन ,,	३.००
सांख्य दर्शन ,,	३.५०
श्रीमद्भगवद्गीता स्वामी सम्पूर्णानन्द	५.००
श्रीमद्भगवद्गीता भाई परमानन्द	१२.००

वैद्य नारायण दत्त सिद्धान्तालंकार

महर्षि दयानन्द जीवन और दर्शन	६.००
शंकराचार्य जीवन और दर्शन	४.००
ऋग्वेद भाषा भाष्य चतुर्थ	६.००
,, ,, ,, पंचम	७.००
,, ,, ,, षष्ठ	७.५०
,, ,, ,, सप्तम	८.००
,, ,, ,, अष्टम	८.००
,, ,, ,, नवम	६.००
,, ,, दसवां मण्डल I भाग	१५.००
यजुर्वेद भाष्यम् प्रथम	१६.००
,, ,, द्वितीय	२४.००
,, ,, तृतीय	१६.००
,, ,, चतुर्थ	१४.००
यजुर्वेद भाषा भाष्य २ खण्डों में महर्षि दयानन्द I	१५.००
भाग II	२५.००

पं० जयदेव विद्यालंकार कृत

चारों वेद भाष्य

ऋग्वेद ७ खण्डों में	११६.००
अथर्ववेद ४ ,,	६४.००
यजुर्वेद २ ,,	२४.००
सामवेद १ ,,	२०.००

दर्शन ग्रन्थ

आचार्य श्रीराम कृत

योग	५.७५
वैशेषिक	५.७५
सांख्य	५.७५
न्याय	५.७५
वेदान्त	५.७५
मीमांसा	७.००
वेद महाविज्ञान	१२.००

स्वामी दर्शनानन्द

उपनिषद् प्रकाश	१२.००
न्याय दर्शन	७.००
सांख्य दर्शन	६.००
वैशेषिक दर्शन	८.००
वेदान्त	१२.००

गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	७.००
शंकर भाष्यालोचन	७.००
जीवन-चक्र	७.००
सन्ध्या क्या क्यों कैसे ?	३.००
पूजा क्या क्यों कैसे ?	३.००
भारतीय पतन और उत्थान की कहानी	२.५०
आर्य स्मृति	३.००
भगवत् कथा	१.५०
सनातन धर्म	१.००
धर्म-सुधासार	०.९०
राष्ट्रनिर्माता स्वामी दयानन्द	१.००
Philosophy of Dayanand	१५.००
Vedic Culture	५.००

विश्वप्रकाश बी० ए० एल० एल० बी०

उपनयन वेदारम्भ संस्कार	०.६०
मृतक संस्कार	०.६०
चूड़ाकर्म	०.६०
अन्नप्राशन	०.६०
नामकरण	०.७०

म० प्रभु आश्रित जी महाराज कृत

गृहस्थ सुधार	४.००
सेवा धर्म	१.७०
गायत्री रहस्य (हिन्दी)	५.००
प्रभु का स्वरूप	२.७०
डरो वह बड़ा जबरदस्त है	१.००
पृथिवी का स्वर्ग	२.७०
यज्ञ रहस्य	४.५०
मन्त्रयोग (चार भाग)	८.५०
गृहस्थाश्रम प्रवेशिका	१.७०

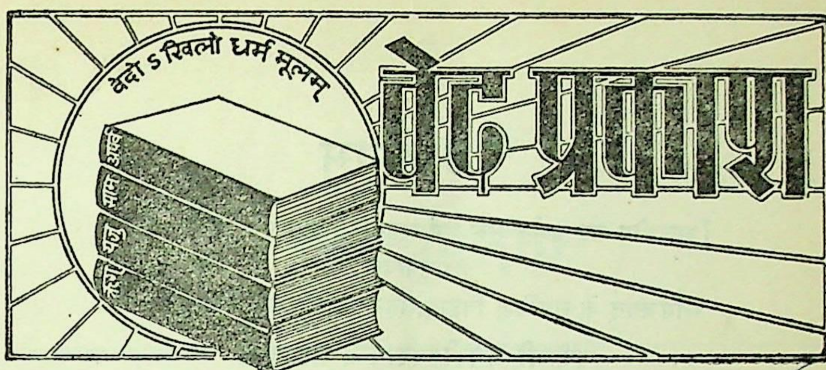
स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला	३.००
स्वाध्यायसंग्रह स्वामी वेदानन्द	४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य	०.५०

प्रकाशक—मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, से प्रसारित किया।



65

अग्निहोत्रांक

इस बार हम पाठकों की सेवा में 'अग्निहोत्र' अंक दे रहे हैं। इसके लेखक हैं कर्मकाण्ड पर अथक परिश्रमी स्वामी मुनीश्वरानन्द जी महाराज। सभी समाधानों से सब का सन्तुष्ट होना आवश्यक नहीं है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बात कहने का अधिकार है, अतः हम सभी शंकाओं के समाधान को अविकल छाप रहे हैं। आशा है पाठक लाभान्वित होंगे।

—जगदीश्वरानन्द

षड्दर्शनम्

[भारतीय छह दर्शन मूल एवं अनुवाद-सहित एक ही जिल्द में]

अनुवादक

आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में रत

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वैदिक साहित्य में दर्शनों का विशेष महत्त्व है। वे वेदों के उपाङ्ग हैं। वेद में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष, योग, कर्मसिद्धान्त, यज्ञ आदि का बीजरूप में वर्णन है, दर्शनों में उन्हीं विचार-बिन्दुओं पर विस्तृत विवेचन है।

- यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में क्या है?
- यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में विरोध नहीं है।
- यदि आप जानना चाहते हैं कि यज्ञों का प्रकार क्या है?
- यदि आप जानना चाहते हैं कि भारतीय दर्शनों की विशेषताएँ क्या हैं तो

इस 'षड्दर्शनम्' को पढ़ जाइए। **संसार के इतिहास में प्रथम बार छहों दर्शन अनुवाद-सहित एक जिल्द में छपे हैं।** उत्तम कागज, दिव्य मुद्रण, आकर्षक गैट-अप, अन्त में सूत्र-सूची, आरम्भ में विस्तृत भूमिका। मूल्य : ३५ रुपये

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार लिखते हैं—

लेखक ने छहों दर्शनों को सरल हिन्दी में लिखकर अध्ययनशील जिज्ञासु जनता का बड़ा उपकार किया है।

आचार्य शिवपूजनसिंह जी कुशवाहा लिखते हैं—

आपने छह दर्शनों का आर्यभाषा में अनुवाद करके आर्यजगत् पर एक महान् उपकार किया है। 'मीमांसा दर्शन' पर तो पूर्ण भाष्य किसी भी आर्य विद्वान् का नहीं था, आपने इस कमी को भी पूरा कर दिया। पुस्तक की छपाई-सफाई आकर्षक है।

श्री भवानीलाल जी भारतीय सम्पादक परोपकारी लिखते हैं—

एक ही जिल्द में दर्शन के मूल वाङ्मय को प्रस्तुत करना सराहनीय है।

आचार्य रमेशचन्द जी एम० ए० सम्पादक आर्यमित्र लिखते हैं—

गम्भीर चिन्तनशील विद्वान् और साधारण प्रारम्भिक विद्यार्थी दोनों अपनी योग्यता और मापदण्ड के अनुसार व्याख्याकार के प्रति आभारी रहेंगे।

पं० आनन्दप्रिय जी लिखते हैं—

स्वाध्यायशील व्यक्तियों के लिए यह **ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी एवं मूल्यवान् सिद्ध होगा।**

◈ ओ३म् ◈

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २६, अंक ५]　　वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया　　[दिसम्बर, १६७६

सम्पा० : विजयकुमार　　आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

संस्कारों के सम्बन्ध में कुछ शंकाएँ और उनका समाधान

स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती त्रिवेदतीर्थ

संन्यास आश्रम गाजियाबाद

श्री सन्तोषकुमार जी पाठक, नगर विधूना, जनपद इटावा ने समाधानार्थ १४ शंकाएँ हमारे पास भेजी हैं, जिनका यथामति समाधान वेदप्रकाश मासिक में आर्यजनों के लाभार्थ प्रकाशित करवा रहा हूँ। पढ़ें और लाभ उठावें। —मुनीश्वरानन्द

पहली शंका—स्विष्टकृत होमाहुति प्रत्येक कार्य के समापन पर करनी चाहिए। जब कि संस्कार विधि में ऐसा नहीं है ?

समाधान—संस्कार विधि में तो स्विष्टकृत होमाहुति सर्वत्र कर्म के अन्त में ही है। हाँ हमारी उल्टी अनुष्ठान पद्धति के कारण अवश्य हमें ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि सभी यज्ञों और संस्कारों के आरम्भ में ही किया जाने वाला दैनिक अग्निहोत्र सर्वत्र यज्ञों और संस्कारों के अन्त में किया जाता है। इस कारण स्विष्टकृत होमाहुति बीच में आ जाती है। इसी से यह शंका होती है कि यह आहुति जो अन्त में होनी चाहिए थी बीच में क्यों है ?

कुछेक स्थानों को छोड़कर समूचे आर्य जगत् में साप्ताहिक सतसंग आदि अवसरों पर अग्निहोत्र का अनुष्ठान इस रीति से करते हैं—

ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, आचमन, अंग स्पर्श (कहीं-कहीं पर आचमन और अंगस्पर्श आरम्भ में ही कर लेते हैं। अग्न्याधान, समिदाधान, पाँच घृत आहुतियां, जल सिंचन, आघारावाज्यभागाहुति चार, व्याहृति आहुति

चार, स्विष्टकृत होमाहुति एक, प्राजापत्याहुति एक "भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूँषि" इत्यादि चार मन्त्रों से चार आहुति, "त्वन्नो अग्ने" इत्यादि आठ मन्त्रों से अष्टाज्याहुति क fि फिर "सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः" आदि चार मन्त्रों से चार प्रातःकालिक आहुति, "अग्निर्ज्योतिः" आदि चार मन्त्रों से चार सायंकाल की आहुति, "भूरग्नये प्राणाया स्वाहा" इत्यादि चार मन्त्रों से दोनों समय की चार आहुति फिर "आपोज्योतिः" आदि चार मन्त्रों से चार आहुति पश्चात् गायत्री मन्त्र से यथा रुचि—१.२,३ आदि आहुतियाँ करके "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" इस से तीन पूर्णाहुतियाँ देकर यज्ञ समाप्त करते हैं ।

इस अनुष्ठान क्रम में सचमुच स्विष्टकृत होमाहुति प्रारम्भ में ही हो जाती है । इसी से यह शंका उत्पन्न होती है । संस्कारों में भी अनुष्ठान क्रम उल्टा ही रहता है । वहाँ भी दैनिक यज्ञ की आहुतियाँ सबसे पीछे देते हैं । इस प्रकार प्रत्येक संस्कार के अन्त में विहित स्विष्टकृत होम भी बीच में आ जाता है ।

वास्तव में नित्यकर्मरूप दैनिक अग्निहोत्र की सर्वत्र पहिले प्राप्ति है । अतः दैनिक अग्निहोत्र पहले करके फिर बाद में संस्कार विधि में लिखे प्रमाणे विशिष्ट कर्म करना चाहिए । इतने मात्र से स्विष्टकृत होम प्रत्येक यज्ञ और संस्कार के अन्त में पहुँच जाता है । इसलिए संस्कार विधि के अनुसार साप्ताहिक सत्संगों में अग्निहोत्र का अनुष्ठान क्रम इस प्रकार होना चाहिए—

सर्वप्रथम सब उपस्थित सज्जन मुख, हाथ तथा पाँव प्रक्षालन कर पंक्ति में बैठ करके एकाग्र शान्त मन से ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वास्ति वाचन, शान्तिकरण का मधुर स्वर से मिलकर पाठ करें । इस वेदपाठ की समाप्ति तक यज्ञ के आसानों पर कोई भी न बैठे । इस प्रकार सामूहिक वेदपाठ के पश्चात् यजमान अथवा मन्त्री ब्रह्मादिकों को यज्ञ करने के लिए आसानों पर बैठने की प्रार्थना करे । (देखो संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण का आरम्भ) इसके अनन्तर यजमान तथा ब्रह्मादिक सब अपने-अपने आसानों पर बैठकर प्रथम आचमन और अंगस्पर्श करके यज्ञ का शुभारम्भ करें ।

संस्कार विधि के अनुसार यज्ञ का अनुष्ठान क्रम इस प्रकार है कि—प्रथम[1] अग्न्याधान समिदाधान और पाँच घृत आहुतियाँ करके प्रदक्षिण क्रम से कुण्ड के चारों ओर अञ्जलि से जल छिड़कें । यह इतना कर्म अग्न्याधान कहलाता है ।

अब सर्वप्रथम दैनिक अग्निहोत्र का अनुष्ठान इस प्रकार करें । चार आघारा-वाज्यभागाहुति करके "सूर्यो ज्योतिः" इत्यादि "अग्ने नय सुपथा राये" तक के बारह मन्त्रों से बारह आहुतियाँ करें । यहाँ तक का कर्म दैनिक अग्निहोत्र कहलाता है ।

अब पुनः आघारावाज्यभागाहुति चार, व्याहृति आहुति चार (व्याहृति आहुतियाँ ही प्रायश्चित आहुतियाँ हैं) स्विष्टकृत होमाहुति एक प्राजापत्याहुति एक "भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि" इत्यादि चार मन्त्रों से चार "त्वन्नो अग्ने" इत्यादि आठ मन्त्रों से आठ आज्याहुति करके "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" इस मन्त्र से तीन पूर्णाहुति देके यज्ञ समाप्त करना चाहिए । इस प्रकार स्विष्टकृत होम अपने स्थान पर रहता हुआ भी कर्म के अन्त

में हो जाता है । यही अनुष्ठान प्रकार ठीक समझना चाहिए । क्योंकि संस्कार विधि का क्रम भी यही है ।

आप कहेंगे कि इस क्रम में भी तो स्विष्टकृत होम अन्त में नहीं है, क्योंकि पूर्णाहुति सहित पन्द्रह आहुतियाँ इसके बाद में और भी दी जाती हैं ।

देखिए तनिक विचार करने पर आपको प्रतीत होगा कि वास्तव में स्विष्टकृत होम यहाँ पर भी सामान्य प्रकरण के अन्त में ही है । अगली बारह आहुतियाँ तो इसकी पूर्त्ति के लिए विधान करके आचार्य ने हमें अनुष्ठान का पूर्ण प्रकार दे दिया । क्योंकि मन्त्र में "सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनाम्" और "कामानाम्" ये दो पद बहुवचनान्त पढ़े गए हैं । जिनकी समृद्धि की कामना की गई है । अतः अनुष्ठानकर्त्ता स्विष्टकृत होम के बाद जबतक अपनी कामनाओं की प्रकाशक और सर्वप्रायश्चित्त होम की आहुतियाँ नहीं देगा तब तक स्विष्टकृत होम के बाद भी कर्म अधूरा ही रहेगा । क्योंकि जिन कामनाओं और सर्वप्रायश्चित आहुतियों की समृद्धि की कामना यजमान करता है यदि उन कामनाओं को प्रकट नहीं किया जाता है और वे सर्वप्रायश्चित्ताहुतियाँ नहीं दी जाती हैं तो निश्चित ही अनुष्ठान अधूरा रह जाता है । इसलिए यजमान स्विष्टकृत होम अपने उचित स्थान पर करके अगली बारह आहुतियाँ देता है । यतः सर्वप्रायश्चित्त आहुतियाँ कर्म के अन्त में होनी चाहिएँ अतः यजमान प्रथम कामना सूचक चार होम करके पश्चात् सर्व प्रायश्चिताहुतियाँ देकर यज्ञ समाप्त करता है । अष्टाज्याहुति मन्त्रों में ३।४ और ८वाँ इन तीन मन्त्रों को छोड़कर शेष पाँच मन्त्रों का नाम सर्वप्रायश्चित्ता-हुति है । (दृष्टव्य कात्यायन श्रौतसूत्र अध्याय २४ काण्डिका १ सूत्र २५ तथा पारस्कर गृह्यसूत्र काँ १ काण्डिका ५ सूत्र ५) पारस्कर गृह्यसूत्र में भी स्विष्टकृत होम के बाद ही सर्वप्रायश्चित्ताहुतियों का विधान है ।

ये बारह आहुतियाँ तो निश्चित हैं । अतः इनमें न्यूनाधिकता का कोई प्रश्न नहीं उठता । न्यूनाधिकता तो दैनिक यज्ञ के बाद और स्विष्टकृत के प्राक् अनुष्ठीय-मान कर्म में ही प्रायः हुआ करती है जिसकी समृद्धि के लिए स्विष्टकृत होम का विधान है । विनियोजक आचार्य इनका विनियोग चाहे स्विष्टकृत से पहिले कर दे या बाद में इससे स्विष्टकृत होम की स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता । अभी अनुपद ही दिए गए पारस्कर गृह्यसूत्र के प्रमाण को फिर पढ़िए ।

इस प्रकार अनुष्ठान क्रम पर विचार करने से संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण और अन्य सब संस्कारों में स्विष्टकृत होमाहुति अन्त में ही होती है । बीच में या आदि में नहीं । प्रायः पुरोहित महानुभाव दैनिक अग्निहोत्र की आहुतियाँ संस्कार समाप्ति पर कराके फिर "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" इस मन्त्र से पूर्णाहुति देकर क्रिया समाप्त कराते हैं । इसी से सारी उलझन उत्पन्न होती है । वास्तव में अनुष्ठान का यह क्रम ठीक नहीं है । संस्कारविधि के आशय के विपरीत होने से त्याज्य और अमान्य समझना चाहिए । क्योंकि सब संस्कारों में कहीं भी "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" इस मन्त्र से पूर्णाहुति का विधान नहीं है । इस प्रकार प्रत्येक संस्कार स्विष्टकृत होम के साथ ही

समाप्त हो जाता है। अतः सर्वत्र यह आहुति यथा स्थान पर रहते हुए भी अन्त में ही है ऐसा जानना।

स्विष्टकृत होम के सम्बन्ध में इतना और ध्यान रखना चाहिए कि इस आहुति के लिए द्रव्य केवल घृत (घृतेनस्विष्टकृत। तै. सं.) अथवा भात ही विधान किया गया गया है। इसलिए गुड़, शक्कर, चीनी या नुकती आदि अन्य किसी पदार्थ का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि यह आहुति घृत की देनी हो तो स्रुवा भर कर देनी चाहिए और यदि भात की देनी हो तो पहिले स्रुवा को खाली करके उसमें एक छोटा चम्मच घी का डालें। इसका नाम उपस्तरण है। फिर अंगुष्ठ पर्व प्रमाण या आँवले के बराबर भात लेकर स्रुवा में रखें और फिर से दो चम्मच घी के भर के भात के ऊपर डालें, इसका नाम अभिघारण है। इस प्रकार घृत से उपस्तृत और अभिघारित हवि जलते हुए अग्नि पर इशान दिशा में डालनी चाहिए। (दृष्टव्य कात्यायन श्रौत सूत्र १।९।१० तथा गोभिल गृह्य सूत्र १।८।१०)

दूसरी शंका—प्राजापत्याहुति मौन क्यों दी जाती है?

समाधान—कर्मकाण्ड के ग्रन्थों में यज्ञ को एक रथ माना गया है। इस रथ का वहन करनेवाले दोनों अश्वों में एक वाणी है और दूसरा मन है। जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में वर्णन है—

यदुपांशु क्रियते तन्मनो देवेभ्यो यज्ञं वहति।
अथ यद् वाचा निरुक्तं क्रियते वाग् देवेभ्यो यज्ञं वहति॥

शतपथ ब्रा० १।४।४।१

अर्थात् जब उपांशु (मौन) आहुति दी जाती है तब मन देवों के लिए यज्ञ का वहन करता है और जब बोलकर आहुति दी जाती है तब वाणी देवों के लिए यज्ञ का वहन करती है।

वाणी तो इस यज्ञ रथ का आरम्भ से ही वहन करती है। ताण्ड्य ब्राह्मण इस बात को यों कहता है "वाचा वै सर्वं यज्ञं तन्वते" अर्थात् वाणी से ही सारे यज्ञ का विस्तार होता है। इस प्रकार वाणी की प्रवृत्ति तो सर्वत्र रही परन्तु मन की प्रवृत्ति कहीं नहीं हुई। मन का भी यज्ञ के वहन में भाग हो इसके लिए प्रजापति जो अनिरुक्त—अनिर्वचनीय है उसके सम्बन्धी मन्त्र और हवि वहन का भार मन को सोंपा गया क्योंकि प्रजापति की ही तरह मन भी अनिर्वचनीय है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि "अपरिमिततरं हि मनः। परिमिततरेव वाक्" क्योंकि वाक् परिमित—सीमित है इसलिए इससे वैसा ही काम लिया जाता है और मन अपरिमित है इसलिए इससे अपरिमित ब्रह्म—प्रजापति के लिए यज्ञ के वहन का, मनन का, चिन्तन का काम सोंपा गया। इसलिए प्राजापत्याहुति मौन देते हैं ताकि प्रजापति रूप यज्ञ के वहन में इसका भी वाणी की ही भाँति भाग हो। चिन्तन हमेशा मौन होकर ही किया जाता है। क्योंकि प्रजापति वाणी का विषय नहीं है। बस यही रहस्य मौन आहुति में है।

तीसरी शंका—सायंकाल के मन्त्रों में तीसरी आहुति मौन क्यों दी जाती है?

समाधान—शंका सं० दो के समाधान के तुल्य सूर्य और भौम अग्नि इन दो की चर्चा तो वाणी ने खूब की परन्तु जब तृतीय परमाग्नि का विषय आया तो बढ़ चढ़कर बोलनेवाली यह वाक् चुप हो गई, क्योंकि वह तो अनिर्वचनीय है। वचन से कथन से परे है। वह वाणी का नहीं, मनन का विषय है। अतः वाक् व्यापार बन्द करके यहाँ भी तीसरी आहुति मौन दी जाती है।

चौथी शंका—जब और सब संस्कार प्रातःकाल किए जाते हैं तो फिर विवाह संस्कार रात्रि में क्यों किया जाता है ?

समाधान—शंका का समाधान ठीक से समझ में आजावे इसके लिए पहले यह यह बात जान लेनी चाहिए कि सायंकाल और प्रातःकाल का अग्निहोत्र ये दोनों मिलके एक कर्म है। इसलिए—

सायमारम्भणमग्निहोत्रं प्रागपवर्गम् ।। वाराह श्रौतसूत्र ।

अथ च होमः सायमारम्भणीयः सायमादि प्रातरन्तमेकं कर्म ।।

कात्यायन श्रौतसूत्र ।

कालद्वयानुष्ठेययोर्होमयोरेकत्वात् च मिलितयोरेकफलं भवति न पृथक् ।

कात्यायन श्रौतसूत्र के टीकाकार पं० विद्याधर जी गौड़

इन वचनों में वाराह श्रौतसूत्र, कात्यायन श्रौतसूत्र और इसके टीकाकार पं० विद्याधर जी गौड़ ने भी वही बात कही है जो अग्निहोत्र के विषय में मैंने कही है।

जिस अग्नि में विवाह संस्कार सम्पन्न होता है, वर-वधू उसे अपने घर में ला कर स्थापित करते हैं। वहाँ पर इसका नाम आवसथ्याग्नि होता है। गृहस्थ के सब अग्निकार्य इसी से सम्पन्न किए जाते हैं। जिस गृहस्थ के घर में यह अग्नि नहीं होता शास्त्र उसे पतित मानता है। स्मृतकार लिखते हैं कि—

कृतदारो न तिष्ठेच्च क्षणमप्यग्निना विना ।
तिष्ठन् भवेद्द्विजोव्रात्यस्तथा च पतितो भवेत् ।।

विवाह संस्कार के पश्चात् गृहस्थ को एक क्षण भी आवसथ्याग्नि के बिना नहीं रहना चाहिए। अग्निरहित द्विज पतित और व्रात्य हो जाता है।

क्योंकि अग्निहोत्र प्रातः काल आरम्भ होता नहीं और वर-वधू को आज के दिन गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते समय से ही अग्नि का ग्रहण करना चाहिए। यतः सायं प्रातः मिल कर एक कर्म है, इसलिए विवाह संस्कार के अग्नि में ही अगले दिन प्रातःकाल की आहुतियाँ देकर कर्म पूरा करके अग्नि अपने घर ले जाते हैं ताकि अगले दिन सायंकाल अपने घर में इस अग्नि को स्थापित करके अग्निहोत्र आरम्भ करने में समर्थ हो सकें। इसलिए विवाह संस्कार सायंकाल किया जाता है। इसके विपरीत प्रातःकाल का समय रखने से अग्नि ग्रहण करने में बड़ी कठिनाई आ जाती है साथ ही कर्मभेद उपस्थित हो जाता है, जो शास्त्र को अभीष्ट नहीं।

अथच विवाह के पूर्वविधि के अन्त में जहाँ वर-वधू सूर्य अवलोकन करते हैं, वहाँ उत्तर विधि में वर वधू को ध्रुव और अरुन्धती के दर्शन कराता है। यदि दिन में संस्कार होगा तो ध्रुव और अरुन्धती दर्शन न हो सकेगा। इस अवस्था में विहित

के त्याग से शास्त्र के लोप करने का दोष आता है। इसलिए विवाह संस्कार का सर्वोत्तम समय अपराह्न में गोधूली वेला ही है। जिससे विवाह का पूर्वविधि सूर्य रहते समाप्त हो जावे और उत्तरविधि से पूर्व सब लोग अपने नित्य कर्म से निवृत्त हो जावें। पश्चात् दो घड़ी रात्रि जाने पर उत्तरविधि का आरम्भ करें जिससे ध्रुव और अरुन्धती के दर्शन ठीक से हो सकें एवं उत्तर विधि के साथ संस्कार समय पर समाप्त हो जावे। इसलिए विवाह संस्कार के लिए सायंकाल का विधान किया गया है।

पाँचवीं शंका—विवाह संस्कार में वधू का स्थान (आसन) वर के दक्षिण में क्यों होता है ?

समाधान—विवाह संस्कार में संस्कार्य—जिसका संस्कार किया जाता है वह वधू है। संस्कारक वर है। शास्त्र का ऐसा नियम है कि संस्कार्य का आसन दक्षिण में तथा संस्कारक का आसन उत्तर में रहे। यथा—

संस्कार्यपुरुषो वाऽपि स्त्री वा दक्षिणतो भवेत्।
संस्कारकस्तु सर्वत्र तिष्ठेदुत्तरतः सदा ।१६।

लघु आश्वलायन स्मृ०

इसी नियम के अनुसार उपनयन संस्कार में संस्कार्य ब्रह्मचारी आचार्य के दक्षिण में बैठता है और आचार्य बालक के उत्तर में। (देखें संस्कारविधि उपनयनसंस्कार)

इसी प्रकार कन्यादान, विवाह, गृहप्रवेश, यज्ञकर्म और समस्त धर्मकार्यों में पत्नी का स्थान पति के दक्षिण में होना चाहिए, ऐसा मत भी स्मृतिकारों का है। व्याघ्रपाद स्मृति में लिखा है कि—

कन्यादाने विवाहे च प्रतिष्ठा यज्ञकर्मणि।
सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षितः स्मृता ।।१४

तथाचः—

१. **पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्।** मनु०
२. **गच्छन्तमनु व्रजेत्।** गौ०ध०सू०१-२-३३
३. **गच्छन्तं गुरुमनु गच्छेत्।**
४. **गच्छेन्न पुरतो गुरोः।** मेरुतन्त्र ७।२३

पति जहाँ संस्कारक है वहाँ महाराज मनु (१) के वचनानुसार वह पत्नी का गुरु भी है। चलने-फिरने में यज्ञ आदि की प्रदक्षिणा एवं परिक्रमा करने में उपरोक्त स्मार्त्त वचनों के अनुसार गुरु सर्वत्र आगे रहता है। इसलिए संस्कार के समय प्रदक्षिणा करने में पत्नी पीछे रहे इसके लिए नितान्त आवश्यक है कि वधू को वर के दक्षिण भाग में बैठाया जावे। विवाह में लाजा होम के पश्चात् प्रदक्षिणा की जाती है। लाजा होम के समय वधू वर के दक्षिण में और वर वधू के उत्तर में खड़ा होता है। इस अवस्था में प्रदक्षिणा करने के लिए दोनों को उत्तराभिमुख होना होगा। ऐसा करते ही वधू अपने आप पीछे हो जाती है और वर आगे। इस प्रकार प्रदक्षिणा में वधू पीछे रहे इस सुविधा के लिए भी वधू का आसन वर के दक्षिण में रखा जाता है।

गृहस्थ में पत्नी की अनुकूलता और अनुवर्त्तन अत्यावश्यक है। इसलिए वधू के दक्षिण में रहने का यह भाव भी है कि गृहस्थ के समस्त शुभ कर्मों में वह सर्वदा पति के अनुकूल रहेगी। दक्षिण शब्द का अर्थ अनुकूलता भी है। इस प्रकार ऊपर लिखे तीन प्रमुख कारणों से विवाह संस्कार में पत्नी का आसन पति के दक्षिण में रखा जाता है।

छठी शंका—नामकरण संस्कार में पत्नी का आसन पति के वाम भाग में क्यों है?

समाधान—सोलह संस्कार और पंच महायज्ञ इन इक्कीस कर्मों का नाम वैदिक कर्म है। इनमें कुछ तो ऐसे हैं जिन्हें देव ऋण चुकाने के लिए किया जाता है और कुछ पितृ ऋण चुकाने के लिए किए जाते हैं। इसी बात को ऐसे भी कहा जा सकता है कि जो सन्ध्यावन्दन अग्निहोत्रादि कर्म परलोक प्राप्ति के साधक हैं उन्हें देव कर्म और इस लोक की प्राप्ति के लिए किए जानेवाले कर्मों को पितृ कर्म कहते हैं। देव कर्म में प्रत्येक क्रिया प्रदक्षिण क्रम से और पितृ कर्म में प्रत्येक क्रिया अप्रदक्षिण की जाती है। दोनों प्रकार के अनुष्ठानों-यज्ञयागादिक में अनुगामिनी के रूप में पत्नी पति के पीछे रहकर प्रत्येक क्रिया का सम्पादन करती है। इसलिए विवाह में प्रदक्षिणा करने में सुविधा और पत्नी की अनुकूलता सूचकता को ध्यान में रखकर उसे पति के दक्षिण में बैठाया जाता है। इसी प्रकार अप्रदक्षिण गमन आगमन में पत्नी सर्वत्र पति का अनुगमन कर सके इसके लिए यहाँ पत्नी को पति के वाम भाग में बैठाया जाता है।

ध्यान कीजिए नामकरण संस्कार में जब यजमान पत्नी बच्चे को अपने पति को देने के लिए उसके पीछे से सामने आकर बच्चा उन्हें देती है तब यह क्रिया अप्रदक्षिण क्रम से ही सम्पन्न होती है। प्रदक्षिण क्रम से नहीं। इसलिए गर्भाधान, नामकरण जैसे पितृ कर्मानुष्ठान में सर्वत्र पत्नी वामभाग में और पति दक्षिणभाग में बैठता है।

सातवीं शंका—मधुपर्क में मधु, दही और घृत का प्रयोग किस भाव की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है।

समाधान—गृहस्थ के घर पर आनेवालों में जिन-जिन के लिए मधुपर्क का विधान है उनमें से वर भी एक है। यह एक स्वागत विधि है। जिसमें आसन दान से मधुपर्क तथा गोदान तक का कार्यक्रम है। घर पर आए प्रत्येक सम्माननीय व्यक्ति के लिए गृहस्थ शक्ति भर अच्छे-से-अच्छा भोजन देता है। ऐसा व्यवहार में प्रतिदिन सर्वत्र देखा जाता है। मधुपर्क में मधु उपलक्षण है फूल-फल, शाक-पात एवं अन्न आदि जंगल में उत्पन्न होनेवाले समस्त उत्तमोत्तम पदार्थों का। और है भी सर्वोत्तम। ग्राम की खाद्य वस्तुओं में जो गृहस्थ के घर में मिल सकती हैं, उन सब में सर्वोत्तम हैं दूध, दही तथा घी। इस प्रकार जंगल और घर में उपलब्ध होने वाले सर्वोत्तम पदार्थ और उन में भी उन सब के प्रतिनिधि रूप में मधु और दही का ग्रहण खाद्य पदार्थों में सर्वोत्कृष्टता की दृष्टि से किया जाता है।

आप देखेंगे कि इन दोनों से अधिक आयुर्वर्द्धक, स्वास्थ्यकर, बुद्धिवर्द्धक, सर्व रोग-निवारक एवं स्वादिष्ट और मधुर कोई पदार्थ इतना उत्कष्ट न मिलेगा। दाल-शाक आदि व्यञ्जनों के सुस्वादु होने में लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि घी सँवारे काम और बड़ी बहु का नाम। साथ ही इससे वर को यह उपदेश भी दिया जाता है कि आयुरादि की वृद्धि के लिए सर्वदा इन और जिनके ये प्रतिनिधि हैं उन फूल फल अन्न एवं दुग्धादि उत्तमोत्तम पदार्थों का ही सेवन करना। दधि, मधु और घृत के प्रयोग के सम्बन्ध में तैत्तिरीय ब्राह्मण में वर्णन है कि—

घृतं च वै मधु च प्रजापतिरासीत्।
यतो मध्वासीत् ततः प्रजा असृजत।
यज्ञोवा आज्यं यज्ञेनैव यज्ञं प्रचरन्ति। ३।३।४

इस प्रकार मधुपर्क में मधु के साथ घृत मिलाने का अभिप्राय हुआ प्रजा को यज्ञ से युक्त करना। अर्थात् वही प्रजा (सन्तान) माधुर्य, गुरुजनों का पूजन, समवयस्कों के साथ मिलकर रहनेवाली तथा छोटों को शक्तिभर सहायता-सहयोग देनेवाली होगी जो यज्ञ से युक्त होगी। यज्ञानुष्ठान करने वाली होगी। (यज्-देव पूजा संगति करण दानेषु) यह भाव वर को जताने के लिए मधु दधि एवं घृत युक्त मधुपर्क दिया जाता है, और—

अन्तो वै रसानां यन्मधु। परमं वा एतदन्नाद्यं यन्मधु। ताण्ड्य ब्रा०
ग्राम्यं वा एतदन्नं यद्दधि। आरण्यं मधु।
यद्दध्ना मधुमिश्रेण पूरयत्युभयावरुद्ध्यै॥ तै० सं० ५।२।६

मधु रसों में अन्तिम रस है। मधु सर्वोत्कृष्ट खाद्य=भोजन है। दधि ग्राम का सर्वोत्तम खाद्य पदार्थ है। मधु अरण्य नाम जंगल का सर्वोत्तम खाद्य पदार्थ है। इसलिए दधि मधु मिश्रित मधुपर्क का भाव हुआ कि गृहस्थ आश्रम में हमें सर्वदा दधि, मधु, घृत आदि उत्तमोत्तम— सर्वोत्कृष्ट आहार प्रभु कृपा से प्राप्त होता रहे। "सरस्वत्यै- दधि" ये दधि प्रभृति पदार्थ बुद्धि, आयुरादि की वृद्धि के लिए सर्वोत्कृष्ट हैं। इसलिए इस परमान्न को त्याग कर कभी मद्य, मांस, अण्डा आदि दूषित पदार्थों का सेवन भूल कर भी नहीं करना चाहिए। यह भाव है मधुपर्क में दधि, मधु और घृत के मिश्रण का। एतद्विषयक और भी समाधान हो सकते हैं पर वे सब काल्पनिक होंगे मौलिक नहीं। इसलिए हमने यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया।

आठवीं शंका—खील और शमी पत्रों के प्रयोग में क्या वैज्ञानिकता है?

समाधान—पाणिग्रहण की प्रक्रिया "गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्" इस मन्त्र से आरम्भ होकर पाणिग्रहण के छः मन्त्रों से एक परिक्रमा और तीन लाजाहोम- वाली सब मिलकर चार–इस प्रकार चौथी प्रदक्षिणा के पश्चात् "भगाय स्वाहा" शमीपत्र युक्त लाजाओं की इस अन्तिम आहुति के साथ समाप्त होती है।

यहाँ प्रसंगोपात्त इतना और निवेदन करदेना उपयुक्त समझता हूँ कि पाणिग्रहण के छः मन्त्रों के बाद एक और लाजहोम की तीन इस प्रकार सब मिल कर कुल चार प्रदक्षिणा (फेरे) होते हैं। परन्तु अधिकांश पुरोहित महानुभाव "भगाय स्वाहा" इस

अन्तिम आहुति के पश्चात् भी एक प्रदक्षिणा कराते हैं जो सर्वथा विधि विरुद्ध और पौराणिक परम्परा का द्योतक है। इसलिए ऐसा न कराया जाय यह संस्कार करानेवाले महानुभावों की सेवा में नम्र निवेदन है।

अस्तु। इस पाणिग्रहण की प्रक्रिया में शिलारोहण की शिला, लाजहोम में प्रयुक्त शमीपत्र तथा लाजा ये तीन पदार्थ गृहस्थ के भावी जीवन में तीन महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं के लिए ग्रहण किए गए हैं। यहाँ हम उपस्थित शंका के अनुसार केवल शमी-पत्र और खीलों के विषय में ही संक्षिप्त सी चर्चा करेंगे—

१. **आदित्यानां वा एतद् रूपं यल्लाजाः।** तैत्तिरीय ब्रा० ३।८।१५।४

२. **नक्षत्राणां वा एतद् रूपं यल्लाजाः।** शत० ब्रा० १३।२।१।५

३. **वनस्पतीन् वा उग्रो देव उदौषत् तं शम्या अध्यशमयंस्तत् शम्या शमीत्वम्।** मैत्रायणी सं० ४।१।१

४. **शमीपर्णानि भवन्ति शन्त्वाय।** मैत्रायणी सं० १।१०।१२

१. जो ये लाजा (खील) हैं ये आदित्यों का प्रतिनिधि हैं।

२. जो ये लाजा हैं ये नक्षत्रों का प्रतिनिधि हैं।

३. शीतरूप उग्र देव ने आम, शीशम आदि समस्त वनस्पतियों को जला डाला, उसे शमी से शमन किया अर्थात् वह शमी को न जला सका। यही शमी का शमीत्व है।

४. शमीपत्र शान्ति के लिए होते हैं।

मैं समझता हूँ विज्ञ पाठक ऊपर के ब्राह्मण ग्रन्थों के वाक्यों और उनके भावार्थ मात्र से ही शमी पत्र और खीलों के ग्रहण करने का कारण भली भाँति समझ गए होंगे फिर भी थोड़ा विवेचन करना आवश्यक समझते हुए निवेदन है कि शमीपत्र युक्त लाजाहोम के द्वारा वर-वधू को यह सारगर्भित शिक्षा दी जाती है कि जैसे भयंकर ग्रीष्म ऋतु में सब कुछ सूख जाता है परन्तु शमी इस कठोर संकट काल में भी ज्यों-की-त्यों हरी-भरी लहलहाती खड़ी रहती है। मानो इतना भयंकर ग्रीष्म उस पर अपना कोई प्रभाव न डाल सका। वर्षा आरम्भ हुई सब पेड़ पौधे हर्षोल्लास में झूम उठे पर वाह री शमी तू इतनी खुशी में भी समान भाव लिए खड़ी है। अब आया जाड़ा यह उग्रदेव है। इसने भी लहलहाते हुए नीम, शीशम आम आदि बड़े पेड़ों से लेकर छोटे-छोटे पौधों तक सबको झुलस डाला पर शमी पर इस उग्र देव का भी कोई प्रभाव न हुआ। वह घोर संकट की घड़ी में भी सीना ताने शान के साथ खड़ी है। सब तरह से हरी-भरी है पतझड़ तो कभी देखा ही नहीं।

बस हे गृहस्थ! तूने भी बड़ी-से-बड़ी आपत्ति और बड़ी-से-बड़ी सम्पत्ति में भी इस शमी की तरह अपना एकरस रहने का स्वभाव छोड़ना नहीं। यह शमी पत्र शान्ति का सन्देश लेकर आया है। बड़े-से-बड़े अशान्तिकारक अवसरों पर भी सर्वदा शान्त रहना होगा। जीवन में बड़ी से बड़ी आपत्तियाँ आ जाएँ पर उन मुश्किल की कठिन घड़ियों में भी सदैव शमी की भाँति शान्तभाव से अडिग खड़ा रहना सदा हरा-भरा और खुशहाल रहना।

देख तुझे ये लाजाएँ—ये खीलें सचेत कर रही हैं। ग्रह नक्षत्र तारों का प्रतिनिधि बनकर कह रही हैं। देखो गृहस्थ में प्रवेश होने वालो ? आपत्तियों की—दुःखों की घनघोर अँधेरी रात्रि में सर्वदा तारों की तरह खिले रहना और यदि कहीं सम्पत्ति मिल जावे, तुम्हारे ऊपर लक्ष्मी का चन्द्रोदय हो उठे तो जैसे चाँदनी रात में तारे अपनी वह छटा नहीं दिखाते जो अँधेरी रात में कष्टों की काली रात्रि में दिखाते थे। ठीक इसी प्रकार तुम भी उस वैभव के चन्द्रोदय काल में अपना व्यवहार ऐसा रखना जिससे तुम्हारे ऐश्वर्य के कारण तुम्हारी चमक-दमक से लोगों में तुम्हारे प्रति ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न न हो। धन आता है गृहस्थ उन्मत्त हो जाता हैं। पर ध्यान रखना चाँद के निकलने पर तारे चमकते नहीं हैं। मानो चाँद की महति प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए अब उन्होंने अपनी चमक-दमक का त्याग कर दिया है। इसी प्रकार तुम्हारा कर्त्तव्य होगा कि अतुल सम्पत्ति को पाकर भी चुपचाप शान्त भाव से परिवार, समाजशास्त्र और शासन की स्थापित की हुई मर्यादाओं की दृढ़ता से रक्षा करना। वास्तव में वैभव पाकर अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करना बड़ा कठिन काम हैं : यह सीखना चाँदनी में चमकने वाले तारों से।

बस यही वह अमृत उपदेश है जिसके लिए लाजा और शमी पत्रों का ग्रहण किया है।

आपत्ति में घबराना नहीं और सम्पत्ति में इतराना नहीं।
इस विषय में अनेक काल्पनिक व्याख्याएँ सम्भव हैं पर मौलिकता के अभाव के कारण हमने उन्हें छोड़ दिया है।

नवमी शंका—विवाह के अन्त में वर अपना जूठा भोजन वधू को क्यों देता है?

समाधान—पहिले संस्कारविधि का लेख पढ़िए जो इस प्रकार है। "वर उस भात में से प्रथम थोड़ा-सा भक्षण करके जो उच्छिष्ट शेष भात रहे वह अपनी वधू के लिए खाने को देवे।"

संस्कार विधि के इस लेख में उच्छिष्ट शब्द को देखकर ही लोगों को भ्रम होता है। परन्तु उच्छिष्ट शब्द का अर्थ केवल झूठा ही नहीं होता अपितु इसका अर्थ रहा हुआ, बचा हुआ, बाकी का, यह भी होता है और यहाँ पर इसी अर्थ में महाराज ने उच्छिष्ट शब्द का प्रयोग है। जूठन अर्थ में नहीं। तदनुसार "उच्छिष्ट शेष' इतने वाक्यांश का अर्थ हुआ बाकी बचा हुआ सारा भात पत्नी को देवे इस अर्थ में उच्छिष्ट पद के साथ शेष शब्द का प्रयोग किया गया है। आइए कतिपय प्रमाणों की छाया में समझने का प्रयत्न कीजिए। यथा:—

अथैतच्छविरुच्छिष्टमुद्गुद्वास्योद्धृत्य ब्रह्मणे प्रयच्छेत्।

गोभिल गृह्यसूत्र १।९।१

भट्ट नारायण कृत टीका—अथ अनन्तरमेतद्धविः शेषं चरुं ब्रह्मणे प्रयच्छेत्। यहाँ उच्छिष्ट हवि का अर्थ शेष अर्थात् बची हुई, बाकी की, ऐसा किया गया है। इसी प्रकार गोभिल गृह्यसूत्र की टिप्पणी में चिन्तामणि भट्टाचार्य जी दर्शपौर्णमास इष्टि की द्युति

कर्त्तव्यता में लिखते हैं कि—

ततो हविरुच्चिष्टमुद्गुद्वावास्यमेक्षणे नोधृत्य-पात्रान्तेर निधाय ब्रह्मणे दद्यात् । ब्रह्मा तदादाय तूष्णीं प्राश्य द्विराचामेत् ।

यहाँ भी उच्छिष्ट अर्थात् बाकी बची हुई हवि ब्रह्मा को देने का विधान है। यहाँ उच्छिष्ट पद का अर्थ जूठन नहीं है । एक और स्पष्ट प्रमाण का अवलोकन कीजिए—

हविरुच्छिष्टशेषं प्राशयेद् यावन्त उपेता स्युः ।

गोभिल गृह्यसूत्र ३।८।१२

नारायण भट्ट टीका—यावन्तो ब्राह्मणा उप समीपे इता गता भवेयुस्तावतः हविरुच्छिष्टशेषं प्राशयेत् (यजमानः) । ननु हविरुच्छिष्टशेषं ब्राह्मणान् प्राशयित्वा तच्छेशमपि स्वयं यजमानः प्राश्नीयादिति एतस्य प्रज्ञापनार्थं शेषमित्युक्तम् । शेषमिति द्वितीया कृत्स्न प्राश्नार्था । तस्मात् कृतकार्यो यजमानः स्वे भोजनकाले सर्वं प्राश्नीयादित्यर्थः ।

इष्टि प्रयोग काल में जितने ब्राह्मण उपस्थित हों उन सबके खा लेने के बाद बाकी बची हवि यजमान खावे । शंका— यहाँ सूत्र में "हविरुच्छिटं प्राशयेत्" इतना ही कहना पर्याप्त था फिर उच्छिष्ट पद के बाद भी शेषम् इस पद का प्रयोग किया क्यों किया गया ? इसका समाधान करते हैं कि उच्छिष्ट अर्थात् बाकी बची हुई हवि ब्राह्मणों को खिलावे, उनके खाने के बाद बची हुई सारी हवि यजमान खावे इसके लिए शेष पद का प्रयोग सूत्र में किया गया है । यहाँ शेषम् इस पद में द्वितीय विभक्ति सम्पूर्ण शेष हवि के प्राशनार्थ किया गया है । इसलिए अपने कार्य से निवृत्त होकर यजमान अपने भोजन के समय उच्छिष्ट शेष अर्थात् बाकी हुई सारी हवि खा लेवे ।

इतने निवेदन के बाद सुनिश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि संस्कार-विधि में उच्छिष्ट पद का अर्थ जूठा नहीं है अपितु हविष्पात्र में बचा हुआ ऐसा है । इसके साथ शेष पद का प्रयोग "बचा हुआ सारा भात वधू को देवे और वह उसे खावे" इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । आशा है आप इस समाधान से पूर्णतया सन्तुष्ट हो जायेंगे ।

दसवीं शंका—किन-किन संस्कारों ने पूर्णाहुति का विधि निषेध है और क्यों ?

समाधान—पूर्णाहुति अनुष्ठान की समाप्ति पर होनी चाहिए । संस्कार क्योंकि शरीर से सम्बन्ध रखते हैं । शरीर के संस्कारों में आरम्भ का संस्कार गर्भाधान है, परन्तु केवल इस संस्कार मात्र से शरीर के संस्कारों का क्रम समाप्त नहीं होता । इस शृंखला का अन्तिम संस्कार संन्यास है । इसलिए शरीर संस्कार का यह क्रम गर्भाधान से आरम्भ होकर क्योंकि संन्यास पर समाप्त होता है, अतः संन्यास संस्कार के अन्त में पूर्णाहुति का विधान है । बीच के किसी भी संस्कार पर यह शृंखला समाप्त नहीं होती अतः अन्य किसी भी संस्कार के अन्त में पूर्णाहुति का विधान नहीं है । संन्यास संन्यास के अन्त में "ओ३म् भूः स्वाहा" इस पूर्णाहुति मन्त्र से पूर्णाहुति करने का विधान महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने किया है ।

मदनरत्न नामक कर्मकाण्ड का एक पुराना ग्रन्थ है। उसमें भी लगभग ऐसा ही वर्णन है। यथा—

विवाहे व्रतबन्धे च शालायां चौलकर्मणि।
गर्भाधानादिसंस्कारे पूर्णाहुतिं न कारयेत्॥

मदनरत्न के इस श्लोक में भी वह कुछ वर्णन किया गया है जो हमने ऊपर लिखा है। प्रश्न हो सकता है कि शरीर का अन्तिम संस्कार तो अन्त्येष्टि है। इसलिए पूर्णाहुति भी वहीं होनी चाहिए?

इस विषय में हमारा निवेदन है कि यह तो जीवन की अन्तिय इष्टि अर्थात् यज्ञ है। क्योंकि इष्टियों में पूर्णाहुति नहीं होती अतः अन्त्येष्टि कर्म के अन्त में भी पूर्णाहुति का विधान नहीं है।

ग्यारहवीं शंका—यज्ञ कुण्ड के चारों ओर जलसिंचन का क्या उद्देश्य है?

समाधान—दर्श पौर्ण मास आदि इष्टियों से पूर्व किये जानेवाले दैनिक अग्निहोत्र आदि कर्म क्षिप्र होम कहलाते हैं। इष्टियों में कुण्ड के पूर्व-पश्चिम और उत्तर में परिधि नामक तीन लकड़ी रखी जाती हैं। परन्तु क्षिप्र होम में परिधि के स्थान में जल छिड़कने का विधान है। "आपो वै वज्रम्" (शतपथ ब्रा०) इस ब्राह्मण वचन के अनुसार आप = जल वज्र है और वज्र रक्षा का प्रमुख साधन है। इसलिए सुरक्षा की भावना से जल छिड़कने का विधान मिलता है। सचमुच जल रक्षा भी करता है। यथा—

१. जल पवित्र है इसलिए अपवित्रता से भी रक्षा करता है।
२. जल शांतिप्रद है इसलिए अशान्ति से रक्षा करता है।
३. जल सुखदायक है इसलिए तृषा आदि दुःख से रक्षा करता है।
४. जल जीवनदाता है इसलिए जीवनदान द्वारा रक्षा करता है।
५. जल भेषज है इसलिए रोगों से रक्षा करता है।
६. जल इषु है (वर्षमिषवः) इसलिए दुर्भिक्षरूप शित्र से रक्षा करता है। आदि-आदि।

यजुर्वेद (२३-६२) के अनुसार यज्ञ इस भुवन की नाभि है, बीच है इसके चारों ओर जल छिड़कने अर्थ हमारी यह घोषणा है कि जैसे जल, पवित्र, शान्तिप्रद, सुखदायक, भेषज, इषुरुप और जग के लिए जीवनदाता है वैसे ही यह अग्निहोत्र भी जगत् के लिए पवित्रता कारक, शान्तिदायक, सुखदायक, औषधरूप—रोग निवारक, वर्षा के द्वारा दुर्भिक्ष से बचानेवाला और सबको जीवन दाता है। जल इस क्रिया में प्रतीक है उपरोक्त भाव प्रत्यायनी हैं। यज्ञ की सर्वोत्कृष्टता की जल के साम्य से घोषणा करना ही जल सिंचन का उद्देश्य है। वैसे हम इसका एक और प्रकार से व्याख्यान करते हैं, परन्तु वह हमारी अपनी कल्पना है जैसे अन्यों की अनेक कल्पनाएँ हैं। इसलिए मौलिकता के अभाव में उसे यहां नहीं लिख रहे।

बारहवीं शंका—बलिवैश्वदेव यज्ञ में मूसल-ऊखल तथा द्वार के नाम से भाग क्यों निकाले जाते हैं?

समाधान—कूटते-पीसते, आते-जाते न चाहते हुए भी अनेक जीवों की हत्या गृहस्थ से हो जाती है। अतः उस हिंसा के दोष की निवृत्ति के लिए प्रायश्चितरूप में ये भाग निकाले जाते हैं। इससे हमारे मन में हिंसा के प्रति सर्वदा घृणा के भाव बने रहते हैं। जिनसे हम दिन भर में अनेक प्रकार के हिंसारूप पाप से बच जाते हैं। बस गृहस्थ को ज्ञात और अज्ञात पाप से बचाना ही इस क्रिया का मुख्य उद्देश्य है।

तेरहवीं शंका—वैदिक कर्मकाण्ड कराने के लिए हमें किन पुस्तकों का अवलोकन करना चाहिए! जिससे हमें ठीक प्रकार से संस्कार कराने की विधि ज्ञात हो सके। उन पुस्तकों का नामोल्लेख भी करें।

समाधान—संस्कारों का विधि-विधान ठीक-ठीक जानने के लिए और संस्कार ठीक ढंग से कराने के लिए इस समय के एतद् विषयक समस्त साहित्य में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज कृत संस्कार विधि से बढ़कर और कोई उत्तम ग्रन्थ नहीं है। अन्य सब ग्रन्थों में कुछ-न-कुछ गड़बड़ अवश्य मिलेगी जो मनुष्य स्वभाव में होना सम्भव है।

हाँ इतनी बात अवश्य है कि यदि किसी मादृश योग्य गुरु से यह ग्रन्थ पढ़ लिया जाय तो सोने में सुगन्धवाली बात सिद्ध होगी।

चौदहवीं शंका—आर्यसमाज के अनेक सुप्रसिद्ध विद्वानों का विचार है कि क्योंकि संन्यासी के यज्ञोपवीत नहीं होता और यज्ञयागादि कर्म यज्ञोपवीति होकर ही करने-कराने होते हैं। यतः संन्यासी ने यज्ञोपवीत त्याग दिया होता है अतः उसे अग्निहोत्रादि कर्म न करने चाहिएँ और न ही कराने चाहिएँ। मार्गदर्शन कीजिए?

समाधान—इस विषय में हमारा निवेदन है कि संन्यासी अन्तःयज्ञोपवीत होता है और आवश्यकतानुसार विहित बाह्य यज्ञोपवीत धारण करने में किसी भी संन्यासी को कोई आपत्ति नहीं है। हिन्दी का एक पद्यांश इस प्रकार है कि—"करका मनका छाँड़िके मन का मनका फेर" इसके अनुसार जैसे एक उच्च कोटि का साधक कर का मनका छोड़कर मन का मनका फेरता है। ठीक इसी प्रकार संन्यासी कन्धे का यज्ञोपवीत उतारकर अन्दर का जनेऊ पहन लेता है। अतः संन्यासी को ज्ञानयज्ञोपवीति कहा जाता है।

१. शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतञ्च तन्मयम्।
ब्राह्मण्यं सकलं तस्य इति ब्रह्म विदो विदुः ॥८५

नारद परिव्राजकोपनिषद् तृतीयोपदेशः

२. मुमुक्षोरन्तः शिखोपवीतधारणम्।
बहिर्लक्ष्यमाणशिक्षोपवीतधारणं कर्मिणो गृहस्थस्य ॥ परब्रह्मोपनिषद

ब्रह्मवेत्ता लोग ऐसा जानते और मानते हैं कि जिसके ज्ञानमयी शिखा और ज्ञानमय ही यज्ञोपवीत है वह पूर्ण रीति से ब्राह्मण है। १।

मुमुक्ष अर्थात् संन्यासी ज्ञान के रूप में आन्तरिक शिखा और यज्ञोपवीत धारण करता है। बाहर दीखनेवाले शिक्षा सूत्र सांसारिक कर्म करनेवाला गृहस्थ धारण करता है॥ २।

येन सर्वमिदं प्रोतं सूत्रेमणिगणा इव ।
तत् सूत्रं ध्यायेद् योगी योगविद् ब्राह्मणो यतिः ॥४॥
नाऽशुचित्वं न चोच्छिष्टं तस्य सूत्रस्य धारणात् ।
सूत्रमन्तर्गतं येषां ज्ञानयज्ञोपवीतिनाम् ॥६॥
ये तु सूत्रविदो लोके ते वै यज्ञोपवीतिनः ।
ज्ञानशिखिनो ज्ञाननिष्ठा ज्ञानयज्ञोपवीतिनः ॥७॥

पर ब्रह्मोपनिषद्

'सूत्रं नाम परं पदम्' (परब्रह्मोपनिषद्) परमदेव परमेश्वर का नाम सूत्र है। इसलिए सूत्र में मणकों की भान्ति जिस सूत्ररूप ब्रह्म में यह अखिल विश्व पिरोया हुआ है—योगवित् ब्राह्मण यति=संन्यासी उसी सूत्ररूप ब्रह्म का ध्यान करे। उस ब्रह्मरूप सूत्र—यज्ञोपवीत के धारण करने से संन्यासी कभी अशुचि और उच्छिष्ट नहीं होता। इसलिए ज्ञानयज्ञोपवीति संन्यासियों—जिनके हृदय के अन्दर यह ज्ञान-सूत्र पहुँच गया है और जिन्होंने सूत्ररूप ब्रह्म को जान लिया है वास्तव में वही यज्ञोपवीति हैं। ऐसे ज्ञाननिष्ठ संन्यासीजनों को ज्ञान-शिखावाले और ज्ञान यज्ञोपवीतिवाले कहा जाता है। ४। ६। ७

प्रणवमेवास्य यज्ञोपवीतम् । याज्ञवल्क्योपनिद् ।

याज्ञवल्क्योपनिषद् के वचन में इस संन्यासी का प्रणव ही यज्ञोपवीत कहा गया है। यज्ञोपवीत भी त्रिवृत्त=तिलड़ा होता है और प्रणव भी अ, उ, म्। इस प्रकार त्रिवृत्त=तिलड़ा होता है।

कहा जाता है कि संन्यासी ने दीक्षा के समय यज्ञोपवीत उतार दिया होता है फिर इसे कैसे धारण करे, क्योंकि यज्ञानुष्टान के लिए तो बाह्यचिह्नरूप यज्ञोपवीत होना आवश्यक है। सो निवेदन है कि गृह्य सूत्रकार आचार्य गोभिल यज्ञोपवीत का स्वरूप वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

यज्ञोपवीतं कुरुते सूत्रं वा वस्त्रं वा कुशरज्जुमेव वा ।

गोभिल गृह्यसूत्र प्रपाठक १ काण्डका २ सूत्र १

अर्थात्—सूत्र, वस्त्र और कुशरज्जु इन तीनों का यज्ञोपवीत के रूप में उपयोग हो सकता है। अतः एक संन्यासी जब किसी यज्ञ-यगादि कर्म को कराने बैठेगा तो बाह्यचिह्न के रूप में बाएँ कन्धे के ऊपर से और दाएँ हाथ के नीचे से यज्ञोपवीतवत् एक उपवस्त्र धारण कर लेगा। इसमें किसी भी संन्यासी को कोई आपत्ति न होगी। प्रायः लोग इसी ढंग से उत्तरीय वस्त्र धारण भी करते हैं।

व्यावहारिक रूप में अनेक साधु-संन्यासी प्रचार की लग्न दिल में लिए गृहस्थ विद्वानों के अभाव के कारण छोटे-छोटे नगरों और ग्रामों में बैठकर यज्ञ एवं संस्कार आदि की आवश्यकताओं को सफलतापूर्वक पूरा करते हुए निरन्तर वैदिक धर्म के प्रचार में लगे हैं। उन्हें इसी तरह लगे रहना चाहिए। अगर कतिपय विद्वानों की मान्यता के अनुसार वे आज यज्ञ अथवा संस्कार कराना बन्द कर देते हैं तो उन छोटे-छोटे नगरों और ग्रामों में रहनेवाले लाखों आर्य नर-नारियों के सामने एक बहुत बड़ी कठिनाई

आ जायगी। ये लोग प्रायः पैदल घूमते हैं कहीं आवश्यकता हुई तो थोड़ी-बहुत यात्रा रेल वा मोटर द्वारा कर ली। जिन लोगों की शक्ति प्रथम श्रेणी का मार्ग व्यय या कारों के प्रबन्ध करने को नहीं है उनमें यही संन्यासी महानुभाव काम करते हैं।

माननीय पं० वीरसेन जी जानते हैं कि धुन के धनी वीतराग श्री स्वामी नाराणानन्द जी महाराज ने यज्ञों के माध्यम से मालवे के नेमाड़ क्षेत्र में कितना कार्य किया था। इन यज्ञों के द्वारा ही स्वामीजी नेमाड़ के लाखों नर-नारियों तक वैदिक धर्म का सन्देश सुनाने में सफल हो सके। आज भी सहस्रों नेमाड़ी आर्य नर-नारी स्वामीजी महाराज को याद करते हैं। इसलिए मेरे विचार में इस अधिकार-अनधिकार की उलझन में न उलझकर और अनेक विषय ऐसे हैं जिन पर विचार होना चाहिए। उनके लिए अपना मूल्यवान् समय लगाना चाहिए। माननीय आर्य विद्वान् यदि उन पर विचार करेंगे तो इस से आर्य जनता का अधिक हित होगा।

यद्यपि शंका-समाधान के रूप में यहाँ प्राप्त चौदह शंकाओं पर संक्षिप्त-सा ही विचार किया गया है। फिर भी पर्याप्त विस्तार हो गया है। यदि इन्हीं विषयों को लेकर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जाता तो निश्चित ही एक वृहत् काय-ग्रन्थ बन जाता।



वैदिक यन्त्रालय अजमेर द्वारा सम्पादित

विवाह-पद्धति

इस ग्रन्थ के मुख पृष्ठ पर लिखा है "श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामिनिर्मितात् संस्कार-विध्याख्य ग्रन्थात् पृथक् कृत्य प्रकाशिता"। इस लघु ग्रन्थ को मैंने आद्योपान्त ध्यानपूर्वक देखा। ग्रन्थ के सम्पादक विद्वान् ने जहाँ इतना उत्तम कार्य किया है वहाँ कतिपय स्थल ऐसे भी हैं जिन्हें देखकर कहना पड़ता है कि माननीय विद्वान् सम्पाक संस्कार-विधि का सामान्य प्रकरण समझने में असमर्थ रहे हैं, साथ ही जब पद्धति संस्कार-विधि से छापी है तो इसमें अपनी ओर से एक भी अक्षर घटाना-बढ़ाना ग्रन्थ के साथ उचित व्यवहार नहीं माना जा सकता।

श्री सम्पादक जी ! सामान्य प्रकरण में लिखे यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड का परिमाण, यज्ञपात्र तथा उनके लक्षण आदि विशेष करके दर्शपार्णमासादि अन्य यज्ञों के लिए लिखे गए हैं। उनका विवाह-संस्कार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। परन्तु आपने पद्धति में छापे हैं। इससे संस्कार करानेवाले सामान्य जनों के सामने आपने एक नई कठिनाई खड़ी कर दी।

इसी प्रकार आपने पृ० १६ पर अपनी ओर से एक वाक्य लिखा है जो प्रक्षेप कहा जायगा "विवाह का कार्य आरम्भ करने से पूर्व निम्नलिखित बातों का प्रबन्ध अवश्य कर रखना चाहिए"। क्योंकि पद्धति संस्कार-विधि से पृथक् करके छापी है, इसका यह अर्थ हुआ कि यह वाक्य भी संस्कार-विधि का ही है। जबकि संस्कार-विधि में विवाह-संस्कार से पूर्व ऐसा कोई लेख नहीं है। इससे आप जन-सामान्य में भ्रान्ति

उत्पन्न करने के कारण बनते हैं। साथ ही प्रत्येक विद्वान् आपके सामान्य प्रकरण के न समझ सकने के सामर्थ्य को भी समझ जायगा। अस्तु।

दूसरी बात संस्कार-विधि में वर के आने से पूर्व "कन्या स्नान के उपरान्त वस्त्रालंकार धारण कर के आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे। तत्पश्चात् पृ० ४ से १५ तक लिखे प्रमाणे ईश्वर ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना स्वस्तिवाचन शान्तिकरण करे। तत्पश्चात् पृ० २३।२४ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधान् पृ० १७ में लिखे स्थालीपाकादि यथोक्त कर वेदी के समीप रखें।" इतना ही कर्मानुष्ठान करती है। जबकि आपने पूरे यज्ञ का अनुष्ठान पद्धति में मुद्रित किया है। यह भी संस्कार-विधि के विवाह प्रकरण के लेख के विरुद्ध है।

आपने इस प्रक्रिया में संस्कार-विधि का क्रम भी भंग कर दिया है। ईश्वर-स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वास्तिवाचन, शान्तिकरण इतना कर्म तो यज्ञ से पूर्व वेद-पाठ के रूप में किया जाता है। क्योंकि शास्त्र का विधान ऐसा है कि प्रत्येक शुभ कर्म के आरम्भ में वेद-पाठ अवश्य करना चाहिए। यथा—

एवं सर्वेन्द्रियाऽऽरम्भान् वेद पूर्वान् समाचरेत् ॥ महाभारते

इत्यादि पूर्वकालिक वैदिकों की मर्यादा को ध्यान में रखकर महर्षि ने प्रत्येक कर्म से पूर्व वेद-पाठ के रूप में ईश्वर-स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन एवं शान्तिकरण के मन्त्रों का संग्रह करके इनका पाठ प्रत्येक कर्म के आरम्भ में आवश्यक रूप से निश्चित कर दिया। जो अपने-आप में एक सुन्दर और स्वस्थ शास्त्रीय मर्यादा है।

वास्तव में यज्ञ-कर्म का आरम्भ तो इस वेद-पाठ के पश्चात् होता है। कृपया आप ध्यानपूर्वक सामान्य प्रकरण को पुन: देखें। इसके पश्चात् यजमान और ऋत्विग्गण यज्ञ के आसनों पर बैठकर यज्ञ के आरम्भ में आचमन, अंगस्पर्श करें ऐसा विधान है। और होना भी चाहिए। हाँ, उस समव कन्या अग्न्याधान के बाद अधिक-से-अधिक दैनिक अग्निहोत्र की आहुतियाँ कर लेवे, यहाँ तक तो उचित है। क्योंकि उस समय उनकी प्राप्ति है। शेष सारी एक प्रकार से आपकी ही सूझ कही जायगी। संस्कार-विधि में ऐसा विधान नहीं है।

आगे पद्धति के पृ० ८२ पर फिर आपने अपनी मनमानी की है। स्थालीपाक की चार आहुतियों के बाद स्विष्टकृत, व्याहृति आहुति और अष्टाज्याहुति के अनन्तर आप अपनी ओर से लिखते हैं "पुन: निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति करे, स्रुवा को घृत से भर करके—ओं सर्वं वै पूर्णꣳस्वाहा" इस मन्त्र से एक आहुति देवे ऐसे ही दूसरी और तीसरी आहुति देवे।

संस्कार-विधि पृ० ११६ पर भात की चार आहुतियों के बाद स्विष्टकृत होमाहुति एक, व्याहृति आहुति चार अष्टाज्याहुति के साथ विवाह-संस्कार का यज्ञ समाप्त किया गया है। पूर्णाहुति के नाम से यहाँ पर अन्य कुछ भी नहीं लिखा। महर्षि ने संस्कारों में सर्वत्र लगभग ऐसा ही प्रकार अपनाया है। अब आप विचारें क्या महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज को इस बात का पता नहीं था कि संस्कार के अन्त में सर्वं वै पूर्णंस्वाहा इस मन्त्र से पूर्णाहुति करनी चाहिए। ध्यान रहे महर्षि ने जो कुछ लिखा

है, ठीक लिखा है, सोच-समझकर लिखा है, ठोक-बजाकर लिखा है। क्योंकि सूत्र-ग्रन्थों में विवाह आदि समस्त संस्कारों में—संन्यास के अतिरिक्त पूर्णाहुति का विधान नहीं है। इस कारण महर्षि ने भी इस ऋषि-परम्परा को ध्यान में रखते हुए वैसा लेख नहीं किया।

अत: नि:संकोच कहा जा सकता है कि इस प्रकार की न्यूनाधिक जोड़-तोड़ यह सब हमारी अपने आचार्य के प्रति जैसी चाहिए वैसी निष्ठा के न होने के कारण है। या फिर हमारी नासमझी की परिचायक है।

इसी प्रकार पद्धति के अन्त में, विवाह-संस्कार के सामान की जो सूची दी गई है, उसमें भी बहुत-कुछ ग्रन्थ से बाहर की वस्तुएँ हैं।

यथा कलश मिट्टी और ताम्बे के मिलाके छोटे-बड़े सब संख्या में ६ लिखे हैं, जबकि संस्कार-विधि के अनुसार एक ही कलश पर्याप्त है। सामग्री में भी खूब घोटाला है। १ कि० सामग्री और १ कि० २८ ग्राम जौ आदि अन्य पदार्थ मिल के हो गए २ किलो २८ ग्राम जबकि घी केवल १ कि० है। देखिए शास्त्रकार घृत और हवि दोनों के समान भाग का उल्लेख करते हैं।

अर्द्धो वा एष आत्मनो यज्ञस्य यदाज्यम्। अर्द्धो यदिह हविर्भवति।

शतपथ ब्रा० का० १ अ० २ ब्रा० २ कं० ५

अर्थात् यज्ञपुरुष के शरीर का आधा भाग आज्य है और आधा भाग हवि होता है। इसी प्रकार चार नारियल, नागरपान भी संस्कार में कहीं भी विहित नहीं है। जब स्विष्टकृत और वैश्वदेव की चार आहुतियों के लिए आपने सूची में २५० ग्राम भात लिख दिया, तो फिर यह यज्ञशेष और क्या वस्तु है। और बिना यज्ञ में हवि दिए इस पदार्थ का नाम यज्ञशेष कैसे हो गया। जिसको आपने इस सूची में समाविष्ट किया है।

यज्ञ में जौ और चावल के प्रयोग में आश्वलायन श्रौत सूत्रादि सूत्र ग्रन्थों का लेख है कि शरद् ऋतु के आरम्भ से वसन्त ऋतु के आरम्भ तक यज्ञ की हवि में चावलों का और वसन्त ऋतु के आरम्भ से शरद् ऋतु के आरम्भ तक यव (जौ) का ग्रहण करना चाहिए। दोनों पदार्थ एक साथ नहीं लेने चाहिएँ।

मधुपर्क में मधु-दही अथवा घी दोनों में से किसी एक के ग्रहण करने का विधान संस्कार-विधि के पृ० १३८ पर नीचे टिप्पणी में दिया है। ऐसा ही आपने पद्धति के पृ० ४८ पर नीचे टिप्पणी में छापा है। फिर सूची में मधु, दही और साथ ही तीसरी वस्तु ५० ग्राम गोघृत लिखा है। यह भी उचित प्रतीत नहीं होता।

संस्कार में संभार न्यून-से-न्यून प्रचार और रोचकता अधिक-से-अधिक हो इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

इतने निवेदन के बाद मैं वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धक महोदय की सेवा में नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूँ कि वर्तमान पुस्तक के अन्त में एक संशोधन-पत्र जोड़ देवें, जिसमें ये सब भूलें ठीक कर दी गई हों और अगला संस्करण बहुत सावधानी से देख और दिखाकर छापें जिससे पद्धति में वही कुछ हो जो संस्कार-विधि के विवाह-संस्कार में है। □

आर्यसमाज के सम्मुख ज्वलन्त प्रश्न

लेखक—आचार्य विश्वश्रवा व्यास एम. ए.

[विद्वान् लेखक ने कुछ ज्वलन्त समस्याएँ आर्यजगत् के समक्ष प्रस्तुत की हैं। आर्यजगत् के विचारकों, चिन्तकों और मनीषियों से प्रार्थना है कि इन प्रश्नों पर अपने विचार आचार्य विश्वश्रवा, ९९ मोतीलाल बाजार, बरेली को भेजें।]

—जगदीश्वरानन्द

१. महर्षि ने आर्यसमाज की स्थापना जिन बातों के लिए की थी उनमें से कितनी बातों में आर्यसमाज अपने सौ वर्षों में सफल रहा।

२. और किन बातों में आर्यसमाज असफल रहा।

३. जिन बातों में आर्यसमाज सफल रहा वह सफलता आर्यसमाज के कारण मिली या उन बातों की सफलता में अंग्रेजी राज्य और अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार था जैसे स्त्री-शिक्षा और शूद्रों के साथ अत्याचार का निवारण।

४. वे कौन-सी बातें हैं जिनकी सफलता में केवल आर्यसमाज ही कारण है अन्यथा आर्यसमाज के अभाव में उन बातों में सफलता न मिलती।

५. वे कौन-सी बातें हैं जिनके करने में आर्यसमाज सौ वर्ष बीत जाने पर भी असफल रहा।

६. उन बातों की असफलता के कारण क्या थे ?

७. वे कारण अब भी हैं या नहीं।

८. यदि हैं तो उनको दूर करने के उपाय क्या हैं ?

९. जिन कामों को अन्य भी कर सकते हैं उन कार्यों में आर्यसमाज को अपनी शक्ति लगानी चाहिये या नहीं।

१०. पिछले आन्दोलन जिनमें आर्यसमाज ने अपनी सारी शक्ति लगा दी जैसे हिन्दी सत्याग्रह, गोहत्या निरोध सत्याग्रह इनसे कुछ लाभ हुआ या नहीं।

११. आर्यसमाज को अपनी जन धन शक्ति को बाढ़-पीड़ित, भूकम्प-पीड़ित, तूफान-पीड़ित आदि कार्यों में लगाना चाहिये या नहीं।

१२. उपर्युक्त कार्यों में लग जाने से आर्यसमाज के अपने करने के कार्यों में कुछ हानि होती है या नहीं।

१३. वे कौन-कौन-से कार्य हैं जिनको आर्यसमाज ही कर सकता है अन्य कोई नहीं।

१४. महर्षि ने आर्यसमाज की स्थापना किन कामों को करने के लिए की थी।

१५. आर्यसमाज के उत्सवों, सम्मेलनों और शताब्दियों पर राजनीतिक नेताओं को बुलाकर उनका आशीर्वाद ग्रहण करने की प्रथा ठीक है या नहीं।

१६. विदेशों में जो आर्यसमाज का प्रचार है वह भारत से गये हुए वहाँ बसे हुए लोगों में ही है या उन देश के मूल निवासियों में भी है।

१७. यदि नहीं तो उसका कारण क्या है।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

नये प्रकाशन

षड्दर्शनम्	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३५.००
सत्यार्थ सरस्वती	पं० मदनमोहन विद्यासागर	२५.००
वेदभगवान बोले	प्रो० विष्णुदयाल (मोरीशस)	६.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (सरल अध्ययन)	विश्वनाथ विद्यालंकार	२.००

पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कॉलर द्वारा सम्पादित

सत्यार्थप्रकाश (आठ परिशिष्ट, मोटे अक्षर) सजिल्द		२५.००
सत्यार्थप्रकाश (आर्ट पेपर पर छपा सुनहरी जिल्द, राज संस्करण)		१०१.००
दयानन्द चित्रावली	रामगोपाल विद्यालंकार	८.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.५०
तत्वज्ञान	८.००
मानव और मानवता	१०.००
प्रभुमिलन की राह	८.००
घोर घने जंगल में	८.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	६.००
एक ही रास्ता	३.००
मानव-जीवन-गाथा	४.००
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु-दर्शन	७.००
दो रास्ते	७.००
यह धन किसका है ?	६.००
भक्त और भगवान्	४.००
बोध कथाएँ	५.००
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीरलिखित

म० आनन्द स्वामी जीवनी उर्दू	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	४.००
वेदसौरभ	१.००
घरेलू औषधियाँ	३.५०
वैदिक विवाहपद्धति	३.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.६०
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	२.००
चतुर्वेद शतकम्	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
दिव्य दयानन्द	२.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
सामवेद सूक्ति-सुधा	३.००
यजुर्वेद-सूक्ति-सुधा	३००.

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा	२०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन ७.००

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल १५.००

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार प्रेस में

वैदिक संस्कृति का सन्देश (नई पुस्तक)

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

स्वाध्यायसंग्रह ४.००

प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथिवी सूक्त) १.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम. ए,

यज्ञ की महिमा १.५०

नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ७.५०

सु-राज्य की रूपरेखा ५.००

पं० बिहारीलाल शास्त्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल के रहस्य १.५०

श्री रामशरण वशिष्ठ

पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००

वेदों में मूल प्रकृति विज्ञान १.५०

वेदार्थ विज्ञान १.००

वेद और आत्मा २००.

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

श्रीमद् दयानन्द प्रकाश २५.००

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली ८.००

पं० इन्द्रविद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

रामचन्द्र देहलवी लेखावली ७.००

वेद व्यावहारिक है १.००

शंका-समाधान १.००

पूजा क्या क्यों कैसे ? १.००

ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई १.००

वेद का इस्लाम पर प्रभाव १.००

महात्मा नारायण स्वामी

कर्तव्यदर्पण ४.००

प्राणायाम विधि १.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

कई पुरस्कृत लेखों का संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता १.५०

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश २५.००

आर्योद्देश्यरत्नमाला ०.२५

व्यवहारभानु १.००

बालोपयोगी

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार ०.५०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.५०

स्वामी श्रद्धानन्द १.००

गुरु विरजानन्द १.००

पं० लेखराम १.००

पं० गुरुदत्त १.००

स्वामी दर्शनानन्द १.००

स्वामी दर्शनानन्द

कथा-पच्चीसी २.५०

बालशिक्षा-धर्मशिक्षा १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	तृतीय भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	पंचम भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	षष्ठ भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	सप्तम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	अष्टम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	२.००
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	२.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

		सैकड़ा
आर्यसत्संग गुटका	१.००	७५.००
वैदिक यज्ञप्रकाश	०.७५	५५.००
वैदिक सन्ध्या	०.२०	१५.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	३.००	
सन्ध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	२.००	

भजन पुस्तकें

गीत भण्डार संकलन	४.००
गीत श्रद्धांजलि	१.५०

चित्र - चित्र - चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन	२०×३०	२.००
महर्षि दयानन्द एक रंग	१८×२२	१.००
गुरु विरजानन्द एक रंग	१८×२२	१.००
स्वामी श्रद्धानन्द ,,	,,	१.००
स्वामी दर्शनानन्द ,,	,,	१.००
म० हंसराज ,,	,,	१.००

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन

आप क्या नहीं कर सकते ?	३.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ?	३.००
हँसते-हँसते कैसे जियें ?	३.००
जो चाहें सो कैसे पायें ?	३.००
अपना खर्च कैसे घटायें ?	३.००
अवसर को पहचानो !	३.००
अपने आपको पहचानिए !	३.००
आप सफल कैसे हों ?	३.००
उन्नति कैसे करें ?	३.००
धनकुबेर कैसे बनें ?	३.००

मनहर चौहान

महाभारत	४.००
रामायण	४.००

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

हृदयरोग कारण और निवारण	८.००
गर्भस्थिति प्रसव और शिशुपालन	५.००

सुशीला कपूर

सुबोध मेक-अप	४.००
सुबोध बुनाई	५.००
आधुनिक सिलाई कटाई	५.००

मीनाक्षी धींगडा

आधुनिक पाक-कला	५.००

हयात

रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक	५.००
सुबोध ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	५.००
सुबोध ट्रांजिस्टर गाइड	५.००
सुबोध टेलिविजन गाइड	४.००

अनिल कुमार

अंग्रेजी बोलना कैसे सीखें	४.००

योगाचार्य भगवानदेव

स्वास्थ्य और योगासन	४.००

डा० समरसेन

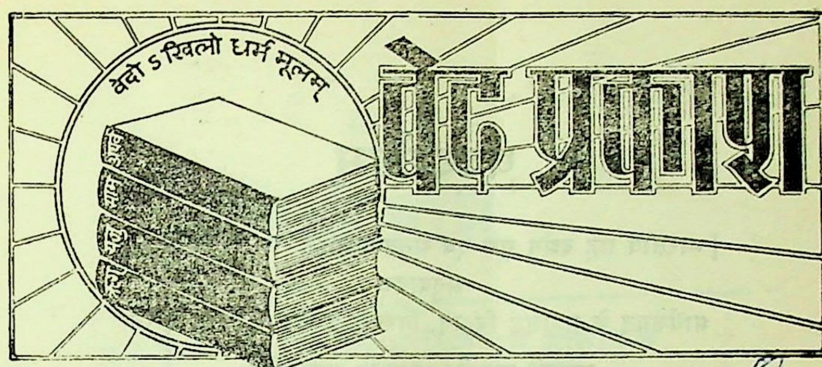
घरेलू इलाज	५.००
मोटापा कैसे घटायें	४.००
योगासन से इलाज	४.००
प्राकृतिक चिकित्सा	५.००

राजीव

जूडो कुंगफू कराटे	५.००
शतरंज	३.००



प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क से प्रसारित किया ।



नर-पिशाचों के टुकड़े उड़ा दो !

अक्ष्यौ निविध्य हृदयं निविध्य
जिह्वां नि तृन्द्धि प्रदतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने
यविष्ठ प्रति तं श्रृणीहि ॥
(अथर्ववेद ५ । २९ । ४)

पदार्थ—(अक्ष्यौ) उसकी दोनों आँखें (नि विध्य) छेद डाल, (हृदयम्) हृदय (नि विध्य) छेद डाल, (जिह्वम्) जीभ (नि तृन्द्धि) काट डाल और (दत्तः) दाँत (प्र मृणीहि) तोड़ दे! (यतमः) जिस किसी नर-पिशाच ने (अस्य) इसका (जघास) भक्षण किया है (यविष्ठ) हे महाबली (अग्ने) विद्वन् पुरुष ! (तम्) उसको (प्रति) प्रत्यक्ष (श्रणीहि) टुकड़े-टुकड़े कर दे !

भावार्थ—जो लोग निरीह मनुष्यों पर अत्याचार करते हैं, उनको सरे बाज़ार गोली मार देनी चाहिये, जीभ काट डालनी चाहिये और दाँत तोड़ देने चाहिये ।



इस अंक में मौरिशस के वेद-मनीषी बा० विष्णु दयाल की एक प्रकाशनाधीन पुस्तक में से पाँच लेख दिये जा रहे हैं । यदि पाठकों का आग्रह रहा तो इनके कुछ अन्य लेख भी आगामी किसी अंक में प्रकाशित किये जाएँगे ।

षड्दर्शनम्

[भारतीय छह दर्शन मूल एवं अनुवाद-सहित एक ही जिल्द में]

अनुवादक

आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में रत

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वैदिक साहित्य में दर्शनों का विशेष महत्त्व है। वे वेदों के उपाङ्ग हैं। वेद में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष, योग, कर्मसिद्धान्त, यज्ञ आदि का बीजरूप में वर्णन है, दर्शनों में इन्हीं विचार-बिन्दुओं पर विस्तृत विवेचन है।

- यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में क्या है,
- यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में विरोध नहीं है,
- यदि आप जानना चाहते हैं कि यज्ञों का प्रकार क्या है,
- यदि आप जानना चाहते हैं कि भारतीय दर्शनों की विशेषताएँ क्या हैं तो

इस 'षड्दर्शनम्' को पढ़ जाइए। **संसार के इतिहास में प्रथम बार छहों दर्शन अनुवाद-सहित एक जिल्द में छपे हैं।** उत्तम कागज, दिव्य मुद्रण, आकर्षक गैट-अप, अन्त में सूत्र-सूची, आरम्भ में विस्तृत भूमिका। मूल्य : ३५ रुपये

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार लिखते हैं—

लेखक ने छहों दर्शनों को सरल हिन्दी में लिखकर अध्ययनशील जिज्ञासु जनता का बड़ा उपकार किया है।

आचार्य शिवपूजनसिंह जी कुशवाहा लिखते हैं—

आपने छह दर्शनों का आर्यभाषा में अनुवाद करके आर्यजगत् पर एक महान् उपकार किया है। 'मीमांसा दर्शन' पर तो पूर्ण भाष्य किसी भी आर्य विद्वान् का नहीं था, आपने इस कमी को भी पूरा कर दिया। पुस्तक की छपाई-सफाई आकर्षक है।

श्री भवानीलाल जी भारतीय, सम्पादक 'परोपकारी' लिखते हैं—

एक ही जिल्द में दर्शन के मूल वाङ्मय को प्रस्तुत करना सराहनीय है।

आचार्य रमेशचन्द जी एम० ए०, सम्पादक 'आर्यमित्र' लिखते हैं—

गम्भीर चिन्तनशील विद्वान् और साधारण प्रारम्भिक विद्यार्थी, दोनों अपनी योग्यता और मापदण्ड के अनुसार व्याख्याकार के प्रति आभारी रहेंगे।

पं० आनन्दप्रिय जी लिखते हैं—

स्वाध्यायशील व्यक्तियों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी एवं मूल्यवान् सिद्ध होगा।

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३०, अंक ३] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपये [अक्टूबर, १९८०

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

१. गायत्री की महत्ता

(लेखक—वा० विष्णुदयाल, मौरिशस)

प्रार्थनाओं के छोटे-बड़े सभी प्रकार के संग्रहों में गायत्री अथवा गुरु-मन्त्र को सम्मिलित कर लिया जाता है और सभी धर्म-प्रेमियों से यह अपेक्षा रक्खी जाती है कि वे इस गुरुमन्त्र को कण्ठाग्र करें।

किसी कारणवश यदि किसी सम्प्रदाय ने वेदों से मुख मोड़ भी लिया हो, तो भी उसने गायत्री-मन्त्र की उपेक्षा नहीं की, यथा—मैक्समूलर के प्रभाव में आ जाने पर ब्राह्मसमाज की वेदों पर आस्था जाती रही;[1] तदपि, इस समाज ने गायत्री-मन्त्र को त्याज्य नहीं माना। कलकत्ता का ठाकुर-परिवार ब्राह्मसमाज के अतिनिकट रहा है। जब कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर अन्तर्मुखी बने तो उन्होंने यह स्पष्ट स्वीकार किया कि इस मन्त्र ने उनको बहुत लाभान्वित किया था।[2] कवि

---

1. It is said in the biography of Max Muller, the great Sanskrit scholar and the translator of the Vedas, that he had drawn the attention of Dwarkanath Tagore to the fact of many fallible beliefs about God and other things in the Vedas. —Manilal C. Parekh, *The Brahma Samaj.*

2. The habit of communion with God increased with Maharshi Devendranath year by year, and during his later life extending over decades he lived in as close a fellowship with God as has fallen to the lot of few men

ठाकुर ने अपनी कृति 'साधना' में लिखा—प्रत्येक हिन्दू गायत्री-मन्त्र का उच्चारण करता है "जिसे सब वेदों का निष्कर्ष माना जाता है।"

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि वेद, ज्ञान की पुस्तक है। ज्ञान से ही मनुष्य को पहचाना जाता है। इस मन्त्र का यह अंश **"धियो यो नः प्रचोदयात्"** अर्थात् 'हमारी बुद्धि को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करें' यही सिद्ध करता है कि वेद, बुद्धि से काम लेने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

ब्राह्मसमाज ने जब वेदों का परित्याग किया था तो उस समय उनका विचार था कि वेद मानव को विचारशील बनने से रोकते हैं। इस समाज के एक कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री अक्षयकुमार दत्त यह भी मानने के लिये तैयार नहीं थे कि जो कुछ वेद में कहा गया है वह सब ठीक ही है।

इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में हम इस मन्त्र की गहराई में न जाकर इतना ही देखेंगे कि आर्य, बुद्धि से खूब काम लेते थे। वेद ने आर्यों को आगे बढ़ने से कभी नहीं रोका।

यूरोप को विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति करते हुए केवल तीन-चार ही शताब्दियाँ बीती हैं। जब विदेशी लोग भारत पर शासन करने के लिये इस देश में आये तो उन्हें यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि अतीत काल में भारतीयों ने असीम उन्नति की थी। ज्योतिष, गणित, वैद्यक आदि विद्याओं का असीम ज्ञान भारतीयों में पाया जाता था।

जिस धर्म का विज्ञान से वैर है, वह विज्ञान से जूझता है; किन्तु अन्ततः पराजित होता है। वेद जहाँ एक ओर धार्मिक ग्रन्थ माना जाता है, वहाँ उसे ज्ञान का भण्डार भी माना जाता है। तब ज्ञान का विज्ञान से विरोध किस प्रकार सम्भव है? गायत्री-मन्त्र ऐसा मन्त्र है जिसे उच्चारित करते हुए बड़े-से-बड़े विज्ञानवेत्ता को हर्ष हो सकता है।

---

to do. As he advanced in years, he began to look inward more and more, and it was within the self that he tried to realize God as contrasted with the earlier period in which his communion was through Nature. For this inward realization he found the *Gayatri Mantra* very helpful. In regard to this he says :

'What profit beyond all expectation had I not gained by chanting the *Gayatri Mantra* !'

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने केवल यही स्वीकार नहीं किया कि गायत्री चारों वेदों का निष्कर्ष है, अपितु वे यह भी स्वीकार करते थे कि प्रत्येक व्यक्ति इसका उच्चारण करता है।

संसार के प्रभात-काल में ही परमात्मा ने सबको एक बनकर रहने का आदेश दिया था। गायत्री-मन्त्र का एक अंश है—**नः प्रचोदयात्**—यह 'नः' कभी 'नो' बनता है, यथा—**'शन्नो देवी'**। फ्रेंच भाषा में जो Nos आया हुआ है, उसका भी अर्थ 'हमारा' ही है। गायत्री-मन्त्र में 'नः' की विद्यमानता यह सिद्ध करती है कि सब कोई इसे बोलने के अधिकारी हैं। कोई वेदानुयायी हो तो वह न शूद्रों को और न ही स्त्रियों को इसे बोलने से रोक सकता है।

गायत्री हमें चेतावनी देते हुए कहती है कि धर्म को कलंकित न किया जाय; धर्म मानवोत्थान के लिये है। वह मनुष्य के मध्य दीवार खड़ा करना नहीं जानती। वह मनुष्य को अपनी बुद्धि का उपयोग करने के लिये प्रेरित करती है। गायत्री-मन्त्र वेदों का मुख उज्ज्वल बनाये रखता है। यह धर्म की आवश्यकता बताकर मनुष्य को विनाश की ओर जाने से रोकता रहता है।

२. जुए के पासे

यूरोपीय लेखकों द्वारा भारतीय धर्म एवं संस्कृति-सम्बन्धी लिखे गये अनेक लेखों में महासती द्रौपदी का नाम भी पाया जाता है; किन्तु, उस महादेवी का नाम वे उसको कलंकित करने के लिये ही प्रयुक्त करते हैं। स्वयं उनके तथा उनके द्वारा प्रचारित भ्रम को मिटाना नितान्त आवश्यक है।

महर्षि व्यास रचित 'महाभारत' में महादेवी द्रौपदी का कथा का उल्लेख है। 'महाभारत' को कोई तो पंचम वेद ही स्वीकार करते हैं। इस ग्रन्थ की अन्यान्य विविध कथाओं में से द्रौपदी-चीर-हरण की कथा बहुत प्रसिद्ध है। मेरी तुच्छ सम्मति में तो यही आता है कि महर्षि व्यास ने वेद के इस विचार को ही पुष्ट किया है कि अकेले कार्य करनेवाले शक्तिशाली होते हैं। इस कथा में यह दिखाया गया है कि द्यूत-सभा के सदस्य बनकर रहनेवाले राजा, विद्वान्, धनवान्, आचार्य आदि-आदि संख्या में अधिक होने पर भी धर्म का पालन करने में असमर्थ रहे। वे पाप के भागी बने। साथ ही भरी सभा में एक देवी की दुर्गति कर

इसमें यह भी दिखाने का यत्न किया गया है कि जब धर्मी-जन अपना कर्तव्य भूल जाते हैं तो अधर्म किस प्रकार भयंकर रूप धारण कर लेता है।

द्रौपदी का एक अन्य नाम कृष्णा भी था। वे भगवान् कृष्ण की सखी थीं। अपने सखा की ही भाँति वे भी तपस्विनी थीं। आजकल जब द्रौपदी की कथा को पढ़ा जाता है तो लगता है कि उसमें भविष्यवाणी निहित है। जो लोग द्रौपदी को लांछित करने के लिये तैयार नहीं, वे उनमें कराहती हुई भारत माता के दर्शन कर लेते हैं।

पिछले दिनों एक भारतीय लेखक ने स्मरण कराया था कि द्रौपदी वास्तव में महातपस्विनी थी। विवाहोपरान्त जब वे पति-गृह में आईं तो, तभी से उन्होंने भूमि-शैया स्वीकार कर ली थी। बड़े प्रसन्न मन से वे सेवा किया करती थीं। जिस घर में भी उनका प्रवेश हुआ, उस घर में कभी ईर्ष्या और वैमनस्य ने अपने चरण नहीं रक्खे। तब भी उनको कोसा ही गया है। हम देखते हैं कि ज्यों ही किसी नवयुवक का पाणिग्रहण होता है, नव-वधू के आगमन के कुछ ही दिनों बाद अनेक जनों में मन-मुटाव उत्पन्न हो जाया करता है, द्वेष-भावना बढ़ने लगती है, झगड़ा-टंटा होने लगता है।

स्त्रियों के विषय में यह कहावत प्रसिद्ध है—

त्रिया-चरित्र जाने नहिं कोई,
पति मारकर भी सती होई।

किन्तु, द्रौपदी का पतिगृह में आगमन तो एक आशीर्वादस्वरूप था। पाँच भ्राताओं की माता कुन्ती के वचनानुसार भी इस मत की पुष्टि होती है कि द्रौपदी निष्कलंक सती थी। महात्मा विदुर के बहुत समझाने पर माता कुन्ती अपने पुत्रों के साथ वन में नहीं गईं। उन्होंने वन-गमन के समय द्रौपदी को कहा, "बेटी! सहदेव का विशेष ध्यान रखना, यह अभी बालक ही है।"

जब दुर्योधन पाँच पाण्डवों में झगड़ा कराने में असफल रहा, तो उसने द्यूत-क्रीड़ा का आश्रय लिया था। युधिष्ठिर को फाँसने के लिये उसने यह जाल फैलाया था। द्यूत-क्रीड़ा में युधिष्ठिर जिस किसी वस्तु को भी दाँव पर लगाते, उसे ही हार बैठते। इस प्रकार वे प्रत्येक वस्तु को दाँव पर लगाते गये और हारते गए। अन्त में उन्होंने अपने चारों भाइयों को भी दाँव पर लगा दिया और जो होना था वही हुआ। वे उनको भी हार बैठे। फिर स्वयं को दाँव पर लगाया और पराजित हुए।

युधिष्ठिर का विचार द्रौपदी को दाँव पर लगाने का कभी नहीं रहा था। किन्तु, जब शकुनि ने उन्हें भड़काया और यह आश्वासन भी दिया कि 'यदि इस बार जीत गये, तो जो कुछ अब तक हार चुके हो, वह भी वापस कर दिया जायेगा' तो विवश युधिष्ठिर ने द्रौपदी को दाँव पर चढ़ा दिया।

यही पाप-कर्म दुर्योधन के सर्वनाश का कारण सिद्ध हुआ। उस पापी ने अपने ही महल में वेद-विरुद्ध कार्य की योजना की थी। ऋग्वेद के अन्तिम मण्डल में जुए के पासे के विषय में यह लिखा मिलता है—

"नीच हैं, परन्तु ऊपर को उछलते हैं। हाथ-रहित हैं, परन्तु हाथवालों को वशीभूत करते हैं। ये दिव्य अंगारे हैं, कल्लर भूमि अर्थात् विनाश-मैदान में रक्खे हैं। ठंडे होते हुए भी हृदय को दग्ध करते हैं।"

विद्वानों ने इसका भावार्थ इस प्रकार किया है—

"जुए के पासे बड़े नीच हैं। ये वे अंगारे हैं जो ठंडे होते हुए भी जला छोड़ते हैं और हाथवालों (बलवालों और परिश्रमियों) को बलहीन, निष्क्रिय और आलसी बना देते हैं।"

जुआ खेलनेवाले आलसी और कायर हो जाते हैं। उनके हृदयों में सदा चिन्ता बनी रहती है। वेदने स्पष्ट कहा है—"जुआ मत खेल! कृषि-कार्य कर!"

एक कार्य आलसियों का है तो दूसरा परिश्रमियों का।

जब युधिष्ठिर हार गये तो दुर्योधन और कर्ण ताना मारने लगे। बार-बार कहने लगे, "अब द्रौपदी दासी का कार्य करेगी।"

पहले विदुर को द्रौपदी को सभा में लाने के लिये कहा गया। इस प्रसंग में यह कहना होगा कि दुर्योधन ने द्रौपदी के प्रति अनेक अपमानजनक शब्दों का भी प्रयोग किया। महात्मा विदुर ने उत्तर में कहा, "तेरी मौत तेरे सिर पर नाच रही है। मैं कहता हूँ मर्यादा का उल्लंघन न कर!"

क्या इस युग में भी पापियों की कृत्रिम विजय नहीं होती? क्या वे सज्जनों से पाप-कृत्य कराने के लिये आज भी तत्पर नहीं होते? महात्मा विदुर वे श्रेष्ठ आत्मा थे, जिनके घर पर भगवान् कृष्ण ने 'साग' स्वीकार किया था जबकि उन्होंने दुर्योधन के घर पर स्वर्ण-थाल में परोसा गया मिष्टान्न त्याग दिया था। दुर्योधन इसीलिये बतलाना चाहता था कि वह विजयी है, अतः

वह विदुर द्वारा ही द्रौपदी को सभा में बुलवायेगा तथा उसका भरी सभा में अपमान करेगा।

महात्मा तो संकट-काल में भी अपने वचन के विपरीत कार्य नहीं करते। महात्माओं के विषय में कहा गया है—

"मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।"

जब विदुर उसका कार्य करने के लिये किसी भी प्रकार उद्यत नहीं हुए, तो उसने प्रतिकामी को द्रौपदी के महल में भेजा। प्रतिकामी सारथि था। वह भी यह जानता था कि दुर्योधन पापकृत्य में लिप्त है। वह भी उस पाप से बचना चाहता था, अतः उसने भी द्रौपदी के पास जाना स्वीकार नहीं किया। जब दुर्योधन ने उसको विवश किया तो उसके मुख से निकल गया, "दुरात्मा दुर्योधन का ऐश्वर्य शीघ्र ही भूमिसात् होनेवाला है।"

दुर्योधन इन वचनों को सुनकर क्रोध से आगबबूला हो गया। जब सारथि ने भी वह कार्य करना स्वीकार नहीं किया, तो फिर उसने दुःशासन को इस दुष्कृत्य के लिए प्रोत्साहित किया। क्रोधाभिभूत दुःशासन ने जाकर द्रौपदी को बालों से पकड़ा और घसीटता हुआ उन्हें उस सभा में ले आया। व्यथित द्रौपदी को सभासदों को प्रणाम करने की भी सुध नहीं रही।

'महाभारत' ने अपनी सुकृति द्वारा भारतीय आत्मा का दिग्दर्शन भी करना चाहा था। व्यास मुनि छः शास्त्रों में एक शास्त्र के रचयिता थे। वे चारों वेदों के ज्ञाता भी थे। यदि उनको धर्म न जाननेवालों में गिना जायेगा तो यही कहना होगा कि विरले ही कोई इसे समझ सकते हैं।

उन्होंने मानो 'गीता' के उस श्लोक का भाष्य ही कर डाला, जिसमें कहा गया है कि 'श्रेष्ठजन का पदानुसरण करना चाहिये; बहुमत सदैव ही ठीक नहीं रहता।'

साधारण जन का यह विचार बना रहा है कि सभा कोई कार्य करेगी तो वह निश्चित ही अच्छा होगा; किन्तु, 'महाभारत' ने यह सिद्ध कर दिया कि दिग्गज विद्वानों और महाबलियों की सभा में भी घोर अन्याय हो जाया करता है।

क्या विदुर की ही भाँति वहाँ उपस्थित अन्य विद्वानों ने दुर्योधन को प्रताड़ित किया था? अथवा, प्रतिकामी की भाँति वे भी द्रौपदी का अनादर न करने से उपराम रहे?—नहीं, वे सब मौन रहे, जबकि स्वयं दुर्योधन के अपने भाई विकर्ण ने इसका विरोध किया था।

द्रौपद्री ने भरी सभा में प्रश्न किया था कि 'क्या दास बने

मनुष्य का किसी पर भी अधिकार रह सकता है ? जब युधिष्ठिर राज्य हार चुके थे तो उन्होंने अपने चार भाइयों को दाँव पर लगाया था, अन्त में स्वयं को भी दाँव पर लगा दिया और हार गये थे। चार भाइयों को हारते समय तो वे स्वतन्त्र थे, किन्तु जब वे स्वयं दास बन गये, तब शकुनि के कहने पर उन्होंने द्रौपदी को दाँव पर कैसे लगाया ? क्या किसी दास का कोई दास या दासी होती है ?'

द्रौपदी का प्रश्न उचित था। शकुनि और दुर्योधन की भूल ने द्रौपदी को पति के इशारे पर नाचनेवाली लौंडी होने से बचाया। दुष्टों ने दो बार पाप कमाया। प्रथम पापकृत्य था धोखे से द्यूत-क्रीड़ा का आयोजन, और दूसरा पाप था द्रौपदी का इस प्रकार अनादर करना।

द्रौपदी का प्रश्न विद्वन्मण्डली के सम्मुख था। सभासद् उस प्रश्न से संकट में पड़ गये थे। वेद ने स्त्री के लिये कहलाया है—**'अहं मूर्धा'** अर्थात् 'मैं सिर हूँ।'

क्या भारत के प्रति संसार का वैसा ही व्यवहार नहीं रहा, जैसाकि दुर्योधन, शकुनि तथा कर्ण-प्रभृति जनों ने द्रौपदी के साथ किया था ? भारत के अपने विद्वान् भी विदेशियों की चाटु-कारिता करके अपने ग्रन्थों में यह लिखते हुए लज्जा का भी अनुभव नहीं करते कि भारत के ऋषि-मुनि-जन मांसभोजी थे। दुर्बल का पक्ष कौन लेता है !

एक वही विकर्ण ऐसा था जिसने भरी सभा में कहा था कि "द्रौपदी का प्रश्न उचित है। उसका उत्तर दिया जाना चाहिये।' जब हमें यह बताया जाता है कि दुर्योधनादि सौ भाई थे, तो उसका यही अभिप्राय होता है कि सौ में से केवल एक ही सच्चा न्यायप्रिय और धर्मात्मा होता है। विकर्ण सौ भाइयों में से केवल अकेले ही अपने मत के थे।

यहाँ उस वेद-मन्त्र की ही व्याख्या की गई है जिसका आशय है कि 'एक सूर्य समस्त विश्व के लिये समर्थ है।'

दुराचारी और भ्रष्ट व्यक्ति के अन्न से पोषित विद्वान् किस प्रकार उस दुराचारी स्वामी के पक्ष का समर्थन करते हैं, यही इस प्रकरण से ज्ञात होता है।

द्रौपदी की दुर्दशा देखकर भी क्या भीष्म पितामह ने उसकी रक्षा की थी ? नहीं। उन्होंने उस समय उत्तर में कहा था, "कल्याणी ! धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है। इसी से तुम्हारे प्रश्न का मैं ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे रहा हूँ। जो स्वयं को हार चुका

है, वह स्वामी न होने के कारण किसी वस्तु को दाँव पर नहीं लगा सकता, और स्त्री सदा अपने पति के अधीन ही होती है। इन दोनों बातों के कारण प्रश्न की ठीक-ठीक मीमांसा कर पाना असम्भव है। युधिष्ठिर पृथिवी के साम्राज्य को सहज भाव से छोड़ सकते हैं, परन्तु धर्म नहीं छोड़ सकते। यही मेरा विश्वास है। उन्होंने अपने मुख से तुम्हें हार जाना स्वीकार किया है, और तुम्हारा प्रश्न है कि उन्हें हारने का अधिकार है कि नहीं। इसी से मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ हूँ।"

'धर्म की गति सूक्ष्म है' कहकर उन्होंने मान लिया था कि हारनेवाला किसी का स्वामी नहीं होता, परन्तु इतना कहकर ही उन्होंने मौन धारण नहीं कर लिया। भीष्म वास्तव में उन व्यक्तियों में से थे जो सदैव रहस्य ही बने रहते हैं। उन्होंने अपने कथन में यह जोड़ दिया कि 'युधिष्ठिर धर्मात्मा हैं, सत्यवादी हैं, अतः जब उन्होंने कह दिया कि वे द्रौपदी को हार गये हैं तो उनका कथन असत्य नहीं हो सकता।'

'महाभारत' को धर्मग्रन्थ इसीलिये बताया जाता है कि वह मानव-भूलों की ओर हमारा ध्यान खींचता है। सभा ग़लती कर रही थी, जबकि आर्तस्वर में एक देवी सत्य का पक्ष ले रही थी।

इस सभा के आयोजन का दुर्योधन के पिता महाराज धृतराष्ट्र को दुःख था। उन्होंने कहा, "बेटी, कोई वर माँग!"

द्रौपदी ने अपने वर द्वारा युधिष्ठिर को दास-भाव से मुक्त करवाया।

तब धृतराष्ट्र ने कहा, "और वर माँग!"

तब द्रौपदी ने अन्य चार भाइयों को सशस्त्र दास-भाव से मुक्त कराया। किन्तु, जब द्रौपदी को तीसरा वर माँगने के लिये कहा गया तो द्रौपदी ने कहा, "लोभ अधर्म की जड़ है, अतः मैं अब कोई वर नहीं माँगूँगी।"

अपने इस कथन द्वारा द्रौपदी ने वेद-वाणी का ही आख्यान किया था। यजुर्वेद में कहा गया है कि त्याग से भोग करना चाहिये। जो व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है, उसी समय भोजन करना वन्द कर देता है जब थोड़ी भूख शेष रह जाती है।[1] दुःख

---

1. Wes hould finish eating when we ore still a little hungry...Vital economy is best achieved by abstemious eating. The sadhus of our land keep healthy and achieve longevity solely by their abstemious eating. Their code of living allows them but one meal a day and expects frequent fasting —(*The Sunday Times*, for 17.5.53)

में पड़ी हुई भी वह भारतीय ललना लालच में नहीं फँसी। यहाँ पर हम महादेवी द्रौपदी के मुख से वही बचन बोलतेसु नते हैं जो भारतीय ऋषि-मुनियों की सन्तान को बोलना उपयुक्त था। संसार के अन्य देशों ने लोभ में आकर क्या-क्या नहीं किया ? अमेरिका सबसे धनी देश है, पर कितने देश उसके अधीन हैं ? वह तथा पूँजीपतियों के अन्य यूरोपीय देश अभी भी निरन्तर शोषण करते ही जा रहे हैं। दो विश्व-युद्धों के हो जाने के बाद भी संसार में अशान्ति ही व्याप्त है।[1]

यजुर्वेद का उपर्युक्त कथन ही ईशोपनिषद् में दुहराया गया है। जिससे जीवन-निर्वाह हो सके, वही मिल जाय तो पर्याप्त है। सन्तुष्ट होनेवाली द्रौपदी अन्य कोई नहीं, अपितु धर्म-प्राण भारत माता ही है।

उस तेज को, जो धर्म में निहित है, अन्धा भी देख सकता है। धृतराष्ट्र अन्धा था, किन्तु फिर भी समझ गया कि द्रौपदी की धर्म में अविचल निष्ठा है। वे भी अपने दल में अपने मत के अकेले ही रहे। पापी दुर्योधन ने बाप और भाई को कलंकित किया। किन्तु, एक भाई विकर्ण से रहा न गया और पिता धृत-राष्ट्र भी विकर्ण के पिता कहलाने के योग्य ही बने रहे।

हम लिख आये हैं कि द्रौपदी का एक नाम कृष्णा भी था। कृष्ण ने कृष्णा को बचाया। कृष्ण, विकर्ण और महात्मा विदुर ने धर्म को गिरने न दिया।

क्या द्रौपदी की कथा मानव-प्राणी के लिए शिक्षा नहीं है ? जब-जब कोई पापी धर्मात्माओं को कुचलना चाहता है, तब-तब वह सभा का नाम लेता है; कहता है कि सभा सर्वोपरि है, सभा का निर्णय मान्य है। महाभारत-काल में भी यह सभा का ही निर्णय था कि एक देवी को भरी सभा में नग्न किया जाय।

महाभारत-काल से भी बहुत पहले ऋग्वेद में वर्णित अत्रि ऋषि को सम्राट् ने सौ द्वारोंवाले कारागार में बन्द किया था।

---

1. I Suggest to you that the truth that is embedded in this very short mantra is calculated to satisfy the highest cravings of every human being whether they have reference to this world or to the next...

This mantra bells me that I cannot hold as mine anything that belongs to God, and if my life and that of all who believe in this mantra, has to be a life of perfect dedication, it follows that it will have to be a life of continual service of our fellow creatures. —(*Gandhi*)

सम्राट् ने अपने पालित असंख्य जनों और समाजों का समर्थन प्राप्त किया था। अन्ततोगत्वा अत्रि ऋषि मुक्त हुए और समाजों को यह ज्ञान मिला कि स्वराज्य प्राप्त करना अभीष्ट है, और स्वराज्य में भी वे लोग श्रेष्ठ हैं जो स्वयं को नियन्त्रण में रख सकते हैं। राज्य का बल उसकी उन सभाओं से नहीं होता जो भयभीत सदस्यों की संस्थाएँ होती हैं, अपितु उन व्यक्तियों से होता है जो निर्भीक और कष्ट-सहिष्णु होते हैं।

व्यक्ति के सद्गुण का महत्त्व ऋग्वेद में प्रदर्शित किया गया है। उस महत्त्व को पुनः प्रकट करके महर्षि व्यास ने 'महाभारत' का आवरण उद्घाटित किया है।

'महाभारत' ने स्पष्ट बताया कि दास बने हुए मनुष्य को किसी भी वस्तु अथवा प्राणी पर कोई अधिकार नहीं रहता। परन्तु, इस नियम के विरुद्ध शकुनि ने द्रौपदी को द्यूत-क्रीड़ा में जीता; उसने एक देवी को छल-बल से जीता। राजा द्वारा पालित-पोषित सभासद् कह नहीं सके कि यह आचरण धर्मानुकूल अथवा सिद्धान्तानुकूल नहीं है।

दुष्टों को अपने कृत्यों का फल चखाया भी गया। जिन बालों से पकड़कर दुःशासन ने द्रौपदी को बीच सभा में खींचा था, उनको उसी दुःशासन के रक्त में स्नान कराकर पवित्र किया गया। दुर्योधन ने एक महादेवी को दासी बनाना चाहा था, परन्तु अन्त में उसके अपने घर की देवियों को ही रुदन करना पड़ा था।

भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर न जाने किस शासक को प्रसन्न रखने के व्यर्थ प्रयत्न में कुछ हिन्दी पत्रकार एवं लेखक लिखने लगे हैं कि व्यास मुनि ने द्रौपदी को स्त्री समझकर उसे नीचा दिखाने का यत्न किया था। वे यह भी कहते हैं कि कन्यादान की प्रथा भी यही सिद्ध करती है कि स्त्रियों के लिए हिन्दू-समाज में उच्च स्थान प्राप्त नहीं था।

इसी प्रकार के लेखकों को 'सार्वदेशिक' के सम्पादकने उत्तर देते हुए लिखा था—"कन्यादान का तात्पर्य केवल माता-पिता द्वारा अपने उत्तरदायित्व को वर के प्रति सौंपने का है; अन्य चलाचल सम्पत्ति की भाँति देने का नहीं। यह न समझकर लेखक ने जो इस विधान की आलोचना की है, वह वैदिक तथा प्राचीन आर्षकाल के लिए अशुद्ध है। वैदिक युग में तो "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्", "भद्रा वधूर्भवति यन्सुपेशाः स्वयं सामित्रं वनुते जनैचित्" (ऋ० १०-२६-१२) इत्यादि वैदिक आदेशों

के अनुसार स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी।

आक्षेप करनेवाले के लेख की, 'वैदिक इंडिया' नामक पुस्तक के लेखक रागोजिन के 'वैदिक भारत में स्त्रियों की स्थिति' विषयक लेख के साथ तुलना की जाय, तो आकाश-पाताल का अन्तर प्रतीत होगा। इस प्रसंग में तुलनार्थ हम उसके कुछ अंशों को उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं। एक अंश है—

"The Position held by the Aryan woman in Vedic Punjab was a most honourable, nay exalted one, which later developments changed by no means for the better, but rather, and very much for the worse. She appears to have been on a footing of perfect equality with her husband. What is more, she was a willing bride; it is more probable that her consent was made sure of first and indeed that she was frequently awarded the privilege of choosing out of many suitors."

(La situation des femmes aryennes dans le Penjab vedique etait des plus honorables, et tres elevee; lesi nfluences et les developpements posterievrs loin de lavoir amelioree, lont phitot empiree...)

इसके बाद **"सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रवां भव"** इत्यादि के अनुवाद को उद्धृत करते हुए मि० रागोजिन जो टिप्पणी देते हैं वह पठनीय है। वे लिखते हैं—

"How absolute the wife's and mother's supremacy is here proclaimed and consecrated by the husband! and what a tremendous falling off from this high standard is presented by the condition of women, as modified in later Brahmanism and especially Hinduism, by all sorts of foreign deteriorating influences. Even the popular life of modern nations fall far short of the ideal of domestic life set-up by our so-called "barbarous" early ancestors. That such an ideal implies monogamy is self-evident."

निम्नलिखित दो वाक्य, जो निष्कर्ष रूप से एक फ्रेंच महिला ने लिखे हैं, उनको उद्धृत करने के प्रलोभन का हम संवरण नहीं कर सकते। वे लिखती हैं—

"The religious rights of woman among the Aryans, testified to the elevated rank which she occupied in the Vedic family.

We have seen her participating in the ceremonies of family-worship and directing the religious instruction of her children."

—(Clariesse Bader *Women in Ancient India, P. 40*)

ऐसे आक्षेपकर्त्ताओं में से एक हैं श्री रघुवीर दिवाकर। उन्होंने सन् १९५० में 'प्राचीन भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान' नाम्नी पुस्तिका लिखी थी। अपनी पुस्तिका में उन्होंने यह व्यक्त करने का यत्न किया है कि भीष्म पितामह द्वारा द्रौपदी को दिया गया उत्तर महर्षि व्यास अथवा तद्युगीन विद्वानों का ही मत व्यक्त करता था। भीष्म पितामह के वही सदुपदेश ग्राह्य हैं जो उन्होंने शरशैया पर पड़े-पड़े दिये थे, न कि सभा में द्रौपदी के विरुद्ध बोले गये वचन। व्यास मुनि ने तो बार-बार 'महाभारत' में बताया है कि अनेक (दुर्योधनादि) एक (पाण्डव) का विरोध करते रहे, परन्तु जीत एक की हुई, अनेक की नहीं।

द्रौपदी का मनोहर चित्र चित्रित करते हुए व्यास जी महाराज ने कहा है—

"द्रौपदी त्रिभुवन-सुन्दरी है। वह न बहुत नाटी है और न बहुत लम्बी। न मोटी है और न दुबली। उसके काले-काले घुँघराले बाल बड़े ही सुन्दर हैं। उसके नेत्र शरत्कालीन कमल के समान हैं। उसके शरीर से नील कमल की सुगन्ध-धारा प्रवाहित होती है। वह सीधी-सादी, सुन्दर, सुशीला, अनुकूल प्रिय-भाषिणी और सद्गुणवती है। एक आदर्श पति अपनी पत्नी में जितने गुण देखना चाहता है, वे सब उसमें विद्यमान हैं। वह सबसे पहले जग जाया करती है और सबके बाद में सो या करती है। वह गौ तथा भेड़ों के चरवाहों तक की सूचना रखती है। उसका शरीर बड़ा ही सुन्दर, सुकुमार और दिव्य पुष्प के समान है।"

यदि श्री दिवाकर महोदय को यह विदित होता कि ऋग्वेद स्त्री के मुख से कहलवाता है कि 'मैं मुख हूँ' तो वे निम्न पंक्तियाँ कदापि न लिखते—

"स्त्री पति की अर्द्धांगिनी है, पर पति स्त्री का चतुर्थांश भी नहीं है। स्त्री पति के होने से सौभाग्यवती कहलाई जाती है और चूड़ी, बिछवा, सिन्दूर आदि सुहाग के चिह्न ग्रहण कर तथा गनगौर (गणपति-गौरी) बड़-मावस (वट-सावित्री) तीज, करवा-चौथ (कर्क चतुर्थी) आदि सुहाग के अनेक पर्व मनाकर अपने सौभाग्य को धन्य मानती है। किन्तु पुरुष तो स्वतः सौभाग्यवान् है, चाहे वह कुमार हो, विवाहित हो या विधुर। यही नहीं, पुरुष देवता है, ईश्वर है। आखिर 'पुरुष' शब्द से ईश्वर का बोध होता है और प्रकारान्तर से पुरुष के ईश्वरत्व की ओर ही संकेत है। कर्मवीरता भी पुरुष की अपनी ही चीज़ है। त्रियार्थ

नाम की कोई चीज है ही नहीं।"

यह वेद के साथ घोर अन्याय है। स्त्री को तो वेद में सिर कहा गया है। इसका अर्थ यह होता है कि वह सबसे ऊपर, पुरुष से भी ऊपर रहती है।

जिस मन्त्र की विस्तार से व्याख्या की गई है, यदि हम उस पर विशेष ध्यान देंगे तो हम पायेंगे कि एकाकी कार्य करनेवाले सत्य और धर्म तथा न्याय के पक्ष में हुआ करते हैं। ऐसे लोगों को वे ही अपना शत्रु समझते हैं, जिनमें स्वयं दुर्बलता होती है। भगवान् कृष्ण को शिशुपाल-सदृश पतित व्यक्ति ने ही पतित बताया था, किसी सत्पुरुष ने नहीं।

सूर्य से पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, सबको लाभ होता है। केवल रुग्ण जन को सूर्य का आतप कष्ट देता है; उससे हानि होती है। जो व्यक्ति स्वस्थ है, वह सूर्य के आतप की खोज में निकलता है। उषाकाल में नई उमंगों का आरम्भ होता है। केवल चोर व्यक्ति को सूर्य के उदय से भय लगता है; सूर्योदय होने से उसका कार्य असम्भव हो जाता है। गुप्तचर, सत्यवादी से इसलिए रुष्ट होता है क्योंकि सत्यवादी की सत्यता सूर्य के समान होने से किसी को छिपकर कार्य करने नहीं देती। सत्यवादियों की सचाई जासूसों के लिए हलाहल के समान है। इसलिए सत्यवादी बनिये, और निर्भय होकर अकेले ही कार्य करिये।

३. ज्ञान

इंजील को यदि ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय, तो विदित होगा कि उस ग्रन्थ के आरम्भ में ही मानव-पतन का इतिहास अंकित है। उसमें 'आदम' को ईश्वर का कृपाभाजन नहीं बताया गया है। वह ईश्वर के क्रोध का शिकार था, क्योंकि वह पतन की ओर अग्रसर हुआ था। उसको एदन (अदन) के बाग़ में फल खाने से रोका गया था, किन्तु उसने उस आज्ञा की अवहेलना की और फल खा लिया था।

किन्तु इसके विपरीत, वैदिक धर्म से अन्य ही ध्वनि निकलती है। वैदिक धर्मानुसार आदि-मानव परमात्मा के प्रिय पुत्र थे, उनमें से चार पर वेद प्रकट हुआ था। वेद ज्ञान से परिपूर्ण हैं।

एदन के उद्यान में जब 'हव्वा' के प्रभाव में 'आदम' आया तो उसने ज्ञान-वृक्ष का फल खाया। किन्तु इंजील के अनुसार फल खाना बुरा बताया गया है। वैदिक धर्मानुसार फलाहार को आदर्श आहार माना गया है, और फल जब ज्ञान-प्रदाता हो तो वह और भी उत्तम है।

जिसको थोड़ा-बहुत भी संस्कृत का ज्ञान होगा, इंजील की इस कथा में उसको दो संस्कृत शब्द प्राप्त होंगे। आदिम पुरुष को 'आदम' (ADAM) कहा गया है। इंजील की इस कथा के आधार पर सहस्रों वर्ष तक लोगों को एक उद्यान-विशेष की खोज करने की प्रेरणा मिली। मौरिशस के पास पड़े हुए सैशेल द्वीप-समूह को 'एदन' बताया जाता था। वहाँ के निवासियों में अनेक लोग हैं जो आज भी 'आदम'-जाति के कहलाये जाते हैं।

एदन और आदम जहाँ इंजील में व्यक्तिवाचक संज्ञायें हैं, वहाँ संस्कृत में न आदिम पुरुष किसी नर-विशेष का नाम है और न उद्यान एक व्यक्तिवाचक संज्ञा है। सिन्धु की ही भाँति उद्यान भी जातिवाचक संज्ञा है। वेद में 'सिन्धु' बहुवचन में 'सिन्धव' रूप धारण करता है।

ज्ञान से मनुष्य पहचाना जाता है। इंजील की कथा से ज्ञात होता है कि जिन दिनों में यह पुस्तक रची जा रही थी, यह मानी हुई बात थी कि मानव उन्नतावस्था में था, बाद में उसका पतन हुआ।

जब हम आगे बढ़ते हैं तो कई स्थलों पर ऐसे वचन पाते हैं, जिसके अर्थ यही होते हैं कि उस युग के लोग जानते थे कि बहुत पहले इस संसार में विद्वान् और ऋषि-मुनि अवतरित हो चुके हैं। फ्रैंच में ईसाई बच्चों को बाइबल-सम्बन्धी जो पुस्तक पढ़ाई जाती है, उसमें तो यहाँ तक लिखा है कि इब्राहीम के युग में जो पहले ईश्वरीय ज्ञान मिला था, उसका कम स्मरण होने लगा था।[1]

अधिकांश जन यह तो जानते ही हैं कि ईसा ने पर्वत की एक शिला पर बैठकर अपने प्रवचन किये थे। उन प्रवचनों में उन्होंने अपने श्रोताओं को कहा, "तुमने वही सुना, जो प्राचीन काल में कहा गया था···" (Ye have heard that it was said by them of old···").

१. माले विरचित Bible Scolaire, पृष्ठ १२

ईसाइयत के समान ही इस समय इस्लाम भी संसार के कोने-कोने में फैला हुआ है। यह धर्म अरब से यूरोप, भारत, अफ्रीका आदि स्थानों पर शनै-शनैः पहुँचा। अरब ही के लोग तो हैं जिन्होंने भारत का ज्ञान पश्चिम में पहुँचाया। वहाँ के श्रेष्ठ-जनों, विद्वानों को विदित था कि भारत विद्या का भण्डार है। सुप्रसिद्ध कवि इक़बाल ने तभी तो लिखा था--सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।

भारतेतर देशों के साहित्यकार भी हमारे ज्ञान को युग-युग में पसन्द करके उसको अपनाते रहे। पहले पूर्व ने और उसके बाद पश्चिम ने इस ज्ञान से लाभ उठाया।

परी-कथा के फ्रेंच लेखक ला फ़ोतेन की ही भाँति फ़्लोरियाँ भी परी-कथा लिखा करते थे। उनकी कथाओं में से एक कथा है—'एक लंगड़े और एक अंधे के बारे में।' कवि फ़्लोरियाँ ने अपनी कविता के आरम्भ में लिखा कि यह कथा पूर्व से आई है; वे लिखते हैं—

In a town of Asia time was when
Lived two miserable men,
Palsied one the other blind;
Both the poorest of their kind,
'I have my ills'—thus he (the blind)
Spok—
'You have yours; then let us make
Common cause; they, will be, thus
More endurable by us.'—

उक्त कथा सांख्य शास्त्र में मिलती है। उसके अनुसार पुरुष, प्रकृति के सान्निध्य में रहता है। यदि अकेला पुरुष रहे तो उसमें देखने की शक्ति नहीं होती। आँख तब देख पाती है, जब वह शरीर में पड़ी हुई हो। लंगड़ा आदमी, या वह आदमी जिसे पक्षाघात हुआ था, चल नहीं सकता था और अंधा देख नहीं सकता था। दोनों ही दुःखी थे।

अंधा प्रकृति के स्थान पर आता है, क्योंकि प्रकृति देख नहीं सकती। पत्थर, लोहा, मिट्टी, जल आदि पदार्थ देखने में असमर्थ हैं। प्रकृति देह का रूप धारण करे और उसमें नेत्र पड़ जाएँ तो वह देखने में समर्थ हो सकती है।

पश्चिम में वेदों का भी आदर होता रहा है। वहाँ एक अन्य ग्रन्थ रचा गया जिसका नाम 'एद्द' है। अंग्रेज़ों को यह नाम इतना अच्छा लगा कि उन्होंने अपने एक प्राचीन ग्रन्थ का नाम 'अंग्रेज़ी एद्द' रखना आरम्भ किया।

अभी यह निर्णय नहीं हो पाया है कि अरब के विद्वानों का जब वेद से परिचय हुआ, 'एद्द' की रचना भी ठीक उन्हीं दिनों में हुई अथवा कि नहीं।

४. हम मरकर फिर जन्मते हैं

हमारी माता का जब निधन होता है तो दुःख के कारण हम रुदन करने लगते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि अब भविष्य में हमें अपनी माता के दर्शन नहीं होंगे। माता के मृत शरीर को जला दिया जाता है। सोलह संस्कारों में यह दाहक्रिया मानव-शरीर का अन्तिम संस्कार है।

शव में आत्मा नहीं रहता। किन्तु, आत्मा कभी नहीं मरता; वह अमर है। आत्मा के सम्बन्ध में हम यह नहीं कह सकते कि वह भूतकाल में नहीं था अथवा भविष्य में नहीं रहेगा। किन्तु शरीर नाशवान् है। शरीर के साथ ही आनन्द भी समाप्त हो जाता है।

आनन्द का अभाव तबतक रहता है जबतक कि काल को हम तीन भागों में विभक्त कर अतीतकाल को वर्तमान और भविष्यत् से विभिन्न मानते हैं। यही कारण है कि ऋषियों ने आनन्द की उपलब्धि के लिए आत्मा से लगन लगाने की प्रेरणा दी है। आत्मा न तो विनाशी है और न ही दुःखोत्पादक।

आनन्द से मुख मोड़ना मानव को ठीक नहीं लगता। विचारकों ने इसीलिए बारम्बार कहा है कि **'अहं ब्रह्माऽस्मि'**। हम ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं। अद्वैतवाद का उद्भव ही इसलिए हुआ कि मानव-प्राणी आनन्द से रहित होना पसन्द नहीं करता। परन्तु सत्य यही है कि हम ब्रह्म अथवा परमात्मा नहीं हैं।

हम यदि इतना भी स्वीकार कर लें कि आत्मा अमर है, तब भी हमें आनन्द-प्राप्ति में कठिनाई नहीं होगी। मृत्यु का भय सबसे बड़ा भय है। यदि यह भय दूर हो जाय तो हम वास्तविक अर्थ में मानव बन जायेंगे। मृत्यु एक को दूसरे से अलग कर देती है। विदाई के अवसर पर वेदना होती है। यदि हम यह जान जायँ कि मरणोपरान्त हम पुनः जन्म लेंगे, तो इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि जो कार्य किया जा रहा है उससे ही, भले ही किसी अन्य जन्म में सही, हम लाभ अवश्य उठायेंगे। हम आम की गुठली ज़मीन में इसलिए गाड़ते हैं कि उसके वृक्ष

बनने पर हम आम का फल खायेंगे। पुनर्जन्म का सिद्धान्त राष्ट्रों को सुखी और शक्तिशाली बनानेवाला है। यह सिद्धान्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

Supposing one accepts the doctrine of re-birth, what good is it however to be told that something will be fruitful in a future-birth wherein weshall have no memories of that Past? How can it foster or further individual initiative or endeavour? Why should I labour or retrench my present joy for one who will come to exist in another birth with whom you identify me, but which identity is not felt by me now or will be felt then? Thus may the pleasure-seekar pose his difficulty.

The answer is this—Friend, do you not derive joy in doing the right thing apart from its effects or for your own advantage? The joy of right conduct is inherent in human nature. All recorded or unrecorded experience confirms this for every one, big and small. Members of a family or of a village intuitively work for one another and derive pleasure therefrom. Though they may obtain no personal advantage from it, they are immensely happy when they do it. People are not indifferent to the good of their village or their country. The joy of right conduct and of mutual helpfulness is as real as the universal force of attraction that the men of science call by the name of gravitation. The Great and Universal One has become many and the many seek to become one again and are attracted to one another. The original unity re-asserts itself in the shape of the several forces that attract things and beings to one another. Men sacrifice themselves for the good of the state. for the safety of future-citizens and for their happiness in the coming generations. In all this men and women derive a joy which is instinctive and not argued from hopes or expectations of present or future-rewards for such conduct. We do not know who will enjoy the shade of the trees we plant on the road-side. Still we do plant on the road-side. Still we do plant them.

In regulating our conduct for re-birth, we follow a similar process that contributes to peopling the future-world with good men and women. Posterity is ourselves according to Hinduism. Let us do what we can to raise a good race. Let us be good and where we sinned, let us repent. Let us plant our soul in the good earth and be born again as good men, be it even without memories, which if we had we could not bear the painful weight thereof. Let us be re-born purified and better than we are. If we all try thus, the world will ultimately be a world full of good men. This is the plan of Vedanta, the eugenica of souls, a scientific plan to bring into existence a better

breed of men. Have we not laboured to improve the breed of poultry and cattle? Have we not succeeded wonderfully therein? Let us improve the breed of men, bodies as well as souls. The hens do not remember their previous state. What does it matter? the cows do not recognise the progress that animal husbandry has brought to the race of cows. What does it matter if we shall not be able to remember? The object of right living is to a Vedantin two-fold—ones own true happiness is attained thereby and one also contributes to a better world through re-birth. From simple rural-co-operation to patriotism and from patriotism to Vedanta, it is an integrated whole in widening circles. Co-operation improves the village. Patriotism produces better country-wide state of things. Vedanta will bring into being a better world.

—(*C. Rajagopalachari*)

माना कि हमको यह स्मरण नहीं कि पिछले जन्म में हम कौन थे, मौरिशस में रहते थे, या कि भारत में, या अन्यत्र कहीं रहते थे ; यह कुछ यदि स्मरण रखना पड़ जाता तो हमें भारी भार ढोना पड़ता।

आत्मा किसी प्राणी-विशेष का संगी रहता है। वह उस प्राणी का साथ देना तभी छोड़ता है, जब उसको यात्रा करने की इच्छा होती है। परमात्मा सबका संगी है। वह किसी एक का साथ नहीं देता, और न उसे यात्रा करने की ही आवश्यकता होती है। इसीलिए उसको विदाई देने की भी ग्रावश्यकता नहीं होती। वेदमन्त्र में उसे इसी कारणसे श्रेष्ठ कहा गया है। आत्मा देह बदलता है, परन्तु परमात्मा नहीं।

ब्रह्म, भूत ग्रौर भविष्य का अधिष्ठाता है। उसके लिए सदा वर्तमान रहता है। उसकी लीला बच्चों के गेंद के खेल के समान थोड़ी देर के लिए नहीं होती। ग्रतः ग्रानन्द स्थिर रहता है, रंग में भंग नहीं होता।

हम जागरित हों, हमारे नेत्र बन्द न हों तो हम जान जायेंगे कि ग्रौरों से ग्रधिक उसीको, जो सत् कहा है, वह उपयुक्त है। वास्तविक ग्रर्थों में परमात्मा ही सत् है। जो स्थान नहीं बदलता, चंचल नहीं है। इस ज्ञान के होते ही हम ग्रानन्द का उपभोग करने लग जाते हैं।

यूरोपीय ग्रपनी सभ्यता के ग्रनुकूल महिलाओं को देखकर ग्रपने सिर से टोपी उतारकर और ग्रपना शीश नवाकर उन्हें नमस्कार करते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी एक बार किसी कन्या को देखकर उसके प्रति अपना मस्तक नवाकर उसे

प्रणाम किया था। स्वामी जी को उस बालिका में मातृशक्ति के दर्शन हुए थे। लड़की अथवा महिला, लड़का अथवा पुरुष, इनमें तीन शक्तियाँ विद्यमान होती हैं जो सत् नाम से पुकारी जाती हैं। मानव-देह जिस प्रकृति से रची गई है वह अमर रहती है, परन्तु अपना रूप बदलती रहती है। मानव-शरीर को तेज का पुंज बनानेवाला आत्मा भी अमर ही है। वह रूप तो नहीं बदलता, किन्तु पक्षी की भाँति एक डाल अथवा वृक्ष को छोड़कर दूसरी डाल अथवा वृक्ष पर अवश्य जा बैठता है।

इन दोनों से श्रेष्ठ है ब्रह्म, जो उसी मानव-शरीर में भी रहता है और अन्यत्र भी। यूरोपीय दार्शनिकों ने केवल देह को ही माना है, क्योंकि वह स्थूल है। उन्होंने आत्मा और परमात्मा की सत्ता को अस्वीकार किया, क्योंकि ये दोनों सूक्ष्म हैं, आँखों से दिखाई नहीं देते। जहाँ स्वामी जी ने तीनों की सत्ता को माना, वहाँ उनके समकालीन यूरोपवासियों ने तीनों में से जो कम टिकाऊ है, जो केवल दो दिन टिकनेवाली है, अर्थात् प्रकृति, केवल उसको स्वीकार किया है।

गांधी जी ने सत्य पर अधिक बल दिया है। उनका कहना है कि सत्य ही ब्रह्म है। ब्रह्म में जितने लोगों का विश्वास है, उससे अधिक लोगों का विश्वास सत्य में है। यदि नास्तिक भी सत्य को स्वीकार कर ले तो उसकी गणना भी आस्तिकों में हो जायेगी। गांधी जी ने लिखा कि जहाँ सत्य है, वहाँ ऐसा ज्ञान है जो 'सत्' होता है। इसी सत्य ज्ञान को 'चित्' कहा जा सकता है। जहाँ सत्य ज्ञान होगा, वहाँ 'आनन्द' भी होगा। जहाँ सत् है, वहाँ चित् भी है, और आनन्द भी—सच्चिदानन्द।

स्वामी दयानन्द ने वेद-भाष्य किया और ईश्वर के सुन्दर नाम सच्चिदानन्द की व्याख्या भी की। उन्हें दुःख के मध्य सुख की प्रतीति होती थी, क्योंकि वे इस मन्त्र के गूढ़ार्थ को भलीभाँति समझते थे—

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति,
स्वर यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

उनकी धारणा थी कि यदि मानव को नीचा दिखाया जायेगा, तो हम उन्हें हरिजन समझकर उनका आदर करेंगे। उनका कहना था कि सबसे श्रेष्ठ ब्रह्म है, अतः हम उसके सम्मुख नतमस्तक होते हैं।

५. भद्र भावना

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रंतन्न आसुव ।। यजुर्वेद ।।

अर्थ—हे प्रेरक प्रभो ! सब बुराइयों को दूर कीजिए। जो कल्याण-कारक वस्तु हो, वह हमारे लिए दिलाइये ।

यह ऋषि दयानन्द का प्रियतम मन्त्र है। अपने वेद-भाष्य के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में ऋषि ने इसी मन्त्र से ईश्वर से सहायता के लिए प्रार्थना की है। अन्य किसी भी मत-मतान्तर का माननेवाला मनुष्य इस मन्त्र द्वारा बिना संकोच के प्रार्थना कर सकता है। इस प्रकार की प्रार्थना सब प्रकार की साम्प्रदायिकताओं से मुक्त है। सभी 'दुरित' से बचना चाहते हैं और 'भद्र' को ग्रहण करना चाहते हैं।

इस मन्त्र में तीन विशेष शब्द हैं जिनके अर्थ विचारणीय हैं। एक 'सविता', दूसरा 'दुरित' और तीसरा 'भद्र'। प्रार्थना का अर्थ है प्र+अर्थना। 'प्र' का अर्थ है 'प्रकर्षण' तेज़ी से, विशेष उत्कण्ठा से। 'अर्थना' का अर्थ है माँगना। प्रार्थी उसी वस्तु को उत्कण्ठा से माँगता है, जिसका मूल्य उसको ज्ञात होता है, और जिसको पा जाना उसकी शक्ति के भीतर है। भूखा भिखारी रोटी माँगता है; वह अमेरिका के राज की कामना नहीं करता। अज्ञान या अप्राप्य वस्तु की कल्पना हो सकती है, कभी-कभी इच्छा भी, परन्तु इसको प्रार्थना नहीं कह सकते। प्रार्थना के लिए आन्तरिक उत्कण्ठा या विह्वलता आवश्यक है। उसके लिए यह जानने की आवश्यकता है कि वह क्या वस्तु है जिसकी हम को माँग है। बच्चा भूख से व्याकुल होकर चिल्लाता है। यह उसकी सबसे सच्ची प्रार्थना होती है।

अर्थ समझे बिना प्रार्थना करना अपने को धोखा देना है। जिस वस्तु को आप जानते ही नहीं, उसको प्राप्त करने की इच्छा किस प्रकार हो सकती है? और यदि वह वस्तु प्राप्त भी हो जाय, तो उससे आपको लाभ क्या हो सकता है?

संसार में लोग मोक्ष या स्वर्ग के लिए सबसे अधिक प्रार्थना करते हैं। वे नहीं जानते कि मोक्ष क्या वस्तु है, या स्वर्ग कैसा और कहाँ है। इसलिए ऐसी अज्ञात प्रार्थनायें मोक्ष के स्थान में बन्ध, और स्वर्ग के स्थान में नरक की प्राप्ति ही कराती हैं। इसलिए प्रार्थी को 'दुरित' और 'भद्र' के अर्थों को जानना चाहिए।

दुरित=दु:+इत ('इण' गतौ से 'क्त' प्रत्यय करके 'इत' बना है), 'इत' में 'दु:' लगा देने से 'दुरित' बना। सायण ने 'दुरितम्' का अर्थ किया है **"अज्ञानात् निष्पन्नं"** (देखो ऋग्वेद-भाष्य १-२३-२२) और 'दुरितानि' का 'पापानि' (देखो ऋग्वेद-भाष्य २-२७-५)। आप्टे ने 'दुरित' का अर्थ किया है डिफ़िकल्ट (कठिन), सिनफ़ुल (पाप), ए बैड कोर्स (बुरा मार्ग)। धातु और प्रत्यय पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि मार्ग में जो कुछ बाधायें उपस्थित हैं, वे सब 'दुरित' हैं। आप कहीं पर पहुँचने के लिए कोई मार्ग खोजते हैं, यदि मार्ग अच्छा है तो यात्रा सुगम होती है। यदि मार्ग में काँटे हों तो यह 'दुरित' है; यदि ईंट-कंकड़ के रोड़े हों तो यह 'दुरित' है; यदि झाड़-झंखाड़ हों तो यह 'दुरित' है; यदि बीच में नदी-नाला आ जाय तो यह 'दुरित' है, यदि आपके पैरों में थकावट आ जाय और आपको यात्रा के बीच ही बैठ जाना पड़े तो यह 'दुरित' है, यदि मार्ग में डाकू मिल जायँ तो यह 'दुरित' है।

सारांश यह कि आपकी जीवन-यात्रा में जो बाधायें पड़ती हैं, वे सब दुरित हैं। मंज़िल एक है, मार्ग भी एक है, परन्तु बाधायें अर्थात् दुरित बहुत से हैं। आपकी जीवन-यात्रा आपके जन्म से आरम्भ होती है—आरम्भ से ही दुरित भी आ उपस्थित होते हैं। शैशवकाल के अनेक रोग आपके मार्ग को रोकते हैं। यह दुरित है। बड़ा होने पर जिस कार्य में आप हाथ डालते हैं, उसमें कभी कोई वस्तु बाधक हो जाती है, कभी आपकी अविद्या, कभी आपका प्रमाद, कभी आपका लोभ, कभी किसी बाहरी शक्ति का विरोध। ये सभी तो दुरित हैं। यदि इनमें से एक छोटा-सा दुरित भी शेष रह गया तो आपकी जीवन-यात्रा असम्भव हो सकती है। आपका समस्त शरीर सुदृढ़ और रोग-रहित हो, केवल पैर की सबसे छोटी उँगली के एक किनारे पर सरसों के बराबर फोड़ा हो जाय, तो आप देखेंगे कि आपका सारा काम ठप्प हो जायेगा।

यदि आप राजा हैं और आपने अपने दुर्ग की दीवारें चौड़ी और सुदृढ़ बनाई हैं, जिनका तोड़ना किसी शत्रु की शक्ति से बाहर है। यदि आपके दुर्ग के कई मील के सुदृढ़ घेरे में एक स्थान पर, एक हाथ की लम्बाई में एक स्थान दुर्बल रह गया है, तो उस हाथ-भर जगह पर से होकर ही शत्रु का प्रवेश हो सकता है और आपका साम्राज्य सहज ही अस्तव्यस्त किया जा सकता है। इसीलिए वेद में **'दुरितानि'** के साथ **'विश्वानि'** विशेषण

लगाया गया है। जब आप भगवान् से दुरितों को दूर करने की प्रार्थना करते हैं तो 'विश्वानि' पर विशेष बल है।

'यद् भद्रं' अर्थात् जो भद्र या कल्याणकारक होवे। भद्र क्या है? —'दुरितों' का दूर करना ही भद्र है। महामुनि गौतम ने न्याय-दर्शन में दो सूत्रों द्वारा इस रहस्य को समझाया है—

बाधना लक्षणार्थं दुःखम्।
तदत्यन्तविमोक्षो अपवर्गः॥

(न्यायदर्शन १-१-२१, २२)

अर्थात् रुकावट ही दुःख है। दुःख ही को 'दुरित' कहते हैं—(दुः+ख=दुःख, दुः+इत=दुरित)। 'ख' नाम इन्द्रिय का भी है और आकाश का भी। आकाश में गति सम्भव है। इन्द्रियाँ भी आकाश में ही गतिवती हो सकती हैं। जिन वस्तुओं द्वारा इन्द्रियों की नैसर्गिक प्रगति में रुकावट होती है, वही दुःख है, वही दुरित है; उससे 'अत्यन्त विमोक्ष' का नाम अपवर्ग है, अर्थात् कोई रुकावट शेष न रह जाय। रुकावटों के निश्शेष होने पर जो स्थिति होगी, वही 'भद्र' है। उसीकी प्राप्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है।

इस मन्त्र में ईश्वर को 'देव सवितः' कहकर पुकारा गया है। 'सविता' सवितृ शब्द के अर्थों पर विशेष विचार करना है। 'सविता' का सम्बन्ध 'परासुव' और 'आसुव' दोनों से है, क्योंकि ये दोनों शब्द एक ही धातु 'षू' के सूचक हैं। सविता का अर्थ है 'प्रसविता' अर्थात् प्रेरक। मोनियर विलियम्स ने अपने 'बृहत् संस्कृत कोष' में 'सव' का अर्थ दिया है—"One who sets in motion, impels, an instigilor, a stimulator." और 'सविता' का अर्थ दिया है—"A stimulator, rouser, vivifier." हमने ये अंग्रेज़ी-अर्थ इसलिये दिये हैं कि साधारण हिन्दी भाषा में हम सब प्रसव, सविता, प्रसविता के मुख्य धात्वर्थ की उपेक्षा कर जाते हैं। ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल में ८२वें सूक्तक में ९ मन्त्र हैं। उन सबके देवता सविता हैं और हर मन्त्र में सविता के साथ 'षू' धातु के किसी-न-किसी रूप का प्रयोग हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि सविता और उसके सम्बन्धी 'परासुव' और 'आसुव' विशेष अर्थों के सूचक हैं।

स्व० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी के दर्शन मैंने सन् १९३९ में में प्रयाग में किये थे। उपरिलिखित अर्थादि उनकी विद्वता का प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे कि साधारण-से-साधारण जन

मन्त्र का भाव समझ पावें। उसके लिये यह जोड़ दिया जाता है कि पुराने वस्त्र पर पड़े रंग के स्थान पर यदि नया रंग चढ़ाना हो, तो पहले वस्त्र को धोकर एकदम साफ़ कर लेना चाहिये। तभी उस पर नयारंग चढ़ पायेगा। जब हम पहले अपनी बुराइयों को दूर करेंगे, तभी तो भलाई करने की सम्भावना होगी!

परमेश्वर रंगरेज है। मन-रूपी कपड़ा साफ़ हुआ कि उनसे हम यह कहने की स्थिति में होंगे—रंगवाले! देर क्या है? रंग दे!

महर्षि सच्चे योगी थे। उन्हें यह डर था कि कहीं चूक न जाऊँ। उन्होंने स्वयं को पवित्र रक्खा। गांधी जी मौरिशस से होकर भारत गये थे जब उन्हें फिर दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा तो लाहौर से बाबा छज्जूसिंह ने उन्हें स्वरचित स्वामी दयानन्द का जीवन-चरित भेजा।

बस, क्या कहना था, उसका पाठ करके गांधी जी के मुख से निकल पड़ा—"मैं स्वामी जी के जीवन पर मुग्ध हूँ। उनकी अंग्रेज़ी जीवनी पढ़ी। तभी से ऋषि में प्रबल भक्ति और श्रद्धा है।"

वेद-मन्त्र जीवन को पावन बनाता है। वेद-ज्ञान से एक ऋषि का जीवन कितना पवित्र था, यह एक मुनि ने स्पष्ट देख लिया था। □

सत्यार्थप्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची।
२. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची।
३. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची।
४. सत्यार्थप्रकाश के १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश (जैसे हारून का Haron)।
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य।
६. सत्यार्थप्रकाश की आधार-ग्रन्थ-सूची।
७. सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा।
८. अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण-सूची।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी-संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च-स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्त जी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी-संस्करण में दी गई है।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास-अनुसार।

बढ़िया कागज। १६ प्वाइंट के मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५·००।

सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण का आर्ट पेपर पर छपा राज-संस्करण भी तैयार है। बहुत ही आकर्षक प्लास्टिक कवर के साथ कपड़े की हरी जिल्द।
विवाह आदि के अवसर पर भेंट देने योग्य। मूल्य १०१·००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५·००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र सूक्त-अन्वयार्थ और सरल-स्पष्ट भाषा में व्याख्या-सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवासयुक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स

वैदिक सम्पदा [पं० वीरसेन वेदश्रमी] मूल्य ३०.००

'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है' तथा 'वेद में आधुनिक सभी समस्याओं का समाधान है' की व्याख्या में लिखा गया यह विशद ग्रन्थ वेद के सभी विद्वानों द्वारा सराहा गया है।

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड लिखते हैं—वैदिक समाजशास्त्र, वैदिक समाजवाद, वेद में पारिवारिक आदर्श, गृहस्थ-निर्माण, आदर्शवाद, सामाजिक समस्याएँ, वेद में यातायात, वेद में चिकित्सा विज्ञान, वैदिक अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, विज्ञान, रेखागणित, शासन (राजनीति), शिक्षा विज्ञान, वेदों में [illegible] विज्ञान, ऋतु विज्ञान, भूतत्त्व विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अग्नि विज्ञान, विमान विज्ञान, जल विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, धर्म; इस प्रकार विभाजन करते हुए वेदों के आधार पर इन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में संलग्न,

रामायण के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

- यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की झाँकी देखना चाहते हैं,
- यदि आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का अध्ययन करना चाहते हैं,
- यदि आप प्राचीन राज्यव्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं,
- यदि आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं,
- यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं,
- यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं,

तो यह रामायण पढ़ जाइए। सैकड़ों टिप्पणियों से समलंकृत सम्पूर्ण रामायण ०० श्लोकों में समाप्त। (प्रेस में)

ार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा लिखते हैं—

"सम्पादन और टीका-टिप्पणी लौह-लेखनीधारी स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा है। पं० आर्यमुनि, पं० राजाराम शास्त्री, पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार ने भी रामायण टीका क्षेपक-रहित प्रकाशित की थीं। उनमें पादटिप्पणियों का अभाव था। इस ा में टिप्पणियों की भरमार है जिनसे विषय का प्रतिपादन भलीभाँति हो जाता ...स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का परिश्रम, स्वाध्याय, विद्वत्ता प्रत्येक अध्याय में ोचर होते हैं।"

अमर स्वामी जी महाराज (भूतपूर्व ठा० अमरसिंह जी महाराज) लिखते हैं—

"रामायण को देखकर ऐसा लगा कि इसमें कोई आवश्यक बात छूटी नहीं कोई अनावश्यक और अनर्गल बात रहने नहीं पाई। टिप्पणियों तथा शंकाओं के ासनों ने तो सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर दी है।"

महात्मा नारायण स्वामी जी की अनुपम पुस्तक

कर्त्तव्य-दर्पण

छपकर तैयार, पूरी कपड़े की जिल्द, मूल्य ४·००

वैदिक संस्कृति का सन्देश

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
की एक नवीनतम पुस्तक
मूल्य ३५.००

विषय-सूची

गोविन्दराम हासानन्द, नयी सड़क, दिल्ली-११००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

नये प्रकाशन

षड्दर्शनम्	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३५.००
सत्यार्थ सरस्वती	पं० मदनमोहन विद्यासागर	२५.००
वेद भगवान् बोले	प्रो० विष्णुदयाल (मौरिशस)	६.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (सरल अध्ययन)	विश्वनाथ विद्यालंकार	२.००
वैदिक राज-दर्शन	डा० रामेश्वरदयाल गुप्त (राज संस्करण)	५०.००
	(साधारण ,,)	३०.००
ईश्वर प्रत्यक्ष	मदनमोहन विद्यासागर	६.००
अनादि तत्त्व दर्शन	आचार्य लक्ष्मीदत्त दीक्षित	२५.००

पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कॉलर द्वारा सम्पादित

सत्यार्थप्रकाश (आठ परिशिष्ट, मोटे अक्षर) सजिल्द		२५.००
सत्यार्थप्रकाश (आर्ट पेपर पर छपा, सुनहरी जिल्द, राज संस्करण)		१०१.००
दयानन्द चित्रावली	रामगोपाल विद्यालंकार	८.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें		स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत	
मन की बात	४.००	वाल्मीकि रामायण	४०.००
दुनिया में रहना किस तरह	३.५०	शिवसंकल्प	४.००
तत्त्वज्ञान	८.००	ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
मानव और मानवता	१०.००	वेदसौरभ	४.००
प्रभुमिलन की राह	८.००	घरेलू औषधियां	३.५०
घोर घने जंगल में	८.००	वैदिक विवाहपद्धति	३.००
प्रभुभक्ति	१.००	विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
महामन्त्र	१.००	वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००	ऋग्वेदशतक	२.००
उपनिषदों का सन्देश	६.००	यजुर्वेदशतक	२.००
एक ही रास्ता	१.००	सामवेदशतक	२.००
मानव-जीवन-गाथा	४.००	अथर्ववेदशतक	२.००
सुखी गृहस्थ	२.५०	कुछ करो कुछ बनो	४.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००	चतुर्वेद शतकम्	८.००
प्रभु-दर्शन	७.००	मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
दो रास्ते	७.००	दिव्य दयानन्द	३.००
यह धन किसका है ?	६.००	सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
भक्त और भगवान्	४.००	सामवेद सूक्ति-सुधा	३.००
बोध कथाएँ	५.००	यजुर्वेद-सूक्ति-सुधा	३.००
Anand Gayatri Discourses	३.००	अथर्ववेद सूक्ति सुधा	५.००
श्री रणवीर लिखित		पं० वीरसेन वेदश्रमी	
आनन्द स्वामी जीवनी (उर्दू)	१०.००	वैदिक सम्पदा	३०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन ७.००

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल १५.००

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार (प्रेस में)

वैदिक संस्कृति का सन्देश ३५.००

प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथिवी सूक्त) १.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए०

यज्ञ की महिमा १.५०

नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ७.५०

सु-राज्य की रूपरेखा ०.५०

पं० बिहारीलाल शास्त्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल के रहस्य १.५०

श्री रामशरण वशिष्ठ

पशुहिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००

वेदों में मूल प्रकृति विज्ञान १.५०

वेदार्थ विज्ञान १.००

वेद और आत्मा २.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

श्रीमद् दयानन्द प्रकाश २५.००

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली ८.००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

रामचन्द्र देहलवी लेखावली १०.००

वेद व्यावहारिक है १.००

शंका-समाधान १.००

पूजा क्या क्यों कैसे ? १.००

ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई १.००

वेद का इस्लाम पर प्रभाव १.००

महात्मा नारायण स्वामी

कर्तव्यदर्पण ४.००

प्राणायाम विधि १.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.००

कई पुरस्कृत लेखों का संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता १.५०

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश २५.००

आर्योद्देश्यरत्नमाला ०.२५

व्यवहारभानु १.००

बालोपयोगी

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार ०.५०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.५०

स्वामी श्रद्धानन्द १.५०

गुरु विरजानन्द १.००

पं० लेखराम १.००

पं० गुरुदत्त १.००

स्वामी दर्शनानन्द १.००

स्वामी दर्शनानन्द

कथा-पच्चीसी २.५०

बालशिक्षा-धर्मशिक्षा १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.६०

नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.६०

नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.००

नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.००

नैतिक शिक्षा पंचम भाग १.२५

नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग १.२५

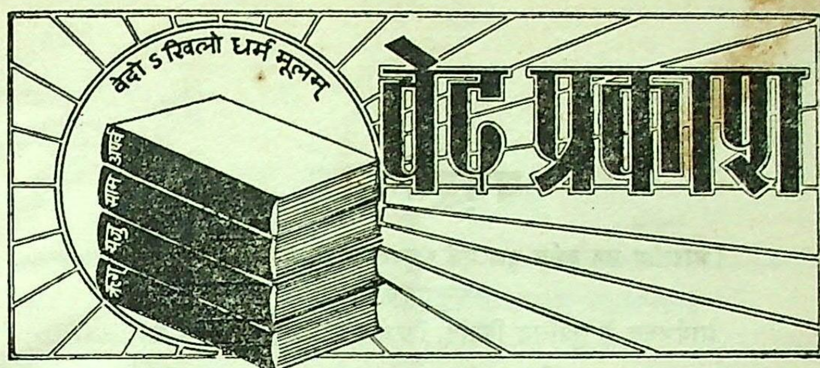
नैतिक शिक्षा सप्तम भाग १.५०

नैतिक शिक्षा अष्टम भाग १.५०

नैतिक शिक्षा नवम भाग २.००

नैतिक शिक्षा दशम भाग २.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८, नई सड़क से प्रसारित किया।



'वेदप्रकाश' के २९ वर्ष पूर्ण हुए

इस अंक के साथ 'वेदप्रकाश' अपने जीवन के २९ वर्ष पूर्ण कर रहा है। इन २९ वर्षों में 'वेदप्रकाश' ने साहित्य के रूप में आर्यजगत् की जो सेवा की है, वह किसी से छिपी नहीं है।

'वेदप्रकाश' के विशेषाङ्कों के रूप में 'दयानन्द-ग्रन्थ संग्रह', 'वाल्मीकि रामायण', 'वैदिक धर्म', 'वेद सौरभ', 'वैदिक उदात्त भावनाएँ', 'नित्यानन्द लेखावली', 'दयानन्द सूक्ति और सुभाषित' आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रदान किये गये हैं।

४-५ वर्ष से 'वेदप्रकाश' के १२ अंकों में से ९-१० अंक छोटे रूप में ही सही, होते विशेषाङ्क ही हैं। 'वेदप्रकाश' का प्रत्येक अंक न केवल पठनीय ही होता है, वह संग्रहणीय भी होता है।

इस वर्ष हम निम्न अंक देने का प्रयत्न करेंगे—

१. वेदाङ्क—वेद-मन्त्रों की विस्तृत व्याख्या

२-३. वेद में विज्ञान

४. वैदिक धर्म ही क्यों ?

५-६. महाभारत सूक्ति-सुधा

७. ईषोपनिषत्सार

शेष अंकों की घोषणा अगले अंक में करेंगे। हाँ,

अगस्त अंक

वेद-अंक होगा। इस अंक में वेद के ५ मन्त्रों की विस्तृत व्याख्या होगी। यह अंक उन्हीं ग्राहकों को भेजा जाएगा, जिनका शुल्क जुलाई के अन्त तक प्राप्त हो जाएगा। अपना शुल्क तुरन्त भेजें।

इस अंक के साथ प्रायः सभी ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है; अतः अपना शुल्क शीघ्र भेजें। प्रत्येक ग्राहक कम-से-कम दो नये ग्राहक बनाकर वेद-प्रचार और वैदिक साहित्य-प्रकाशन में योग दे।

—जगदीश्वरानन्द सरस्वती

षड्दर्शनम्

[भारतीय छह दर्शन मूल एवं अनुवाद-सहित एक ही जिल्द में]

अनुवादक

आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में रत

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वैदिक साहित्य में दर्शनों का विशेष महत्त्व है। वे वेदों के उपाङ्ग हैं। वेद में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष, योग, कर्मसिद्धान्त, यज्ञ आदि का बीजरूप में वर्णन है, दर्शनों में इन्हीं विचार-बिन्दुओं पर विस्तृत विवेचन है।

- यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में क्या है,
- यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में विरोध नहीं है,
- यदि आप जानना चाहते हैं कि यज्ञों का प्रकार क्या है,
- यदि आप जानना चाहते हैं कि भारतीय दर्शनों की विशेषताएँ क्या हैं तो

इस 'षड्दर्शनम्' को पढ़ जाइए। **संसार के इतिहास में प्रथम बार छहों दर्शन अनुवाद-सहित एक जिल्द में छपे हैं।** उत्तम कागज, दिव्य मुद्रण, आकर्षक गैट-अप, अन्त में सूत्र-सूची, आरम्भ में विस्तृत भूमिका। मूल्य : ३५ रुपये

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार लिखते हैं—

लेखक ने छहों दर्शनों को सरल हिन्दी में लिखकर अध्ययनशील जिज्ञासु जनता का बड़ा उपकार किया है।

आचार्य शिवपूजनसिंह जी कुशवाहा लिखते हैं—

आपने छह दर्शनों का आर्यभाषा में अनुवाद करके आर्यजगत् पर एक महान् उपकार किया है। 'मीमांसा दर्शन' पर तो पूर्ण भाष्य किसी भी आर्य विद्वान् का नहीं था, आपने इस कमी को भी पूरा कर दिया। पुस्तक की छपाई-सफाई आकर्षक है।

श्री भवानीलाल जी भारतीय, सम्पादक 'परोपकारी' लिखते हैं—

एक ही जिल्द में दर्शन के मूल वाङ्मय को प्रस्तुत करना सराहनीय है।

आचार्य रमेशचन्द जी एम० ए०, सम्पादक 'आर्यमित्र' लिखते हैं—

गम्भीर चिन्तनशील विद्वान् और साधारण प्रारम्भिक विद्यार्थी, दोनों अपनी योग्यता और मापदण्ड के अनुसार व्याख्याकार के प्रति आभारी रहेंगे।

पं० आनन्दप्रिय जी लिखते हैं—

स्वाध्यायशील व्यक्तियों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी एवं मूल्यवान् सिद्ध होगा।

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २६, अंक १२] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपये [जुलाई, १६८०

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

पृथिवी का दिव्यीकरण

[व्याख्याकार : स्व० विद्यानन्द विदेह]

एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासो अजुषन्त विश्वे ।
ऋक्सामाभ्यां सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण सामिषा मदेम ॥
इमा आपः शमु मे सन्तु देवीरोषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः ॥ (यजु० ४/१)

(१) हमने (पृथिव्याः इदं देवयजनं आगन्म) पृथिवी का यह देव-यजन प्राप्त कर लिया है। हमने इस वसुन्धरा के दिव्यीकरण की साधना का निश्चय किया है। हमने संकल्प किया है कि हम सारी वसुधा पर दिव्यताओं की व्याप्ति के सुयज्ञ का सत्र संचालित करेंगे।

यहाँ वेदानुयायी आर्यों के लिए एक महत्तर साधना का सुसंदेश है। ऋग्वेद ने सन्देश दिया था "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का, तो यजुर्वेद सन्देश दे रहा है सम्पूर्ण पृथिवी के दिव्यीकरण का। विश्व का आर्यकरण करने के उपरान्त हमें विश्व का दिव्यीकरण भी करना है।

प्रथमतः हमें विश्व का आर्यकरण ही करना होगा। पृथिवी की सम्पूर्ण मानव-जाति को आर्य बनाकर ही हम विश्व को दिव्य बना सकेंगे, अन्यथा नहीं। स्वच्छ श्वेत वस्त्र पर ही अच्छा रंग चढ़ पाता है। उसी प्रकार आर्य मानव ही दिव्य मानव बन सकेगा। आर्यता पर ही दिव्यता का रंग अच्छी प्रकार चढ़ पायेगा।

वेदानुसार आचरण करने से जहाँ मानव आर्य-आर्या बन पाता है, वहाँ योग-साधना के आश्रय से केवल आर्य पुरुष और आर्या महिलायें ही दिव्य-संदिव्य बन सकते हैं।

वैदिकता और आर्यता के अभिमानियों को यहाँ एक विचारणीय चेतावनी है। हमारे सामने कैसे-कैसे गुरु से गुरुतर और गुरुतर से गुरुतम कार्य हैं और हम कैसी मन्थर गति से साधना के पथ पर चल रहे हैं। क्या हम वास्तव में उस पथ पर चल भी रहे हैं?

अभी तो आर्यकरण ही नहीं हो पाया है। फिर कब और कैसे करेंगे हम विश्व का दिव्यीकरण ? आर्य-आर्यायें चेतें, उठें और सुसंगठित होकर वरदा वेदमाता के आदेशों का पालन करें, तब ही इस मही का सच्चे अर्थों में भाग्योदय हो पायेगा।

(२) दिव्यीकरण के द्वारा इस पृथिवी पर निवास करनेवाले मानवों को हम ऐसा दिव्य जन बनायेंगे और इस पृथिवी को हम दिव्य स्थली बनायेंगे (यत्र) जहाँ, जिस पर (विश्वे देवासः) सब दिव्य जन दिव्यताओं का (अजुषन्त) सप्रेम सेवन किया करेंगे, जहाँ के सब जन दिव्य बनकर दिव्यताओं का आस्वादन किया करेंगे।

(३) दिव्यीकरण के देवयजन से वह दिन आये कि (ऋक्-सामान्या यजुर्भिः) ऋग्वेद की स्तुति, सामवेद की उपासना और यजुर्वेद के श्रेष्ठ कर्म-विधायक मन्त्रों की साधना से (रायःपोषेण, इषा) आत्मैश्वर्य के पोषण और दृढ़ेच्छाशक्ति के द्वारा (सं-तरन्तः) सम्यक् तरते हुए, हम (सं-मदेम) सम्यक् आनन्द भोगें, आनन्द का संसेवन करें।

ऋग्वेद से स्तुति की जाती है। यजुर्वेद से यजन किया जाता है। सामवेद से ीतिमय उपासना की जाती है, अथर्ववेद से रायस्पोषण किया जाता है। यहाँ ऋक् शब्द ा प्रयोग स्तुति के अर्थ में, साम का प्रयोग उपासना के अर्थ में और यजुर्भिः का प्रयोग ंष्ठ कर्मों के अर्थ में हुआ है। स्तुति, उपासना और श्रेष्ठकर्मानुष्ठान से रायस्पोषण (आत्मिक ऐश्वर्यों का सम्पादन) स्वयमेव हो जाता है। स्तुति, उपासना और यजन (श्रेष्ठकर्मानुष्ठान)—रायस्पोषण के ये तीन ही साधन हैं।

इस साधनत्रय से जहाँ रायस्पोषण होता है, वहाँ इच्छाशक्ति का दृढ़ीकरण भी होता है। रायस्पोषण वह नौका है और दृढ़ेच्छा वह पतवार है जिनके अवलम्ब से जन दुःख और क्लेश को तरते हैं और आनन्द का आस्वादन करते हैं।

(४) (इमाः देवीः आपः मे शं उ सन्तु) ये दिव्य धारायें मेरे लिए शमनकारिणी ही हों, ताप-सन्ताप-निवारिणी ही हों।

"मे" शब्द का प्रयोग व्यक्तिवाचक है। "मे" से तात्पर्य यहाँ "व्यक्ति-व्यक्ति अथवा जन-जन के लिये" से है। पृथिवी पर देवयजन की वे दिव्य धारायें बहें कि जन-जन बोल उठे, "ये दिव्य धारायें मेरे लिए शंकरी ही हों, मेरे लिए मुबारिक ही हों।"

(५) (ओषध) दोषनिवारक देवयजन ! (त्रायस्व) पृथिवी-भर के प्राणियों के सन्ताप का निवारण कर।

देवयजन से ही, पृथिवी के दिव्यीकरण से ही दुःखों सन्तापों का निवारण होगा।

(६) (स्व-धिते) आत्म-धारणे ! (एनं मा हिंसीः) इसको मत हिंस, इस देवयजन की हिंसा न कर, इस देवयजन का परित्याग न कर।

आत्म-धारणा से ही देवयजन (दिव्यीकरण) का संचालन होता है। आत्म-धारणा के शिथिल पड़ जाने पर आर्यकरण और दिव्यीकरण का प्रवाह मन्द पड़ जाता है, बन्द भी हो जाता है।

आर्य-आर्यायें चिन्तन करें, गहन चिन्तन करें, इस मन्त्र पर और स्वधिति के आश्रय से पृथिवी के आर्यकरण तथा दिव्यीकरण की सुसाध को संसिद्ध करके ही दम लें।

वेद और सामाजिकता

[लेखक : रमाकान्त दीक्षित]

सामाजिकता का समीचीन ज्ञान आज मनुष्य के लिए नितान्त आवश्यक है। मनुष्य के हितों को ध्यान में रखकर ही समाज का निर्माण हुआ है। समाज की उन्नति मनुष्य की उन्नति है। मनुष्य समाज की एक इकाई है और जब अनेक इकाइयों का संगठन किन्हीं हितों को लेकर किया जाता है तो वह समाज कहलाता है। किसी भी समाज के मनुष्यों में जब तक सामाजिकता की भावना नहीं होगी, तब तक वह वास्तव में समाज नहीं कहा जाएगा।

जब तक मनुष्य के मन में सहनशीलता, उदारता, सौहार्द्र, प्रेम, एकता, सेवा-भाव आदि सद्गुणों का अभाव है, वह न तो नागरिक है और न सामाजिक प्राणी ही है। ऐसी दशा में उससे सामाजिकता की अपेक्षा रखना मूर्खता ही है।

एक-दूसरे की भावनाओं तथा विचारों का आदर करना एवं कुछ स्वयं झुकना, कुछ दूसरे को झुकाना तथा एकमत होकर निज ध्येय की ओर अग्रसर होना सामाजिकता की मुख्य शर्तें हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने पड़ोसी की या कोई देश अपने पड़ोसी देश की सुविधाओं का ध्यान न रखकर मनमानी करता है तो उसके ऐसे घिनौने कृत्य से समाज का अथवा विश्व-समाज का अस्तित्व लुप्त हो जाएगा। लड़ाई-झगड़ा होगा। मन का चैन कहीं खो जाएगा। अशांति का राज्य होगा।

वेद, मानव-जाति के हितार्थ जिस सामाजिकता का सन्देश दे रहे हैं, वह संसार में अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। वेद का दृष्टिकोण बहुत उदार है। वेद मानव-हितार्थ इस भूतल पर परस्पर-सौहार्द्र, मित्रता और सहकारिता की भावना को लेकर अवतरित हुए हैं। यजुर्वेद में उल्लेख है—

"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ (यजु० ३६ । १८)

अर्थात् मैं मनुष्य क्या सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं। हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें।

वेद तुच्छ से तुच्छ प्राणी की भी उपेक्षा नहीं करता, अपितु वह तो मनुष्य को विश्वजनीन दृष्टि प्रदान कर विश्वबन्धुत्व का पाठ पढ़ाता है।

कल्याण-कामना, सामाजिकता को पुष्ट करने के लिए वेद का एक अन्य सन्देश है—

'पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः। (ऋग्० ६ । ७५ । १४)

अर्थात्, एक-दूसरे की सर्वथा रक्षा और सहायता करना मनुष्यों का मुख्य कर्त्तव्य है।

समाज में विभिन्न वर्गों और सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। उनकी मान्यताएँ, विचार और रुचियाँ अलग-अलग हैं। किन्तु जब तक वे श्रद्धा और प्रीति-पूर्वक परस्पर

समझौता नहीं कर लेते तब तक समाज में वे रह नहीं सकते। यदि परस्पर समझौता नहीं करते तो युद्ध या संघर्ष अवश्यम्भावी है। परन्तु, मनुष्य में सामाजिकता का विकास तभी हो सकता है जबकि वह सहिष्णु हो, उदार हो, मधुभाषी हो, अपने कर्त्तव्य का उत्तम रीति से पालन करनेवाला हो। अथर्ववेद का वचन है—

"सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।' (अथर्व० ३। ३० २)

अर्थात् आपस में मिल-जुलकर रहो। कभी मत झगड़ो। सब मिलकर अपने कर्त्तव्य उत्तम रीति से करते जाओ। सदा उत्तम भाषण दिया करो। बुरे शब्द का उच्चारण कभी न करो।

समाज में मनुष्य केवल अपने लिए ही नहीं जीता, बल्कि वह दूसरे के लिए भी जीता है। और दूसरे के लिए वह तभी जीता है जबकि उसके मन में किसी के प्रति ईर्ष्या-द्वेष न हो। दया और प्रेम से मन भरपूर हो। अथर्ववेद में इसी बात को इस प्रकार कहा है—

'स हृदय सामनस्यमनविद्वेषं कृणोभि वः।' (अथर्व ३। ३० १)

अर्थात् सब लोग आपस में दया का भाव रखें। मन से उत्तम विचार करें और आपस में प्रेम का बर्ताव रखें। एक-दूसरे से कभी द्वेष न करें।

समाज सहयोग चाहता है। समाज में रहनेवाले व्यक्ति पर अपने पड़ोसी के अथवा एक देश पर अपने पड़ोसी देश के सुख, दुःख, हित, अहित का काफी प्रभाव पड़ता है। इसलिए यह आवश्यक है कि वे अपने पड़ोसी का ध्यान रखें। आपद्काल में उसकी सहायता करें। सम्भव है कल उस पर भी वैसा ही समय बीते। इसीलिए समाज में परस्पर मिल-जुलकर चलने की भावना श्रेयस्कर है। इस सहकारी भावना की ऋग्वेद ने भूरि-भूरि सराहना की है—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानानां उपासते॥ (ऋग्० १०। १२ २)

अर्थात् मिल-जुलकर चलो। मिल-जुलकर भाषण करो। अपने मनों को सुसंस्कृत करो। जिस प्रकार उत्तम ज्ञानी विद्वान् अपने कर्त्तव्य का पालन किया करते हैं इसी प्रकार तुम भी किया करो।

आज समाज से उपर्युक्त भावनाओं का लोप हो रहा है। युद्ध एवं अशान्ति की काली घटाएँ सिरों पर मदोन्मत्त हो झूम रही हैं। एक देश दूसरे देश को हड़पना चाहता है। इसका मूल कारण सामाजिकता का अभाव ही है। विश्व-शांति, विश्व-मैत्री, विश्व-बन्धुत्व, विश्व-नागरिकता, विश्व-सामाजिकता और विश्व-कल्याण आदि वेद के बतलाए हुए सद्मार्ग पर चलते हुए ही सम्भव हैं।



वेद की नौका ही दुःख-सागर से पार पहुँचायेगी

—स्व० समर्पणानन्द सरस्वती

मैं उस पवित्र भूमि पर खड़ा हूँ जहाँ तिब्बत से उतरकर वैदिक लोगों ने पहिले-पहिल बस्तियाँ बसाई थीं। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है "प्राच्यो ग्रामता बहुलविष्टाः प्रत्यञ्चि दीर्घारण्यानि भवन्ति।" अर्थात् भारत के पूर्व के ग्रामसमूहों में बहुत घनी आबादी है किन्तु पश्चिम में लम्बे-लम्बे जंगल पड़े हैं। महाभारत के कर्ण-शल्य-संवाद से भी इसकी पुष्टि होती है। कर्ण-शल्य-संवाद में लिखा है—"पंचानां सिन्धुषष्ठानामन्तरं ये समाश्रिताः वाही का नाम ते देश न तत्र दिवसं वसेत्" इससे स्पष्ट है कि महाभारत-काल तक यह प्रदेश प्रायः जंगल था, इसमें जंगली लोग बसते थे। कुरुजांगल शब्द से भी इसकी पुष्टि होती है। ब्रिटिश राज्यकाल तक कुरुक्षेत्र से पश्चिमोत्तर की ओर बहुत-सा प्रदेश जंगल था और मिण्टगुमरी, लायलपुर आदि उपनिवेश ब्रिटिशकाल में इसी प्रदेश में बसाए गये। जैसा कि पाश्चात्य लोगों का विश्वास है कि वैदिक लोग सिन्धूपार से भारत में आये तो 'प्रत्यंचि दीर्घारण्यानि भवन्ति' यह बात असम्भव थी। शतपथ ब्राह्मण में कौशल तथा विदेह का तो वर्णन मिलता है, पंजाब के प्रदेशों का नहीं। इससे स्पष्ट है कि वैदिक लोग तिब्बत से उतरकर पहिले नेपाल के रास्ते बिहार की ओर आए, फिर वहाँ से बंगाल तथा उत्तर प्रदेश की ओर फैलते चले गए। इससे स्पष्ट है कि बंगभूमि भारत की आदि बस्तियों में से है। वर्तमान युग में भी इस भूमि का महत्त्व और बढ़ गया है।

भारत की स्वतन्त्रता के लिए १८५७ में जो आन्दोलन आरम्भ हुआ, उसका असली रूप १९०७ में बंग-विच्छेद के साथ निखर उठा। उस समय भारत को जितने सशस्त्र क्रान्तिकारी बंगाल ने दिये, उतने किसी ने नहीं दिये और अन्त में इस वीर-परम्परा को नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने चार चाँद लगा दिये। फिर मैं विचार-क्षेत्र में क्रान्ति मचानेवाले उस महान् नेता बंकिमचन्द्र को कैसे भूलूं जिन्होंने अपने 'आनन्द मठ' तथा वन्देमातरम् से एक नवीन युग की सृष्टि की। मत भूलिये इस प्रसंग में परिव्राजक शिरोमणि विवेकानन्द को जिन्होंने विश्व की एकता का सन्देश अमेरिका को दिया और स्वदेश-भक्ति का पाठ भारत को पढ़ाया। फिर यह बंगभूमि महाकवि रवीन्द्र की जन्म-भूमि है जिसने 'विश्वभारती' द्वारा विश्व की एकता का पवित्र सन्देश सारे विश्व को दिया। फिर आप कहेंगे कि राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन, शरच्चन्द्र इन महा-विभूतियों को क्यों भुलाते हो, तो मैं कहूँगा कि भुलाता किसी को नहीं, पर बंगमाता की गोद ने इतने रत्न पैदा किये हैं कि जितने नाम मुझ सरीखे अनाड़ी को याद आए उनने इतना समय ले लिया। फिर यदि कोई जानकार होता तब तो सभापति का भाषण इन नामों से ही भर जाता। इसलिए हे रत्नगर्भे बंग-वसुन्धरे, तुमको बार-बार प्रणाम!

परन्तु मैं कोरा स्तुति-पाठक तो नहीं, मैं तो परिव्राजक हूँ। इतनी वीरप्रसू और रत्नगर्भा होते हुए भी वह बंगभूमि इस्लाम के कलंक जंगली मुस्लिमों से सदा पिटती रही। आज से ५० वर्ष पूर्व बंगाल में हिन्दू बहुसंख्या में थे, किन्तु ५० वर्ष में काया पलट गई। विवेकानन्द, रवीन्द्र और सुभाष की आँखों के सामने हिन्दुओं पर वह अत्याचार हुए और हो रहे हैं कि जिनका वर्णन असम्भव है। हिन्दू समाज की बहुत-सी सम्पत्ति ईसाई लूट ले गए, बहुत-सी नकली मुसलमान। यह सच्चे मुसलमान नहीं यह ठीक है, परन्तु इस्लाम के नाम पर अत्याचार करनेवाले इन दुरात्माओं का बंग-वसुन्धरा के पास बख्तियार खिल्जी के दिन से लेकर आज तक कोई इलाज नहीं। आपकी आँखों के सामने दूसरी बार बंग-भंग हो गया परन्तु आप चुप हैं, इसका कारण क्या है ?

बंगभूमि का वेद से सम्पर्क छूट जाना अत्यन्त घातक है। कुरान, बाइबल और मार्क्स के कैपिटल से लोहा लेने की शक्ति वेद और वर्णव्यवस्था के अतिरिक्त किसी में नहीं किन्तु बंगभूमि वेद-सम्पर्क-शून्य है।

बंगभूमि ने एक वेदों का विद्वान् पैदा किया। उसका नाम था अरविन्द घोष, परन्तु वह भी पाण्डेचिरी में पला, बंगभूमि में नहीं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान हुआ। मैं अफ्रीका में था। अफ्रीका से लौटा तो मेरा कार्यक्रम सीधा पेशावर जाने का बना। आर्यसमाज का उत्सव हो रहा था। आर्यसमाज के मन्त्री मुझसे कहने लगे, पण्डितजी मनुष्य अपने जीवन में कभी-कभी ऐसी घटना देख लेता है कि उसे शान्ति प्राप्त हो जाती है और वह कहता है कि चलो मरने से पहिले हमने एक ऐसी वस्तु देख ली जिसे देखकर हम आनन्दपूर्वक, यह कहते हुए मरेंगे कि बिना कुछ देखे तो नहीं मरे। मैंने पूछा वह क्या घटना है ? बोले, पण्डितजी मैं इसी पेशावर में पैदा हुआ और बड़ा हुआ। पठानों की तरह पश्तो समझता और बोलता हूँ। इस पेशावर में यह एक साधारण परम्परा थी कि जब कोई हिन्दू साहुकार का लड़का अपने माता-पिता से लड़ पड़ता था तो तंग आने पर कह देता था कि बहुत मत सताओ नहीं तो मस्जिद में जाकर मुसलमान हो जाऊँगा। इस पर माँ-बाप चुप हो जाते थे। मेरे मकान के सामने एक पठान का मकान है। अभी कुछ दिन पहिले की घटना है कि एक पठान नौजवान अपने बूढ़े पिता से लड़ा। जब बात बहुत आगे बढ़ गई तो पठान नौजवान अपने बाप से कहने लगा बहुत मत सताओ नहीं तो सामने आर्यसमाज में जाकर चोटी रख लूंगा और आर्य बन जाऊँगा। बस यह हजारों वर्ष से लिपटा हुआ आर्य-झण्डा आर्यसमाज ने आज फिर खोल दिया है। बंगवासियो ! तुम हजार सिर पटको परन्तु यह महाशक्ति जिसके अभाव ने तुम्हें बंगदेश में बहुसंख्यक से अल्पसंख्यक बना दिया तुम्हें वेद की शरण में आए बिना नहीं मिलेगी। इसलिए बंगाल को आर्यसमाज की आवश्यकता है।

बंगालियों की प्रखर बुद्धि की बड़ी प्रशंसा सर्वत्र होती है। वे हैं भी प्रखर-बुद्धि। परन्तु बंगालियों का हाल देखकर एक पुरानी कहानी याद आती है। कहते हैं एक दिन एक मल्लाह की नाव में एक गणितशास्त्री और एक गायनाचार्य सवार हुए, नाव चली। गणितशास्त्री ने नाविक से पूछा, मल्लाह ! तुमने गणित पढ़ा ? मल्लाह ने उत्तर

दिया, नहीं महाराज, मैं तो कुछ भी नहीं पढ़ा। गणितशास्त्री बोले, अरे मल्लाह तुमने आधा जीवन नष्ट कर दिया।

अब गायनाचार्य की बारी आई। गायनाचार्य ने मल्लाह से पूछा, मल्लाह तुमने गाना सीखा? मल्लाह बोला, महाराज मैं गाना क्या जानूँ! गायनाचार्य बोले, अरे मल्लाह तुमने अपना आधा जीवन व्यर्थ खो दिया। थोड़ी देर में तूफान उठा। नाव डगमगाने लगी। मल्लाह ने गणितशास्त्री और गायनाचार्य से पूछा, आपने तैरना सीखा? दोनों बोले, नहीं भाई तैरना तो नहीं सीखा। मल्लाह बोला, तो गणितशास्त्रीजी और गायनाचार्यजी मैंने तो आधा जीवन खोया था, पर वह देखो तूफान कह रहा है कि आपने तैरना न सीखकर सारा ही जीवन व्यर्थ खो दिया।

बंगदेश की नाव में बैठे हुए राममोहन राय, रवीन्द्र, बंकिम, शरत् सबसे आर्यसमाज कहता है कि हे संसार की विभूतियो, कुछ मल्लाह की भी सुन लो, वेद को त्यागकर आपने सारा ही जीवन खो दिया।

बङ्गाल माँ काली का उपासक है। रुद्र नाम सेनापति का है। पार्वती नाम सेना का है, काली नाम उसका है जिसे आजकल गोरिल्ला सेना कहते हैं। है वह भी रुद्र की पत्नी परन्तु पाकिस्तान से प्रतिदिन गोरिल्लों के हमले होते हैं। पाकिस्तान में प्रतिदिन हिन्दुओं को कुचला जाता है परन्तु बङ्गमाता सोई पड़ी है। यहाँ हिन्दुओं की फिर दुर्दशा होनेवाली है। मुसलमान तथा ईसाइयों का काम तो जारी है परन्तु बङ्गाल में वैदिक धर्म के नाश के लिए कम्यूनिस्ट और पैदा हो गए हैं। इनकी हिम्मत इतनी क्यों बढ़ रही है? इसीलिए, क्योंकि बङ्गभूमि की नाव में सब विभूतियाँ बैठी हैं परन्तु तैरने की विद्या कोई नहीं जानता। बङ्ग देश वेद-ज्ञान से कितना शून्य है, इसके दो उदाहरण पर्याप्त होंगे। बम्बई के 'भारती विद्या भवन' से एक पुस्तक निकली है जिसका नाम है 'Vedic Age;' इस पुस्तक में ऐसी-ऐसी विचित्र बातें लिखी हैं, जिन्हें पढ़कर लालबुझक्कड़ भी शरमा जाए।

इसमें लिखा है आर्यों ने रुद्र-पूजा द्राविड़ियन लोगों से सीखी, क्योंकि रुद्र देवता द्राविड़ियन देवता है। इसका प्रमाण यह है कि रुद्र शब्द रुधिर शब्द का परिवर्त्तित रूप है। द्राविड़ियन लोग अपने देवता को रुधिर से लीपते थे। इसीलिए रुद्र को नील लोहित भी कहते हैं और रुद्र का नाम शम्भु है, यह शब्द द्राविड़ियन चम्बू का अपभ्रंश है जिसका अर्थ ताम्बा है (Vedic Age 9162)। इस सारे अनर्गल प्रलाप के लेखक एक बंगाली सज्जन हैं।

इसमें इतनी निराधार कल्पना है—

(१) रुद्र शब्द रुधिर का रूपान्तर है यह कोरा झूठ है। रुद्र शब्द रुद्र धातु से बना है जिसका अर्थ है शत्रुओं को रुलानेवाला; यह सेनापति का नाम है। रुद्र शब्द रुधिर का ही रूपान्तर है इस बात के लिए कोई जरा-सा भी आधार नहीं।

(२) शम्भु शब्द किसी का अपभ्रंश नहीं। शम् का अर्थ है शान्ति और भू का अर्थ होने का स्थान, शम्भू का अर्थ है शान्ति का निवास-स्थान, इसे चम्पू के साथ जोड़ना चण्डूखाने की गप्प है।

शरीर में जीवात्मा इन्द्र तथा प्राण रुद्र अर्थात् इन्द्र का सेनापति है। जब वह नीले अर्थात् गन्दे रुधिर पर आक्रमण करता है तो उसका रंग लाल हो जाता है। युद्धकाल में सेनापति शत्रु पर प्रहार करता है तो नीले कवच को फाड़कर लाल रुधिर प्रवाहित होता है, इसीलिए सेनापति रुद्र को नील लोहित कहते हैं। यहाँ आर्यन और द्राविड़ियन का झगड़ा कहाँ से आ घुसा ?

दूसरी बात इन सज्जन ने यह लिखी है कि आर्यों ने उपनिस्थेन्द्रिय की पूजा आट्रिक नस्ल के मुण्डा लोगों से सीखी।

हमारा कहना है कि आर्यों ने उपस्थ-पूजा कभी की ही नहीं तो किसी से सीखने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह उपस्थ-पूजा का इशारा कदाचित् शिवलिंग-पूजा की ओर है, सो इन महानुभाव से जिनका नाम श्री सुनीतिकुमार चटर्जी है, कोई पूछे कि शिवलिंग की आकृति उपस्थेन्द्रिय से मिलाकर तो दिखाइये।

शिवलिङ्ग की मूर्ति एक दीपक की मूर्ति है। यदि यह योनि में प्रविष्ट लिङ्ग की मूर्ति होती तो इसका पतला और नोकीला भाग नीचे की ओर होना चाहिये था।

महात्मन्! यह उस दीपक की मूर्ति है जिसके लिए श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है :—

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोमपा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥

इससे भी अधिक स्पष्ट प्रमाण शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। प्रमाण इस प्रकार है :—

अग्निर्वे स देवस्य स्यैतानि नामानि शर्व इति यथा प्राच्या।
आ चक्षते भव इति यथा वाहीकाः पशूपती नाम् पती रुद्रोऽग्नि ऋति॥

शत० १, ७, ३, ८।

शर्व, भव, पशुपति, रुद्र, अग्नि, यह सब अग्नि के नाम हैं। इसीलिए पुराणों में शिवलिङ्ग को ज्योतिर्लिङ्ग कहा है।

फिर जब भारत में किसी ने शिव-पूजा सीखी ही नहीं तो किससे सीखी ? यह प्रश्न उतना ही नहीं होता परन्तु फिर भी न जाने सुनीतिकुमार चटर्जी सरीखे ख्याति-प्राप्त विद्वान् ने ऐसी अनर्गल बात कैसे लिख दी। कुछ लोग ऋग्वेद में आये हुए शिश्नदेव (ऋ० ६०२१०५ तथा १०६६३) को देखकर शिवलिङ्ग की कल्पना करने लगते हैं; परन्तु सायण ने इस शब्द का स्वाभाविक अर्थ कामातुर दुष्ट पुरुष ही किया है। शिव-लिङ्ग के पुजारी शिश्नदेव कभी नहीं कहला सकते क्योंकि उसकी आकृति शिश्न से मिलती ही नहीं, दीपशिखा से मिलती है। परन्तु श्रीमान् एस० के० चटर्जी Vedic Age के पृष्ठ १६३ पर लिखते हैं—

The phallic symbol of Siva, the linga appears to be both is in form and name, of Austric or Prato Austialaid origin.

यह सारा लेख आमूलचूल निराधार है। शिव शब्द के सम्बन्ध में वह लिखते हैं—

The name Siva has been explained as being partially of Drividian origin.

यह किसने किसके सामने व्याख्यान किया तो समझ में नहीं आता। हमारे सारे संस्कृत साहित्य में आर्यन-द्राविड़ियन नामक दो जाति अथवा दो सभ्यताओं का कोई वर्णन नहीं। आर्य शब्द किसी वंशविशेष, रङ्गविशेष अथवा रूपविशेष का भी द्योतक नहीं। इस विषय पर मैं स्वतन्त्र रूप से एक लघु पुस्तक लिख रहा हूँ जो शीघ्र ही प्रकाशित हो जायेगी। परन्तु आज तो मैं इस आर्य सम्मेलन के सभापति-पद से केवल इतना कहना चाहता हूँ कि बङ्गभूमि आज वेदज्ञान-शून्य है। इसका कारण यह नहीं कि बङ्ग-वासियों की बुद्धि में वेदज्ञान ग्रहण करने की शक्ति नहीं है। इसका कारण केवल इतना ही है कि बङ्गभूमि के सुपुत्रों का ध्यान इस ओर गया ही नहीं। एक बार बङ्ग-वासी जाग उठें तो उनकी प्रखर बुद्धि ऐसे तत्त्व खोज निकालेगी जहाँ तक हम लोग अभी तक पहुँच भी नहीं पाये। परन्तु जब तक वह दिन नहीं आता, हमें बङ्गभूमि में वेद का प्रचार करना है। मुझे अत्यन्त हर्ष है कि बङ्गभूमि जाग रही है। इस जागृति के उत्पन्न होते ही हम अपना ध्यान विदेशों में वैदिक धर्म-प्रचार की ओर लगावेंगे और उस पवित्र यज्ञ में सबसे बढ़िया आहुति दान करनेवाले युवक यदि हमें बङ्गभूमि से न मिले तो सचमुच विस्मय का स्थान होगा।

आप नाना विद्याओं के पण्डित हैं परन्तु एक बात कैवर्त्त की भी सुन लीजिये। वेद की नौका को सम्भालिए तथा वैदिक साहित्य के समुद्र में तैरने का भी अभ्यास कीजिये, नहीं तो पश्चिम का तूफान नाव को ले डूबेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिस तत्परता से देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित्र की खोज में जीवन लगाया था, उसी तत्परता से बंगवासी आर्य समाज के आन्दोलन को भी अपने हाथ में लेंगे। वेद का प्रचार होगा, शुद्धि का चक्र चलेगा और यह धर्म की नौका सारे मानव-समाज को दुःख से पार करने में समर्थ होगी। □

सुवचन-सुधा

भद्रं नो अपि वातय मनः । ऋ० १०, २५, १
(हे परमात्मन्) मेरे मन को कल्याण की ओर ले चलो ।

असंतापं मे हृदयम् । अथर्व० १६, ३, ६
मेरा हृदय संताप से हीन हो ।

वि नो राये दुरो वृधि । ऋ० ६, ४५, ३
(हे प्रभो) ऐश्वर्य के लिए हमारे द्वार खोल दो ।

भविष्यद्वा इदमुपजीवामः श्वः श्वः श्रेयान् भवति । मै० सं० ३, १, ९
हम भविष्यत् को ही सामने रखकर जीवन को धारण करते हैं । आगे आनेवाला प्रत्येक दिन एक-दूसरे से बढ़कर हो ।

गाव इहागमन्...उप नो गृहम् । ऋ० ६, ४६, २
हमारे घर में गौएँ आएँ ।

पयो हि वा एतस्मादपक्रामति अथैव पाप्मना गृहीतः । तै० सं० २, ३, १३, २
जिससे दूध छूट जाता है, वह पाप से पकड़ा जाता है ।

असदाचरितं ह्येतद् यदात्मानं प्रशंसति । म० भा० उद्यो० प० ६०, २४
अपने मुँह से अपनी प्रशंसा करना यह अच्छा काम नहीं है ।

श्री सुखस्येह संवासा, सा चापि परिपन्थिनी । म० भा० उद्यो० प० ४२, ३१
लक्ष्मी जहाँ सुख की प्राप्ति का साधन है, वहाँ वह पथ-भ्रष्ट भी करनेवाली है ।

इच्छन्ति बहुलं सन्तः प्रतिकर्तुं महत् प्रियम् । म० भा० उद्यो० प० ५९, ७
सज्जन लोग प्रतिकार के रूप से अधिक भला करना चाहते हैं ।

वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया । म० भा० उद्यो० प० ८८, ५२
न विद्या से और न ही धन से मनुष्य आर्य बनता है । प्रत्युत (सद्) आचरण से आर्य होता है ।

न वै मानं च मौनं च सहितौ चरतः सदा । म० भा० उद्यो० प० ४२, १०
मान और मौन इकट्ठे नहीं रहते । मानी अपने कथन से ही अपनी श्लाघा करता है ।

वृत्तेः कृपणलब्धाया अप्रतिष्ठैव ज्यायसी । म० भा० उद्यो० प० ८८, ७३
कृपणता से प्राप्त हुई वृत्ति से वृत्ति का न होना अच्छा है ।

कामः शरीरे हृदयं दुनोति । म० भा० उद्यो० प० २६, ७
काम शरीर में व्याप्त हुआ हृदय को दुःखी करता है ।

अमर्षजो हि संतापः पावकाद्दीप्तिमत्तरः । म० भा० व० प० ३५, ११
क्रोध से उत्पन्न हुआ दाह अग्नि के दाह से भी अधिक होता है ।

अन्तेषु रेमिरे धीरा न ते मध्येषु रेमिरे ।
अन्तप्राप्ति सुखामाहुः दुःखमन्तरमन्तयोः ॥ म० भा० उद्यो० प० ८८, ९६
बुद्धिमान् लक्ष्य की प्राप्ति पर ही प्रसन्न होते हैं । बीच में ही पड़े रहने से उन्हें दुःख होता है । इसलिए अन्त को पा लेना सुख है, बीच में फँसे रहना दुःख है । □

एक गृहस्थ योगी की कथा

—पं० दौलतराम शास्त्री

महाराजा प्रतनवेन ने एक हलका-सा हल बनवाया। स्वयं बैलों के स्थान उसके आगे जुत जाते और रानी हल के पिछले भाग कील को थामती। अपने हाथों से उपजाये अन्न को पकाकर ही दोनों पति-पत्नी खाते और स्वयं उत्पन्न की हुई रूई के सादे वस्त्र पहनते। राज्य के खजाने को राज्याधिकारियों के वेतन आदि के काम में प्रयुक्त करते। अपने-आपको प्रजा का सेवक कहा करते थे।

एक दिन महारानी को मिलने के लिये नगर की सेठानियाँ तथा अन्य अधिकारियों की नारियाँ आईं। उनके वस्त्र-आभूषण बहुमूल्य थे। उनमें से एक ने महारानी से कह ही दिया—"महारानी! यह क्या बात है आप महाराज की सहधर्मिणी होकर इतने सादे वस्त्र पहनती हैं, और आपके भूषण भी न होने के बराबर!!! हम आपकी प्रजा हैं। आपकी छत्रछाया में रहकर इतने आनन्द से जीवन व्यतीत करती हैं। हमारी भूषा से शतगुणा अच्छी आपकी वेशभूषा होनी चाहिये। आप सादा ही रहें, परन्तु फकीरों की भाँति तो रहना उचित नहीं।"

महारानी ने उत्तर दिया—बहिनो! मेरे स्वामी की इतनी आय नहीं जिसमें मेरे इतने बढ़िया वस्त्राभूषण बन सकें।

सेठानी—राज्य का इतना बड़ा कोश है कि आप चाहें तो सोने व रत्नों के ही वस्त्रालंकार बनवा सकती हैं।

महारानी—राज्य का कोश प्रजा का है। उससे हमारा क्या सरोकार? वह प्रजा के हित के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। हमें पराये धन को उपयोग करके नरकगामी होना पड़ेगा।

यह सुनकर सब बिदा हुईं। परन्तु महारानी को मन में क्षोभ अवश्य हुआ और महाराज के मिलने पर कहने लगी—पतिदेव! आज मुझे सेठानियाँ मिलने आईं। मैं न उनका अच्छे पदार्थों से आतिथ्य कर सकी और न उनके समक्ष ऊँची दृष्टि करके बैठ सकी। वे तो महारानियाँ विदित होती थीं और मैं सेविका!! उनमें से एक ने मुझे निर्धनों-से वेष के विषय में दो-चार प्रश्न कर ही दिये। मुझे बड़ी लज्जा आई। आप भले ही जैसे रहें परन्तु मुझे अवश्य किसी विशेष अवसर के लिए गहने तथा कपड़े बनवा दें।

महाराजा ने इसमें अपनी बेबसी प्रकट की और कहा कि देवी! सत्य के अलंकार पहनो। मनशुद्धि के शुद्ध वस्त्रों के सामने यह बाहर से चमकीले कपड़े कोई महत्त्व नहीं रखते। तुम नहीं जानती। यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय के प्रथम मंत्र में लिखा है—

मा गृधः कस्यस्विद्धनम्। यजु० अ० ४० मं० १

किसी के धन व अधिकार पर छापा मत मारो। और भी अगले मंत्र में लिखा है **"कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः"** निष्काम पुण्यकर्म करते जाओ और

सौ वर्ष ऐसे ही करते-करते संसार में रहो और निर्लेप रहो, इस प्रकार के व्यक्ति गृहस्थ में रहते भी योगी हैं।

महाराज के इन तथ्य वचनों का महारानी के अन्त:करण पर प्रभाव अधिक नहीं हुआ। उदास-सी रहने लगी। महाराज भाँप गये कि इसने चमकी भूषावाली सेठानियों के समक्ष अपने-आपको निरादृत समझा है। अत: उसके सामने ही मन्त्री को बुलवा करके कहा कि मन्त्रिन्! महारानी के लिये भूषण बनवाने हैं। प्रजा के धन में से हम व्यय नहीं कर सकते। जाओ लंकापति रावण के पास। उसे कह दो कि एक मन सुवर्ण हमें कर दो।

मंत्री रावण के पास पहुँचा और बोला कि लंकापते! महाराज प्रतनवेन की आज्ञा है कि एक मन सुवर्ण कर दो। यह सुनकर रावण क्रोधावेश में अपने मंत्री से बोला, इस अशिष्ट को बन्दी करके कारावास में डाल दो। मंत्री ने कहा कि महाराज!

उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु दूतो वदति नान्यथा।
सदैवावध्यभावेन यथार्थस्य हि वाचक:॥

शस्त्रों के उद्यत होने पर भी दूत तो वही कहेगा जो उसके स्वामी ने सन्देश भेजा होता है। यह राजनीति है। दूत अवध्य होता है उसे मारना नहीं चाहिये। उसने तो यथार्थ ही कहना होता है। इससे इसे कुछ नहीं कहना चाहिये। अगर आप न देना चाहें तो इनकार कर दें।

मंत्री की इस सलाह से रावण ने उसे नकार कर दिया। राजमंत्री ने नदी के किनारे आकर एक मट्टी की लंका ज्यों-की-त्यों सुवर्ण की लंका जैसी तैयार करके रावण को सन्देश भेजा कि या तो कर दे दो अन्यथा आपकी लंका को नष्ट हुई समझो। रावण पर इस सन्देश का भी कुछ प्रभाव न हुआ। मंत्री ने स्नानादि करके मट्टी के सामने अपनी योग-प्रक्रिया का नमूना प्रारम्भ किया और कहा—

"यदि महाराज प्रतनवेन सच्चा तपस्वी व योगी है तो उसकी दुहाई है—लंका का द्वार गिर जावे।" कहते ही लंका का उत्तर द्वार गिर गया, और उधर लंका का भी उत्तर द्वार भूमि पर धड़ाम से गिरा। पुन: इसी प्रकार दक्षिण द्वार के लिये कहा। उस पर भी ऐसा प्रभाव हुआ। मन्दोदरी ने रावण को समझाया कि महाराज प्रतनवेन पूरा तपस्वी है। उसकी मानसिक शक्ति की कोई थाह नहीं, अत: दे दो सुवर्ण! इसमें अपमान न समझो। वह तो साधु है!!!

रावण ने एक मन सुवर्ण दे दिया। महाराज का मंत्री सुवर्ण लेकर महाराज व महारानी के समक्ष उपस्थित हुआ। जो कुछ वहाँ वृत्तान्त हुआ कह सुनाया। महाराज ने रानी को कहा कि लो इस सुवर्ण से जो चाहो बनवा लो। रानी की आँखें खुलीं। हाथ जोड़कर बोली—महाराज! मैं भूल में थी। अब समझ गई तप में कितना बल है। मुझे पूर्ववत् सादा रहना ही रुचता है। यही श्रेय मार्ग है। यह कह वह सुवर्ण धर्म-कार्यों में व्यय कर दिया।

निष्कर्ष

यदि कोई व्यक्ति अपने मन को सच्चे रूप में शुद्ध रक्खे तो वह कितना बलवान हो सकता है—इसका कोई अनुमान नहीं। जब यह मन बिगड़ता है तो महा हानिकर होता है, परन्तु जब यह सीधा होता है तो महा असाध्य से असाध्य कार्य कर दिखाता है। यजुर्वेद में इसे देवताओं का भी देवता कहा है।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

जब मनुष्य जागता है तो यह मन दूर चला जाता है। वैसे ही मानव के सो जाने पर भी गति करता रहता है। नक्षत्रों से भी यह परे चला जाता है। यह एक परम ज्योति है। भगवान् मेरे इस मन को कल्याण-संकल्पोंवाला कीजिये।



महर्षि के प्रति एक पठान की श्रद्धांजलि

दयानन्द ही हिन्दुओं को बचा सकता है

—ताराचन्द गाजरा

यह बात १९१२ की है, मैं नासिक गुरुकुल के उत्सव में सम्मिलित होने के पश्चात् कराची को जा रहा था। अहमदाबाद से हैदराबाद तक मीटर गेज की गाड़ी चलती थी। दैव योग से मैं ऐसे डिब्बे में सवार हो गया जिसमें एक कद्दावर पठान और कुछ गुजराती सज्जन बैठे हुये थे। मैं चूंकि थका हुआ था इसलिए थोड़ी-सी नींद आ रही थी।

गुजराती सज्जन और पठान आपस में वार्त्तालाप कर रहे थे। सम्भव है यह वार्त्तालाप हिन्दू-जाति की स्थिति के सम्बन्ध में था। पठान ने एकाएक ही कहा कि हिन्दू-जाति के अन्दर एक संन्यासी हो चुका है, यदि उसके पीछे हिन्दू लोग चलेंगे तो जाति उठ सकेगी।

जब मैंने यह शब्द सुने तो मैंने पठान की ओर देखकर कहा—'लाला, आप संन्यासी के नाम को जानते हैं?' पठान ने तुरन्त उत्तर दिया, 'उनका नाम दयानन्द सरस्वती था। फिर मैंने उससे पूछा कि ये पता आपको कैसे लगा और किस आधार पर आप ऐसा समझते हैं? पठान ने उत्तर दिया—'मैं सर प्रतापसिंह का अर्दली रह चुका हूँ। सर प्रतापसिंह जी जो बातें इस संन्यासी के बारे में कहते थे, उनको जानकर मैं कहता हूँ कि इस संन्यासी की शिक्षाओं को हिन्दू लोग अपनायेंगे तो अवश्य उन्नति-पथ पर चल पड़ेंगे।'



जीवन यज्ञ है : श्रेष्ठ कार्यों के लिए है।

[लेखक : सुरेशचन्द्र वेदालंकार]

यज्ञस्य शिवे संतिष्ठस्व। यजु० २।१९

(यज्ञस्य) जीवन-यज्ञ के (शिवे) शुभ अनुष्ठान के सुसंपादन में (संतिष्ठस्व) संस्थित हो जा, लग जा।

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। ऋ० १।१६४।३५

सम्पूर्ण संसार की नाभि यह यज्ञ है।

मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। यजु० १८।११

मेरी मति और सुमति यज्ञ से सामर्थ्यशाली होवें।

यज्ञ शब्द 'यज्' धातु से बना है। यज् का अर्थ है देवपूजा, संगतिकरण और दान। इन सब बातों को एक वाक्य में कहना हो तो यज्ञ का अर्थ है 'श्रेष्ठतम या प्रशस्ततम कर्म'। सबसे श्रेष्ठ, सबसे प्रशस्त या सर्वोपयोगी जो कर्म होता है वही प्रशस्ततम कर्म कहलाता है। जिस कर्म से श्रेष्ठों का सम्मान, सबके साथ अभिन्नता और परोपकार होता है वह प्रशस्ततम कर्म है। इस प्रकार के कर्मों में अपने-आपको समर्पित करने से अपना मन शक्तिशाली और समर्थ होता है। तात्पर्य यह है कि अपने-आपको ऐसे कर्मों में लगाना चाहिए जिनसे सबका हित हो, सबका कल्याण हो। ऐसा करने से मन की शान्ति बढ़ती है, उसमें सामर्थ्य आता है।

एक बार की बात है कि अपनी किशोरावस्था में देशबन्धु चित्तरंजनदास ने अपने पिता से अनुरोध किया, "पिताजी ! मुझे कुछ रुपये चाहियें।"

पिता ने कहा, "क्यों कल ही तो मैंने तुम्हें पाँच रुपये दिए थे," पिता कुछ नाराज हुए।

देशबन्धु ने कहा, "हाँ, पिताजी, कल आपने मुझे रुपये अवश्य दिये थे, पर वे सब के सब खर्च हो गये।"

पिता ने उन्हें तीन रुपये दिये और कहा कि रुपये संभलकर खर्च किया करो। पुत्र जब जाने लगा तो अपने एक विश्वासपात्र नौकर को बुलाकर उन्होंने उस लड़के के पीछे लगा दिया और कहा कि तुम चुपचाप जाओ और देखो कि वह रुपये का क्या करता है ?

नौकर गया ! उसने बालक को जाते हुए देखा और यह भी देखा कि रास्ते में उसे एक लड़का मिला जो देखने में अत्यन्त गरीब और सामान्य लग रहा था। नौकर ने लौटकर आगे की घटना का इस प्रकार वर्णन किया, "छोटे मालिक उस लड़के के साथ किताबों की एक दुकान पर गये। वहाँ उन्होंने उस लड़के को किताबें खरीदकर दीं। फिर वे जूतों की दुकान पर गये, वहाँ उसे चप्पल खरीदकर दीं। दुकान पर जाकर पता लगाया तो मालूम पड़ा कि वे सभी पुस्तकें कक्षा में पढ़ाई जानेवाली पुस्तकें थीं।" नौकर से यह सुनकर पिता की आँखों में प्रेम के आँसू आ गए और पुत्र के घर आने पर

उन्होंने उसे छाती से लगाकर कहा, "बेटा ! जीवन में गरीबों की सहायता इसी तरह करते रहना। यही सच्चा धर्म है।" पिता की इसी शिक्षा का पालन करते हुए बालक चित्तरंजनदास देशबन्धु चित्तरंजनदास के नाम से भारतीय इतिहास में अमर है। सहायता के अभिलाषी दीनों-दुःखियों की सेवा दीनबन्धु परमेश्वर की भक्ति है। यह यज्ञ है।

लोकमान्य तिलक के जीवन की एक घटना है। कक्षा में शिक्षक छात्रों को इतिहास लिखवा रहे थे। छात्र लिख तो रहे थे पर उनका मन बाहर लगा था। एक छात्र बैठा पाठ सुन रहा था, लिख नहीं रहा था। उसके पास न तो कापी थी और न कलम। उसे इस प्रकार बैठा देखकर शिक्षक को क्रोध आ गया और वे बोले, "बलवन्त, यह क्या ? पाठ क्यों नहीं लिख रहे ?" "गुरुजी, आपने जो कुछ भी बताया है, मुझे अक्षरशः याद हो गया है। फिर क्यों लिखूँ ?"

शिक्षक क्रुद्ध हुए और बोले, "तो फिर सुनायेगा ? यदि न सुना पाया तो बेंतों से चमड़ी उधेड़ दूँगा।" बलवन्त ने सारा पाठ सुना दिया।

एक दिन इन्हीं शिक्षक ने कक्षा के फर्श पर मूँगफली के छिलके फर्श पर पड़े हुए देखकर क्रोध में आकर छड़ी लेकर लड़कों को पीटना शुरू कर दिया। जब वे बलवन्त के पास आये तो उसने कहा, "गुरुजी, जब मैंने गलती नहीं की तब मैं सजा क्यों भुगतूँ ?" उसकी इस निर्भयता से गुरु प्रभावित हुए और उसे दण्ड नहीं दिया। सत्य और निर्भीकता भी एक यज्ञ ही है। यही बलवन्त आगे चलकर लोकमान्य तिलक के नाम से प्रसिद्ध हुए और 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का ओजपूर्ण नारा देश को दिया।

स्वामी दयानन्द एक बार जोधपुर जाने लगे तो लोगों ने वहाँ जाने से रोकना चाहा और कहा कि वहाँ न जाइये, वह गँवार देश है, वहाँ के लोग शरारती हैं। परन्तु स्वामी जी ने कहा, 'यदि लोग हमारी अंगुलियों को बत्ती बनाकर जला दें तो भी परवाह नहीं, हम जनता को सच्चा मार्ग बताकर रहेंगे। यदि यह शरीर न भी रहा तो भी चिन्ता नहीं।' जब स्वामी जी को वहाँ जाने को तत्पर देखा तो एक भक्त बोला, 'महाराज ! वहाँ जरा नरमी बरतना, वह क्रूर देश है।' स्वामी जी मुस्कराये और बोले, 'मैं असत्य और अधर्म के जंगली वृक्षों की जड़ को काटने के लिए कुल्हाड़ी से काम लूँगा, न कि नापितों की नेहरनी से तराशूँगा। मुझे किसी बात का भय नहीं है।' यह है प्रशस्ततम मार्ग जिस पर यज्ञीय पुरुष चला करते हैं।

संसार में नया काम करने के लिए, सुधार करने के लिए या क्रान्ति करने के लिए जीवन को यज्ञमय बनाना होता है। संसार में एक यज्ञ हो रहा है। सूर्य, वायु, चन्द्र, पृथिवी और आकाश यज्ञ कर रहे हैं। देखते नहीं दीपक की बत्ती अपने को जलाकर भस्म कर देती है और भटकों को मार्ग दिखला जाती है ? क्या देखते नहीं बीज अपने को मिट्टी में मिला देता है और अपने स्थान पर अनेकों को जन्म दे देता है ? ग्रीष्म ऋतु में जब पृथिवी तवे की तरह गर्म होकर तप रही होती है, तब पानी की नन्हीं-नन्हीं बूंदें एक के बाद दूसरी आत्म बलिदान कर पृथिवी को शीतल कर देती हैं। यह सब यज्ञ ही तो है। सूर्य को देखा है न ? वह सारे संसार का अँधेरा दूर करता है। परन्तु, यदि हम उससे कहें, 'सूर्य देव ! आपका हम पर कितना उपकार है कि आपने संसार का अँधेरा

दूर कर दिया है !' तो सूर्य कहेगा, 'मैंने कहाँ का अँधेरा दूर किया है ? लाओ मुझे थोड़ा-सा दिखाओ तो ? मैंने तो अँधेरा देखा ही नहीं है तो दूर कहाँ से करूँगा ? मैं तो केवल प्रकाश करना ही जानता हूँ। रात-दिन जलते रहना ही मुझे ज्ञात है।' सूर्य ने अपने जीवन का यज्ञ-कुंड सतत प्रदीप्त रखा है। यही कारण है कि उसकी गर्मी से प्राणि-मात्र जीवित रहते हैं, फूल-फल उत्पन्न होते हैं, वनस्पतियाँ बढ़ती हैं। सारे संसार का कार्य चल रहा है इसीलिए तो वह सारे संसार की आत्मा है—सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।

महात्मा बुद्ध, शंकर, स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा गांधी का जीवन यज्ञ था। यज्ञ ही जीवन है। हमें यज्ञ की, सत्कर्म की आदत डालनी चाहिए। सूर्य जलना जानता है। बादल बरसना जानते हैं। हवा बहना जानती है। सन्त दूसरों के आँसू पोंछना जानते हैं। जीवन में सत्कर्म मुख्य वस्तु है। जिन्होंने सत्कर्म करना निश्चित कर लिया, वे जीवन में प्रकाश दे जाते हैं।

श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम सज्जनता एवं दयालुता के लिए सारे भारत में जाना-पहचाना है। उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनकी ख्याति, उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा व धन-सम्पत्ति आदि सब उनके जीवन में भिन्न-भिन्न भागों से आये, परन्तु उनके चरित्र की पूर्णता उनकी माता की देन थी। उनकी माता का नाम भगवती देवी था। एक सन्ध्या को भगवती देवी घर के काम में जुटी थीं। पड़ोस के एक गाँव से गरीब स्त्री छाती से अपने छोटे-से बच्चे को चिपकाए हुए आयी। वह और उसका बच्चा दोनों सर्दी से काँप रहे थे। बर्फीली हवा चल रही थी। उसने भगवती देवी से कहा 'माताजी अगर कोई फटा-पुराना कपड़ा पड़ा हो तो दे दो, बहुत ठण्ड लग रही है। बच्चे को ढाँप लूँगी।' भगवती देवी का हृदय पसीज गया। वे घर में गयीं और अपने बिस्तरे में से ही एक नयी रजाई लाकर बोलीं, 'लो यह फटे-पुराने कपड़े से अधिक गर्म रहेगी।' भगवती-देवी के पास केवल वही रजाई थी। उन्होंने अपने कष्ट की जरा भी परवाह न की, यह सोचकर कि अभी उस माँ और बच्चे को भी तो जाड़े से बचने के लिए कुछ चाहिए था। इसी माता के पुत्र थे ईश्वरचन्द विद्यासागर जिनके यज्ञमय जीवन की कहानियाँ जहाँ-तहाँ सुनायी देती हैं और जिनको जन्म देकर भारत माता गौरवान्वित हुई है।

माईकेल मधुसूदन दत्त बंगाल के साहित्यिकों में बहुत प्रसिद्ध हैं। वे जितने प्रतिभावान् थे उतने ही उदार भी। ऐ से ही एक अन्य बंगाली लेखक थे राजकृष्ण राय। राय के विषय में कहा जाता है कि वे कवि थे, नाटककार थे, अनुवादक थे, निबन्धकार थे। मतलब यह कि साहित्य के सभी अंगों में उनकी पहुँच थी। कहा जाता है कि एक नाटक में उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लगा दी। वह असफल हो गया और उनके भूखे मरने के दिन आ गये। वे एक प्रकाशक के पास गये। वह उन्हें रुपये देने को राजी हो गया। उन्होंने रुपया लेकर अभी धन्यवाद भी नहीं दिया था कि एक सज्जन वहीं उनके पास गये। उन्होंने कहा कि उनकी पत्नी गाँव में बीमार पड़ी है और अन्तिम साँसें ले रही है। वह उसके पास जाना चाहते हैं पर यात्रा के लिए पैसे नहीं।

इस पर राय बाबू का हाथ तुरन्त जेब में गया और सब धन उनको दे दिया। उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि इसी धन से वे अपनी आज की अनिवार्य आवश्यकता पूरी

करनेवाले थे। उस व्यक्ति ने उन्हें धन्यवाद दिया, पर वह क्या जानता था कि राय बाबू ने कितना बड़ा त्याग किया है।

यज्ञीय भावना जय या पराजय, सिद्धि या असिद्धि, यश या अपयश, सुख या दुःख की ओर ध्यान नहीं देती। समुद्र में ज्वार आता है और भाटा भी, लेकिन उसकी धीर-गम्भीर गर्जना कभी नहीं रुकती। यज्ञीय व्यक्ति विजय से उन्मुत्त और पराजय से निराश नहीं होता। यज्ञ करनेवाले को चाहे फाँसी मिले या फूल की माला, चाहे यश मिले या अपयश, वह तो प्रशस्त कर्म की ओर ही बढ़ता है। जीवन में विजय के नगाड़े मत बजाओ और पराजय का रोना मत रोओ। यज्ञ ही महान् धर्म है।



उपनिषद् का प्रथम सन्देश–दृढ़ संकल्प

—स्व० महात्मा आनन्द स्वामी

जिस चतुर्युगी में आज हम रहते हैं, उसको आरम्भ हुए अड़तीस लाख छियानवे हजार वर्ष व्यतीत हो चुके। वैसे सृष्टि को बने लगभग एक अरब सत्तानवे करोड़ वर्ष हो चुके। मैं उसकी बात नहीं कहता, वर्त्तमान चतुर्युगी की बात कहता हूँ। यह इस सृष्टि की अट्ठाईसवीं चतुर्युगी है। इस चतुर्युगी में आज से २०-२५ लाख वर्ष पहले 'ब्राह्मण' और 'आरण्यक' ग्रन्थ लिखे गये। जब विद्वान् ऋषियों ने देखा कि संसार के लोग बहुत दुःखी हुए जाते हैं तो इन ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों से और इनके अतिरिक्त वेद भगवान् से आध्यात्मिक अंश को उद्धृत करके 'उपनिषद्' रचे गये, जिससे लोगों को दुःख से बचने का सीधा मार्ग बताया जा सके। प्रायः सब आर्ष उपनिषद् इन्हीं ब्राह्मणों, आरण्यकों और वेद भगवान् के अंश हैं।

भारत तथा विदेशीय एक, दो या दस नहीं अपितु हजारों विद्वानों ने उपनिषदों में उल्लिखित सूक्ष्म अध्यात्म-ज्ञान की प्रशंसा में अपने विचार व्यक्त किये हैं। मैं उन विचारों को छोड़ता हूँ। आप भी उन विचारों को नहीं अपितु उस ज्ञान को जानना चाहेंगे, जो उपनिषदों में विद्यमान है।

सबसे पहला निचोड़—पहला खिचा हुआ इत्र—जो उपनिषद् के स्वाध्याय से प्राप्त होता है, वह है दृढ़ संकल्प। छान्दोग्य, बृहदारण्यक तथा अन्य उपनिषदों में इस दृढ़ संकल्प का पुनः-पुनः वर्णन आता है। शाण्डिल्य ऋषि की विद्या है कि—

क्रतुमयः पुरुषः।

यह मानव संकल्पों का बना हुआ है। जैसे विचार, जैसी भावना एवं जैसे संकल्प होंगे, वैसे बन जाओगे। आगे चलकर उन्होंने फिर कहा है—

कृतं लोकं पुरुषोऽभिजायते।

अर्थात् मनुष्य स्वनिर्मित सृष्टि में उत्पन्न होता है। आप सोचेंगे—यह कैसी बात कहता है? किन्तु सुनो, यह बिल्कुल सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वनिर्मित संसार में

जन्मता है। यह ठीक है कि इस सृष्टि का रचयिता परमात्मा है। किन्तु यह सृष्टि कैसी हो, इसका निर्णय स्वयं जीवात्मा करता है। कैसा उसका देश हो, कैसे उसके मित्र तथा सम्बन्धी हों, कैसे माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री हों—इसका निर्णय जीवात्मा स्वयं करता है। जैसे विचार उसके मन में हों, जैसी भावना उसके अन्तःकरण में हो, वैसी ही उसकी सृष्टि बन जाती है। यदि उसके विचार खोटे हैं, भावनाएँ खोटी हैं, तो याद रखिये कि इस विचारधारा के कारण वह खोटा ही बनेगा—अच्छा नहीं बनेगा। यदि पवित्र विचारधारा उसके मन में हो रही है, तो वह अच्छा बनेगा—पवित्र बनेगा, खोटा कभी नहीं बन सकता। अतः 'दृढ़ संकल्प वाला बन', यह पहली बात है।

इसके विषय में छान्दोग्य के ऋषि ने महिदास की कथा लिखी। महिदास ऐतरेय—यह उसका पूरा नाम था। वह यज्ञ करा रहा था। एक सौ सोलह वर्ष तक वह यज्ञ होनेवाला था। उसका स्वास्थ्य अच्छा न था। वैद्यों ने उसे देखा और कहा—'महिदास! इतनी देर तू जी नहीं सकता, इस यज्ञ को छोड़ दे। जो बीमारी तुझे लग गई है, उससे तू बचेगा नहीं।' महिदास था आत्मज्ञानी—यह जाननेवाला कि **'क्रतुमयः पुरुषः'** मानव अपने संकल्प से बनता है। अतः पूर्ण विश्वास के साथ बोला—

स किं म एतदुपतपसि योऽहमनेन न प्रेष्यामीति।

'हे मेरे रोग! मेरे शत्रु! मुझे क्यों दुःखी करता है? तेरे किसी भी आक्रमण से मैं मरूँगा नहीं—मुझे अभी मरना नहीं है।' छान्दोग्य का ऋषि कहता है कि वह दृढ़संकल्प महिदास पूरे एक सौ सोलह वर्ष तक जीता रहा—

स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्।

'वह पूरे एक सौ सोलह वर्ष जीवित रहा।' यही नहीं, छान्दोग्य का ऋषि कहता है—

प्र ह षोडशं वर्षशतं जीवति य एवं वेद।

'कोई भी व्यक्ति जो दृढ़ संकल्प के साथ ऐसा चाहेगा, वह एक सौ सोलह वर्ष तक जियेगा।'

महिदास ने एक सौ सोलह वर्ष जीवित रहने का संकल्प किया और वह पूरे एक सौ सोलह वर्ष तक जीता रहा। कैसे जीता रहा—इसका उपाय भी उपनिषद् में बताया गया है। उपनिषद् ने पुरुष को 'यज्ञ' कहा है—

पुरुषो वायं यज्ञः।

'यह पुरुष सचमुच यज्ञ है।' इस यज्ञ के तीन सवन हैं—प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन, सान्ध्य (सायं) सवन, अर्थात् मनुष्य का जीवन यज्ञरूप होकर, दूसरों के उपकार के लिए विद्यमान रहकर तीन अवस्थाओं से पार होता है—प्रातः, मध्याह्न, सायं। यह यज्ञ निरन्तर होता रहता है। प्रातः सवन का छन्द है 'गायत्री' जिसमें २४ मात्राएँ हैं, माध्यन्दिन सवन का छन्द है 'त्रिष्टुप्' जिसमें चवालीस मात्रा हैं और सान्ध्य सवन का छन्द है 'जगती' जिसमें ४८ मात्रा हैं। तात्पर्य यह है कि मनुष्य यज्ञरूप होकर २४ वष तक 'ब्रह्मचर्य आश्रम' में रहे। तदनन्तर यज्ञरूप होकर ४४ वर्ष तक 'गृहस्थ' और 'वानप्रस्थ आश्रम' में रहे और फिर जब जीवन की सन्ध्या आ जाये तो ४८ वर्ष तक

'संन्यास आश्रम' में रहे। इन सबको जोड़कर देखिये एक सौ सोलह वर्ष होते हैं या नहीं।

उसने प्रातः सवन में कहा—"२४ वर्ष तक मैं मरूँगा नहीं। मैं यज्ञरूप हूँ। यज्ञ का यह भाग पूर्ण करके मुझे माध्यन्दिन सवन में पहुँचना है।" और माध्यन्दिन सवन में पहुँचकर उसने फिर कहा—"मैं यज्ञरूप हूँ, मुझे मरना नहीं है। माध्यन्दिन सवन को पूर्ण करके सान्ध्य सवन में पहुँचना है।" और सान्ध्य सवन में पहुँचकर उसने दृढ़ संकल्प से कहा—"मुझे मरना नहीं है। ४८ वर्ष तक मुझे इस यज्ञ के अन्तिम अंश को पूर्ण करना है।" यह है दृढ़संकल्प को उत्पन्न करने की विधि। मनुष्य अपने को यज्ञरूप बना ले तो उसका दृढ़ संकल्प सफल होता है—अवश्यमेव सफल होता है।

इसको आत्म-प्रेरणा (Auto-suggestion) कहते हैं। इस प्रकार अपने को प्रेरणा देता हुआ महिदास एक सौ सोलह वर्ष तक जीता रहा। अपने-आपको यज्ञरूप बनाने से ही दृढ़ संकल्प उत्पन्न होता है।

ये जो तीन सवन– यज्ञ के तीन भाग—मैंने बताये, ये क्या हैं? प्रातः सवन को कहते हैं 'दीक्षा'—ऐसी अवस्था जिसमें तप करना है। भोजन का ठीक प्रबन्ध नहीं, पानी का नहीं, रहने का नहीं, फिर भी तप की भावना से ज्ञान और शक्ति को प्राप्त करते जाना, ब्रह्मचर्य का धारण करके अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाना—यह 'दीक्षा' है। कष्ट, क्लेश तथा दुःखों को सहन करना—यह 'दीक्षा' है। माध्यन्दिन सवन को कहते हैं 'उपसद' अर्थात् आराम, सुख, मौज, आनन्द। हँसते-गाते हुए, अपना और दूसरों का भला करते हुए, कमाते और खर्च करते हुए आगे बढ़ते जाना। सान्ध्य सवन को कहते हैं 'दक्षिणा'; केवल दूसरों के कल्याण के लिए जीवित रहना—अपना समय, अपना धन, अपनी शक्ति अपना सर्वस्व लोक-कल्याण में लगा देना—सारे संसार को अपना परिवार समझकर उसके उपकार के लिए प्रयत्न करते रहना।

ये तीन बातें—दीक्षा, उपसद और दक्षिणा—जिस जीवन में हैं, वह यज्ञमय जीवन है और जो व्यक्ति यज्ञरूप है उसका दृढ़ संकल्प कभी विफल नहीं होता। ये तीनों अवस्थाएँ—दीक्षा, उपसद तथा दक्षिणा केवल जीवन के प्रातः, मध्याह्न एवं सायं नहीं; जीवन में पुनः-पुनः ये अवस्थाएँ आती हैं। दीक्षा का अर्थ है—कष्ट और क्लेश को सहन करना। यह भावना हर समय विद्यमान रहनी चाहिये। दुःख हो, सुख हो; कष्ट हो, रोग हो, शोक हो; ऐश्वर्य हो, दारिद्र्य हो; सफलता हो, विफलता हो—हर अवस्था में मस्त रहना। तीन प्रकार की मस्तियाँ होती हैं संसार में। कुछ लोग चाल-मस्त होते हैं। उनकी चाल में मस्तानापन होता है, दूसरी किसी बात में नहीं। कुछ लोग माल-मस्त होते हैं। माल है तो मस्त हैं, नहीं तो रो रहे हैं। कुछ लोग हाल-मस्त होते हैं। कैसी भी हालत हो, वे हर हालत में प्रसन्न रहते हैं—हर हाल में मस्त। किसी भी समय उनके मन में निराशा उत्पन्न नहीं होती। इस विश्वास के साथ आगे बढ़ते हैं कि कभी-न-कभी तो दुःखों का अन्त होगा ही। उनसे पूछो—प्रसन्न क्यों हो? तो कहते हैं—ईश्वर ने हमें प्रसन्न रहने के लिए ही बनाया है। और जो रोते रहते हैं, उनसे पूछो—रोते क्यों हो? तो कहते हैं—शकल ही ऐसी है। अच्छा भाई! शकल ही ऐसी है, तो रोओ! किन्तु देखो, यह

जीवन को सफल बनाने का मार्ग नहीं। यह अपने-आपको यज्ञरूप बना देना नहीं। अपने-आपको यज्ञरूप बनाना है, तो आशावादी बनो—निराशावादी न बनो! ऊपर की ओर देखो, नीचे की ओर न देखो! वेद कहता है—

उद्यानं ते पुरुष नावयानम्।

मैंने तुझे ऊपर उठने के लिए बनाया है, नीचे गिरने के लिए नहीं। इसलिए रो नहीं! नीचे न गिर, ऊपर उठ! हँसता हुआ कह—

राज़ी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रज़ा है।
याँ यूँ भी वाहवा है और वूँ भी वाहवा है॥

इसलिए अपने विचार को छोटा न बना, खोटा न बना। आशावादी जिस क्षेत्र में जायेगा, वहीं उसको सफलता मिलेगी। कोई रोग, कोई कष्ट, कोई विवशता, असाहाय्य, अनाथता, निर्धनता उसे सफलता से रोक न सकेगी।

रोग के प्रसंग में छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि यदि कभी रुग्ण हो जाओ, तो अपने को रोगी न कहो। यह कहो कि—"मैं तप तप रहा हूँ। कुछ बुरे कर्म थे, अपने तप से उनका विनाश कर रहा हूँ। ये बुरे कर्म नष्ट हो जायेंगे, तो फिर सुख-ही-सुख है।" यह है भावना जो सच्चे ईश्वर-विश्वासी के हृदय में उत्पन्न होती है। वह अपने मन को गिरने नहीं देता, दुर्बल नहीं होने देता।

अब देखिये, संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनकी सफलता का रहस्य क्या था? यही आत्मविश्वास और दृढ़ संकल्प। आत्मविश्वासी और दृढ़संकल्पी मनुष्य विजली से नहीं डरता, शत्रु से भयभीत नहीं होता, तूफान से त्रस्त नहीं होता, गोली-तलवार-एटम बम-हाइड्रोजन बम से भयग्रस्त नहीं होता। निरन्तर आगे बढ़ता है और इस विश्वास के साथ आगे बढ़ता है कि उसे अवश्य सफलता मिलेगी।

यह है उपनिषद् का प्रथम सन्देश! दृढ़ संकल्प करके आगे बढ़ो। मनुस्मृति के दूसरे अध्याय के तीसरे श्लोक में कहा गया है—

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञः संकल्पसंभवः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥

इच्छा का मूल संकल्प है। परोपकार के कार्य भी संकल्प के बिना नहीं हो सकते। व्रत, यम तथा धर्म का पालन भी दृढ़ संकल्प से ही सम्भव है।

प्रह्लाद, ध्रुव, हरिश्चन्द्र, दयानन्द आदि महापुरुषों ने दृढ़ संकल्प के बल पर ही अपने लक्ष्यों की सिद्धि की। यही है दृढ़ संकल्प की महिमा। इस प्रकार उपनिषद् का स्वाध्याय मनुष्य में संकल्प-शक्ति को उद्भावित करता है और कालान्तर में यह संकल्प-शक्ति ही मनुष्य को सफलता प्रदान करती है। यदि उपनिषद् का स्वाध्याय व्यापक हो तो समाज, राष्ट्र तथा संसार दुःखगर्त्त से निकलकर सुख, शान्ति एवं समृद्धि के राजमार्ग पर अग्रसर हो जायेगा।



वैदिक संस्कृति का सन्देश

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
की एक नवीनतम पुस्तक
मूल्य ३५.००

विषय-सूची

गोविन्दराम हासानन्द, नयी सड़क, दिल्ली-११०००६

सत्यार्थप्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची।
२. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची।
३. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची।
४. सत्यार्थप्रकाश के १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश (जैसे हारून का Haron)।
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य।
६. सत्यार्थप्रकाश की आधार-ग्रन्थ-सूची।
७ सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा।
८. अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण-सूची।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी-संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च-स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्त जी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी-संस्करण में दी गई है।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास-अनुसार।

बढ़िया कागज। १६ प्वाइँट के मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५.००।

सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण का आर्ट पेपर पर छपा राज-संस्करण भी तैयार है। बहुत ही आकर्षक प्लास्टिक कवर के साथ कपड़े की हरी जिल्द।
विवाह आदि के अवसर पर भेंट देने योग्य। मूल्य १०१.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५·००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र सूक्त-अन्वयार्थ और सरल-स्पष्ट भाषा में व्याख्या-सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवासयुक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—**सन्तराम वत्स्य**

वैदिक सम्पदा [पं० वीरसेन वेदश्रमी] मूल्य ३०.००

'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है' तथा 'वेद में आधुनिक सभी समस्याओं का समाधान है' की व्याख्या में लिखा गया यह विशद ग्रन्थ वेद के सभी विद्वानों द्वारा सराहा गया है।

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड लिखते हैं—वैदिक समाजशास्त्र, वैदिक समाजवाद में पारिवारिक आदर्श, गृहस्थ-निर्माण, आदर्शवाद, सामाजिक समस्याएँ, वेद में यातायात, वेद में चिकित्सा विज्ञान, वैदिक अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, विज्ञान, रेखागणित, शासन (राजनीति), शिक्षा विज्ञान, वेदों में भाषा विज्ञान, ऋतु विज्ञान, भूतत्त्व विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अग्नि विज्ञान, विमान विज्ञान, जल विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, धर्म; इस प्रकार विभाजन करते हुए वेदों के आधार पर इन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली ६

नये प्रकाशन

षड्दर्शनम्	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३५.००
सत्यार्थ सरस्वती	पं० मदनमोहन विद्यासागर	२५.००
वेदभगवान् बोले	प्रो० विष्णुदयाल (मोरीशस)	६.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (सरल अध्ययन)	विश्वनाथ विद्यालंकार	२.००
वैदिक राज-दर्शन	डा० रामेश्वरदयाल गुप्त (राज संस्करण)	५०.००
	(साधारण ,,)	३०.००
ईश्वर प्रत्यक्ष	मदनमोहन विद्यासागर	९.००
अनादि तत्त्व दर्शन	आचार्य लक्ष्मीदत्त दीक्षित	२५.००

पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कॉलर द्वारा सम्पादित

सत्यार्थप्रकाश (**आठ परिशिष्ट, मोटे अक्षर**) सजिल्द		२५.००
सत्यार्थप्रकाश (आर्ट पेपर पर छपा, सुनहरी जिल्द, राज संस्करण)		१०१.००
दयानन्द चित्रावली	रामगोपाल विद्यालंकार	८.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

मन की बात	४.००
दुनिया में रहना किस तरह	३.५०
तत्त्वज्ञान	८.००
मानव और मानवता	१०.००
प्रभुमिलन की राह	८.००
घोर घने जंगल में	८.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	६.००
एक ही रास्ता	३.००
मानव-जीवन-गाथा	४.००
सुखी गृहस्थ	२.५०
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु-दर्शन	७.००
दो रास्ते	७.००
यह धन किसका है ?	६.००
भक्त और भगवान्	४.००
बोध कथाएँ	५.००
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

आनन्द स्वामी जीवनी (उर्दू)	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	४.००
वेदसौरभ	१.००
घरेलू ओषधियाँ	३.५०
वैदिक विवाहपद्धति	३.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	४.००
चतुर्वेद शतकम्	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३ ००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
सामवेद सूक्ति-सुधा	३ ००
यजुर्वेद-सूक्ति-सुधा	३.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा	३०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन ७.००

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल १५.००

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार (प्रेस में)

वैदिक संस्कृति का सन्देश ३५.००

प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथिवी सूक्त) १.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए०

यज्ञ की महिमा १.५०

नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ७.५०

सु-राज्य की रूपरेखा ०.५०

पं० बिहारीलाल शास्त्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल के रहस्य १.५०

श्री रामशरण वशिष्ठ

पशुहिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००

वेदों में मूल प्रकृति विज्ञान १.५०

वेदार्थ विज्ञान १.००

वेद और आत्मा २.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

श्रीमद् दयानन्द प्रकाश २५ ००

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली ८.००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

रामचन्द्र देहलवी लेखावली १०.००

वेद व्यावहारिक है १.००

शंका-समाधान १.००

पूजा क्या क्यों कैसे ? १.००

ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई १.००

वेद का इस्लाम पर प्रभाव १.००

महात्मा नारायण स्वामी

कर्तव्यदर्पण ४.००

प्राणायाम विधि १.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १ ००

कई पुरस्कृत लेखों का संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता १.५०

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश २५.००

आर्योद्देश्यरत्नमाला ०.२५

व्यवहारभानु १.००

बालोपयोगी

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार ०.५०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.५०

स्वामी श्रद्धानन्द १.५०

गुरु विरजानन्द १.००

पं० लेखराम १.००

पं० गुरुदत्त १.००

स्वामी दर्शनानन्द १.००

स्वामी दर्शनानन्द

कथा-पच्चीसी २.५०

बालशिक्षा-धर्मशिक्षा १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.६०

नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.६०

नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.००

नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.००

नैतिक शिक्षा पंचम भाग १.२५

नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग १.२५

नैतिक शिक्षा सप्तम भाग १.५०

नैतिक शिक्षा अष्टम भाग १.५०

नैतिक शिक्षा नवम भाग २.००

नैतिक शिक्षा दशम भाग २.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

		सैकड़ा
आर्यसत्संग गुटका	१.००	७५.००
वैदिक यज्ञप्रकाश	०.७५	५५.००
वैदिक सन्ध्या	०.२०	१५.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका		३.००
सन्ध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)		२.००

भजन पुस्तकें

गीत भण्डार (संकलन)	४.००
गीत श्रद्धांजलि	१.५०

चित्र - चित्र - चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन	२०×३०	३.००
महर्षि दयानन्द एक रंग	१८×२२	२.००
गुरु विरजानन्द एक रंग	१८×२२	२.००
स्वामी श्रद्धानन्द ,,	,,	२.००
स्वामी दर्शनानन्द ,,	,,	२.००
म० हंसराज ,,	,,	२.००

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन

आप क्या नहीं कर सकते ?	३.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ?	३.००
हँसते-हँसते कैसे जियें ?	३.००
जो चाहें सो कैसे पायें ?	३.००
अपना खर्च कैसे घटायें ?	३.००
अवसर को पहचानो !	३.००
अपने आपको पहचानिए !	३.००
आप सफल कैसे हों ?	३.००
उन्नति कैसे करें ?	३.००
धनकुबेर कैसे बनें ?	३.००

मनहर चौहान

महाभारत	४.००
रामायण	४.००
पंचतन्त्र	४.००

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

हृदयरोग कारण और निवारण	८.००
गर्भस्थिति प्रसव और शिशुपालन	५.००

सुशीला कपूर

सुबोध मेक-अप	४.००
सुबोध बुनाई	५.००
आधुनिक सिलाई कटाई	५.००

मीनाक्षी धींगड़ा

आधुनिक पाक-कला	५.००
मिष्ठान्न कला	५.००
शर्बत आइसक्रीम स्क्वैश	५.००

हयात

रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक	५.००
सुबोध ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	५.००
सुबोध ट्रांजिस्टर गाइड	५.००
सुबोध टेलिविजन गाइड	५.००

अनिल कुमार

अंग्रेजी बोलना कैसे सीखें	४.००

योगाचार्य भगवान्देव

स्वास्थ्य और योगासन	४.००
घरेलू इलाज **डा० समरसेन**	५.००
मोटापा कैसे घटायें	४.००
योगासन से इलाज	४.००
प्राकृतिक चिकित्सा	५.००
जूडो कुंगफू कराटे **राजीव**	५.००

विवाह, जन्मदिन पर उपहार तथा पुरस्कार में दें ।
आर्ट पेपर पर छपा, सुनहरी जिल्द में बन्धा—

'सत्यार्थ प्रकाश'

मूल्य : एक सौ रुपये ।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा प्रसारित

अन्य प्रकाशन

वैद्य गुरुदत्त

वेद प्रवेशिका	६.००
सांख्य दर्शन	४०.००
विश्वेदेवाः	६.००
अद्वैत मीमांसा	६.००
इतिहास की परम्परा	१२.००
भारत गांधी-नेहरू की छाया में	१८.००
भारत में राष्ट्र	४.००
ब्रह्मसूत्र I	३०.००
,, II	२४.००
प्रजातन्त्र अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था	५.००
धर्म तथा समाजवाद	१४.००
द्वितीय विश्वयुद्ध	३.००
महर्षि दयानन्द	३.००
विज्ञान और विज्ञान	८.००
श्रीमद्भगवद्गीता	२४.००
दो लहरों की टक्कर (दो खण्ड)	९६.००

बलराज मधोक

भारत में लोकतन्त्र	१२.००
भारत की सुरक्षा	६.००
भारत की विदेशनीति	६.००
हिन्दू राष्ट्र	२.००
भारत और संसार	८.००
डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी	१०.००
पाकिस्तान का आदि और अन्त	५.००

स्वामी वेदानन्द

स्वाध्याय सन्दोह	२०.००
स्वाध्याय सन्दीप	१०.००
स्वाध्याय संग्रह	४.००
सावित्री प्रकाश [गायत्री]	२.००
सत्यार्थ प्रकाश का प्रभाव	२.००
सन्ध्यालोक	२.५०
ब्रह्मोद्योपनिषत्	२.५०

ऋग्वेद भाषा भाष्य ५ भाग
स्वामी दयानन्द १५०.००

अथर्ववेद ,, ३
क्षेमकरणदास त्रिवेदी ९०.००

यजुर्वेद ,, १ स्वामी दयानन्द ३०.००

सामवेद ,, १ स्वामी तुलसीराम ३०.००

चारों वेद एक साथ मंगाने पर
रियायती मूल्य २२५.००

महर्षि दयानन्द कृत

महर्षि ने ऋग्वेद के दस मण्डल में से साढ़े छः मण्डलों का भाष्य ९ जिल्दों में किया है।

ऋग्वेद भाष्यम् प्रथम खण्ड	१८.००
,, ,, द्वितीय ,,	१५.००
,, ,, तृतीय ,,	१४.००
,, ,, चतुर्थ ,,	१२.००
,, ,, पंचम ,,	१४.००
,, ,, षष्ठ ,,	१०.००
,, ,, सप्तम ,,	१७.००
,, ,, अष्टम ,,	१८.००
,, ,, नवम ,,	१२.००
,, ,, दसवां मण्डल भाग I	३०.००

इन सभी भागों में संस्कृत भाष्य एवं हिन्दी भाष्य दोनों हैं।

केवल हिन्दी भाषा भाष्य भी पृथक् उपलब्ध हैं।

ऋग्वेद भाषा भाष्य प्रथम	८.००
,, ,, ,, द्वितीय	७.००
,, ,, ,, तृतीय	७.००
ऋग्वेद भाषा भाष्य चतुर्थ	६.००
,, ,, ,, पंचम	७.००
,, ,, ,, षष्ठ	७.५०
,, ,, ,, सप्तम	८.००
,, ,, ,, अष्टम	८.००
,, ,, ,, नवम	६.००
,, ,, दसवां मण्डल I भाग	१५.००
यजुर्वेद भाष्यम् प्रथम	१६.००
,, ,, द्वितीय	२४.००
,, ,, तृतीय	१६.००
,, ,, चतुर्थ	१४.००

यजुर्वेद भाषा भाष्य २ खण्डों में

महर्षि दयानन्द I	१५.००
भाग II	२५.००

पं० जयदेव विद्यालंकार कृत
चारों वेद भाष्य

ऋग्वेद ७ खण्डों में ११६.००
अथर्ववेद ४ „ ६४.००
यजुर्वेद २ „ २४.००
सामवेद १ „ २०.००

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास ५०.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास ३०.००
सांख्य सिद्धान्त २५.००
सांख्य दर्शन २०.००
वेदान्त दर्शन ३५.००
वैशेषिक दर्शन २५.००
न्याय दर्शन ३०.००
योग दर्शन ३०.००

ब्र० वेदव्रत मीमांसक

ज्यौतिष विवेक १६.००

नाथूराम गुप्त

वेद और जीवन १२.००
योग दर्शन **पं० तुलसीराम स्वामी** ३.००
वैशेषिक दर्शन „ ३.००
न्याय दर्शन „ ४.००
वेदान्त दर्शन „ ३.००
सांख्य दर्शन „ ३.५०

स्वामी समर्पणानन्द

श्रीमद्भगवद्गीता ६.००

भाई परमानन्द

श्रीमद्भगवद्गीता १२.००

वैद्य नारायण दत्त सिद्धान्तालंकार

महर्षि दयानन्द जीवन और दर्शन ६.००
शंकराचार्य जीवन और दर्शन ४.००

दर्शन ग्रन्थ
आचार्य श्रीराम कृत

योग ५.७५
वैशेषिक ५.७५
सांख्य ५.७५
न्याय ५.७५
वेदान्त ५.७५
मीमांसा ७.५०
वेद महाविज्ञान १२.००

स्वामी दर्शनानन्द

उपनिषद् प्रकाश १२.००
न्याय दर्शन ७.००
सांख्य दर्शन ६.००
वैशेषिक दर्शन ८.००
वेदान्त १२.००

गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा ७.००
शंकर भाष्यालोचन ७.००
जीवन-चक्र ७.००
सन्ध्या क्या क्यों कैसे ? ३.००
पूजा क्या क्यों कैसे ? ३.००
भारतीय पतन और उत्थान की कहानी २.५०
आर्य स्मृति ३.००
भगवत् कथा १.५०
सनातन धर्म १.००
धर्म-सुधासार ०.६०
राष्ट्रनिर्माता स्वामी दयानन्द १.००
Philosophy of Dayanand १५.००
Vedic Culture ५.००

विश्वप्रकाश बी० ए० एल० एल० बी०

उपनयन वेदारम्भ संस्कार ०.६०
मृतक संस्कार ०.६०
चूड़ाकर्म ०.६०
अन्नप्राशन ०.६०
नामकरण ०.७०

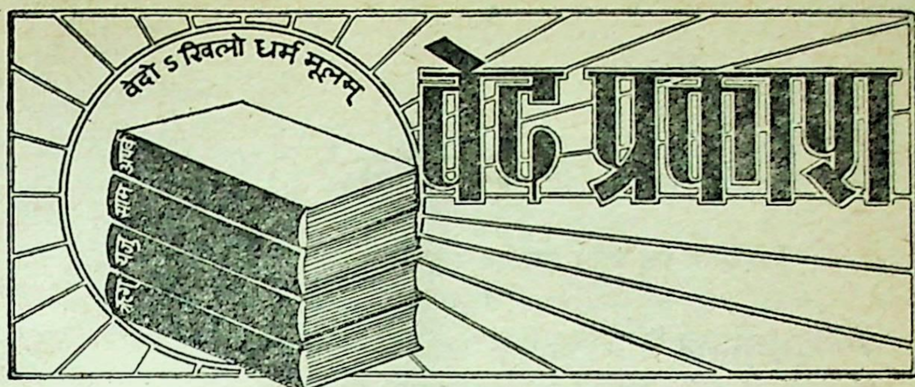
म० प्रभु आश्रित जी महाराज कृत

गृहस्थ सुधार ४.००
सेवा धर्म १.७०
गायत्री रहस्य (हिन्दी) ५.००
प्रभु का स्वरूप २.७०
डरो वह बड़ा जबरदस्त है १.००
पृथिवी का स्वर्ग २.७०
यज्ञ रहस्य ४.५०
मन्त्रयोग (चार भाग) ८.५०
गृहस्थाश्रम प्रवेशिका १.७०

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य ०.५०

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८, नई सड़क से प्रसारित किया।



८०

ज्योति की प्राप्ति

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥
—अथर्व० १८।३।६७

(इन्द्र) हे शत्रुओं का विध्वंस करनेवाले ! (पुरुहूत) बहुतों-सबके द्वारा पुकारे जानेवाले परमेश्वर—

१. (नः क्रतुम् आभर) हमें कर्मण्यता, कर्मशीलता, उद्योग, पुरुषार्थ, परोपकार, संकल्पशक्ति, आत्मबल और प्रज्ञा प्रदान कर (यथा पुत्रेभ्यः पिता) जैसे पिता अपने पुत्रों को प्रदान करता है।

२. (अस्मिन् यामनि नः शिक्ष) इस संसार-यात्रा में आप हमारे नेता और सहायक बनकर हमें शिक्षा प्रदान करें। प्रभो ! इस संसार-यात्रा में तू हमें सदा प्रबुद्ध, जागरूक और सावधान रख।

३. (जीवाः ज्योतिः अशीमहि) हम सब मानव ज्योति-प्रकाश विवेक का सेवन करें। हम विजयी होकर, काम, क्रोधादि वृत्तियों पर विजय प्राप्त करके ज्योति स्वरूप आपको प्राप्त करें।

—जगदीश्वरानन्द

षड्दर्शनम्

[भारतीय छह दर्शन मूल एवं अनुवाद-सहित एक ही जिल्द में]

अनुवादक

आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में रत

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वैदिक साहित्य में दर्शनों का विशेष महत्त्व है। वे वेदों के उपाङ्ग हैं। वेद में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष, योग, कर्मसिद्धान्त, यज्ञ आदि का बीजरूप में वर्णन है, दर्शनों में इन्हीं विचार-बिन्दुओं पर विस्तृत विवेचन है।

० यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में क्या है,

० यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में विरोध नहीं है,

० यदि आप जानना चाहते हैं कि यज्ञों का प्रकार क्या है,

० यदि आप जानना चाहते हैं कि भारतीय दर्शनों की विशेषताएँ क्या हैं तो इस 'षड्दर्शनम्' को पढ़ जाइए। **संसार के इतिहास में प्रथम बार छहों दर्शन अनुवाद-सहित एक जिल्द में छपे हैं।** उत्तम कागज, दिव्य मुद्रण, आकर्षक गैट-अप, अन्त में सूत्र-सूची, आरम्भ में विस्तृत भूमिका। मूल्य : ३५ रुपये

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार लिखते हैं—

लेखक ने छहों दर्शनों को सरल हिन्दी में लिखकर अध्ययनशील जिज्ञासु जनता का बड़ा उपकार किया है।

आचार्य शिवपूजनसिंह जी कुशवाहा लिखते हैं—

आपने छह दर्शनों का आर्यभाषा में अनुवाद करके आर्यजगत् पर एक महान् उपकार किया है। 'मीमांसा दर्शन' पर तो पूर्ण भाष्य किसी भी आर्य विद्वान् का नहीं था, आपने इस कमी को भी पूरा कर दिया। पुस्तक की छपाई-सफाई आकर्षक है।

श्री भवानीलाल जी भारतीय, सम्पादक 'परोपकारी' लिखते हैं—

एक ही जिल्द में दर्शन के मूल वाङ्मय को प्रस्तुत करना सराहनीय है।

आचार्य रमेशचन्द जी एम० ए०, सम्पादक 'आर्यमित्र' लिखते हैं—

गम्भीर चिन्तनशील विद्वान् और साधारण प्रारम्भिक विद्यार्थी, दोनों अपनी योग्यता और मापदण्ड के अनुसार व्याख्याकार के प्रति आभारी रहेंगे।

पं० आनन्दप्रिय जी लिखते हैं—

स्वाध्यायशील व्यक्तियों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी एवं मूल्यवान् सिद्ध होगा।

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३०, अंक ५]   वार्षिक मूल्य : पाँच रुपये   [दिसम्बर, १६८०

सम्पा० : **विजयकुमार** आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

वेद में विज्ञान

—श्री विश्वावसु, इन्दौर

वेद विद्या और विज्ञान के अक्षय भण्डार हैं। इस संसार में जितने ज्ञान-विज्ञान के स्रोत एवं शाखाएँ हैं या होंगी वे सब वेद में विद्यमान हैं। इसलिए वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक माना गया है।

वेद के एक-एक शब्द में ज्ञान का भण्डार व्याप्त है। वेद का एक-एक शब्द सार्थक है। एक अक्षर भी निरर्थक नहीं। इसीलिए श्री अरविन्द ने अपने ग्रन्थ 'वेद रहस्य' में लिखा है—"ये रहस्यमय वेद के शब्द हैं, जिन्होंने रहस्यार्थ को अपने अन्दर छिपा रखा है।" यदि हम वेद के इस रहस्यमय ज्ञान को जिसको वेद ने अपने में छिपा रखा है जानना चाहते हैं तो हमें इसका अध्ययन गहन रूप में अनेक बार करना पड़ेगा तब हम इसके रहस्य एवं ज्ञान का किंचित् अंश प्राप्त कर सकेंगे। यदि वास्तव में हम इसके ज्ञान के कुछ अंश को भी प्राप्त कर लेते हैं तो यह हमारे लिए महान् उपलब्धि होगी।

यदि हमें ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ना है तो वेद के विज्ञान को विश्व में प्रतिष्ठित करना होगा। हमारे देश को पुनः ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जगद्गुरु का स्थान दिलाना है तो हमें वेद का आश्रय लेना होगा। स्वयं वेद भगवान् घोषणा कर रहे हैं "देवस्य पश्य काव्यम्" (अथर्ववेद १०।८।३२) अर्थात् अजर-अमर परमदेव परमात्मा के सर्वोत्तम काव्य वेदवाणी का अवलोकन करो। वेद शब्द विद् 'ज्ञाने' धातु से बना है जिसका अर्थ ज्ञान होता है। अतः वेदों को जानना चाहिये। वेद ज्ञानराशि हैं।

यह युग विज्ञान का युग है। विज्ञान का महत्व आज बहुत अधिक है। आज के विज्ञान ने मनुष्य को पृथ्वी की परिधि से उठाकर अन्तरिक्ष में

स्थित कर दिया है। लेकिन क्या यह ज्ञान का चरमोत्कर्ष है? क्या मनुष्य ने सब कुछ जान लिया है। क्या मानव सर्वज्ञ हो गया है? कुछ अज्ञात नहीं रहा?…नहीं-नहीं कदापि नहीं…। अभी तो बहुत कुछ जानना शेष है…। इस विश्व में अनन्त ज्ञान, विज्ञान और रहस्य भरा पड़ा है जो मानव को थका देगा। सदियों की मानव की खोज के बाद भी खोज अधूरी ही रहेगी। अभी तो न जाने कितना आगे जानना है—इसकी कोई सीमा नहीं है। लेकिन क्या हम कभी वेद के आगे भी जा पायेंगे?…नहीं। किन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि वेद में जो है उसके अतिरिक्त और कुछ भी शेष नहीं। जो कुछ भी ज्ञान-विज्ञान प्रत्येक विद्या के क्षेत्र में विद्यमान है उसका संकेत, उसका सन्देश, उसकी प्राप्ति करने की प्रेरणा एवं आदेश हमें वेद में निश्चित रूप से प्राप्त होगा।

वेद को परमात्मा ने संसार के समस्त ज्ञात-अज्ञात, ज्ञान-विज्ञान की भूमिका के रूप में प्रस्तुत किया है। ज्ञान-विज्ञान का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जो वेद की परिधि से बाहर हो। केवल मन्त्रों के दोहन की आवश्यकता है। फिर क्या है देखिये—ज्ञान-विज्ञान के अजस्र स्रोत स्वयं झरने लगेंगे।

वेद में विज्ञान

वेद में आकाश, पृथिवी, वायु, अग्नि, जल, सूर्य, मरुत, गणित, ज्योतिष, रश्मि, विद्युत्, कृषि, सिंचाई, ओषधि, चिकित्सा-विमानादि सैकड़ों विज्ञान भरे पड़े हैं। सारे विज्ञानों के मूलस्रोत वेद में पाये जाते हैं।

इस छोटी-सी पुस्तक में वेद से कतिपय विज्ञानों का परिचय कराने का प्रयत्न करेंगे। क्योंकि वेद के समस्त ज्ञान-विज्ञान का कोई भी व्यक्ति या व्यक्ति समूह एक बड़े-से-बड़े ग्रन्थ में भी समेटने की कल्पना नहीं कर सकता। वेद का विज्ञान तो समस्त सृष्टि में दृष्टिगोचर हो रहा है। अतः इन समस्त ज्ञान-विज्ञानों को समेटने का प्रयत्न या कल्पना ही असम्भव है।

इस पुस्तक में हम कतिपय निम्न विषयों पर वेद में विज्ञान का दिग्दर्शन कराना चाहते हैं—

(१) कृषि विज्ञान।
(२) वृष्टि विज्ञान।
(३) गणित विज्ञान।
(४) अग्नि विज्ञान।
(५) विमान विज्ञान।
(६) जलयान विज्ञान।
(७) शरीर विज्ञान।
(८) ओषधि विज्ञान।

(९) चिकित्सा विज्ञान।
(१०) दैवी चिकित्सा।
(११) यज्ञ चिकित्सा विज्ञान।
(१२) ज्योतिष विज्ञान।

वैदिक कृषि विज्ञान

सर्व प्रथम हम कृषि विज्ञान के बारे में वेद के आधार पर अध्ययन करेंगे क्योंकि मानव के लिए आहार अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना जीने की कल्पना करना ही व्यर्थ है--अतः सर्वप्रथम कृषि विज्ञान को अध्ययन के लिए लेना तर्कसंगत प्रतीत होता है।

इसके पहले कि हम वेद में कृषि के बारे में देखें—हम यह देखें कि कृषि के लिए किन बातों की मुख्य रूप से आवश्यकता होती है। साधारण तौर पर कृषि के लिए निम्न बातें आवश्यक हैं—

(१) भूमि (२) पौधे या बीज (३) पशु एवं यन्त्रादि (४) जल (५) सूर्य (६) खाद आदि।

(१) कृषि के लिए भूमि की आवश्यकता—कृषि के लिए सर्व प्रमुख रूप से आवश्यकता होती है भूमि की। क्योंकि भूमि के अभाव में कृषि असम्भव है। अतः भूमि के लिए भगवान् कहते हैं—भूमिरावपनं महत्। (यजु० २३। ४६) अर्थात् बोने के लिए (कृषि के लिए) महान् स्थान भूमि ही है। कृषि का आधार ही भूमि है। अतः भूमि को कृषि योग्य बनाना चाहिये। भूमि की महत्ता को स्वीकार करते हुए वेद कहता है—नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याः०···कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा॥ (यजु० ९। २९) अर्थात्—हे भूमिमाता! तुझे प्रणाम हो—हे भूमि-माता! तुझे शतशः वन्दन है। तुझे कृषि के लिए हम स्वीकार करते हैं। तुझे अपनी रक्षा के लिए हम ग्रहण करते हैं। तुझे ऐश्वर्य के लिए हम चाहते हैं और तुझे पोषण के लिए माता तुल्य वन्दनीय समझते हैं।

लेकिन जहाँ हमें वेद कृषि के लिए भूमि का महत्व प्रतिपादित करता है वहाँ हमें वेद यह भी आदेश देता है कि हम उत्तम अन्न की कृषि करें जैसाकि—सुसस्याः कृषीस्कृधि (यजु० ४। १०) के द्वारा कहा है क्योंकि "अन्नं वै प्राणिनां प्राणः"—"अन्नं प्राणस्य षड्विंशः" अर्थात् अन्न प्राणियों का जीवन है और अन्न का २६वाँ भाग प्राण बनता है। अतः अच्छा उत्तम अन्न उत्पन्न करना चाहिये। इस कृषिकार्य को जैसे तैसे बिना जाने करना ठीक नहीं है। क्योंकि अन्न का प्रभाव केवल हमारे शरीर पर ही नहीं अपितु बुद्धि, मन, वाणी और प्राण पर भी पड़ता है। अतः यदि दूषित अन्न का उत्पादन करेंगे तो दूषित अन्न का ही हमें उपभोग भी करना पड़ेगा, जिसका

प्रभाव हमारे मन, बुद्धि, प्राण आदि पर भी पड़ेगा और वे भी दूषित हो जावेंगे।

अतः उत्तम अन्न प्राप्ति के लिए वेद हमें आदेश देता है कि पहले हमें भूमि को अच्छा बनाना चाहिए और उसमें उत्तम अन्न उत्पन्न करने की सामर्थ्य पैदा करना चाहिए। यह उत्तम सामर्थ्य किस प्रकार करना चाहिए? इसका मार्गदर्शन निम्न प्रकार वेद करता है—"पृथिवी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्" (यजु० १८।१८) अर्थात् यज्ञ द्वारा मेरी भूमि उत्तम कृषि योग्य बने। मृत्तिका च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् (यजु० १८।३) मिट्टी को यज्ञ के द्वारा सामर्थ्यवान् बनाना चाहिए फिर "कृषिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् (यजु० १८।६) अर्थात् कृषि के लिए उत्तम तथा उत्तरोत्तर उत्तम कृषि के लिए हमें यज्ञ करना चाहिए।

(२) **बीज या पौधे**—भूमि के बाद कृषि के लिए बीज या पौधों की आवश्यकता है। क्योंकि इनके अभाव में भी कृषि नहीं की जा सकती। अतः बीजों को उत्तम बनाने के लिए "व्रीहयश्च मे यवाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे०...यज्ञेन कल्पन्ताम् (यजु० १८।१२) इस मन्त्र द्वारा वेद कहता है कि विविध प्रकार के अन्न के बीजों को यज्ञ के द्वारा समर्थ बनाना चाहिए। फिर उन बीजों को बोने के बारे में वेद कहता है—सं वपामि समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन" (यजु० १।२१) अर्थात् उत्तम ओषधियों से निष्पन्न विशिष्ट गुणयुक्त जलों से बीज सम्पृक्त हों और परिपूर्ण मधुररस से युक्त ओषधियों से निष्पन्न मधुर रसों से कृषि सम्पृक्त हो।

(३) **सूर्य किरणों की आवश्यकता**—कृषि के लिए सूर्य की किरणों की भी आवश्यकता होती है यदि पौधों को धूप या ताप नहीं मिलेगा तो उनका विकास असम्भव है। कृषि नष्ट हो जायेगी। इसके अभाव में हम अच्छी फसल की आशा नहीं कर सकते। अतः हमें कृषि भूमि का चयन उस स्थान पर करना चाहिए जहां पर सूर्य की किरणें आसानी से पहुँच सकें। वेद कहता है—"तस्यां नो देवः सविता मर्म साविषत् (यजु० १८।३०) अर्थात् पृथ्वी के लिए उत्पत्तिधर्मा बनाने के लिए सविता अर्थात् सूर्य की आवश्यकता होती है।

(४) **कृषि के लिए वायु की आवश्यकता**—कृषि के लिए वायु की आवश्यकता को वेद का निम्न मन्त्र प्रकट करता है—विश्वे अद्य मरुतः० (यजु० १८।३१) क्योंकि वायु के बिना कृषि का जीवन, उत्पत्ति, वृद्धि आदि असम्भव है।

(५) **जल की आवश्यकता**—कृषि के लिए जल की आवश्यकता तो सर्वविदित ही है। यदि हम कहें कि कृषि जल पर आधारित है तो असत्य नहीं होगा। अतः वेद कहता है—सं मा सृजामि पयसा पृथिव्या सं मा सृजाम्यदभिरोषधीभिः। सोऽहं वाजँ सनेयमग्ने॥ (यजु० १८।३५)

अर्थात्—पृथिवीस्थ जलों से मैं अपने क्षेत्र को अच्छी प्रकार सिंचित करूंगा तो कृषि से उत्पन्न अन्नादि बल विशेष देनेवाले बनेंगे। उनको सेवन कर मैं बलवान बनूं। इस प्रकार उपरोक्त मन्त्र कृषि के लिए विविध प्रकार के जलों से सिंचन की महत्ता को प्रकट कर रहा है।

(६) **रक्षण की आवश्यकता**—कृषि का रक्षण भी आवश्यक है। यदि कृषि का रक्षण नहीं होगा तो सब नष्ट हो जायेगी। अतः वेद कहता है "विश्वे नो देवा अवसागमन्तु" (यजु० १८।३१) अर्थात् कृषि विद्या में पारंगतजन अपने रक्षा साधकों के साथ क्षेत्र की कृषि के रक्षण के लिए आवें। वे देखें कि किन-किन कारणों से फसल की हानि होती है या हो रही है उसका उपाय करें।

इस प्रकार इस मन्त्र में आया है कि कृषि विशेषज्ञ लोग अपनें उत्तमोत्तम आधुनिक साधनों से कृषि के रक्षण कार्य में संलग्न हों।

जल विज्ञान

जल के अभाव में प्राणिमात्र के जीवित रहने की कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। जल केवल पीने के कार्य में ही प्रयुक्त नहीं होता अपितु जीवन के अनेकानेक कार्यों में इसका उपयोग तथा महत्व है। वेद में जल के बारे में बहुत विस्तार से वर्णन आता है। जल की उत्पत्ति, प्राप्ति, जल की बनावट जलों का स्थान, गुण आदि का वेद में बहुत विस्तार के साथ वर्णन आता है। वेद के इस विज्ञान को देखकर बड़े-से-बड़ा विद्वान् भी चकित रह जायेगा। यह न केवल हमारे मलों एवं रोगों को दूर करता है अपितु पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के मलों और रोगों का भी मार्जन एवं शमन करता है। न जाने कितने सैकड़ों-हजारों कार्यों में जल का नित्य उपयोग होता रहता है। इसलिए वेद ने कहा है—

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु (यजु० ४। २)

जल हमारी माताओं के समान है। अर्थात् जिस प्रकार माँ अपने बच्चों का ध्यान रखती है उसे स्वच्छ करती है, मलों को दूर करती है रोगों को भी हटाती है उसी प्रकार जल भी हमारे लिए यह सब कार्य करता है। इसलिए वेद ने उसे माता कहा है।

जल का स्थान—वेद कहता है "त्रीन् समुद्रान् समसृपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभ इष्टकानाम्।" (यजु० १३।३१) अर्थात् सुख करानेहारे वर्षयिता की कामनाओं की पूर्ति करनेवाले जल का स्वामी तीन प्रकार के, नीचें, मध्य, ऊपर में रहनेवाले समुद्रों को अच्छी प्रकार प्राप्त होता है।

अर्थात् वेद कहता है कि जल के तीन स्थान हैं (१) पृथिवी (२) अन्तरिक्ष (३) द्युलोक।

वेद कहता यह भी है—(१) महीनां पयोऽसि (यजु० ४।३) अर्थात पार्थिव जल है जो पृथिवी पर है।

(२) वृत्रस्यासि कनीनकः (यजु० ४।३) अर्थात् हे जलो! तुम अन्तरिक्षस्थ मेघों के प्रकाशक हो अर्थात् जल अन्तरिक्ष में मेघ रूप में ओस व कुहरे के रूप में रहता है। यह जल का वृत्ररूप है।

(३) उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ। (ऋ० —१।२४।८) अर्थात् वरुण राजा सूर्य के गमनागमन के लिए विस्तारयुक्त मार्गों को सिद्ध करता है। यह एक विशेष अवस्था के जल हैं। इसी वरुण को वेद में "अपामधिपतिः" (अथर्व० ५।२४।४) अर्थात् जलों का स्वामी कहा है। अतः इस वरुण के माध्यम से जल द्युलोक में भी विद्यमान रहता है।

जलों में भेषज तत्त्व—अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा। अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजी" (ऋ० १।२३।२०) अर्थात् सोम मेरे लिए जलों के बीच में सब ओषधि भेषज गुण की सब जगत् के सुख करने वा रोगों को शमन करनेवाली अग्नि को प्रकट करता हैं। सभी ओषधियाँ जल से ही उत्पन्न होती हैं।

आपः पृणीत भेषजं वरुथं तन्वे मम। (ऋ० १।२३।२१) अर्थात् जल मेरे शरीर में श्रेष्ठ रोगनाशक प्रभाव को परिपूर्ण करते हैं।

जलों के निर्माता तत्व—वेद यह भी बतलाता है कि जल का निर्माण किन-किन तत्वों के योग से होता है। वेद कहता है—अपो देवा मधुमतीर-गृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चिनाः। याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिंचन याभिरिन्द्रम-नयन्नत्यरातीः॥ (यजु० १०।१) अर्थात् इस मन्त्रों से वेद भगवान् कहते हैं—मित्र और वरुण को अच्छी प्रकार सिंचित करने के लिए विद्युत् को संयुक्त करते हैं। उस क्रिया में मधुर रस युक्त बल पराक्रम बढ़ानेवाला, चैतन्यता उत्पादक प्रकाशयुक्त जलों को ग्रहण करते हैं। इस प्रकार यह मन्त्र स्पष्ट कर रहा है कि मित्र और वरुण दो प्रकार के तत्वों का मिश्रण कर जल का निर्माण होता है।

तत्वों का अनुपात—इसके साथ यह भी वेद बतलाता है कि इन दो तत्वों का अनुपात क्या होगा। वेद भगवान् कहते हैं—मित्रस्य भागोसि वरुणास्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वातं स्पृत एकविंश स्तोम॥ (यजु० १४।२४) इस मन्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि जल में वरुण तत्व का अधिपत्य होना चाहिए अर्थात् इसका अधिक भाग होना चाहिए। और मित्र तत्व की प्रभुता नहीं होनी चाहिए, अर्थात् कम अंश होना चाहिए। इस मन्त्र में एकविंश स्तोम शब्द आया है। स्तोम समूह को कहते हैं। इन दोनों तत्वों का समूह

२ और १ के अनुपात से मिले हैं। अर्थात् एकविंश के रूप में दोनों का अनुपात २:१ होगा। यहाँ जलों के बारे में इतना ही उल्लेख पर्याप्त है। यदि हम विस्तार में जायेंगे तो अन्य विषय छूट जायेंगे। अब हम जल के वर्षा सम्बन्धी विषय का उल्लेख करते हैं।

याज्ञिक वृष्टि विज्ञान

वेद में वृष्टि विज्ञान के सम्बन्ध में भी विशद रूप से चर्चा की गयी है। यह वेद में प्रतिपादित मुख्य विषयों में से एक है। वेद ने स्पष्ट रूप से घोषणा की है—

"निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु (यजु० २२।२२) जब जब हम चाहें तब तब मेघ वर्षा करें अर्थात् हमारी इच्छानुसार जब हम उसकी आवश्यकता अनुभव करें तब तब वर्षा होवे। अतः वेद का स्पष्ट मत है कि हम वर्षा को अपने नियन्त्रण में रख सकते हैं। उसे इच्छानुसार कम या अधिक कर सकते हैं। जब यह हो जायेगा तो संसार में सुखदायी वर्षा होने लगेगी लेकिन यह किस प्रकार हो सकेगा। इसका उत्तर भी वेद देता है—"वृष्टिश्चमे यज्ञेन कल्पन्ताम्" (यजु० १८।१९) अर्थात् हमें वृष्टि की प्राप्ति मेघों में वर्षण क्रिया यज्ञ द्वारा उत्पन्न कराने से हो सकती है। याज्ञिक वृष्टि विज्ञान हमारे यहाँ प्राचीन काल से चला आ रहा विज्ञान है। महर्षि श्रृंगी ने भी अवर्षण की अवस्था में यज्ञ द्वारा वृष्टि करवाई थी। इस विज्ञान के द्वारा मेघों के न होने पर भी मेघों का निर्माण कर, वृष्टि करवाई जा सकती है। यज्ञ द्वारा जो वृष्टि होगी वह साधारण वृष्टि नहीं होगी यज्ञ द्वारा दिव्य वृष्टि होगी। वेद कहता है—"दिव्या वृष्टिः सचताम्" (यजु० १३।३०) दिव्य गुणयुक्त वर्षा प्राप्त हो।

जब साधारण वर्षा ही गुणयुक्त होती है तो यज्ञ द्वारा जो वृष्टि होगी उससे निश्चय ही बहुत अधिक लाभ होगा। उसकी यह दिव्य वृष्टि पृथिवी और अन्तरिक्ष की शुद्धि एवं सबको पुष्ट करेगी। ऐसी वृष्टि से उत्पन्न अन्न, रस, घृत, फलादि भी उत्तम संस्कारित एवं दिव्य गुणयुक्त होंगे।

यज्ञ से वर्षा एवं वृष्टि में वृद्धि—भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—"यज्ञात् भवति पर्जन्यः" अर्थात् यज्ञ से मेघ उत्पन्न होते हैं और मेघ से वृष्टि होती है। वेद ने भी यज्ञ को "वर्षवृद्धमसि" (यजु० १।१६) कहा है अर्थात् यज्ञ वर्षा की वृद्धि करनेवाला है। इस प्रकार वेद स्पष्ट रूप से कह रहा है कि यज्ञ से वृष्टि होती है एवं वृष्टि की वृद्धि भी वह करता है।

यज्ञ में प्रयुक्त हवि द्वारा वर्षा खरीदने का वेद का आदेश—इतना ही नहीं जैसे हम वस्तुएँ मूल्य चुकाकर खरीदते हैं उसी प्रकार वेद आदेश देता है कि यज्ञ में हविरूप धन देकर वृष्टि खरीदें। वेद कहता है—पूर्णादर्वि

परापत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्ज्ज ँ् शतक्रतो ॥

जब हम पके हुए, होम योग्य पदार्थों की धारण करनेवाली द्रव्यों से पूर्ण आहुति देते हैं तो वह अग्नि में होमे हुए पदार्थों के अंश को ऊपर अन्तरिक्ष में, जलों को प्राप्त कराके, वृष्टि से पूर्ण होकर फिर अच्छी प्रकार पृथिवी में उत्तम जल, रस को प्राप्त कराती है। इस प्रकार वैश्यों के व्यवहार के समान उत्तम अन्नादि पदार्थ पराक्रम युक्त वस्तुओं को खरीदें। अर्थात् जिस प्रकार वैश्य वर्ग रुपया आदि को लेकर अनेक प्रकार के अन्नादि पदार्थों का क्रय-विक्रय करते हैं वैसे ही हम लोग भी अग्नि में कुछ द्रव्यों की आहुति प्रदान कर अनेक प्रकार के सुखों को खरीदें और खरीदकर फिर वृष्टि के लिए और सुखों के लिए अग्नि में हवन करें। इस प्रकार यज्ञ के द्वारा हम एक चक्र चलाते हैं। यज्ञ वृष्टि से अनेक प्रकार के सुख और सुखों से फिर द्रव्यादि द्वारा पुनः यज्ञ करते हैं।

यज्ञ से वर्षा होने के कारण—यदि हम पूरी यज्ञ क्रिया पर ध्यान देवें तो हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि यज्ञ के मुख्य अंग इस प्रकार हैं— (१) मन्त्र ध्वनि (२) आहुति (३) अग्नि (४) आहुति द्रव्य (५) इच्छाशक्ति।

मन्त्र या ध्वनि का प्रभाव—होता—आह्वाता बुलानेवाले को भी कहते हैं। वह वृष्टियज्ञ में मेघों का आह्वाता है। ध्वनि से वर्षा को बुलाया जाता है। यजु० २४।३२ में "वर्षाहू" शब्द आता है—जिसका अर्थ होता है जो वर्षा को बुलाता है। अर्थात् ध्वनि वर्षा को आकर्षित करती है। इसकी पुष्टि यजु० अध्याय ७ मन्त्र ४० में—"पर्जन्यो वृष्टिमाँ २ऽइवस्तोमैर्वत्सस्य वावृधे" से भी प्रकट होती है कि ध्वनि का मेघ पर प्रभाव पड़ता है।

स्तुति मन्त्रों का भी यज्ञ में प्रयोग करने से ध्वन्यात्मक प्रभाव तत्वों पर पड़ता है वेद कहता है "इन्द्राय साम गायत" (सामवेद ३।८८) अर्थात् अन्तरिक्षस्थ इन्द्रतत्व विद्युत् के लिये तथा द्युलोकस्थ इन्द्र सूर्य के लिए सामगान करो।

पर्जन्य के लिए भी वेद हमें गान करने का आदेश देता है। ऋग्वेद, ७।१०२।१ कहता है कि "पर्जन्याय प्रगायत" अर्थात् पर्जन्य के लिए खूब गान करो। यजुर्वेद में भी इन्द्र के लिए बृहत् साम का गान करने का आदेश आता है जैसा कि "बृहदिन्द्राय गायत (यजु २०।३६) अर्थात् इन्द्र के लिए बृहत् साम का गान करो।

वृष्टि के लिये मेघ मल्हार का प्रयोग हमारे यहाँ प्राचीन काल से होता आ रहा है जो एक ऐतिहासिक तथ्य है जिसे असत्य नहीं कहाजा सकता।

यह भी देखने में आता है कि वर्षा के पूर्व मेंढ़क खूब आवाज करते हैं। इनके इस कार्य को देखकर ही पहले और अब भी ग्रामीण लोग वर्षा का अनुमान लगा लेते हैं।

अतः मन्त्रपूर्वक हविप्रदान करने से वर्षा पर प्रभाव पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि सामूहिक रूप से मन्त्रपाठ का वृष्टियज्ञ में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इससे जो संगीत उत्पन्न होता है उसका प्रभाव वृष्टि पर होता है।

आहुति का प्रभाव—आहुति का प्रभाव वृष्टि पर बहुत पड़ता है। इसके प्रभाव का वर्णन वेद के कई मन्त्र करते हैं। यजुर्वेद प्रथम अध्याय मन्त्र २५ कहता है—"व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु" अर्थात् आहुति मेघमण्डल में जाकर पृथिवी के स्थान विशेष पर वर्षा करती है। इसी प्रकार यजुर्वेद अध्याय २ मन्त्र १६ में वेद कहता है—मारुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवंगच्छ ततो वृष्टिमावह ॥ इस मन्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि जो आहुति हम अग्नि में देते हैं वह वायु मार्गों से गमन करती हुई अन्तरिक्ष स्थानों एवं मार्गों से द्युलोक तक पहुँचती है, तथा पुनः वह द्युलोक से वृष्टि को लाती है। उपरोक्त तथा अन्य कई मन्त्रों से यह स्पष्ट है कि यज्ञ की आहुतिका प्रभाव वृष्टि पर अवश्य पड़ता है।

आहुति क्रम का प्रभाव—इसके अतिरिक्त आहुति क्रम का भी वायुमण्डल पर प्रभाव पड़ता है। जब हम अग्नि में घृत की आहुति प्रदान करते हैं तो पहले वह एकदम प्रचण्ड होती है फिर क्रमशः मन्द होने लगती है यह प्रक्रिया वायुमण्डल में ताप के विभिन्न स्तरों का निर्माण करने में सहायता पहुँचाती है।

साथ ही इसके बाद दी गयी दूसरी आहुति-पहलीवाली आहुति को बल पहुँचाती है और उसे अन्तरिक्ष में और ऊँचाई तक पहुँचाने में सहायक होती है।

हवि-द्रव्यों का प्रभाव—आहुति द्रव्यों का प्रभाव वृष्टि पर बहुत अधिक होता है जैसा पहले लिख चुके हैं कि मित्र और वरुण दोनों तत्वों के संयोग से जलका निर्माण होता है। आहुति एवं हव्य द्रव्यों के माध्यम से हम अन्तरिक्ष में ऐसी प्रक्रिया निर्माण करते हैं कि जिससे मित्र और वरुण का निर्माण हो और उनका संयोग हो सके। इसके लिए वेद कहता है—कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया। दक्षंदधाते अपसम्। (ऋ०१।२।६) यहाँ "तुविजाता" और "उरुक्षया" ये दो शब्द प्रयुक्त किये गय हैं। जिनका अर्थ क्रमशः बहुत कारणों से उत्पन्न एवं बहुतों में प्रविष्ट तथा संसार के दूसरे पदार्थों में निवास से है। इस प्रकार यह मन्त्र स्पष्ट कहता है कि ये दोनों तत्व संसार के बहुत से पदार्थों से उत्पन्न होते हैं और बहुत से पदार्थों में रहते है या निवास करते हैं। अतः जिन पदार्थों में ये रहते हैं या

निवास करते हैं और जिनसे ये उत्पन्न किये जाते है उन पदार्थों का उपयोग यज्ञ हवि के लिए लेना चाहिये जिससे इनका उत्पादन कर इनका संयोग करके जल का निर्माण किया जा सके। वेद स्पष्ट रूप से घोषणा कर रहा है—

यज्ञा नो मित्रावरुणा यज्ञा देवां ऋतं बृहत्। (यजु०३३।३) अर्थात् महान् जलों के निर्माण के लिए मित्र और वरुण को तुम संगत करो। मित्र ऑक्सीजन है और वरुण हाइड्रोजन है। इस प्रकार यज्ञ द्वारा दोनों का निर्माण एवं संयोग होकर वर्षा होती है।

अग्नि का प्रभाव—अग्नि यज्ञ का मुख्य तत्व है। भौतिक यज्ञ अग्नि के ही माध्यम से किया जाता है। यज्ञाग्नि का प्रभाव वृष्टि के लिए स्वाभाविक होता है। यह तो सर्वविदित है कि यज्ञ आरम्भ करने पर सर्व प्रथम उसका प्रभाव वायुमण्डल पर पड़ता है। जहाँ भी यज्ञ होगा वहाँ के वातावरण में गर्मी पैदा होगी—एक उष्मा का संचार वातावरण में होने लगेगा। जिसके कारण नीचे की वायु हल्की होकर ऊपर को जावेगी। जब नीचे की वायु ऊपर को जावेगी तो उसका रिक्त स्थान आस-पास की वायु ले लेगी। फिर यह वायु भी ऊर्ध्वगमन करेगी अर्थात् ऊपर जायेगी फिर इसका स्थान दूसरी वायु लेगी इस प्रकार यज्ञाग्नि से एक चक्रमय प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है और उत्तरोत्तर क्षेत्र विस्तृत होता जाता है।

यह ऊपर पहुँचनेवाली वायु जितनी ऊँची जायेगी उतनी ऊँचाई की वायु नीचे की ओर आना प्रारम्भ हो जायेगी। इस प्रकार नीचे की वायु ऊपर और ऊपर की वायु नीचे की ओर आने लगेगी। इस प्रकार यज्ञस्थल से वायुमण्डल में एक विशाल तथा ऊर्ध्वक्षेत्र में वायु का चक्र प्रारम्भ हो जाता है।

वेद कहता है—"स्वाहा कृते ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम्। (यजुर्वेद ६।१६।)

अर्थात् स्वाहापूर्वक आहुति देने से वायु ऊपर के आकाश में जावे।

जब यह चक्र निरन्तर कुछ काल तक चलता रहेगा तो उसका क्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ता जावेगा और उसमें जैसे-जैसे ऊष्मा बढ़ती जावेगी वह अपने में अधिकतम जल भरने की सामर्थ्य प्राप्त करेगी। इस प्रकार यज्ञ से एक विशिष्ट प्रकार के तापमान युक्त जलधारा के साथ उस विशिष्ट क्षेत्र में वातचक्र का निर्माण होता है जो वर्षा का कारण बनता है।

यज्ञ से मेघों का निर्माण—यज्ञ से अन्तरिक्ष के वायुमण्डल के ताप में वृद्धि होती है। जब यज्ञ की परिक्रिया बन्द होती है तो उससे प्रभावित वायुमण्डल के ताप में कमी हो जाती है। इससे उस वाष्प रूप वायु के घनत्व में संकोचन एवं आर्द्रता में वृद्धि होती है। इस परिक्रिया से मेघों का निर्माण कार्य होता है। यह एक नितान्त स्वाभाविक वैज्ञानिक क्रिया है।

यज्ञ द्वारा अन्तरिक्षस्थ जल को नीचे लाना—जिस प्रकार पृथिवीस्थ जल को बाहर निकालने के लिये खनन क्रिया (बोरिंग) करनी पड़ती है उसी प्रकार यज्ञ द्वारा अन्तरिस्थ जल को खनन क्रिया द्वारा नीचे पृथिवी पर लाया जा सकता है यह कार्य अग्नि एवं वायु के बिना सम्भव नहीं है इस क्रिया में इन दोनों का सहयोग अत्यावश्यक है। वेद कहता है—घृताची स्थो धुर्यो पात " सुम्नेथः सुम्ने माधत्तम् । यज्ञ नमश्च तउप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विस्टे मे सन्तिष्ठस्व"। (यजुर्वेद २।१९) इस मन्त्र के देवता अग्नि और वायु दोनों ही हैं। अतः यह दोनों जल को प्राप्त कराने वाली क्रियाओं को करानेवाले हैं। ये दोनों यज्ञ की मुख्य क्रियाओं की रक्षा करें। तुम दोनों वर्षा करनेवाले होने से सुखरूप हो। अतः यज्ञ द्वारा वर्षा कराने वाले मुझको सुख में स्थापना कराओ।

इस प्रकार यज्ञ द्वारा अन्तरिक्ष में निर्मित लम्ब रूप ऊर्ध्व खनन क्रिया चलती है। जब हम यज्ञ में आहुति देते हैं तो अपनी यह खनन क्रिया बढ़ती जाती है। इस प्रकार जैसा कि पहले बतलाया था कि ऊपर की वायु नीचे और नीचे की वायु ऊपर पहुँचने लगती है इससे ऊपर के जल भी नीचे पृथिवी पर आ जाते हैं।

श्रद्धा या इच्छा शक्ति का प्रभाव—जिस व्यक्ति में दृढ़ इच्छा शक्ति या श्रद्धातत्व नहीं वह व्यक्ति किसी भी कार्य को पूरा नहीं कर सकता। दृढ़ इच्छाशक्ति व्यक्ति को न जाने कहाँ से कहाँ पहुँचा देती है। सब महापुरुष प्रारम्भ में अकेले ही थे, किन्तु दृढ़ इच्छाशक्ति से उन्होंने दुनिया को अपनी ओर झुका दिया।

यज्ञ में तो इच्छा शक्ति या श्रद्धा की विशेष आवश्यकता होती है। यज्ञ एक सामूहिक कार्य है। जिस उद्देश्य को लेकर हम यज्ञ कर रहे हैं उसके प्रति यज्ञ में सम्मिलित सभी व्यक्तियों को यज्ञ क्रिया एवं उसके उद्देश्य की सफलता में दृढ़ विश्वास होना चाहिए।

आज के वैज्ञानिक युग में भी इच्छाशक्ति (Will Power) के चमत्कार हम प्रायः पढ़ते एवं सुनते रहते हैं। यदि एक व्यक्ति की इच्छाशक्ति इतनी अधिक शक्तिशाली हो सकती है तो यज्ञ में तो सामूहिक इच्छाशक्ति लगती है। अर्थात् कई लोगों की इच्छाशक्ति एक ही कार्य में लगी रहती है तो वह कार्य निश्चित रूप से सिद्ध होगा ही।

वेद कहता है—"यज्ञ नमश्च त उप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे सन्तिष्ठस्व (यजुर्वेद २।१९) अर्थात् यज्ञ के लिए श्रद्धा प्रेम एवं नम्र भाव से क्रिया करनी चाहिये। जिससे उसका उपचय, ऊपर की ओर चयन, विशेष संचय, स्थित हो। ज्ञान और क्रिया से विधियूर्वक यज्ञ कल्याण प्रदान कराने में अच्छी प्रकार अन्तरिक्ष के अपने मार्गों में वेदी से अन्तरिक्ष के मध्यभाग में लम्ब रूप में स्थित होता है। अतः मेरा जो यज्ञ करने का

प्रयोजन है उस कामना की पूर्ति के लिए अच्छी प्रकार स्थित हो। इस प्रकार उपरोक्त मन्त्र श्रद्धा या इच्छा शक्ति का महत्व यज्ञकर्म में बतलाता है।

इसके अतिरिक्त श्रद्धा को जल का अत्यन्त सूक्ष्म रूप माना गया है "श्रद्धा वै आपः" अर्थात् श्रद्धा अत्यन्त सूक्ष्म जलीय तत्व है। इस श्रद्धा तत्व का जो जल का अत्यन्त सूक्ष्म रूप या जल है उससे सोम या पर्जन्य रूप में परिणत करने का कार्य मन की संकल्पशक्ति से प्रेरित होकर यज्ञक्रिया करती है। संकल्प और क्रिया का सम्मिश्रण ही श्रद्धा है जो मन का विषय है। यह यज्ञ द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है।

वृष्टि यज्ञ में आहुति संख्या—भगवान् वेद हमें आहुति की संख्या का भी वृष्टि यज्ञ के लिए निर्देश करते हैं। वेद भगवान् कहते हैं—एतान्यग्ने नवनिर्नवत्वे आहुतान्यधि रथा सहस्रा तेभिर्वर्धस्व तन्वः शूर पूर्वीर्दिवो नो वृष्टिमिषतो रिरीहि ॥ (ऋ० १०।९८।१०) अर्थात् हे अग्नि ! इन ९९ हजार आहुतियों के रथ पर आरुढ़ हो जाइये और पराक्रमशील इन आहुतियों से वृद्धि को प्राप्त होकर सूक्ष्मता तथा व्यापनशीलता से अन्तरिक्ष एवं द्युलोक से हमारे लिए वृष्टि की अनुकूलता सम्पादन करके वृष्टि प्रदान कीजिये।

इस प्रकार ९९ हजार आहुतियों का आदेश वेद हमें स्पष्ट रूप से देता है। इसमें सामान्य यज्ञ आदि अन्य विशेष आहुतियों सहित १ लाख या सवा लाख के लगभग आहुतियाँ हो जावेंगी। इतनी आहुति वृष्टियज्ञ के लिये आवश्यक हैं यदि अन्तरिक्ष में जल का संचयन न हो या मेघ न बनते हों तो।

किस देवता के लिए कितनी आहुति—इसके साथ ही वेद हमें यह भी बतलाता है कि किस देवता के लिए कितनी आहुतियाँ दी जानी चाहियें। (ऋग्वेद १०।९८।११) कहता है—"एतान्यग्ने नवतिं सहस्रा सम्यच्छ इन्द्राय भागम्" अर्थात् जो ९९ हजार आहुतियाँ हैं उनमें से ९० हजार आहुतियाँ इन्द्र के लिए देनी चाहिये। यहाँ इन्द्र में सूर्य भी सम्मलित है। शेष ९ हजार आहुतियाँ वरुण, मित्र, सोम मरुत, पर्जन्य, स्तनयित्नु विद्युत् एवं आपः देवता के लिए देनी चाहिएँ।

आहुतियाँ किन-किन छन्दों के मन्त्रों से दी जानी चाहियें—इसमें जगती एवं त्रिष्टुप् छन्द से लेकर गायत्री छन्द मन्त्रों की आहुतियाँ उपरोक्त देवता की देनी चाहिये। तब जाकर वृष्टि-यज्ञ की क्रिया पूर्ण होती है।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि याज्ञिक वृष्टि विज्ञान एक सुस्पष्ट विज्ञान के रूप में वेदों में विद्यमान है। आवश्यकता इस बात की है कि इसमें योजनाबद्ध रूप में कई वर्ष तक लगातार देश के कई भागों में प्रत्येक ऋतु में परीक्षणकर इसे आधुनिक विज्ञान की श्रेणी में स्थित किया जाये।

वेद में गणित विज्ञान

गणित विज्ञान का महत्व सर्व विदित है। इसके अभाव में कोई भी विज्ञान आज के युग में विज्ञान नहीं माना जाता। आज विश्व का सम्पूर्ण विज्ञान, व्यवसाय सभी गणित पर आधारित हैं।

गणित शब्द गण धातु से क्त प्रत्यय लगाकर बना है। गण धातु का अर्थ है गिनना। क्त प्रत्यय कई अर्थों में लगा करता है। किन्तु इस शब्द के साथ जितने भी अर्थों में यह है वे निम्नलिलित हैं : (१) संख्या किया हुआ (२) गणना (३) वह शास्त्र जिसमें गणना की प्रधानता हो (४) ज्योतिष जिसमें प्रारम्भिक अंकगणित भी सम्मलित है (५) ग्रह गणित (६) अंकगणित जिसमें क्षेत्रमिति गणित (Mensuration) भी सम्मलित है। (७) बीजगणित सहित गणित (८) किसी गणितीय श्रेणी का योग (९) क्षेत्रफल (१०) संख्या।

भारत में प्राचीन काल से ही गणित विद्या का प्रचलन था। ईरानी अलबरूनी जो हमारे भारतवर्ष में ७ वर्ष रहा वह लिखता है "गणित विद्या यहाँ बहुत उन्नत है। इस देश के लोग पद्म, शंख तक गिनती जानते हैं। अन्य स्थानों में जहाँ मैं गया एक हजार से अधिक कोई नहीं जानता।"

अलबरूनी के उपरोक्त कथन से सिद्ध है कि भारतीय प्राचीन काल से ही इस विज्ञान के विज्ञ थे। उन्होंने गणित को बहुत समझ लिया था। मेक्समूलर भी कहता है "यहाँ से हमने बिन्दु ० वा Infinity से अनन्त को जाना"।

यह विश्व ही गणितमय है। देखने वाले की आँखें एवं समझ चाहिये। गणित के वे सब सिद्धान्त जो हम आज तक खोज या समझ पाये और वे सब भी जिन्हें हम अभी तक खोज नहीं पाये वे सब इस परमेश्वर की सृष्टि में कार्यरत हैं।

वेद में तो कई स्थानों पर गणित विद्या के दर्शन होते हैं।

वेदों में गिनती—निम्न मन्त्र में १ से १० तक की संख्या का ज्ञान होता है—य एतं देवमेकवृतं वेद (अथर्व १३।४।१५) अर्थात् उस देव को एक ही जानो। इस मन्त्र में हमें प्रथम संख्या का ज्ञान होता है। न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते। य एतं देवमेकवृतं वेद ।। (अथर्ववेद १३।४।१६) इस मन्त्र से हमें २-३-४ तक की संख्या का बोध कराया गया है।

न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्ते। य एतं देवमेकवृतं वेद (अथर्ववेद १३।४।१६) अर्थात् न वह पाँचवां न छटवां न सातवाँ ही कहा जाता है। यह मन्त्र हमें ५-६-७ की संख्या का ज्ञान दे रहा है। नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्चते। य एतं देवमेकवृतं वेद। (अथर्ववेद १३।४।१८ अर्थात्

वह न आठवाँ न नवमाँ न दशमाँ कहलाता है। इस मन्त्र से हमें ८,९,१० की गिनती का बोध होता है। इस प्रकार उपरोक्त मन्त्रों से हमें एक से दशतक की गिनती का ज्ञान वेद करा रहा है।

अथर्ववेद काण्ड १९।२३ में १ से १७ तक के मन्त्रों में ४ से २० तक की गिनती निम्न प्रकार है। आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा (१) से ४ का ज्ञान प्राप्त होता है। पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा (२) से ५ का ज्ञान प्राप्त होता है। षडृचेभ्यः स्वाहा (३) से ६ का बोध होता है। सप्तर्चेभ्यः स्वाहा (४) इससे ७ का ज्ञान होता है। अष्टर्चेभ्यः स्वाहा (५) इससे ८ का ज्ञान प्राप्त होता है। नवर्चेभ्यः स्वाहा (६) ९ का ज्ञान होता है। दशर्चेभ्यः स्वाहा (७) १० का ज्ञान होता है। एकादशर्चेभ्यः स्वाहा (८) इससे ११ का ज्ञान होता है। द्वादशर्चेभ्य स्वाहा (९) इससे १२ का ज्ञान होता है। त्रयोदर्श्चेभ्यः स्वाहा (१०) इससे १३ का ज्ञान होता है। चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा (११) इससे १४ का ज्ञान होता है। पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा (१२) इससे १५ का ज्ञान प्राप्त होता है। षोडर्श्चेभ्यः स्वाहा (१३) इससे १६ की संख्या का ज्ञान होता है। सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा (१४) इससे १७ की संख्या का ज्ञान होता है। अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा (१५) इससे १८ की संख्या का बोध होता है। एकोनविंशतिः स्वाहा (१६) इससे १९ की संख्या का ज्ञान होता है। विंशतिः स्वाहा (१७) इससे २० की संख्या का ज्ञान होता है।

इस प्रकार वेद द्वारा गिनती किस प्रकार आगे बढ़ाई जा सकती है यह एक से बीस तक की गिनती के उदाहरण से आसानी से समझा जा सकता है।

वेदों में बड़ी संख्यायें—वेदों में छोटी संख्याओं का ही नहीं अपितु बड़ी संख्याओं का भी वर्णन आता है जैसे "शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन् निविष्टम्।" (अथर्ववेद १०।८।२४) इसमें सौ, हज़ार, दस हजार, दसकरोड़ तक की संख्यायें आई हैं।

इतना ही नहीं वेद बड़ी से बड़ी संख्या का भी श्रेणीबद्ध रूप से ज्ञान हमें देता है। किस प्रकार शून्य की संख्या को आगे बढ़ाकर हजार से दस हजार लाख से दस लाख किया जाता है—

इमा मे ऽअग्न ऽइष्टका धेनवः सन्त्वेका
च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं
चायुतंच नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्युर्बुदं च
समुद्रश्चमध्यंचान्तश्च परार्धश्चैताम अग्न
ऽइष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिंल्लोके। (यजु० १७।२)

अर्थात् मेरी इष्टका—साधनाभूत अंकों की प्राथमिक इकाई एक को दस से गुणा करने पर दश—दस को दस से गुणा करने पर शत, शत को दस से

गुणा करने पर सहस्र, सहस्र को दस से गुणा करने पर (अयुत) दस हजार अयुत को दस से गुणा करने पर (नियुत) लाख, नियुत को दस से गुणा करने पर (प्रयुत) दस लाख, प्रयुत को दस से गुंणा करने पर करोड़, करोड़ को दस से गुणा करने पर (अर्बुद) दस (करोड़) इसी प्रकार समुद्र, मध्य अन्त और परार्ध आदि की सिद्धि होती है। इस मन्त्र में निर्दिष्ट संख्याओं का योग इस प्रकार बनता है।

एका १, दशम १०, शतम १००, सहस्र १,००० हजार, अयुतम् १०,००० दस हजार, नियुतम् १,००,००० लाख, प्रयुतम् १०,००,००० दस लाख, प्रयुतम् १०,००,००,०० करोड़, अर्बुदम् १०,००,००,००० दस करोड़, न्युर्बुदम १,००,००,००,००० अर्ब, दस अर्ब १०,००,००,००,००० दस अरब, समुद्र १,००,००,००,००,००० खर्ब, दस खर्ब १०,००,००,००, ००,००० दस खर्ब, मध्यम १००००००००००००० नील, दस मध्यम १०००००००००००००० दस नील, अन्तः १००००००००००००००० पद्म, महाअन्तः १०००००००००००००००० महापद्म, परार्ध १००००० ००००००००००००० शंख, महापरार्ध १००००००००००००००००००० महाशंख।

इस प्रकार वेद से बड़ी-से-बड़ी संख्या का बोध होता है। उपर्युक्त संख्याओं से गुणा का भी ज्ञान होता है।

विषम गणना प्रकार—वेद हमें विषम गणना का भी प्रकार बतलाता है। यह गिनती हमें सिखा रहा है यजुर्वेद १८।२४ वाँ मन्त्र। इसमें विषम संख्यायें इस प्रकार हैं—

एकाच मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पंचच मे पंच च मे सप्त च मे सप्त च मे सप्तच मे नव च मे नव च मऽएकादशच मऽएकादश मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पंचदश च मे पंचदशच मे सप्तदशच मे सप्तदशच मे नवदश च मे नवदश च मऽएकविँशतिश्च मऽएकविँशतिश्च मे त्रयोविँशतिश्च मे त्रयोविँशतिश्च मे पंचविँशतिश्च मे पंचविँशतिश्च मेसप्तविँशतिश्च मे नवविँशतिश्च मे नवविँशतिश्च मऽएकत्रँशच्च मएककत्रिँशच्च मे त्रयस्त्रिँशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। इस उपरोक्त मन्त्र के आधार पर विषम गिनती का क्रम इस प्रकार होगा। १-३-५-७-९-११-१३-१५-१७-१९-२१-२३-२५-२७-२९-३१-३३।

इस मन्त्र की रचना अद्भुत है। इससे गणित के कई सिद्धान्त निकल सकते हैं जैसे एक घटाने पर सब गिनती बन सकती है। यदि पिछली संख्या को जोड़ते जायें तो पहाड़ों का क्रम भी निरन्तर बन पड़ता है। १+३=४, ३+५=८, ५+७=१२, ७+९=१६, ९+११=२०, ११+१३=२४, १३+१५=२८, १५+१७=३२, १७+१९=३६, १९+२१=४०।

जोड़—इस प्रकार यजुर्वेद २३।३४ का मन्त्र जोड़ का ज्ञान हमें दे रहा है—द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदायाश्च षट्पदाः । विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः शम्यन्तु त्वा ।। (यजु० २३।३४) अर्थात्—अंक क्रमों में जो द्विपदा २+२ के अनुसार हैं जो त्रिपदा ३+३ के अनुसार हैं जो चतुष्पदा ४+४ के अनुसार हैं अपना पद रखते हुए आगे बढ़ते हैं जो षट्पदा अर्थात् ६+६ के अनुसार पग आगे बढ़ाते हैं वे "सूचीभिः" सुई के समान क्रमशः सबको एक सूत्र में युक्त करती है । इस प्रकार यह मन्त्र जोड़ तथा २ के पहाड़ों का सुन्दर उदाहरण हैं ।

पहाड़े—इसी प्रकार पहाड़ों के उदाहरण भी वेद में प्राप्त होते हैं। पहाड़ों के लिए श्रेष्ठ उदाहरण है क्योंकि इस सिद्धान्त के आधार पर दूसरी संख्याओ के पहाड़े बनते हैं। जैसे—चतस्रश्च मे ऽष्टौच मे ऽष्टौच मे द्वादश च मे द्वादशच मे षोडशच मे षोडशच मे विँशतिश्च मेविँशतिश्च मे चतुर्विँशतिश्चमे चतुर्विँशतिश्च मे ऽष्टाविँशतिश्च मे ऽष्टाविशतिश्च मे द्वात्रिँशच्च मे द्वात्रिँशच्च मे षट्त्रिँशच्च मे षट्त्रिँशश्चच्च मे चत्वारिँशच्च मे चत्वारिँशच्च मे चतुश्चत्वारिँशच्च मे चतुश्चत्वारिँशच्च मे स्ष्टघत्वारिँशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।। (यजुर्वेद १८।२५)

उपरोक्त मन्त्र में ४ का पहाड़ा स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, जिसका क्रम इस प्रकार से होगा ।

चतस्रश्च मे ४, अष्टौच मे ८, द्वादशच मे १२, षोडशच मे १६, विंशतिश्च मे २०, चतुर्विंशतिश्च मे २४, अष्टाविंशतिश्च मे २८, द्वात्रिंशच्च मे ३२, षट्त्रिंशच्च मे ३६, चत्वारिंशच्च मे ४०, चतुश्चत्वारिंशच्च मे ४४, अष्टाचत्वारिंशच्च ४८ । इस प्रकार उपरोक्त मन्त्र में पहाड़ों का क्रम बन जाता है । इस सिद्धान्त के आधार पर दूसरी संख्याओं के पहाड़े भी बन सकते हैं । जैसे एक का पहाड़ा बनाने के लिए एकाच मे+एकाच मे । तीन का पहाड़ा बनाने के लिए तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे इस प्रकार क्रम बढ़ाते जाना चाहिए ।

इसी प्रकार अथर्ववेद १९।४७।३ में कहा गया है ९०+९ जोड़ो ९९ । ८०+८ जोड़ो ८८ । ७०+७=७७ । अथर्ववेद १९।४७।४ में कहा है—६०+६ जोड़ो ६६ । ५०+५ जोड़ो ५५ । ४०+४ जोड़ो ४४ । ३०+३ जोड़ो ३३ । अथर्ववेद १९।४७।५ में २०+२ जोड़ो २२ । १०+१ ११ । इन मन्त्र जोड़ों को यदि इनकी संख्याओं के क्रम से रखें तो ११ के पहाड़े का उदाहरण बन जाता है ।

१½ या २½ के उदाहरण—आधे के लिए वेद में उदाहरण मिलता है । इसके लिए वेद में अवि शब्द प्रयुक्त हुआ है । त्र्यविश्च मे त्र्यवीच मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पंचविश्च मे पंचावी च मे त्रिवत्सश्च च मे

त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। काल की परिभाषा में अवि शब्द का अर्थ आधा वर्ष होता है अतः त्र्यवि का अर्थ तीन वर्ष अर्थात् डेढ़ वर्ष। अतः त्र्यवि शब्द १½ का मूल रूप में सूचक है। इसी प्रकार पंचावी शब्द पाँच आधे-आधे का वाचक है अर्थात् २½ का द्योतक है।

रेखागणित

रेखागणित के लिए भी वेद में उदाहरण मिलते हैं—वेद कहता है—"तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी ३ उपरि स्विदासीत्। रेतोधा आसन्महिमान असन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात्॥ (यजुर्वेद ३३-५४) अर्थात् एक तिरछी रश्मि है उसके नीचे एक रश्मि है और एक नीचे से ऊपर की ओर रश्मि है।

माना कि पहली तिरछी रश्मि उसके नीचे दूसरी आड़ी रश्मि (रेखा) अ ब है। और नीचे से ऊपर की ओर जानेवाली रेखा व स है तो इसका रूप चित्र में बतलाये गए के अनुसार होगा जो कि एक त्रिभुज का रूप धारण कर लेता है। त्र्यवीशब्द से समत्रिबाहु त्रिभुज का भी बोध होता है। त्र्यवी के लिए तीन भागों का बराबर होना आवश्यक है त्रिवृत तीन आवरणवाली तीन-तीन परिधि वाले को भी कहते हैं। परिधियों के लिए वेद में—सप्तास्यासन्परिधयः (यजुर्वेद ३१।१५) अर्थात् जिसकी ७ परिधियाँ हो। ऐसा भी कहा है।

जिस प्रकार त्र्यवी से त्रिभुज है उसी प्रकार तुर्यौहि से चतुर्भुज आयत तथा पंचावी से पंचभुज आदि बनेंगे।

वेद की प्रश्नोत्तर शैली से रेखागणित का ज्ञान—इसके अतिरिक्त वेद प्रश्नोत्तर शैली से भी हमें रेखागणित का ज्ञान देता है।

को अस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षम्।
कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः॥

(यजुर्वेद २३।५९) इस मन्त्र में प्रश्न पूछा जा रहा है इस भुवन का केन्द्र-विन्दु कौन जानता है और कौन अन्तरिक्ष, सूर्य, पृथिवी के नाभि केन्द्र बिन्दु को जानता है। कौन महान् सूर्य के उत्पत्तिकर्त्ता को जानता है। और चन्द्रमा कैसे उत्पन्न हुआ यह कौन जानता है। इन प्रश्नों के भीतर रेखा-गणित के सिद्धान्त भी हैं। अगले मन्त्र में इसका उत्तर भी दिया है। इयं वेदिः परोऽअन्तः पृथिव्याऽ अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योमः। (यजुर्वेद २३।६२) अर्थात् जो यह वेदी है पृथिवी का अन्त स्थान है। यज्ञ स्थान वह भुवन की नाभि या केन्द्र है। यह सोम ही महान् सूर्य का प्रकाशक है और यह परमात्मा की वेद वाणी ही परम व्योम में भी है। यदि यज्ञस्थल को केन्द्र मानकर भूमि पर

रेखा खींची जायेगी तो निश्चित रूप से यज्ञस्थल भूमि का केन्द्र होगा। क्योंकि पृथिवी गोल है। गोल वस्तु का केन्द्र भी प्रत्येक स्थान पर हो जाता है।

जिस प्रकार एक पालक या गुरु अपने छोटे-छोटे बच्चों को सरल रूप से ही शिक्षारम्भ करता है उसी प्रकार वेद भगवान् भी हमें प्रारम्भिक गणित ज्ञान उपरोक्त मन्त्र से दे रहा है।

बीज गणित

साधारण रूप से बीज गणित वेद में चिह्नों द्वारा ही प्रकट हो रहा है। क्योंकि यह चिह्न उनके बल को प्रकट करता है जैसे **अ**, अे अ अ^{१} अ, ३^{१} अ१।।, अ२।। । अ, अ^{१}, अ^{२}, अ^{२}, अ^{३र}, अर^{३} अ^{३}, अ$'^{१क}$ वेद में इन चिह्नों का प्रयोजन स्वर अर्थशक्तियों से है। और उसका विश्व के तत्त्वों के नियत शक्ति के साथ है। बीजगणित का इस प्रकार मूल वेद में है।

वेद में अग्नि विज्ञान

अग्नि संसार का प्राण है अतः इसके अभाव की कल्पना करना ही असंगत होगा। यदि सूर्य उदय न हो तो इस विश्व का क्या होगा ? यदि मनुष्य शरीर से अग्नि तत्व निकाल दिये जायें तो क्या होगा ? आज के आरामदायक विलासप्रिय वैज्ञानिक युग में तो अग्नि का महत्व बहुत अधिक है।

अग्नि, द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथिवी तीनों लोकों में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है। वेदों में अग्नि का बहुत विस्तार से वर्णन आता है। सर्वाधिक मन्त्र वेद में अग्नि के सम्बन्ध में ही आते हैं।

अग्नि की स्तुति का आदेश—वेद का प्रारम्भ ही अग्नि शब्द के साथ होता है। यदि हम ऋग्वेद उठायें तो पहला ही मन्त्र मिलेगा—अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातनम् ।। (ऋग्वेद १।१।१)

उपर्युक्त मन्त्र के साथ वेद का आरम्भ होता है और पहला शब्द एवं मन्त्र ही अग्नि के बारे में हमें जानकारी दे रहा है। उपरोक्त वेद मन्त्र में भगवान् कहते हैं कि अग्नि पुरोहित है अर्थात् जिस प्रकार गृह की अग्नि हमारे सारे कार्य सम्पन्न करती है उसी प्रकार वह अग्नि विश्व में सभी कार्यों को सम्पन्न करती एवं कराने की सामर्थ्य रखती है। अतः हमें उसकी स्तुति करनी चाहिए। वह रत्नादि सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है।

अग्नि की स्तुति का आदेश वेद अपने प्रथम मन्त्र से ही दे रहा है, क्योंकि अग्नि के माध्यम से हम अपने सारे काम सम्पन्न कर सकते हैं।

अग्नि एक महान् शक्ति है। जब हम अग्नि की स्तुति करेंगे तो निश्चय ही हम उसके गुणों, उपयोग एवं शक्ति आदि को भी जानेंगे, पहचानेंगे, समझेंगे। उनका अध्ययन करेंगे तो हमें स्वयमेव अग्नि विज्ञान समझ में आने लगेगा और इस अद्भुत शक्ति का उपयोग हम अपने कार्यों में कर सकेंगे। अतः इसके महत्व को समझने के लिए भी वेद भगवान् हमें अग्नि की स्तुति करने का आदेश दे रहे हैं। वह होम पदार्थों का दाता एवं गृहीता दोनों है और वह होतृकार्य में सर्वप्रथम है।

अग्नि द्वारा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति—इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति अग्नि द्वारा ही हुई है। आज वैज्ञानिक इस बात को स्वीकार करते हैं कि पृथिवी सूर्यादि पहले एक विशाल अग्नि का गोला मात्र था। उससे धीरे-धीरे कालान्तर में अलग होकर पृथिवी आदि लोक बने। भगवान् वेद कहते हैं—ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। (ऋग्वेद १०।१९०।१) अर्थात् तप से इस सृष्टि की रचना हुई है। तप ही ताप या अग्नि है।

अग्नि सर्वत्र वर्त्तमान रहता है—लोकों में सर्वत्र अग्नि किसी न किसी रूप में विद्यमान है। पृथिवी के प्रत्येक पदार्थ में किसी न किसी रूप में कहीं प्रकट कहीं अप्रकट रूप से विद्यमान है। अन्तरिक्ष में वह विद्युत् रूप तथा द्युलोक में मुख्य रूप से सूर्य के रूप में विद्यमान है।

अग्नि का दूत कर्म—अग्नि एक श्रेष्ठ दूत है। दूत का कार्य होता है कि जैसा सन्देश उसे दिया जाये उसे वैसा ही सामनेवाले को कह दे। वेद कहता है—'अग्नि दूतं पुरोदधे" अर्थात् मैं अग्नि को दूत रूप में अपने सामने स्थापित करता हूँ। इतना ही नहीं यजुर्वेद १५।३३ उसे पूर्ण विश्व का दूत घोषित करता है—"विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम्" अर्थात् अग्नि पूर्णरूप से विश्व का दूत है। लेकिन प्रश्न यह है कि वह कैसे विश्वदूत है?

अग्नि में जो भी पदार्थ डाला जाता है उसे वह अपने साथ ले जाता जहाँ उसे पहुँचाना होता है। अग्नि की पहुँच सर्वत्र है उसके मार्ग में कोई बाधा नहीं होती और उसकी गति तेज होती है वेद कहता है। "स दुद्रवत्-स्वाहुतः स दुद्रवतः स्वाहुतः" (यजुर्वेद १५।३४) अर्थात् अग्नि अच्छे प्रकार से शीघ्र गति करता है। अग्नि की शीघ्र गति एवं दूत कार्य के लिए यजुर्वेद में अन्यत्र भी एक मन्त्र आता है। अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः। (यजुर्वेद ३।१५) यहाँ अग्नि को प्रथम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ होता कहा है। होता का अर्थ है जो पदार्थों को लाने ले जाने की सामर्थ्य रखता है उसे होता कहते हैं।

इस प्रकार वेद स्पष्ट कहता है कि अग्नि श्रेष्ठ एवं शीघ्र दूत कार्य करने की सामर्थ्य रखता है।

अग्नि की तरंगों का रूप—वेद में बतलाया गया है कि अग्नि की तरंगों का रूप समुद्र की लहरों के समान होता है। वेद कहता है—यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम्। सिन्धोरिव प्रस्वनितासऽऊर्मयोऽग्ने भ्राजन्तेऽअर्चयः ।। (ऋ०१।४४।१२) अर्थात्—हे पूजनीय अग्नि ! आप विद्वानों में पुरोहित होकर हमारे मध्य दूतकर्म करते हो तब आपकी शब्द करती हुई लहरें आवर्त्तन-प्रत्यावर्तनरूप ऊर्ध्वाधः गमनशील समुद्र की तरंगों की गतियों के सदृश आपकी दीप्तियाँ विविध गुणकर्मों का प्रकाशन करती हैं।

इस मन्त्र में कहा है कि अग्नि या विद्युत् की गति समुद्र की लहरों के समान होती है। जिस प्रकार समुद्र की लहरें ऊपर-नीचे, ऊपर-नीचे लहराती हैं उसी प्रकार अग्नि की तरंगों की गति है जिसका आधार निम्न प्रकार होता है अग्नि की गति—

ध्वनि के लिये अग्नि का उपयोग—अग्नि ध्वनि का धारक एवं वाहक तो है ही साथ ही उसका जनक भी है। अग्नि के माध्यम से ही हम आपस में वार्तालाप करते हैं क्योंकि वायु में जो विद्युत् तत्व है वह हमारी आवाज का भी धारक है। यजुर्वेद ६।२८ कहता है—"अग्ने अच्छा वदेह नः (यजु०-६।२८) हे अग्नि ! तुम अच्छे प्रकार से वार्तालाप करो।

इस प्रकार वेद यहाँ स्पष्ट रूप से कह रहा है कि अग्नि के माध्यम से यन्त्रादि बनाकर हम दूरस्थ व्यक्तियों से भी वार्तालाप कर सकते हैं। अग्नि के इस अद्भुत धर्म से यन्त्रों आदि का निर्माण किया गया है। इसके लाभ सर्वविदित हैं।

अग्नि कव्यवाहन है—वेद में अग्नि को कव्यवाहन कहा है—यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम्। तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनमा युजम् ।। (यजुर्वेद १६।६४) उपरोक्त मन्त्र में अग्नि को कव्यवाहन सम्बोधित किया गया है। कव्यवाहन का अर्थ है जो शब्द, छन्द, राग, संगीत आदि ध्वनियाँ विद्वानों द्वारा या कलाकारों द्वारा उत्पन्न की जायें उसका वाहक अग्नि है तथा ध्वनियाँ इसके द्वारा दूर स्थान तक पहुँचायी जा सकती हैं। अग्नि के इस गुण कर्म के आधार पर ही माइक, एम्प्लीफायर आदि यन्त्र बने हैं।

अग्नि सुनने का भी साधन है—अग्नि सुनने का भी साधन है क्योंकि इसमें ध्वनियों को ग्रहण करने की सामर्थ्य है। वेद कहता है "श्रुतकर्ण", स प्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा। (यजुर्वेद १२।१११) अर्थात् अग्नि अत्यन्त विस्तृत, व्यापन धर्म वाला है और अद्भुत गुणों के प्रकाशन में कुशल है। इसमें ध्वनियों को प्रजायें स्थापित करती हैं या प्रयोग करती है। आजकल इयरफोन आदि यन्त्र श्रुतकर्ण का कार्य करते ही हैं।

अग्नि के माध्यम से लोक लोकान्तर से सम्बन्ध—वेद यह भी कहता है कि हम अग्नि के माध्यम से लोक लोकान्तरों से अपने सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।" अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो (यजुर्वेद १२।१०६) अर्थात् हे विभावसो अग्ने! महान् सुनने में समर्थ तेरी युवा-शक्ति, दीप्तियाँ प्रकाशित हो रही हैं। यहाँ विभावसो शब्द अग्नि के लिए प्रयोग किया गया है। विभावसो का अर्थ होता है जो विशेष प्रकार से चमकता हो, प्रकाशित होता हो अर्थात् जिससे अत्यन्त तेज प्रकाशित होता है। और 'वय' शब्द का अर्थ है युवावस्था अर्थात् इसमें एक विशेष शक्ति या पावर भी विद्यमान है। इसकी व्याख्या श्रुतिवाक्य इस प्रकार कर रहे है। "धूमो वा अस्य श्रवो वयः सह्येनममुष्मिल्लोके श्रावयति" इस प्रकार यहाँ भी अग्नि से दूसरे लोक में श्रवण कर्म की सिद्धि वेद विज्ञान से ज्ञात होती है।

आज इस प्रकार के कई यन्त्र बन चुके हैं जिनके माध्यम से लोक-लोकान्तरों से सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं।

अग्नि रूप का वाहक—अग्नि केवल कव्य आदि का ही वाहक नहीं है अपितु रूप का भी वाहक है। वेद अग्नि को 'ऋतावानं' कहता है। ऋत का अर्थ सत्य और जल है अतः अग्नि को सत्यवान कहा गया है। सत्यवान से यहाँ तात्पर्य है कि अग्नि जैसा देखता व सुनता है उसे वैसा का वैसा ही प्रकट कर देता है। वेद कहता है—ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दीधरे पुरोजनाः'। अर्थात् अग्नि सत्यवान है सब पदार्थों का दर्शन कराने-वाला है वह निरन्तर गतिमय है। बह कभी नष्ट न होकर प्रकारान्तर हो विद्यमान रहता है, टेलीविज आदि इसके उपकरण हैं।

वायु में अग्नि—वेद कहता है 'अग्निर्ऋषि पवमानः' अर्थात् अग्नि पवमान है। इस प्रकार अग्नि को इस मन्त्र में पवमान अर्थात् बहता हुआ, धारा या लहरों सदृश गति करने वाला कहा है। इससे सिद्ध है कि वायु में भी अग्नि विद्यमान है। वेद का निम्न मन्त्र भी यह प्रकट कर रहा है—"चरन्ति विद्युतो दिवि" (ऋ० ९।४१।३) अर्थात् अन्तरिक्ष, पृथिवी और द्युलोक में, दसों दिशाओं में वायु प्रवाहित हो रही है।

अग्नि द्वारा छिपे पदार्थों का दर्शन—अग्निद्वारा छिपे पदार्थों का दर्शन सम्भव है। जिस प्रकार X—Ray के माध्यम से शरीर के आन्तरिक स्थानों के दर्शन करते हैं यह अग्नि के माध्यम से ही सम्भव हो सका है। इसी प्रकार टेलीविजन आदि के माध्यम से दूर स्थित व्यक्तियों को देख सकते हैं या भूगर्भ स्थित पदार्थों का पता भी अग्नि के माध्यम से हो सकता है। वेद कहता है—पूषा राजानमाघृणिरप गूढं गुहाहितम्। अविन्दच्चित्र-बर्हिषम्॥ (ऋ० १।२३।१४) हे अग्नि! तेरी रश्मियाँ दीप्तिमान हैं और जो पुष्टि करने वाला है वह तू शुद्ध रूप से अत्यन्त भीतर छिपा हुआ आदर्श-तम अत्यन्त गुप्त रूप से विद्यमान वस्तु को प्रकट करता है।

विद्युत् के दो रूप या प्रकार—विद्युत् दो प्रकार की होती है। एक घनात्म तथा दूसरी ऋणात्मक। इन दोनों के संयोग से ही प्रकाश और गति उत्पन्न होती है। इस सिद्धान्त का उल्लेख वेद का मन्त्र इस प्रकार से कर रहा है त्वमग्नेप्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परिभूषसि व्रतम्। विभूर्विश्वस्मै भुवनाय मेघिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ।। (ऋग्वेद १।३१।२) उपरोक्त मन्त्र विद्युत को दो माताओं के मध्य में शयनकरने वाला बतलाया है। ये दो विद्युत की मातायें ऋण अशनि रूप एवं धन—इन्द्र रूप ही हैं।

विद्युत् की उत्पत्ति—वेद हमें यह भी बतलाता है कि विद्युत् या अग्नि की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है या होती है। या उसे कैसे उत्पन्न किया जा सकता है।

मन्थन द्वारा—जब हम किन्हीं भी दो पदार्थों का मन्थन या घर्षण करेंगे तो ऊष्मा, ताप वा विद्युत् का संचार होता है जब ऋण एवं धन (नेगेटिव एण्ड पाजीटिव) शक्ति युक्त पदार्थों का संयोग या मन्थन करायेंगे तो विद्युत् उत्पन्न होगी। वेद कहता है—त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य बाधतः ।। (यजुर्वेद ११।३२) अर्थात् श्रेष्ठतम् विद्युत् रूपी अग्नि को शब्द विद्या द्वारा ज्ञान का प्रकाश करने वाले विश्व का प्राणापान विद्या अश्विनौ=ऋण धनात्मक विद्युत तत्व को जानने वाले विद्वान् अन्तरिक्ष का मन्थन करके प्राप्त करते है। मन्थन क्रिया किसी वस्तु को तीव्र गति से घुमाने से उत्पन्न होती है। यह मन्थन क्रिया किसी द्रव्य में होती है तो परिणामस्वरूप एक तत्व प्रकट हो जाता है। यही सब विद्युत् अग्नि को प्राप्त करने में भी घटित होता है।

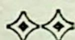
जल से विद्युत् की उत्पत्ति—विद्युत् की उत्पत्ति जलों के माध्यम से भी होती है वेद में उसे "जज्ञानं सरिरस्य मध्ये शिशुंनदीनाम् ।। (यजुर्वेद १३।४) भी कहा है। अर्थात् यह जल एवं नदी के मध्य में शिशु रूप में उत्पन्न होता है अर्थात् उसको जल का शिशु कहा है। इसी प्रकार का एक मन्त्र यह भी है—एना वो अग्निं नमसोर्जो नपतमा हुवे। प्रिय चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् (यजुर्वेद १५।३२) इस मन्त्र में अग्नि को 'उर्जोनपातम्' विशेषणयुक्त बताया है। इसको इन्धनादि द्वारा उत्पन्न करते हैं। जो सबके लिए प्रिय हो। यह अत्यन्त चेतनाशक्ति एवं दीप्ति युक्त हो जो सब कार्य कार्य करने योग्य है।

'उर्जोनपातम्' का अर्थ उव्वट और महीधरने 'अपांपोत्रम्' जलों का पोता किया है। इसका तात्पर्य यह है कि जल और उस से निर्मित विद्युत के मघ्य जब कोई वस्तु और पदार्थ, यन्त्र हो तो इसकी उत्पत्ति होती है। इससे जलधारा का यन्त्र आदि से संयोग कराकर विद्युत् पैदा करने की प्रेरणा मिलती है।

प्रकाश से विद्युत् का निर्माण—वेद, प्रकाश से भी विद्युत् उत्पत्ति सम्भव बतलाता है। हस्काराज्जाता विद्युतो अवन्तु' (ऋ० १।२३।१२) अर्थात् अति प्रकाश से उत्पन्न हुई विद्युत् से हमारी रक्षा करो। इससे स्पष्ट है कि अति प्रकाश से भी विद्युत् उत्पन्न की जा सकती है। जिस प्रकार आजकल सूर्य के प्रकाश से विद्युत् प्राप्त कर इससे घरों के भीतर प्रकाश एवं अन्य कार्य किये जाते हैं।

वायु से विद्युत् निर्माण—वेद में वायु से भी विद्युत् निर्माण का सन्देश प्राप्त होता है। मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमासोम पीतये। सूजूर्गणेन तृम्पतु। (ऋ० १।२३।७) अर्थात् संसार के हम लोग पदार्थों के भोगने के लिये पवनों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध होनेवाली विद्युत् को ग्रहण करते हैं जो सब पदार्थों में एक ही वर्त्तनेवाली पवनों के समूह के साथ हम लोगों को अच्छी तृप्त करती है।

इससे स्पष्ट हैं कि वायु से विद्युत् का निर्माण किया जा सकता है। जैसा कि प्रथम ही कह चुके हैं कि वेद में अग्नि के बारे में सर्वाधिक मन्त्र आये हैं। अतः उसके बारे में विस्तार से लिखना छोटी सी पुस्तक में तो सम्भव नहीं है। यह स्थूल एवं संक्षेप रूप में ही विद्युत् की उत्पत्ति, गुण-कर्म एवं वास के बारे में लिखा है।



वेदोद्यान के चुने हुए फूल

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५·००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र सूक्त-अन्वयार्थ और सरल-स्पष्ट भाषा में व्याख्या-सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवासयुक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

वैदिक सम्पदा [पं० वीरसेन वेदश्रमी] मूल्य ३०.००

'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है' तथा 'वेद में आधुनिक सभी समस्याओं का समाधान है' की व्याख्या में लिखा गया यह विशद ग्रन्थ वेद के सभी विद्वानों द्वारा सराहा गया है।

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड लिखते हैं—वैदिक समाजशास्त्र, वैदिक समाजवाद में पारिवारिक आदर्श, गृहस्थ-निर्माण, आदर्शवाद, सामाजिक समस्याएँ, वेद में यातायात, वेद में चिकित्सा विज्ञान, वैदिक अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, विज्ञान, रेखागणित, शासन (राजनीति), शिक्षा विज्ञान, वेदों में भाषा विज्ञान, ऋतु विज्ञान, भूतत्त्व विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अग्नि विज्ञान, विमान विज्ञान, जल विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, धर्म; इस प्रकार विभाजन करते हुए वेदों के आधार पर इन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

सत्यार्थप्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची।
२. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची।
३. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची।
४. सत्यार्थप्रकाश के १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश (जैसे हारून का Haron)।
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य।
६. सत्यार्थप्रकाश की आधार-ग्रन्थ-सूची।
७. सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा।
८. अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण-सूची।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी-संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च-स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्त जी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी-संस्करण में दी गई है।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास-अनुसार।

बढ़िया कागज। १६ प्वाइंट के मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५·००।

सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण का आर्ट पेपर पर छपा राज-संस्करण भी तैयार है। बहुत ही आकर्षक प्लास्टिक कवर के साथ कपड़े की हरी जिल्द।
विवाह आदि के अवसर पर भेंट देने योग्य। मूल्य १०१·००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन ७.००

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल १५.००

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार (प्रेस में)

वैदिक संस्कृति का सन्देश ३५.००

प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथिवी सूक्त) १.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए०

यज्ञ की महिमा १.५०

नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ७.५०

सु-राज्य की रूपरेखा ०.५०

पं० बिहारीलाल शास्त्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल के रहस्य १.५०

श्री रामशरण वशिष्ठ

पशुहिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००

वेदों में मूल प्रकृति विज्ञान १.५०

वेदार्थ विज्ञान १.००

वेद और आत्मा २.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

श्रीमद् दयानन्द प्रकाश २५.००

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली ८.००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

रामचन्द्र देहलवी लेखावली १०.००

वेद व्यावहारिक है १.००

शंका-समाधान १.००

पूजा क्या क्यों कैसे ? १.००

ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई १.००

वेद का इस्लाम पर प्रभाव १.००

महात्मा नारायण स्वामी

कर्तव्यदर्पण ४.००

प्राणायाम विधि १.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.००

कई पुरस्कृत लेखों का संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता १.५०

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश २५.००

आर्योद्देश्यरत्नमाला ०.२५

व्यवहारभानु १.००

बालोपयोगी

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार ०.५०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.५०

स्वामी श्रद्धानन्द १.५०

गुरु विरजानन्द १.००

पं० लेखराम १.००

पं० गुरुदत्त १.००

स्वामी दर्शनानन्द १.००

स्वामी दर्शनानन्द

कथा-पच्चीसी २.५०

बालशिक्षा-धर्मशिक्षा १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.६०

नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.६०

नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.००

नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.००

नैतिक शिक्षा पंचम भाग १.२५

नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग १.२५

नैतिक शिक्षा सप्तम भाग १.५०

नैतिक शिक्षा अष्टम भाग १.५०

नैतिक शिक्षा नवम भाग २.००

नैतिक शिक्षा दशम भाग २.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

		सैकड़ा
आर्यसत्संग गुटका	१.००	७५.००
वैदिक यज्ञप्रकाश	०.७५	५५.००
वैदिक सन्ध्या	०.२०	१५.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका		३.००
सन्ध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)		२.००

भजन पुस्तकें

गीत भण्डार (संकलन)	४.००
गीत श्रद्धांजलि	१.५०

चित्र - चित्र - चित्र

महर्षि दयानन्द	रंगीन	२०×३०	३.००
महर्षि दयानन्द	एक रंग	१८×२२	२.००
गुरु विरजानन्द	एक रंग	१८×२२	२.००
स्वामी श्रद्धानन्द	,,	,,	२.००
स्वामी दर्शनानन्द	,,	,,	२.००
म० हंसराज	,,	,,	२.००

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन

आप क्या नहीं कर सकते ?	३.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ?	३.००
हँसते-हँसते कैसे जियें ?	३.००
जो चाहें सो कैसे पायें ?	३.००
अपना खर्च कैसे घटायें ?	३.००
अवसर को पहचानो !	३.००
अपने आपको पहचानिए !	३.००
आप सफल कैसे हों ?	३.००
उन्नति कैसे करें ?	३.००
धनकुबेर कैसे बनें ?	३.००

मनहर चौहान

महाभारत	४.००
रामायण	४.००
पंचतन्त्र	४.००

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

हृदयरोग कारण और निवारण	८.००
गर्भस्थिति प्रसव और शिशुपालन	५.००

सुशीला कपूर

सुबोध मेक-अप	४.००
सुबोध बुनाई	५.००
आधुनिक सिलाई कटाई	५.००

मीनाक्षी धींगड़ा

आधुनिक पाक-कला	५.००
मिष्ठान्न कला	५.००
शर्बत आइसक्रीम स्क्वैश	५.००

हयात

रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक	५.००
सुबोध ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	५.००
सुबोध ट्रांजिस्टर गाइड	५.००
सुबोध टेलिविजन गाइड	५.००

अनिल कुमार

अंग्रेजी बोलना कैसे सीखें	४.००

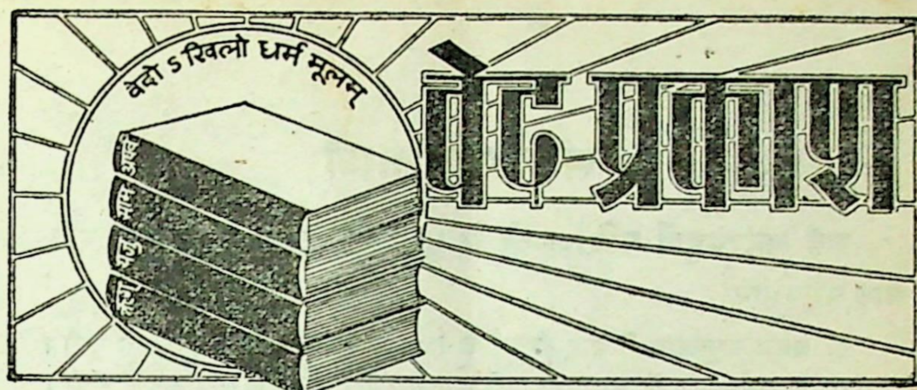
योगाचार्य भगवान्देव

स्वास्थ्य और योगासन	४.००
घरेलू इलाज **डा० समरसेन**	५.००
मोटापा कैसे घटायें	४.००
योगासन से इलाज	४.००
प्राकृतिक चिकित्सा	५.००
जूडो कुंगफू कराटे **राजीव**	५.००

विवाह, जन्मदिन पर उपहार तथा पुरस्कार में दें।
आर्ट पेपर पर छपा, सुनहरी जिल्द में बन्धा—
'सत्यार्थ प्रकाश'
मूल्य : एक सौ रुपये।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क, दिल्ली-६

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८, नई सड़क से प्रसारित किया।



राष्ट्र का स्वास्थ्य विभाग (सोम) सदा उद्यत रहें

८१

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे।
आ मा गन्तां पितरा-मातरा चा मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात्।
वाजिनो वाजजितो वाजं ससृवांसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः॥

—यजु० १-१९

ऋषिः—वसिष्ठः। देवता-प्रजापतिः। छन्दः—निचृद्धृतिः।

शब्दार्थ—वसिष्ठ और प्रजापति बनने का इच्छुक राजा कामना करता है कि—

(मा) मुझे (वाजस्य प्रसवः) ज्ञान, धन और अन्न के उत्पादन (आजगम्यात्) सब ओर से अर्थात् सारे राष्ट्र में सुलभ हों। (इमे द्यावापृथिवी) ये द्युलोक और पृथ्वी-लोक (पितरा-मातरा च) पिता के समान पालक और माता के समान निर्माणकर्ता बनकर (मा आगन्ताम्) मुझे अर्थात् मेरे राष्ट्र में सदा प्राप्त रहें। (सोमः) सबको आनन्द देने वाला चन्द्रमा तथा ओषधिपति स्वास्थ्य विभाग (मा) मेरे राष्ट्र में (अमृतत्वेन) स्वास्थ्य तथा दीर्घायु रूप में (आगम्यात्) प्राप्त रहे।

(वाजजितः) संग्राम विजयी (वाजिनः) बलशाली सैनिक तथा आरक्षीजन (निमृजानाः) समाज में शुद्धता लाने के तथा शत्रुओं का सफाया करने के इच्छुक बन-कर (बाजं संसृवांसः) संग्राम में प्रवृत्त होने के समय (बृहस्पतेः) मुख्य सेनापति तथा आरक्षी प्रधान के (भागम्) सेवनीय आदेश को (अवजिघ्रत) सावधान होकर आदरपूर्वक ग्रहण करें।

राजा को प्रजापति बनने के लिए प्रजा को पूर्णतया बसाने के निमित्त भरसक प्रयत्न करना चाहिए। इस दिशा में कोई कसर न छूटने पाए। यदि प्रजा में कभी असन्तोष हो जाए, तो उसे दूर करने तथा पूरा करने के लिए धैयपूर्वक प्रयत्न और प्रतीक्षा करनी चाहिए। ये संकेत इस मन्त्र के देवता ऋषि और छन्द शब्दों के अर्थ दे रहे हैं।

सत्यार्थप्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची।
२. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची।
३. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची।
४. सत्यार्थप्रकाश के १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश (जैसे हारून का Haron)।
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य।
६. सत्यार्थप्रकाश की आधार-ग्रन्थ-सूची।
७. सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा।
८. अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण-सूची।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी-संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च-स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्त जी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी-संस्करण में दी गई है।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास-अनुसार।

बढ़िया कागज। १६ प्वाइंट के मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५·००।

सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण का आर्ट पेपर पर छपा राज-संस्करण भी तैयार है। बहुत ही आकर्षक प्लास्टिक कवर के साथ कपड़े की हरी जिल्द।
विवाह आदि के अवसर पर भेंट देने योग्य। मूल्य १०१.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३१, अंक ५] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपये [दिसम्बर, १९८१

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

यज्ञ-अंक

—व्याख्याकार जगदीश्वरानन्द सरस्वती

दर्शेष्टि—अमावास्या यज्ञ

पौर्णमासी और अमावास्या के दिन नैत्यिक अग्निहोत्र की आहुति दिये पश्चात् स्थालीपाक=मोहनभोग, मीठा भात, खीर, खिचड़ी, मोदक आदि बनाके निम्नलिखित मन्त्रों से विशेष आहुति करें—

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदं न मम।

मैं (अग्नये) अग्नि के लिए (स्वाहा) यह आहुति देता हूँ। (इदम्) यह आहुति (अग्नये) अग्नि के लिए है (इदम् न मम) इस आहुति से मुझे किसी फल की कामना नहीं है।

ओम् इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा ॥ इदमग्नीन्द्राभ्याम्—इदं न मम ॥

मैं (इन्द्राग्नीभ्याम्) विद्युत् और अग्नि के लिए (स्वाहा) यह आहुति देता हूँ (इदम् इन्द्राग्नीभ्याम्) यह आहुति विद्युत् और अग्नि के लिए है (इदम् न माम) यह मेरे लिए नहीं है।

ओं विष्णवे स्वाहा ॥ इदं विष्णवे—इदं न मम ॥

मैं (विष्णवे) सूर्य के लिए (स्वाहा) यह आहुति देता हूँ। (इदम् विष्णवे) यह आहुति सूर्य के लिए है (इदम् न मम) इसमें मेरी कोई स्वार्थ-भावना=फल की कामना नहीं है।

इन मन्त्रों से स्थालीपाक की तीन आहुति देनी। तत्पश्चात् 'भूरग्नये स्वाहा' आदि व्याहृति आज्याहुति चार देनी।

विशेष—कृष्णपक्ष की रात्रियों के आरम्भ में चन्द्रमा का सम्बन्ध नहीं होता और अमावस्या की रात्रि में चन्द्रमा का सर्वथा अभाव होता है, अतः उस रात्रि के देव विद्युत् और अग्नि हैं।

दर्शेष्टि मनुष्य को एक सुन्दर एवं दिव्य सन्देश देता है। अमावास्या की रात्रि में चन्द्रमा नहीं होता। सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार का साम्राज्य होता है। परन्तु यह चन्द्रमा सदा लुप्त नहीं रहता। अन्धकार समाप्त होता है, धीरे-धीरे चन्द्रमा अपनी कलाओं के साथ उदित होना आरम्भ होता है और पूर्ण प्रभा के साथ चमकने लगता है। ठीक इसी प्रकार कभी-कभी मनुष्य के जीवन में भी अन्धकारमयी रात्रियाँ आ जाती हैं। चारों ओर निराशा और हताशा ही दिखाई देती है। हे मानव! उस समय तू अमावास्या की रात्रि का अवलोकन कर लिया कर। जैसे अमावास्या का तम=अन्धकार दूर होकर चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका के साथ छिटकने लगता है, चहुँ ओर प्रकाश हो जाता है। उसी प्रकार ऐ मानव! तू भी उठ, पुरुषार्थ कर। तेरे जीवन की निशा भी समाप्त होकर उसमें उषा की ज्योति जगमगाएगी। निराशा और हताशा के घनघोर बादल दूर होकर आशा और उल्लास की किरण चमकेगी।



पौर्णमासेष्टि—पौर्णमासीयज्ञ

पूर्णिमा के दिन निम्न मन्त्रों से विशेष आहुतियाँ दें।

ओम् अग्नये स्वाहा ।। इदमग्नये—इदन्न मम ।।

इस मन्त्र का अर्थ पीछे अमावास्या यज्ञ में हो चुका।

ओम् अग्नीषोमाभ्याम् स्वाहा । इदमग्नीषोमाभ्याम्—इदन्न मम ।।

मैं (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम = चन्द्रमा के लिए (स्वाहा) आहुति देता हूँ। (इदम्) यह आहुति (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के लिए है (इदम् न मम) इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है।

ओं विष्णवे स्वाहा ।। इदं विष्णवे—इदं न मम ।।

इस मन्त्र का अर्थ भी अमावास्या यज्ञ में हो चुका।

विशेष—पौर्णमासेष्टि भी मनुष्य को एक दिव्य प्रेरणा प्रदान करता है। जीवन में कभी-कभी ऐसे क्षण भी आते हैं जब मनुष्य को अपने वैभव, धन-सम्पत्ति, विद्या, बुद्धि, बल आदि का अभिमान हो जाता है। ऐसे अभिमान के पुतलों को पूर्णिमा के दिन अपनी सम्पूर्ण कलाओं से चमकता हुआ चन्द्रमा यह सन्देश देता है कि हे मानव ! अपने जीवन में कभी किसी बात पर गर्व मत करना। जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा क्षय को प्राप्त होकर अमावास्या की रात्रि में सर्वथा विलीन हो जाता है, इसी प्रकार संसार के वैभव, धन-सम्पत्ति, विद्या और बुद्धि जिन पर तू अभिमान कर रहा है, इनका नाश भी अवश्यम्भावी है।

"जिनके घर में अभाग्य से प्रतिदिन अग्निहोत्र न होता हो वे पक्ष-याग अवश्य करें।"

□

पितृयज्ञ

अग्निहोत्रविधि पूर्ण करके तीसरा पितृयज्ञ करे। इसमें जीवित **देव** अर्थात् विद्वान्, ऋषि अर्थात् पढ़ने-पढ़ानेवाले और **पितर** अर्थात् माता-पिता, पितामह-पितामही, प्रपितामह-प्रपितामही आदि वृद्ध बान्धव तथा ज्ञानी, परम योगियों की जो प्रत्यक्ष विद्यमान हैं, सेवा करनी होती है। इसके दो भेद हैं—एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। यह श्राद्ध और तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष हैं, उनमें ही घटता है, मृतकों में नहीं।

श्राद्ध और तर्पण जीवितों का ही होता है। श्राद्ध का अर्थ है जो श्रद्धापूर्वक किया जाए। एक युवक श्रद्धापूर्वक माता-पिता की सेवा करता है, उन्हें भोजन और वस्त्र देता है परन्तु कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता, यह युवक अपने माता-पिता का श्राद्ध तो कर रहा है परन्तु तर्पण नहीं। दूसरा युवक अपने माता-पित पर।पाँच सौ रुपया प्रति मास व्यय कर देता है, उनकी किसी भी इच्छा को अपूर्ण नहीं रहने देता परन्तु मन में हर समय यह सोचता रहता है कि व्यर्थ में मेरे पाँच सौ रुपये प्रति मास व्यय हो जाते हैं, पता नहीं इन्हें मृत्यु कब आएगी। यह युवक अपने माता-पिता का तर्पण तो कर रहा है परन्तु श्राद्ध नहीं।

पितृयज्ञ में जहाँ सम्बन्धी, सगोत्र आदि की सेवा शुश्रूषा का विधान है, वहाँ उन विशिष्ट विद्वानों की सेवा-सत्कार का भी विधान है जिनसे गृहस्थों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की शिक्षा प्राप्त होती है। वे विशिष्ट विद्वान् निम्न हैं—

१. **सोमसद**—जो परमेश्वर की उपासना में स्थित, सोमयज्ञ करने वाले, सोमवल्ली आदि ओषधियों की विद्या में निपुण और शान्ति आदि गुणवाले हैं, वे 'सोमसदा' कहलाते हैं। आंगल भाषा में इन्हें Philosphers कह सकते हैं।

२. **अग्निष्वात**—जो ईश्वर, भौतिक अग्नि और विद्युदादि पदार्थों के गुणों को जानने वाले हैं, वे अग्निष्वात: (Scientists) कहलाते हैं।

३. **बर्हिषद्**—जो सबसे उत्तम परब्रह्म में स्थिर होकर, शम-दम, सत्यविद्या आदि उत्तम गुणों के व्यवहार में स्थिर हैं उन्हें बर्हिषदः (Victors) कहते हैं।

४. **सोमपाः**—जो ऐश्वर्य के रक्षक और सोम महौषधि के रस का पान करने से रोगरहित तथा ओषधियों के द्वारा जनता के रोगों को हरनेवाले हैं, उन्हें सोमपा: (Physiologists) कहते हैं।

५. **हविर्भुजः**—जो नित्य अग्निहोत्र करके वायु वा वृष्टिजल की शुद्धि द्वारा सब जगत् का उपचार करते हैं, जो यज्ञशेष खानेवाले तथा जो मादक और हिंसा कारक द्रव्यों का त्याग करके भोजन करने वाले हैं वे हविर्भुज: (Sanitarists) कहलाते हैं।

६. **आज्यपाः**—जो घृत, दुग्ध आदि स्निग्ध पदार्थों का सेवन करनेवाले वा विविध ज्ञान-विज्ञानरूप सारभूत विद्या के अध्ययन-अध्यापन द्वारा रक्षा करनेवाले हैं, वे आज्यपा (Lagislators) कहलाते हैं।

७. **सुकालिनः**—ईश्वर, धर्म और सत्यविद्या के उपदेश में जिनका समय व्यतीत होता है, अथवा जो काल का सदुपयोग करनेवाले एवं समय को पहचानकर यथोचित कार्य करनेवाले हैं, उन्हें सुकालिनः (Preachers) कहते हैं।

८. **यमराजाः**—जो पक्षपात को छोड़के सदा दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करनेवाले न्यायकारी हैं वे यमराज अर्थात् न्यायाधीश (Judges) कहलाते हैं।

प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन भोजन करने से पूर्व इन पितरों का श्राद्ध एवं तर्पण करना चाहिए।



बलिवैश्वदेवयज्ञः

बलिवैश्वदेवयज्ञ की विधि निम्न है—

जब भोजन तैयार हो जाए तब जो कुछ भोजनार्थ बने उसमें से खट्टा, लवणान्न और क्षार को छोड़के घृतमिष्ट युक्त अन्न लेके, चूल्हे से थोड़ी-सी अग्नि अलग धरके निम्न मन्त्रों से प्रज्वलित अग्नि में आहुति दे—

ओम् अग्नये स्वाहा ॥१॥

प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की प्रसन्नता, उसकी आज्ञा पालन करते हुए जगत् के उपकार और भौतिक अग्नि के लिए यह आहुति सुहुत हो।

ओं सोमाय स्वाहा ॥२॥

सब जगत् के पदार्थों को उत्पन्न और पुष्ट करके सबको सुख देने-वाले परमात्मा की आज्ञा पालन करते हुए संसार के उपकार के लिए तथा परमेश्वर के रचे जल, चन्द्रमा तथा सोमलता आदि के लिए यह आहुति समर्पित करता हूँ।

ओम् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥३॥

प्राणियों के जीवन के हेतु दुःखनाशक परमेश्वर की प्रसन्नता, प्राण-अपान और वायुओं की पुष्टि के लिए यह आहुति देता हूँ।

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥४॥

संसार को प्रकाशित करनेवाले ईश्वर के दिव्य गुणों, पृथिव्यादि पंचतत्त्वों, समस्त विद्वानों और प्राणियों के लिए यह आहुति सुहुत हो।

ओं धन्वन्तरये स्वाहा ॥५॥

जन्म-मरण आदि रोगों का नाश करनेवाले, दुर्गम, दुःखप्रद भव-सागर से पार लगानेवाले परमेश्वर की आज्ञा पालन करते हुए जगत् के उपकार के लिए, रोगों से छुटकारा दिलानेवाले आयुर्वेद विज्ञान-वेत्ता के लिए तथा विद्युत्, मेघ, अग्निवर्षा के लिए यह आहुति सुहुत हो।

श्रों कुह्वै स्वाहा ॥६॥

परब्रह्म परमात्मा की संहारिणी शक्ति को स्मरण करते हुए उसकी आज्ञा पालन के लिए, जगत् के उपकार के लिए, चन्द्रमा तथा अमावास्योष्टि के लिए यह आहुति समर्पित है।

श्रोमनुमत्यै स्वाहा ॥७॥

परमात्मा की पालयित्री शक्ति अर्थात् ईश्वर की कृपादृष्टि के लिए अथवा सबके हृदय में व्यापक परब्रह्म की आज्ञा पालन के लिए, जगत् का उपकार करने को चन्द्रमा एवं पूर्णमासी के लिए यह आहुति देते हैं।

श्रों प्रजापतये स्वाहा ॥८॥

सबके पालनकर्त्ता परमपिता परमात्मा की आज्ञानुसार जगत् के उपकार के लिए, सन्तानों की उत्तम प्रकार से रक्षा करनेवाले पिता, पितामह आदि की प्रसन्नता एवं अन्न, मेघ, सूर्य आदि के लिए यह आहुति सुहुत हो।

श्रों द्यावा पृथिवीभ्याᳬस्वाहा ॥९॥

द्युलोक और पृथिवीलोक के पदार्थों को रचने के साथ सब जीवों को सुख देनेवाले परमेश्वर की आज्ञानुसार जगत् का उपकार करने के लिए द्यौ तथा पृथिवी अर्थात् लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार का सुख प्राप्त करने के लिए तथा अग्नि और भूमि से उपकार लेने के लिए यह आहुति देते हैं।

श्रों स्विष्टकृते स्वाहा ॥१०॥

इष्टसुख देनेवाले परमेश्वर की आज्ञापालन करने को, जगत् के उपकार के लिए, परमेश्वर के रचे सृष्टिक्रमरूप यज्ञ के लिए, कार्यों को पूर्ण करने में सहायता देनेवाले मित्रों की प्रसन्नता के लिए यह आहुति देते हैं।

इन मन्त्रों से आहुति देके पश्चात् बलिदान करे अर्थात् थाली अथवा भूमि पर पत्ता रखके निम्न मन्त्रों से पूर्वादि दिशाओं में यथाक्रम भाग रखे—

श्रों सानुगायेन्द्राय नमः ॥१॥ इससे पूर्व

सर्वैश्वर्ययुक्त परमेश्वर और उसके अनुकरणीय गुणों के प्रति आदरभाव से नमन करते हैं, राजा का उसके अनुगामी मन्त्री आदि

सहित आदर-सत्कार करते हैं, सर्व प्राणिमात्र को आदरपूर्वक अन्न प्रदान करते हैं ॥१॥

ओं सानुगाय यमाय नमः ॥२॥ इससे दक्षिण

पक्षपात रहित, सत्य न्याय करनेवाले परमेश्वर और उसकी सृष्टि में सत्यन्याय करनेवालों का हम श्रद्धा से आदर करते हैं। न्यायाधीश और उसके अनुयायी पंच आदि का हम सत्कार करते हैं। मृत्यु और उसके अनुचर रोग आदि के लिए (नमः) वज्रप्रहार अर्थात् उनका निवारण कर दीर्घायुष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं ॥२॥

ओं सानुगाय वरुणाय नमः ॥३॥ इससे पश्चिम

विद्यादि उत्तम गुणों से युक्त, सबसे उत्तम परमात्मा और उसके धार्मिक भक्तजनों के प्रति हम नमन करते हैं। राजसभा में धर्माध्यक्ष और उसके अनुयायियों का आदर-सत्कार करते हैं। आकाश, समुद्रादि देवों के लिए हवि प्रदान करते हैं। नीरक्षीर विवेकी, सत्य का ग्रहण तथा असत्य का परित्याग करनेवाले सज्जनों और उनके मित्रों के लिए अन्न-भोजन की व्यवस्था करते हैं ॥३॥

ओं सानुगाय सोमाय नमः ॥४॥ इससे उत्तर

पुण्यात्माओं को आनन्दित करनेबाले परमात्मा और पुण्यात्मा लोगों के लिए हम श्रद्धापूर्वक नमन करते हैं। शान्ति स्थापित करनेवाले सेनापति और उसके अनुगामी सैनिकों के लिए भोजन आदि के प्रबन्ध की व्यवस्था तथा चन्द्रमा एवं वनस्पति के लिए (नमः) हवि, अग्निहोत्र करते हैं, जिससे अन्तरिक्ष की शुद्धि और अमृतमय जल की प्राप्ति हो ॥४॥

ओं मरुद्भ्यो नमः ॥५॥ इससे द्वार

महाप्राण ईश्वर के लिए नमस्कार और ईश्वर के आधार से सकल विश्व को धारण करने तथा गति देनेवाले प्राण की, जिसके रहने से जीवन और निकल जाने से मृत्यु होती है, रक्षा के लिए सदा प्रयत्न करते हैं। यम-नियमों का पालन करनेवाले तपस्वी, वानप्रस्थी, मुनियों को भोजन आदि प्रदान, द्वारपालों का आदर-सत्कार और वायु को सुगन्धित करने का प्रयत्न करते हैं ॥५॥

ओं अद्भ्यो नमः ॥६॥ इससे जल

जल के समान शान्तिप्रदाता तथा सर्वव्यापक परमेश्वर के लिए

नमस्कार और उसके रचे जलों के लिए हवि=आहुति प्रदान तथा जल में निवास करनेवाले प्राणियों के लिए भोजन प्रदान करते हैं ।।६।।

ओं वनस्पतिभ्यो नमः ।।७।। इससे मूसल और ऊखल

सब लोकों के पालक ईश्वर और उसके गुणों के प्रति श्रद्धा से नमन करते हैं । जिनसे वर्षा अधिक होती है और जिनके फलादि से जगत् का उपकार होता है, उन वनों का संरक्षण करते हैं तथा सूर्य, मेघ और वनस्पति के लिए (नमः) अन्न=हवि प्रदान करते हैं जिससे वृष्टि अधिक हो ।।७।।

ओं श्रियै नमः ।।८।। इससे ईशान

जो परमेश्वर सबसे सेवा करने योग्य तथा जिसने जगत् की शोभा उत्पन्न की है, उस परमात्मा को श्रद्धा और आदरपूर्वक नमन करते हैं । उस परमात्मा की उपासना से राज्यश्री की प्राप्ति के लिए प्रयत्न और पुरुषार्थ करते हैं ।।८।।

ओं भद्रकाल्यै नमः ।।९।। इससे नैर्ऋत्य

जो परमात्मा का इहलौकिक सुख और पारलौकिक कल्याण= मोक्ष प्राप्त करानेवाला सामर्थ्य है, हम श्रद्धापूर्वक उसका आश्रय लेते हैं । जीवों को सुलाकर उनका कल्याण करनेवाली रात्रि का आश्रय लेते हैं जिससे स्वास्थ्य की अभिवृद्धि हो ।।९।।

ओं ब्रह्मपतये नमः ।।१०।।

ओं वास्तुपतये नमः ।।११।। इनसे मध्य

सर्वविद्या विज्ञ तथा ब्रह्माण्ड के स्वामी परमेश्वर की भक्ति और विद्या प्रचार के लिए प्रयत्न करना चाहिए । वेदज्ञानी और योगी के लिए भोजन आदि की सुव्यवस्था कर उनका आदर-सत्कार करना चाहिए ।।१०।।

संसार के स्वामी तथा सर्वाधार ईश्वर को नमस्कार हो । गृहपति का आदर-सत्कार करना चाहिए तथा वस्तु विद्या विशारद्, यन्त्रकारों (Engineess) के पुरस्कार और प्रोत्साहन देना चाहिए ।।११।।

ओ विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ।।१२।।

ओं दिवाचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ।।१३।।

ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ।।१४।। इनसे ऊपर

संसार को प्रकाशित करने वाले ईश्वर के सब गुणों के लिए श्रद्धा-पूर्वक नमन करना और उन्हें अपने जीवन में धारण करना चाहिए ।

विद्वान् ब्राह्मणों का सम्मान और संसार के सब प्राणियों के लिए भोजन प्रदान करना, सब भौतिक पदार्थ और उनके गुणों का सद्विनियोग करके सारे संसार को सुख पहुँचाना चाहिए ।।१२।।

विशेष—उपर्युक्त ग्यारह मन्त्रों में परमात्मा के पृथक्-पृथक् गुण दर्शाकर इस बारहवें मन्त्र में ईश्वर के सब गुणों को नमस्कार किया गया है।

दिन में विचरण करनेवाले पशु-पक्षियों, चाण्डाल आदि को भी द्रवीभूत होकर अन्न देना चाहिए। पंच तत्त्वों के लिए हवि=यज्ञाहुति समर्पित करनी चाहिए, जिससे सभी भूतों की शुद्धि हो ।।१३।।

रात्रि में विचरनेवाले पक्षियों और जीवों के लिए अन्न देना और उनसे उपकार ले लेना चाहिए तथा उन्हें सुख देना चाहिए। रात्रि में विचरण करनेवाले प्रहरीगण तथा निशि-निरीक्षकों को उचित सम्मान और पुरस्कार देने चाहिएँ। चोर, घातक, सिंह, व्याघ्र आदि का प्रतिबन्ध करना चाहिए ।।१४।।

विशेष—दिन और रात्रि में भ्रमण करनेवाले जीव दो प्रकार के होते हैं—एक मनुष्यों के लिए लाभदायक हैं और दूसरे हानिकारक। इनके साथ प्रयुक्त 'नमः' शब्द के भी दो ही अर्थ होंगे—पहला अन्न और दूसरा दूरीकरण। यथा मक्खी, वर्र आदि दिवाचरों की दूरीकरण तथा काक, श्वान=कुत्ता आदि को अन्न प्रदान। मच्छर आदि निशिचरों का निवारण और बिल्ली आदि के अन्न की व्यवस्था करनी उचित है।

ओं सर्वात्मभूतये नमः ।।१५।। इससे पृष्ठ

सब चराचर जगत् में व्यापक परमात्मा के लिए हम श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नमन करते हैं। ज्ञानी, मुमुक्षु प्रभु-विवेकी जनों का आदर-सत्कार करते हैं, सब प्राणियों के प्रति दया का व्यवहार करते हैं ।।१५।।

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ।।१६।। इससे दक्षिण

माता, पिता, आचार्य, अतिथि और पुत्र, भृत्य=नौकर, कुटुम्बी आदि का अन्न आदि द्वारा सत्कार करते हैं।।१६।।

यदि भाग करने के समय कोई अतिथि आ जाए तो उसी को देना, नहीं तो अग्नि धर देना।

यह नित्य श्राद्ध है।

इसके पश्चात् घृत सहित लवणान्न लेके—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।
वायसानां कृमिणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि ॥

मनु० ३।९२

कुत्ता, पतित्, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कृमि—इन छह ग्रासों से छह भाग पृथिवी पर धरे और वे भाग जिस-जिसके हैं, उसे खिला दे—

१. **श्वभ्यो नमः**—कुत्तों को अन्न ।
२. **पतितेभ्यो नमः**—पतितों को अन्न ।
३. **श्वपग्भ्यो नमः**—चाण्डालों के लिए अन्न ।
४. **पापरोगिभ्यो नमः**—पाप रोगियों के लिए अन्न ।
५. **वायसेभ्यो नमः**—कौओं के लिए अन्न ।
६. **कृमिभ्यो नमः**—कीड़े-मकौड़ों के लिए अन्न ।

यह वेद और मनुस्मृति के अनुसार बलिवैश्वदेवयज्ञ की विधि पूरी हुई ।



अतिथियज्ञः

अतिथियज्ञ पाँचवाँ है। इसका नाम नृयज्ञ भी है। इसमें अतिथियों का यथावत् सेवा करनी होती है। धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपात् रहित, सर्वहितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा, उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त करना 'अतिथियज्ञ' कहाता है।

जो मनुष्य पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी, छल-कपटादि दोषरहित, सत्योपदेशक, परम योगी, संन्यासी, नित्य भ्रमण करके विद्या तथा धर्म का प्रचार और अविद्या तथा अधर्म की निवृत्ति सदा करते रहते हैं—वे 'अतिथि' कहलाते हैं।

जिसके आने-जाने की कोई भी तिथि, दिन निश्चित न हो, अकस्मात् स्वेच्छा से कहीं से आये और चला जाए अर्थात् नित्य भ्रमण करनेवाला संन्यासी भी 'अतिथि' कहलाता है।

समय पाके गृहस्थ और राजा आदि भी अतिथिवत् सत्कार करने योग्य होते हैं। अतिथि यज्ञ की विधि यह है—

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१॥

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथाऽस्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्थाऽस्त्विति ॥२॥ —अथर्व० १५।११,२।

जब अकस्मात् कोई विद्वान् अतिथि गृहस्थों के घर प्राप्त हों तब उसको गृहस्थ—

१. अत्यन्त प्रेम से उठकर कर उसे उत्तम आसन पर बैठाए।

२. पश्चात् उससे पूछे—"ब्रह्मन्! कल आपने कहाँ निवास किया था?

३. ब्रह्मन्! जल आदि पदार्थ जो आपको अपेक्षित हों ग्रहण कीजिए।

४. हे विद्वन्! जिस प्रकार से आपको प्रसन्नता हो, वैसा ही हम लोग करेंगे। जो पदार्थ आपको प्रिय हो, उसकी आज्ञा कीजिए, जिस प्रकार से आपकी कामना पूर्ण हो, वैसी आपकी सेवा करेंगे, जिससे आप और हम लोग परस्पर प्रीतिपूर्वक सेवा और सत्सङ्ग पूर्वक विद्या वृद्धि से सदा आनन्द में रहें।

५. पश्चात् उससे प्रार्थना करे—हे विद्वन् ! हमें अपने सत्योपदेश से तृप्त कीजिए, जिससे हमारे इष्टमित्र सब आपके उपदेश से विज्ञान-युक्त हों और सदा प्रसन्न होके आपको भी सत्य प्रेम और सेवा से सन्तुष्ट रखें।

इस प्रकार उनका सत्सङ्ग कर उनसे उस ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करें जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो। अपना चाल-चलन भी उन उपदेशों के अनुसार बनाए।

परन्तु मिथ्या-उपदेशक, स्वार्थी, पाखण्डी, वेदनिन्दक, विडाल-वृत्ति, शठ, कुतर्की, बगुलाभगत, वैरागी, खाकी, नागे साधु, दुराग्रही, वेदविरोधी मनुष्यों का तो वाणीमात्र से भी सत्कार नहीं करना चाहिए।

इन पाँच महायज्ञों को स्त्री-पुरुष प्रतिदिन करते रहें।

भोजन का मन्त्र

ओम् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्रप्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥

—यजु० ११।८३

अर्थ—(अन्नपते) हे अन्नपते ! भोग्य पदार्थों के स्वामिन् ! आप (नः) हमारे लिए (अनमीवस्य) रोगरहित, स्वास्थ्यप्रद (शुष्मिणः) बलकारक (अन्नस्य) अन्न का, भोग्य पदार्थों का मेरा भाग (देहि) मुझे प्रदान कीजिए। (दातारम्) दीन-दुखियों और अभाव पीड़ितों को अन्न एवं भोग्य पदार्थों का दान करनेवाले दाता को (प्र प्र तारिष) अपनी कृपा से खूब बढ़ाइए, अनेकविध धन-धान्य से समृद्ध कीजिए। प्रभो ! (नः) हमारे (द्विपदे) दो पैरवाले मानवसमज, पुत्र-पौत्रादि तथा पक्षियों और (चतुष्पदे) चार पैरवाले पशुओं के लिए (ऊर्जम्) अन्न, बल, पराक्रम (धेहि) प्रदान कीजिए।

यज्ञोपवीत मन्त्र

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥१॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि॥२॥

—पार० गृह० २।२।११

अर्थ—(यत्) जो (पुरस्तात्) पहले से ही, गर्भ से ही जरायु (गर्भ

की झिल्ली) के रूप में (प्रजापतेः) प्रजापति परमात्मा का (सहजम्) अति सहज (परमम्) परम (पवित्रम्) पवित्र (यज्ञोपवीतम्) यज्ञोपवीत था, उसी के उपलक्षणभूत इस (शुभ्रम्) श्वेत (आयुष्यम्) आयु के वर्धक (अग्रयम्) अग्रता के द्योतक (यज्ञोपवीतम्) यज्ञपवीत को (प्रतिमुञ्च) धारण करो। यह यज्ञोपवीत तुम्हारे लिए (बलम्) बौद्धिक, मानसिक और आत्मिक बल तथा (तेजः) तेजदायक (अस्तु) हो ॥१॥

आचार्य कहता है—

हे मानव ! तू (यज्ञ+उप+वीतम्+असि) यज्ञ के समीप ले जाने योग्य है, अतः मैं (त्वाम्) तुझे (यज्ञोपवीतेन) सूत्रनिर्मित यज्ञोपवीत पहना कर (यज्ञस्य) यज्ञकर्म के साथ (उप नह्यामि) बाँधता हूँ।

राष्ट्रिय प्रार्थना

ओम् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ —यजु० २२।२२

अर्थ—(ब्रह्मन्) हे परमात्मन् ! (राष्ट्रे) हमारे राष्ट्र में (ब्रह्मवर्चसी) ब्रह्मतेज [वेदविद्या के तेज] से तेजस्वी (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (आ जायताम्) उत्पन्न हों। (इषव्यः) बाण आदि अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण (अतिव्याधी) दूर तक निशाना बींधने वाले तथा शत्रुओं को अत्यन्त पीड़ित करनेवाले (महारथः) दस सहस्र सैनिकों से अकेले युद्ध करने वाले महारथी (शूरः) शूरवीर (राजन्यः) क्षत्रिय (आ जायताम्) उत्पन्न हों। (दोग्ध्री) खूब दूध देनेवाली (धेनुः) गौएँ उत्पन्न हों (वोढा) भार ढोने में समर्थ (अनड्वान्) बैल उत्पन्न हों। (आशुः) शीघ्रगामी (सप्तिः) घोड़े उत्पन्न हों (पुरन्धि) नगर एवं राष्ट्र को धारण करनेवाली (योषा) स्त्रियाँ उत्पन्न हों। (अस्य) इस (यजमानस्य) दिव्य प्रजाजन के (वीरः) शत्रुओं को विदीर्ण करनेवाला, शूरवीर (रथेष्ठाः) रथ में बैठनेवाला योद्धा (जिष्णुः) जयशील (सभेयः) सभाओं में जाने योग्य, सभ्य (युवा) बोलने में कुशल (आ जायताम्) उत्पन्न हों। (नः) हमारे

लिए (निकामे निकामे) जब-जब हमारी कामना हो, तब-तब (पर्जन्यः वर्षतु) बादल वर्षा करें, इच्छानुसार वृष्टि हो, अति वृष्टि एवं अनावृष्टि न हो। (नः) हमारे लिए (ओषधयः) जौ आदि ओषधियाँ (फलवत्यः) बहुत अधिक फलवाली होकर (पच्यन्ताम्) पका करें तथा (नः) हमारे लिए (योगक्षेमः) योग=अप्राप्त ऐश्वर्य की प्राप्ति और क्षेम=प्राप्त ऐश्वर्य की रक्षा एवं समृद्धि (कल्पताम्) सिद्ध हो।

इस वैदिक राष्ट्रिय प्रार्थना का डा० सूर्यदेव शर्मा कृत पद्यानुवाद इस प्रकार है—

ब्रह्मन्! स्वराष्ट्र में हों द्विज ब्रह्म तेजधारी।
क्षत्रिय महारथी हों अरिदल विनाशकारी॥
होवें दुधरु गोएँ पशु अश्व आशु वाही।
आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही॥
बलवान् सभ्य योद्धा यजमान पुत्र होवें।
इच्छानुसार वर्षें पर्जन्यताप धोवें।
फलफूल से लदी हों औषध अमोध सारी।
हो योगक्षेमकारी स्वाधीनता हमारी॥

संगठनसूक्त

ओं सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥१॥

अर्थ—(वृषन्) हे सुखों की वृष्टि करनेवाले (अग्ने) ज्ञानस्वरूप (अर्यः) संसार के स्वामी प्रभो! आप (विश्वानि) संसार के सब पदार्थों को (आ) सब ओर (सम् सम् इत्) उत्तम रीति से, निश्चितरूप से (युवसे) अपनी व्यवस्था के अनुसार परस्पर मिलाते हो और फिर पृथक् भी करते हो। (इळः पदे) इस प्रसिद्ध भूमि पर और हृदयरूपी मन्दिर में (सम् इध्यसे) आप अपनी महिमा के द्वारा खूब चमक रहे हो (सः) ऐसे सर्वतो महान् आप (वः) हमें (वसूनि) नाना प्रकार के ऐश्वर्यों, धनों को (आ भर) सब ओर से प्राप्त कराइए।

हे प्रभो! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिए धन वृष्टि को॥

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥२॥

परमात्मा उपदेश देते हैं—हे ऐश्वर्य के अभिलाषी मनुष्यो ! (संम् गच्छध्वम्) तुम सब परस्पर मिलकर चलो, एक दूसरे के साथ शिष्टता एवं शालीनता का व्यवहार करो। (सम् वदध्वम्) तुम लोग विरुद्धवाद को छोड़कर एक दूसरे के साथ प्रेम, सौहार्द तथा शालीनता से बात-चीत करो। (वः) तुम्हारे (मनांसि) मन (सम् जानताम्) मिलकर परस्पर सहयोग से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करें (यथा) जैसे (पूर्वे) तुमसे पहले के (देवाः) कर्त्तव्यनिष्ठ ज्ञानीजन (सम् जानानः) मिलकर परस्पर के सहयोग से विविध प्रकार का ज्ञान प्राप्त करते हुए (भागम्) अपने-अपने कर्त्तव्य कर्म को, प्राप्तव्य अभ्युदय और निःश्रेयस, इहलौकिक और पारलौकिक ऐश्वर्य की (उपासते) उपासना करते आये हैं, वैसे ही तुम भी करो।

प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भांति तुम कर्त्तव्य के मानी बनो।।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।।३।।

हे मनुष्यो! (एषाम्) इन=तुम सबका (मन्त्रः समानः) मन्त्र, मनन, गुप्त विचार, चिन्तन अथवा उपासना का मन्त्र एक हो (समितिः समानी) तुम सबकी राज्य सभाएँ और दूसरी सभाएँ, उत्तम मर्यादाएँ एक जैसी हों। (समानम् मनः) तुम सबके मन एक समान, विरोध-रहित, प्रेम से पूरित हों (चित्तम्) मन से प्राप्त किया जानेवाला तुम्हारा ज्ञान भी (सह) एक समान हो, तुम्हारा चित्त एक-दूसरे के साथ हो अथवा तुम्हारे चित्त और सह—ये दोनों सब मनुष्यों के सुख के लिए प्रयत्नशील रहें। मैं (परमेश्वर) (वः) तुम्हें (समानम् मन्त्रम्) समान मन्त्र (वेद मन्त्र) विचार की (अभिमन्त्रये) प्रेरणा देता हूँ। मैं (समानेन) एक समान (हविषा) भोग सामग्री, ऐश्वर्य के साथ (वः) तुम्हारा (जुहोमि) संयोग करता हूँ।

हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब श्रेष्ठ हों।।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।४।।

—ऋ० १०।१९१।१-४

(वः) तुम सबके (आकूतिः) संकल्प, भावना, Solgan (समानी) एक समान हों। (वः) तुम सबके (हृदयानि) हृदय सदा प्रेमसहित

और विरोध से रहित होकर, (समानाः) एक समान रहें। (वः) तुम्हारे (मनः) मन, मनन शक्ति (समानम्) एक समान (अस्तु) हो (यथा) जिससे (वः) तुम्हारा (सह) बल, सामर्थ्य (सु अस्ति) एक-दूसरे की सहायता से खूब बढ़े।

हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख सम्पदा।।



पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्य दर्शन का इतिहास	५०.००
वेदान्त दर्शन का इतिहास	३५.००
सांख्य सिद्धान्त	३०.००
सांख्य दर्शन	२०.००
वैशेषिक दर्शन	३५.००
न्याय दर्शन	३०.००
योग दर्शन	३०.००

स्वामी वेदानन्द कृत

सत्यार्थप्रकाश (स्थूलाक्षर)	६०.००
स्वाध्याय-सन्दीप	१२.००
जीवन-गाथा स्वामी विरजानन्द	२.५०
स्वाध्याय	२.२५

पं० चन्द्रमणि

निरुक्त हिन्दी भाषा दो भाग	६०.००

पं० आर्यमुनि

योगार्य भाष्य	६.००
सांख्यार्य भाष्य	२०.००

लेखराम

कुलियात आर्य मुसाफिर I-II	६०.००

वेदभाष्य महर्षि दयानन्द

ऋग्वेद भाष्यम् ९ भाग	१३०.००
ऋग्वेद भाषा भाष्य ९ भाग	६६.००
यजुर्वेद भाष्यम् ४ भाग	७०.००
यजुर्वेद भाषा भाष्य २ भाग	४०.००

पं० जयदेव विद्यालंकार कृत

ऋग्वेद ७ खण्डों में	२१०.००
अथर्ववेद ४ खण्डों में	११२.००
यजुर्वेद २ खण्डों में	६०.००
सामवेद १ खण्ड में	३०.००

वैद्य गुरुदत्त

न्याय दर्शन	४५.००
सांख्य दर्शन	४०.००
भारत : गाँधी-नेहरू की छाया में	१८.००
धर्म और समाजवाद	१४.००
विश्वेदेवाः	६.००
बुद्धि बनाम बहुमत	१५.००
युगपुरुष राम	३.००
द्वितीय विश्वयुद्ध	३.००
महर्षि दयानन्द	३.००
दो लहरों की टक्कर (दो भाग)	६६.००
वेद-प्रवेशिका	६.००
वेद और वैदिक काल	१२.००
भाव और भावना	१२.००
यजुर्वेद और गृहस्थ धर्म	१०.००

पं० राजाराम शास्त्री

नव दर्शन-परिचय	१०.००

वीर सावरकर कृत

स्वातन्त्र्य संग्राम १८५७	५०.५०
हिन्दुत्व	५.००
War of Independence	४०.००
गोमान्तक (उपन्यास)	७.५०
क्रान्ति का नाद	६.५०
क्रान्तिकारी चिट्ठियाँ	१०.००
शस्त्र और शास्त्र	५.००
ऊशाःप	८.५०
सावरकर-जीवनदर्शन	१२.००
हिन्दुत्व के पंच प्राण	५.००
प्रतिशोध	५.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन ७.००

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल १५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय ४५.००

सत्यार्थ सरस्वती २५.००

ईश्वर प्रत्यक्ष ६.००

प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

प्रो० विष्णुदयाल (मौरिशस)

वेद भगवान बोले ६.००

वेदों के अनुपम विचार ६.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथिवी सूक्त) १.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए०

यज्ञ की महिमा १.५०

नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ७.५०

सु-राज्य की रूपरेखा ०.५०

पं० बिहारीलाल शास्त्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल के रहस्य १.५०

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान १.००

वेद और आत्मा २.००

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली ८.००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

रामचन्द्र देहलवी लेखावली १०.००

वेद व्यावहारिक है १.००

शंका-समाधान १.००

वेद का इस्लाम पर प्रभाव १.००

महात्मा नारायण स्वामी

कर्तव्यदर्पण ४.००

प्राणायाम विधि १.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.००

कई पुरस्कृत लेखों का संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश २५.००

आर्योद्देश्यरत्नमाला ०.२५

व्यवहारभानु १.००

बालोपयोगी

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार ०.६०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.५०

स्वामी श्रद्धानन्द १.५०

गुरु विरजानन्द १.५०

पं० लेखराम १.५०

पं० गुरुदत्त १.५०

स्वामी दर्शनानन्द १.५०

स्वामी दर्शनानन्द

बालशिक्षा-धर्मशिक्षा १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.६०

नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.६०

नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.००

नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.५०

नैतिक शिक्षा पंचम भाग २.००

नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग २.००

नैतिक शिक्षा सप्तम भाग १.५०

नैतिक शिक्षा अष्टम भाग १.५०

नैतिक शिक्षा नवम भाग २.००

नैतिक शिक्षा दशम भाग २.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्यसत्संग गुटका	१.२५
वैदिक यज्ञप्रकाश	०.७५
पंचयज्ञ प्रकाशिका	३.००

भजन पुस्तकें

गीत भण्डार (संकलन)	४.००
गीत श्रद्धांजलि	१.५०

चित्र - चित्र - चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन	२०×३०	३.००
महर्षि दयानन्द एक रंग	१८×२२	२.००
गुरु विरजानन्द एक रंग	१८×२२	२.००
स्वामी श्रद्धानन्द ,,	,,	२.००
स्वामी दर्शनानन्द ,,	,,	२.००
म० हंसराज ,,	,,	२.००

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन

आप क्या नहीं कर सकते ?	३.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ?	३.००
हँसते-हँसते कसे जियें ?	३.००
जो चाहें सो कैसे पायें ?	३.००
अपना खर्च कैसे घटायें ?	३.००
अवसर को पहचानो !	३.००
अपने आपको पहचानिए !	३.००
आप सफल कैसे हों ?	३.००
उन्नति कैसे करें ?	३.००
धनकुबेर कैसे बनें ?	३.००

मनहर चौहान

महाभारत	५.००
रामायण	५.००

गोपालकृष्ण कौल

पंचतन्त्र	१२.००

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भस्थिति प्रसव और शिशुपालन	१२.००

सुशीला कपूर

सुबोध मेक-अप	४.००

मीनाक्षी धींगड़ा

आधुनिक पाक-कला	१२.००
मिष्ठान्न कला	१२.००
शर्बत आइसक्रीम स्क्वैश	१२.००
अचार मुरब्बे चटनी	१२.००

हयात

रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक	६.००
सुबोध ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	५.००
सुबोध ट्रांजिस्टर गाइड	५.००

अनिल कुमार

अंग्रेजी बोलना कैसे सीखें	५.००

योगाचार्य भगवान्देव

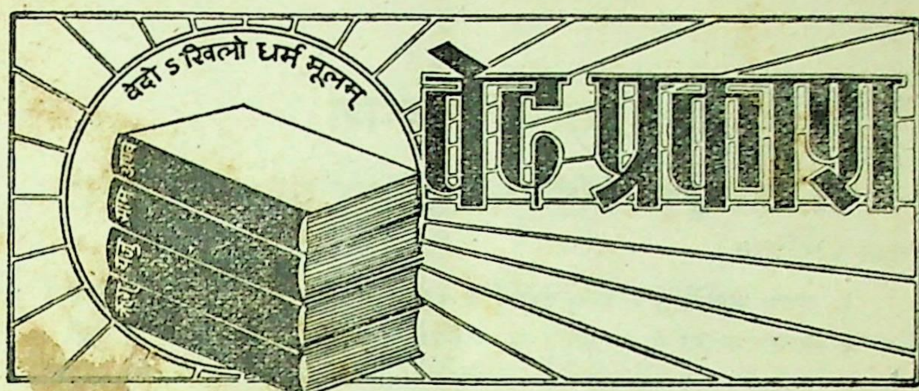
स्वास्थ्य और योगासन	५.००

डा० समरसेन

घरेलू इलाज	१२.००
मोटापा कैसे घटायें	१२.००
योगासन से इलाज	४.००
प्राकृतिक चिकित्सा	१२.००
जूडो कुंगफू कराटे राजीव	६.००

विवाह, जन्मदिन पर उपहार तथा पुरस्कार में दें।
आर्ट पेपर पर छपा, सुनहरी जिल्द में बन्धा—
'सत्यार्थ प्रकाश'
मूल्य : एक सौ एक रुपये।

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।



८१

उदयपुर में सत्यार्थप्रकाश शताब्दी

सार्वदेशिक सभा के तत्वाधान में राजस्थान आर्यप्रतिनिधि सभा ने १६, १७, १८ अक्तूबर को उदयपुर में, जहाँ ऋषि दयानन्द ने अपने क्रान्तिकारी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की रचना की थी, सत्यार्थप्रकाश शताब्दी का विशाल समारोह धूम-धाम से मनाने का निश्चय किया है।

इस अवसर पर विदेशों से और देश के सब राज्यों से बड़ी संख्या में आर्यजन शामिल हो रहे हैं। उदयपुर के महाराणा भूपाल स्टेडियम में एक लाख लोगों के बैठने की व्यवस्था की जा रही है।

आर्यसमाज की सभी संस्थाओं को आमंत्रित किया गया है। समारोह में विविध सम्मेलनों के अलावा गुरुकुलों के छात्र-छात्राओं और आर्यवीर दलों के व्यायाम-प्रदर्शन भी होंगे। शोभायात्रा में महर्षि दयानन्द तथा अन्य महापुरुषों की जीवन-झाँकियाँ भी होंगी। स्वाहिली भाषा में अनूदित सत्यार्थ प्रकाश का विमोचन इस समारोह की विशेष उपलब्धि होगी।



सत्यार्थप्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची।
२. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची।
३. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची।
४. सत्यार्थप्रकाश के १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश (जैसे हारून का Haron)।
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य।
६. सत्यार्थप्रकाश की आधार-ग्रन्थ-सूची।
७. सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा।
८. अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण-सूची।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी-संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च-स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्त जी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी-संस्करण में दी गई है।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास-अनुसार।

बढ़िया कागज। १६ प्वाइंट के मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५·००।

सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण का आर्ट पेपर पर छपा राज-संस्करण भी तैयार है। बहुत ही आकर्षक प्लास्टिक कवर के साथ कपड़े की हरी जिल्द।

विवाह आदि के अवसर पर भेंट देने योग्य। मूल्य १०१.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३१, अंक ३]   वार्षिक मूल्य : पाँच रुपये   [अक्टूबर, १९८१

सम्पा० : विजयकुमार   आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

मन को वश में करो

—पं० सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए०

भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ । ऋ० ६।६४।४

(सत्या समिथा) सच्चे संग्राम (मितद्रौ) मित-गमन, मिताचार, संयम में (भवन्ति) होते हैं।

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र ।
वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ॥ —ऋ० ५-३०-४

भगवान् इन्द्र की इच्छा करने वाले ! यदि तू समर्थ होकर मन को स्थिर करे, तो तू अकेला ही बहुतों (अनेक विघ्न-बाधाओं तथा विषयों) को युद्ध में जीत सकता है।

मिताचार, मितगमन अथवा संयम का तात्पर्य है अपने जीवन और अपनी इन्द्रियों को वश में करना। मनरूपी लगाम से इन्द्रियरूपी घोड़ों को नियन्त्रण में रखा जा सकता है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, इन पर नियन्त्रण करना चाहिए। यह दस इन्द्रियाँ जीवन रथ के अश्व हैं। जो इनको वश में रखता है, वही विजयी होता है। इस विषय में महापुरुषों के जीवन की बातें सुनो—

१. शंकराचार्य महाराज से उनके एक शिष्य ने प्रार्थना की कि महाराज मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ।

शंकराचार्य ने कहा—'प्रश्न निस्संकोच होकर पूछो।'

शिष्य ने पूछा—'जगत् को कौन जीत सकता है ?'

शंकराचार्य ने उत्तर दिया—'जो मन को जीत लेता है, वह जगत् को भी जीत सकता है ?'

२. बालको, मन को जीतना कठिन भी है और निश्चय कर लिया जाय तो सरल भी है। स्वामी रामतीर्थ का नाम तुमने सुना होगा ? वे बहुत बड़े तत्त्वज्ञानी और महापुरुष हुए हैं। एक बार वे घूमने निकले। रास्ते में एक नींबूवाले को नींबू बेचते देखा। नींबू बड़ी विचित्र चीज है, इसे स्मरण करो तो मुख में पानी भर आता है। लोग यहाँ तक कहते हैं कि यदि किसी नर्तकी का नृत्य खराब करना हो और उसका ध्यान दूसरी ओर करना हो तो नृत्य करते समय उसके सामने बैठकर चाकू से नींबू काटो तो उसके मुँह में पानी आ जाएगा और उसका नृत्य बिगड़ जाएगा। यह बात कहाँ तक सत्य है यह तो नहीं कह सकता पर, नींबू देखकर मुँह में पानी आ जाने की बात तो बहुत अंशों में ठीक लगती है।

हाँ, तब स्वामी रामतीर्थ ने नींबू खरीदा। घर आए। चाकू लिया। नींबू को काटा। मुख में पानी भर आया। मन ने कहा—'इसे चखकर तो देखो इसका रस बहुत ही उत्तम है।'

रामतीर्थ नींबू के टुकड़े को मुख के पास ले गए। अन्दर से किसी ने कहा—'रामतीर्थ, तुम्हें तुम्हारा मन क्या जिधर चाहे उधर ही ले जा सकता है। इस पर नियन्त्रण रखो। आज यह नींबू के लिए प्रेरित कर रहा है कल शराब और माँस के लिए प्रेरणा कर सकता है। उस समय वे प्रोफेसर रामतीर्थ थे ! उन्होंने नींबू रख दिया। पर, फिर मन ने सुझाया कि रामतीर्थ, कैसे विचित्र हो, नींबू नींबू है—शराब नहीं, माँस नहीं। इसे क्यों नहीं लेते हो ?

रामतीर्थ से नहीं रहा गया। उन्होंने उठाया और जीभ के पास लाए अन्दर से किसी ने पुकारकर उनका उपहास करते हुए कहा—'तू क्या इस जिह्वा का दास है—गुलाम है, जो यह जिह्वा कहेगी, वही करेगा। जिह्वा तेरी है, तू जिह्वा का नहीं।'

स्वामी रामतीर्थ ने कहा—'मैं जिह्वा का दास नहीं बनूँगा।' उन्होंशे नीबू को उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दिया और कहा, 'मैं जीता मन हारा।'

नींबू कोई खराब वस्तु नहीं, पर यहाँ प्रश्न है कि इन्द्रियों का दास होना ठीक नहीं। ऐसे ही बालको, जब तुम्हारे सामने प्रलोभन आए उनका दृढ़ निश्चय और इन्द्रियों के दमन द्वारा उन पर नियन्त्रण करो। स्वामी रामतीर्थ के समान तुम भी यशस्वी बनोगे, गुणी बनोगे, सच्चरित्र बनोगे।

३. मन जड़ है। जड़ में चेतनता या शक्ति नहीं होती है। चेतन जड़ पर नियन्त्रण कर सकता है। तुम भी मन पर नियन्त्रण कर सकते हो।

महाराज जनक कर्मयोगी थे। कर्मयोगी का मन पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। बिना नियन्त्रण के कोई योगी नहीं बन सकता। जनक जी महाराज से एक व्यक्ति ने प्रश्न पूछा—'महाराज मन को कैसे वश में किया जा सकता है ?'

जनक उस समय एक वृक्ष का सहारा लिए खड़े थे, बोले—अरे, मुझे तो इस वृक्ष ने पकड़ लिया है, यदि यह छोड़ दे तो मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूँगा।

प्रश्नकर्ता जनक जी की मूर्खता पर हँसा और उसने अपने मन में सोचा कि यह मूर्ख, मेरे प्रश्न का क्या उत्तर देगा। उसने उनसे कहा—'महाराज वृक्ष तो जड़ है, वह कैसे आपको पकड़ सकता है? आप कैसी ऊटपटाँग बात कर रहे हैं?'

जनक ने मुस्कराते हुए कहा—'तुम ठीक कह रहे हो, भाई! वृक्ष जड़ है। इसने मुझको नहीं पकड़ रखा है, मैंने इसको पकड़ रखा है। तुम्हारा मन भी तो जड़ है, उसने तुम्हें अपने वश में नहीं किया है, पर तुमने स्वयं को उसके वश में डाला हुआ है। वह क्या तुम्हें वश में करेगा? उसे तुम वश में करो।

जनक के समान जो मन की वास्तविकता एवं उसके सच्चे स्वरूप को समझ लेता है, वह जनक के समान सच्चा योगी बन सकता है।

विजयी बनो

विश्वाः पृतना जयेम। ऋ० २।४०।५

हम लोग (विश्वाः) सम्पूर्ण (पृतना) युद्धों में (जयेम) विजयी बनें।

बालको! स्वतन्त्रता किसी से बँधी रहने वाली वस्तु नहीं है। इसको प्राप्त करना और इसकी रक्षा करना बहुत ही दुष्कर कार्य है। इसको मनुष्य प्राप्त भी कर ले फिर भी उसकी रक्षा कठिन हो जाती है। स्वतन्त्रता और आत्म-सम्मान की रक्षा करने के लिए अपने आपको दृढ़ बनाना होगा। दृढ़ता के लिए हमें अपना चरित्र बहुत निर्मल एवं सर्वागपूर्ण बनाना होगा।

याद रखने की बात यह है कि मनुष्य को अपने व्यक्तिगत जीवन में भी विजय प्राप्त करने के लिए वीरता की आवश्यकता पड़ती है। वीरता रणभूमि में या डूबते हुए जहाज के लिए जितनी आवश्यक है, उतनी ही व्यक्तिगत जीवन में सफलता या विजय प्राप्त करने के लिए भी आवश्यक है। संसार में वीर न होने के कारण हमें बहुत से दुःखों और बहुत-सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

तुम कहोगे कि वीर कैसे बना जाए? वीर बनने का सबसे सुन्दर तरीका यह है कि तुम अपने सामने कोई उच्च लक्ष्य रखो और उसके लिए संघर्ष प्रारम्भ कर दो। यह आदर्श अनेक प्रकार के हो सकते हैं जैसा कि कोई निर्दोष सिद्धान्त, उच्चादर्श, अधिकाँश जनता की सेवा, जात-पांत को मिटाना, दहेज या ऐसी बुराइयों को दूर करना, राष्ट्रभाषा, हिन्दी का प्रचार या स्वतन्त्रता की रक्षा। यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम्हारे साथ जो भी घटना घटेगी वह तुमको विजय की ओर ले जाएगी। तुम्हारा लक्ष्य विज्ञान, साहित्य, समाज और राष्ट्र किसी के लिए भी हो सकता है।

तुम्हें याद होगा कि पाकिस्तान भारत से कई लड़ाइयाँ लड़ चुका है। उसने १९६५ ई० में हमारे देश पर आक्रमण किया। उस समय उनके पिल बॉक्सों को तोड़ने उसके टैंकों को जो, अमेरिका के सर्वोत्कृष्ट टैंक थे, तोड़ने, उसके राडार स्टेशनों को नष्ट करने तथा सेबर जैट विमानों को समाधि देने के लिए न जाने कितने वीर बलिदान हो गए।

बलिदान—किसी उच्च कार्य के लिए अपने को मिटा देना, एक महान कार्य है। बलिदान कभी व्यर्थ भी नहीं जाता, बलिदान की सदा विजय होती है। बीज जब अपने को मिट्टी में मिला देता है, नष्ट हो जाता है, उस समय उसके स्थान पर नये लहलहाते हुए पौधे उत्पन्न होते हैं। जब दीपक की बत्ती अपने को जलाकर नष्ट कर देती है तभी तो वह भटकों को मार्ग दिखला सकती है। उर्दू के किसी कवि ने एक कविता लिखी है, जो मुझे कविता के रूप में तो याद नहीं पर उसका भाव इस प्रकार था कि एक बार पृथ्वी पर भयंकर गर्मी पड़ रही थी। तालाब, नदियाँ, पोखरे सब सूख गये थे। पृथ्वी तवे के समान तप रही थी। पशु-पक्षी, मनुष्य और सभी प्राणी गर्मी के मारे हाहाकार मचाये हुए थे। इनकी यह दशा देखकर आकाश की एक बूंद के हृदय में करुणा के भाव जागृत हुए। उसने आकाश की सभी नन्हीं बूंदों को इकट्ठा किया। एक मीटिंग हुई और उस नन्हीं बूंदों ने पृथ्वी वासियों के इस भीषण मार्मिक व्यथा का चित्र उपस्थित कर उसे दूर करने की बात उठाई। सब बूंदों ने अपनी असमर्थता व्यक्त की। उसे किसी ने पागल कहा, किसी ने उसे मूर्ख बतलाया। पर, वह डरी नहीं। कहते हैं उसने अपने को पृथ्वी पर डाल दिया। पर जिस प्रकार तवे पर एक बूंद पड़कर छन-छनाकर मिट जाती है, वैसे ही वह मिट गई। पर उसका बलिदान व्यर्थ नहीं गया। उसके बाद दूसरी, तीसरी और फिर सैकड़ों बूंदों ने अपने को उसके पीछे बलिदान कर दिया। तालाब पानी से भर गये। नदियाँ इठलाकर बहने लगीं। पोखरों में पानी दिखाई देने लगा। पृथ्वी शीतल हो गई। पौधों में जीवन आ गया। लताएँ वृक्षों का आलिंगन करने लगीं। मनुष्य, पशु, पक्षी सभी ने शान्ति और शीतलता का अनुभव किया। एक बूंद के बलिदान ने दूसरों का मार्ग प्रदर्शन किया। उसका उद्देश्य पूरा हुआ वह विजयिनी बनी।

स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन संघर्षों में विजयी होने का जीवन है। बलिदान का का जीवन है। वैदिक धर्म के विचारों के स्थायी प्रचार के लिए आदर्श शिक्षणालय खोलने का निश्चय किया। वह शिक्षणालय जंगल में खोला गया था। जंगल भी अत्यन्त भयंकर। मित्रों ने इस योजना का विरोध किया, सम्बन्धियों ने इसकी पूर्ति में सन्देह समझा कर ऐसा न करने की राय दी, परिवार के लोगों ने इसकी सफलता में सन्देह व्यक्त किया और उसके परिणाम सोचकर चिन्ता व्यक्त की, विरोधियों को असफल होने पर मजाक का अवसर मिलने की प्रसन्नता हुई। पर, गुरुकुल खोलने के लिए पच्चीस हजार रुपया इकट्ठा करने और एकत्र न होने पर घर न लौटने का निश्चय करके महात्मा मुन्शीराम निकल पड़े और उन्होंने १९०२ ई० में हिमालय की गोदी में गुरुकुल की स्थापना करके दिखा दी। आज वहाँ से शिक्षा प्राप्त कर निकले हुए सैकड़ों स्नातक शान से कहते हैं—

जिसकी चरण धूल ने पाला, जहाँ किया विद्या मधुपान।
उस प्यारी कुलमाता को है, मेरा बारम्बार प्रणाम॥

१९७१ ई० की पाकिस्तान और भारत की लड़ाई में एक मोहिन्दर सिंह नाम का सिपाही था। ४ दिसम्बर को प्रातःकाल शत्रु ने तीसरी बार जब फिर हमला किया तो वह अपने बैंकर से ब्रेनगन लिए हुए बाहर निकला और जान की परवाह न करते हुए

एक से दूसरी खन्दक पर कूदते हुए और दुश्मनों को रणभूमि में धराशायी करते हुए आगे-ही-आगे बढ़ने लगा। उस अकेले ने ही १५-२० शत्रुओं का सफाया किया और भारतीय झण्डे को शत्रुओं के क्षेत्र में ले जाकर गाड़ दिया। उसे एक गोली लगी और 'भारतमाता की जय' के साथ उसने वीरगति प्राप्त की।

१९६५ ई० की बात है। अमेरिका के सहयोग से बना भयंकर और शक्तिशाली पाकिस्तानी राडार स्टेशन सरगोधा में भारतीय जहाजों के मार्ग में रोड़ा बन रहा था। हमारे एक पाइलेट ने उस शक्तिशाली अमेरिकन राडार स्टेशन को तोड़ने का निश्चय किया। उस राडार स्टेशन के कारण पाकिस्तानी शत्रु सेना को नष्ट करने में भारतीय हवाबाजों को बड़ी कठिनाई महसूस हो रही थी। एक वीर को जोश आया। वह गया। नीचे से उसे लौट आने का आदेश हुआ। समझकर आक्रमण करने और व्यर्थ में जान न गँवाने की सलाह दी गई, परन्तु वीर, क़दम बढ़ाकर पीछे नहीं लौटते। कहते हैं कि उसने अपने अधिकारी को सूचित किया। **'कार्यं वा साधयेयम् देहं वा पातयेयम्।'** या तो कार्य सिद्ध करूँगा या अपने को नष्ट कर दूंगा। वह उड़ा भयंकर गोलों के बीच अपने को बचाता हुआ जहाज को नीचे लाया और राडार स्टेशन तक पहुँचकर उससे टकराने से पहले ही बम्बार्ड कर दिया। भयंकर आवाज के साथ राडार का एक-एक हिस्सा उड़ गया। उसकी आवाज के साथ उसने 'भारत माता की जय' का नारा लगाया। उस राडार के टुकड़े-टुकड़े से उसकी आवाज की प्रतिध्वनि 'भारत माता की जय' के रूप में आकाश में उड़ी। वीर देश के लिए बलिदान हो गया। पर भारत की विजय नींव उस अकेले ने डाल दी। सचमुच बालको, तुम कभी जीवन में यह मत सोचना कि तुम अकेले हो, अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सके, पर तुम अकेले ही जीवन में विजय प्राप्त कर सकते हो। क्यों भूलते हो—

तुम एक अनल कण हो केवल, छप्पर तक जा सकते उड़कर।
जीवन की ज्योति जला सकते, अम्बर में आग लगा सकते।
ज्वाला प्रचण्ड फैला सकती है, छोटी-सी चिनगारी भी।

बालको, स्वतन्त्रता के बाद के युद्धों में अकेले ही अनेक नवयुवकों ने जो बहादुरी के कार्य किये, उन्हें स्मरण कर श्रद्धा से हमारा मस्तक उनके प्रति झुक जाता है। मेजर वेदराज, सैकिंड लेफ्टीनेन्ट रोहित सेठी ने अकेले ही पाकिस्तानी बैंकर और पिलबौक्स तोड़ डाले। कैप्टन अहलावत ने मशीनगन चलाते हुए और शत्रुओं को बैंकर में कूदकर उन्हें सदा के लिए शान्त कर दिया। परन्तु वह स्वयं भी सात गोलियाँ खाकर शहीद हो गया। उसकी शहादत को क्या भारत भूल सकेगा? मैं तुम्हें सोमदत्त, रमेश बदलाना आदि सैकड़ों वीरों की बातें कहाँ तक बताऊँ? पर, रमेश बदलानी की मृत्यु के बाद-मृत्यु क्यों शहादत के बाद जब राजस्थान सरकार ने उनकी माँ को पाँच हजार रुपया देना चाहा तब जानते हो उस माँ ने कहा—'रमेश भारत भूमि की रक्षा के लिए शहीद हुआ है। मैं यह धन लेकर क्या करूँगी। आप इस धन को ले जाइए और राष्ट्र के उन बेटों के कल्याण के लिए उपयोग में लाइए जो मातृभूमि की रक्षा और स्वतन्त्रता को बचाने के

लिए ही नहीं, शत्रुओं को कुचलने में लगे हैं।' धन्य है माँ! तेरी यह भावना भारत को सदा विजयी बनाएगी। इन शहीदों का बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा। सचमुच—

शहीदों की चिताओं पर, जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का, यही बाकी निशाँ होगा॥

स्वराज्य

यतेमहि स्वराज्ये। ऋ० ५-६६-६

(स्वराज्ये) स्वराज्य में (यतेमहि) यत्न—पुरुषार्थ करें।

बालको! अब हमारा देश स्वतन्त्र है। देश को स्वतन्त्र करने के लिए तुम्हारे बड़ों ने बहुत यत्न किया है। बहुत कष्ट सहे हैं। बहुत विपत्तियाँ झेली हैं। यह स्वतन्त्रता की देवी सैकड़ों हजारों बलिदानों से प्रसन्न हुई है। इस देश को सर्वांगीण सुन्दर और अपने राष्ट्र को सर्वतः सबल और सुपूर्ण बनाने के लिए तुम्हें बड़ा भारी प्रयत्न-पुरुषार्थ करना होगा। स्वराज्य में तुम्हारे लिए देश सेवा का प्रत्येक द्वार खुला हुआ है। देश को सुखी, सम्पन्न और राष्ट्र को आदर्श शक्तिमान् बनाने के लिए तुम्हें प्रत्येक दिशा में, प्रत्येक पार्श्व में, प्रत्येक क्षेत्र में कठोर तप करना होगा।

तुम्हारा यह देश प्राचीनकाल में जगद्‌गुरु था। पर, आज हम बहुत पिछड़ गये हैं। तुम्हारे पूर्वज आर्यों का इस भूमण्डल पर करोड़ों वर्ष पुण्य प्रताप जगमगाता रहा। आर्यों ने इस सम्पूर्ण लोक पर सदा एक छत्र शासन किया तथा समस्त संसार को आर्यत्व की मर्यादा से दीक्षित किया, परन्तु आज हमारा देश पिछड़ गया है। इस पिछड़ने का सबसे बड़ा दोष हम पर ही है। हमने अपना चरित्र गिरा दिया, हम पिछड़ गये।

'स्वराज्य' शब्द का भाव बहुत ऊँचा है। भारतीय साहित्य की यह विशेषता है कि यहाँ के शब्दों के पीछे उच्च विचारधारा, भावनाएँ एवं इतिहास छिपा रहता है। 'स्वराज्य' 'स्वाधीनता' 'स्वतन्त्रता' आदि शब्द भी अपने पीछे एक सांस्कृतिक चेतना रखते हैं। स्वतन्त्रता शब्द का साधारणतया अँग्रेजी में अनुवाद करते हुए इसका पर्यायवाची शब्द 'इण्डिपैण्डेंस' बतलाते हैं। पर, इण्डिपैण्डेंस का अर्थ स्वाधीनता न होकर 'अनधीनता' है। 'अनधीनता' और स्वाधीनता में अन्तर है। अनधीन व्यक्ति किसी के वश में न रहेगा। वह उच्छृंखल होगा। वह यदि ट्रेन में यात्रा करेगा तो बिना टिकट यात्रा करने लगेगा। पोस्टकार्ड की मोहर मिटाकर उसे दुबारा चलाने का प्रयत्न करेगा, परन्तु 'स्वाधीन' या 'स्वतन्त्र' व्यक्ति किसी दूसरे के वश में न रहता हुआ भी अपने वश में रहेगा। जब वह बिना टिकट यात्रा करने के लिए चढ़ेगा तो भले ही उसे दूसरा न रोक रहा हो वह अपने बन्धन से बँधा होगा और उसकी आत्मा उसे इस अनुचित कार्य से हटा रही होगी। अतः तुम्हें भी 'इण्डिपैण्डेंट' न होकर 'स्वतन्त्र' और 'स्वाधीन' बनना चाहिए तभी तुम अपने राष्ट्र को उन्नत कर सकोगे।

बालको ! 'भारत माता की जय' का जब हम नारा लगाते हैं तब क्या तुम जानते हो कि भारतमाता की जय का क्या मतलब है ? यह भारत माता कौन है ? यह भारत माता और कोई नहीं। इस हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक, पूर्व में आसाम से लेकर पंजाब तक जो विशाल प्रदेश है, उस प्रदेश में रहनेवाले नर-नारी ही भारत माता हैं और इनकी जय का मतलब है कि इस देश में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति। इसीलिए वेद की दूसरी सूक्ति कहती है कि मैं अपनों को ऊँचा उठाऊँ ? यह अपने कौन हैं ? भारत के अन्दर रहने वाले प्रत्येक की उन्नति हमारी उन्नति है। हमारा विकास है। इस विषय में एक घटना सुनाऊँ—

बात उन दिनों की है जब गांधी जी का नमक सत्याग्रह जोरों पर था और जगह-जगह लोग जेलों में ठूँसे जा रहे थे। उन दिनों वेदान्तियों का शिष्टमण्डल गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने गया। यह भी तुम्हें बता दूँ कि वेदान्ती **'सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म'** सारे संसार को ब्रह्म मानते हैं। उनकी दृष्टि से अपनी स्त्री और दूसरी स्त्री या पुरुष में कोई अन्तर नहीं। यही कारण है कि वेदान्तियों का ब्रह्मवाद आगे चलकर भोगवाद में बदल गया था। स्वामी दयानन्द ने उनके एकात्मवाद का विरोध किया था। वेदान्तियों के इसी शिष्ट मण्डल में से एक ने पूछा—'गुरुदेव ! इस अन्ध श्रद्धा से (जो महात्मा गांधी का देश को स्वतन्त्र करने का आन्दोलन था, उसे अन्ध श्रद्धा कहा) अब आप ही देश को उबारें। देशभक्ति कितना तुच्छ विचार है। यहाँ कौन अपना, कौन पराया, सब माया है, नश्वर है। यह भूमि जड़ है, जड़ से इतना मोह अज्ञान है।'

यह सुनकर गुरुदेव की स्वाभाविक मुस्कान बन्द हो गई, लेकिन रोष पर किसी तरह नियन्त्रण कर अत्यन्त गम्भीर स्वर में तर्क करने वाले सज्जन से बोले—'आपकी माँ जीवित है न ?'

'हाँ' उसने कहा।

'क्या आप उनका सिर काट कर ला सकते हैं ?' रवि बाबू ने पूछा।

वे सज्जन क्रोध से लाल हो गये। बोले—'क्या आप मुझे इतना नीच समझते हैं कि मैं अपनी जन्मदात्री का ही सिर काट लाऊँगा।'

रवि बाबू ने कहा—'आप स्वयं नहीं, तो किसी दूसरे को काटने की इजाजत दे सकते हैं ?'

'इजाजत ?' वह सज्जन क्रोध से तड़पे, 'मैं उस दुष्ट का सिर नहीं उतार लूंगा।'

गुरुदेव ने कहा—'बस तो गांधी जी और उनके साथी भी अपनी माँ पर ऐसी श्रद्धा और भक्ति रखते हैं— अन्तर यही है कि आपकी माँ केवल एक बेटे की माँ है और उनकी माँ भारत के कोटि-कोटि लोगों की माँ है।'

इसीलिए वेद में भूमि को माता कहकर नमस्कार किया गया है। अथर्ववेद में 'नमः पृथिव्यै' मातृभूमि को नमस्कार है।

बालको, स्वयं चरित्रवान् बनो। स्वास्थ्य की उन्नति करो। स्वच्छता स्थापित करो। कृषि और कला-कौशल की उन्नति करके सब प्रकार से स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनो। साम्प्रदायिकता को मिटाओ। प्रान्तीयता को दूर करो। कुरीतियों और

अन्धविश्वासों को दूर से ही नमस्कार करो। अपने देश के रहने वालों को निर्व्यसन, निर्विलासी और धर्मात्मा बनाओ।

तुम जितनी अधिक देश की सेवा और राष्ट्र की आराधना करोगे, उतने ही अधिक प्रतिष्ठित, सम्पन्न उच्च और महान् बन जाओगे। इतिहास में महाराणा प्रताप, शिवाजी, स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी, सुभाष चन्द्र बोस, स्वामी श्रद्धानन्द, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल ने देश सेवा करके इतना प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया। रामप्रसाद बिस्मिल, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राजगुरु, सुखदेव ने इसी मातृभूमि के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिए। राम ने कहा था—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात् माँ तथा मातृभूमि की महिमा स्वर्ग से भी बढ़कर है।'

इसीलिए वेद कहता है—'यतेमहि स्वराज्ये' 'करें पुरुषार्थ स्वराज्य में' (विदेह)

'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः'

भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।

कर्म से होता आत्मविकास

इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः। ऋ० ६।४६।३

(इन्दम्) इन्द्र शक्ति, आत्मबल या आत्मसँबल को (कर्मभिः कर्मों से बढ़ाते हैं।

इन्द्रशक्ति काम करने से बढ़ती है, बातें बनाने से नहीं। प्रायः बातून और केवल सोचने वाले व्यक्ति भीरु और डरपोक होते हैं। कर्मों में, सुकर्मों में, कर्त्तव्यों के सम्पादन में सदा निष्ठा रखो और श्रम तथा तप के द्वारा कर्त्तव्य कर्मों का सुनिष्पादन करो। कुशलता के साथ कर्मों के सम्पादन से आत्मबल बढ़ता है।

गाँधीजी वर्धा में खादी और ग्रामोद्योग के महत्त्व पर भाषण दे रहे थे। वे समझा रहे थे कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आजीविका के लिए दिन में आठ घंटे परिश्रम करना चाहिए। यह श्रम उसके शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास के लिए जरूरी है। एक सज्जन बीच में ही खड़े होकर पूछने लगे—'बापू जी, अगर चार ही घण्टे काम करें तो क्या हर्ज है? मनुष्य को कुछ फुरसत भी मिलनी चाहिए।'

'दिन रात मिलकर चौबीस घण्टे होते हैं न?' गाँधीजी नें हंसकर पूछा।

'जी, हाँ'

'आप आठ घण्टे सोते होंगे?'

'जी नहीं, छः घण्टे की नींद मेरे लिए काफी है।'

'बहुत अच्छा। तो फिर बचे अठारह घण्टे। उसमें से सिर्फ चार घण्टे आप निर्वाह के लिए मेहनत करेंगे। तो फिर कितने घण्टे बचे? जरा गणित कीजिए।' गांधीजी ने मुस्करा कर कहा।

'चौदह घण्टे।'

'तो इन चौदह घण्टों का क्या करेंगे। क्या किसी की हजामत बनाएँगे।'

सब लोग हँस पड़े। वे सज्जन कुछ कहना भी चाहते थे, पर उन्होंने चुपचाप बैठ जाना ही अच्छा समझा। गाँधीजी ने किया तो मजाक ही था। वरना, वास्तव में हम सबकी यह एक आदत सी हो गई है कि दिन भर चाहे आफिस में हों या विद्यालय में या कक्षा में या मोटर में या रेलगाड़ी में सब जगह बैठकर गप्प लगाते हैं। गप्प का विषय भी बड़ा मजेदार होता है कि जिससे गप्प कर रहे होते हैं, उसके विरोधी की आलोचना या निन्दा। हजामत भी बनाते रहते तो शायद इससे अच्छा ही होता। काम कुछ नहीं, केवल गप्प। वास्तव में खाली मन शैतान का घर होता है। इसलिए इन गप्पों का परिणाम शैतानियत ही होती है।

एक गरीब किसान ने शंकर जी की तपस्या की। उसे वरदान भी मिल गया। शंकरजी आशुतोष हैं, जल्दी ही वरदान दे भी देते हैं। उस किसान की सेवा में एक भूत दिया गया। बात निकलने की देर नहीं कि चीज हाजिर। जो चाहो सो मिल सकता था। पर एक बेढब शर्त भी थी। अगर उस भूत को कोई काम न बताया जाय तो वह किसान को ही हड़प कर जाएगा।

भूत नौकर से फरमाइशें हुई—महल की, सैकड़ों नौकरों की, अच्छी स्वादिष्ट मिठाइयों की, रंग-बिरंगी पोशाकों की। फिर हाथ जोड़कर भूत ने पूछा 'और?'

'ठहरो सोचकर बताता हूँ' किसान बोला। पर, शंकरजी की शर्त के अनुसार ठहरना संभव न था। किसान को और तो कुछ सूझा नहीं, वह घबराकर बोला—'मुझे शंकर जी के पास ले चलो।'

'इस भूत से जान बचाइए' वह गिड़गिड़ाकर बोला।

शंकरजी ने कहा—क्यों नहीं तुम एक लट्ठा गड़वाकर इसे उस पर चढ़ने और उतरने को कह देते हो।'

यह उपाय ठीक निकला। इस तरह का भूत हम लोगों के पास भी है अगर उसे भरपूर काम न दिया जाय तो वह हमारा जीवन ही हराम कर डालता है। यह सर्व-व्यापी भूत हमारा मन है। इसे निरन्तर काम में लगाकर ही वश में किया जा सकता है। बर्नार्ड शा जो एक अंग्रेजी साहित्य के महान् लेखक थे कहा है—'अनन्त अवकाश ही नरक की सबसे अच्छी व्याख्या है।' कार्लाइल ने तो श्रम को ही ईश्वर की सबसे बड़ी पूजा माना है।

निडर सो अमर-धीर सो वीर

मा भेर्मा मा संविक्थाः ।। यजुर्वेद १।२३।।

(मा) मत (भेः) डर (मा) मत (संविक्थाः) घबरा।

भय और घबराहट सदा एक दूसरे के साथ रहते हैं। हम जब भयभीत होते हैं, तब हम उस भय से इतना आक्रान्त हो जाते हैं कि हमें कुछ सूझता नहीं और कठिनाई से बचने की सम्भावना समाप्त हो जाती है। इसलिए कहा जाता है 'डरा सो मरा और घबराया सो हारा।' साँप भारतवर्ष में काफी हैं। वह काटते भी बहुत से लोगों को है। परन्तु ध्यान रखनेऔर जानने की बात यह है कि इनमें विषैले साँप बहुत ही कम हैं। साँप काटने से जितनी मौतें होती हैं, उनमें से पच्चासी प्रतिशत लोग भय से मरते हैं। हैजे से हमारे देश में बहुत से लोग मरते थे। कहते हैं एक बार हैजा किसी नगर से आ रहा था। उससे किसी मनचले ने पूछा 'वहाँ कितनों को लिया?' हैजे ने कहा, "अरे भाई, मैं दो चार से तृप्त हो जाता हूँ। शेष हजारों आदमी बिना हैजे के, मेरे डर से मर गए हैं। ठीक है, हैजा बोलता नहीं। पर हमारा तात्पर्य यह है कि सचमुच 'जो डरा सो मरा' यह बात अक्षरशः सत्य है। तुम्हारे घर में साँप निकला है, जरा धैर्य से काम लो तुम उसे मार दोगे या भगा दोगे। मैं एक महिला को जानता हूँ। वे जब घर में साँप देख लेती हैं तो चिल्लाने के साथ-साथ उस ओर भागने लगती हैं। उन्हें पकड़ना पड़ता है। तब तक सांप गायब हो जाता है। घर में चोर या डाकू आए डरो मत घबराओ मत। तुम भूँकते हुए कुत्ते से डरकर भागोगे तो कुत्ता तुम्हारा पीछा करेगा और पांव में काट लेगा जरा डटकर पत्थर उठाकर या छड़ी दिखाकर उसकी ओर बढ़ो तो वह भाग जाएगा।

यह भी याद रखना चाहिए कि भूतप्रेत नहीं होते हैं निर्भयता और धैर्य से बिगड़े हुए कार्य भी बन जाते हैं।

प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य अपने जीवन में कठिनाइयाँ आने पर हताश हो जाता है और डरकर कार्य से विमुख हो जाता है। मनुष्य जो कठिनाइयों से डर जाते हैं, जीवन की दौड़ में पीछे छूट जाते हैं। जो इसकी परवाह नहीं करते हैं और आगे ही आगे बढ़ते रहते हैं, वे महान् हो जाते हैं। यदि हमने भी अपने मन में आगे बढ़ने का निश्चय कर लिया और विपत्तियों से घबराए नहीं तो एक दिन संसार के इतिहास में हमारा नाम अमर हो जाएगा। इतिहास इसका साक्षी है।

महाराज रणजीतसिंह की फौज और पठानों के बीच में युद्ध में होने वाला है। दोनों सेना अटक नदी के दोनों ओर एक दूसरे पर आक्रमण के लिए तैयार हैं। उनके बीच में अटक नदी के बाढ़ का पानी बांसों उछल रहा है। उसको पार करना आसान बात नहीं। महाराज रणजीतसिंह ने अपने सेनापति को नदी पार करने का आदेश दिया। सेनापति ने नदी की ओर इशारा करके बतलाया कि महाराज! इसको पार करना सम्भव नहीं। अपने बूढ़े सफेद दाढ़ी वाले चेहरे पर [illegible] की सी मुस्कराहट

लाकर रणजीतसिंह बोले—"असम्भव ? असम्भव शब्द मैं नहीं जानता।" उन्होंने अपनी तलवार अपनी पगड़ी में बाँधी घोड़े पर सवार हुए और अटक की वेगवती धार में घोड़े सहित कूद पड़े। अब क्या था? वीर की इस वीरता से घबरा कर नदी सूख गई। पर क्या सचमुच नदी सूखी थी? वास्तव में उनके बाद उनके साहस को देखकर सभी सैनिक उनके पीछे कूद पड़े और उन्होंने उस पार जा पठानों को पराजित किया और भारत माता की जय-जयकार के साथ विजय पताका फहराई।

दुनिया में युद्ध के सामान जमा हैं। लाखों आदमी मरने-मारने को तैयार हैं। गोलियाँ पानी की बूँदों की तरह मूसलाधार बरस रही हैं। नैपोलियन और उसकी सेना के बीच आल्पस बर्वत अपनी दुर्गम घाटियों और ऊँचे विकट शिखरों के साथ खड़ा है। नैपोलियन ने सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया। मुख्य सेनापति ने कहा—'आल्पस को पार करना असम्भव है ? आल्पस को पार करना असम्भव है? नैपोलियन ने महाराज रणजीतसिंह जैसी मुस्कराहट चेहरे पर लाते हुए कहा—"असम्भव शब्द मेरे कोष में नहीं है।' कहते हैं कि उसके आगे बढ़ते ही आल्पस रास्ता छोड़कर हाथ जोड़ कर नैपोलियन के सामने खड़ा हो गया और उसने गिड़गिड़ाते हुए क्षमा माँगी। सेनाएँ उस पार गईं और विजय लाभ करती बढ़ती चली गईं।

फ्रांस और इंगलैंड में युद्ध चल रहा था। फ्रांसीसी सेनाएँ एक के बाद एक नगर खाली करती भागती चली जा रही थीं। भागते हुए सैनिकों के पास जाकर भेड़ चराने वाली लड़की ने पूछा, क्यों भागते हो ? सैनिकों ने कहा तुम भी भागो। अंग्रेज सेना आ रही है। तुम्हें मार डालेंगी। सोलह वर्ष की वह निडर और बहादुर लड़की बोली "अंग्रेज सैनिक आ रहें हैं तो क्या हुआ ? मुझे एक तलवार दो और तब देखो मैं इन शत्रुओं की कैसी मरम्मत करती हूँ। इतिहास साक्षी है कि इंगलैंड की आगे बढ़ती हुई सेनाओं को जिस बहादुरी से उसने पीछे धकेला उसका फल हुआ कि फ्रांस पराजय से बच गया। उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा हो सकी। यह लड़की थी 'जौनआफ यार्क' जिसकी आज भी फ्रांस में स्वतन्त्रता की देवी के रूप में पूजा करते हैं।

याद रखो वीर पुरुष कहते हैं 'आगे बढ़े चलो।' कायर कहते हैं 'उठाओ तलवार।' वीर कहते हैं 'सिर आगे करो।'

दिल्ली में विदेशी सरकार के विरोध में जलूस निकल रहा था। लाखों नर-नारी उसमें सम्मिलित थे। आज दिल्ली के इतिहास में नादिरशाही अत्याचारों की पुनरावृत्ति की आशंका है। एक ओर अहिंसक दिल्ली की निहत्थी जनता है और दूसरी ओर जिसके राज्य में सूर्य कभी नहीं छिपता उसके घातक शस्त्रों से सज्जित सैनिक। एक के पास नैतिक बल है, ईश्वर का विश्वास है और बलिदान तथा उद्देश्य को पूरा करने की अदम्य भावना तथा दूसरी ओर शस्त्रों की अपरिमित शक्ति। जलूस जा रहा है। रास्ते में शस्त्र सज्जित घोड़ों की सेना सामने आकर खड़ी हो गई। उसने जलूस भंग करने का आदेश दिया। पर यह क्या ? ऊँचे कद का संन्यासी जलूस के सामने कहाँ से आकर खड़ा हो गया ? दूसरों को पीछे धकेला और उसने अपनी छाती सामने करते हुए कहा—"इन लोगों पर बाद में गोली चलाना पहले मुझे गोली से उड़ाओ।" यह

कहते हुए छाती खोल दी। यह क्या! संगीने झुक गईं। दिल्ली में स्वामी श्रद्धानन्द के जय-जयकारों के साथ जलूस शान के साथ निकला।

इसलिए दुनिया में निडर बनो। साहसी बनो। धैर्यशाली बनो। जो लोग डरपोक, कायर और ढीले- ढाले होते हैं, दीन हीन और दरिद्र होते हैं। संसार की सम्पत्तियाँ और ऐश्वर्य उन्हें मिलते हैं जो निडर होकर अपने कर्त्तव्य मार्ग पर डटे रहते हैं। न कभी डरो और न घबराओ। स्वामी विदेह की बात याद रखो।

कहीं किसी से कभी न डरना।
विपत्ति पड़े तो धीरज धरना॥

नरक धाम का महापथ: मूर्ति पूजा!

—ले० स्वा० मुनीश्वरानन्दजी महाराज

आर्यभूषणजी, विष्णुदत्तजी और शिवदत्तजी तीनों परस्पर घनिष्ठ मित्र थे। आर्यभूषणजी विचारों से जहाँ विशुद्ध वैदिक थे वहाँ विष्णुमित्रजी दृढ़ वैष्णव तो शिवदत्तजी सुदृढ़ शैव थे। कभी-कभी तीनों मित्र परस्पर घण्टों धर्म चर्चा किया करते थे। इसी प्रकार एक दिन तीनों आर्य भूषणजी के घर पर बैठे आर्य जाति की दुर्दशा पर विचार कर रहे थे। आर्य भूषणजी ने मित्रों को सम्बोधित करते हुए कहा कि भाइयो! शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य और वैष्णव इन पौराणिक सम्प्रदायों के कारण ही आर्य जाति इस अधोगति को प्राप्त हुई है और जब तक देश में ये पौराणिक सम्प्रदाय रहेंगे उस समय तक आर्य जाति उन्नति कर सकेगी यह कहना दुःसाहस मात्र है। देखो आर्यों का संगठन भंग कर पारस्परिक ईर्षा-द्वेष की अग्नि भड़का कर आपस में लड़ाना इन सम्प्रदायों ही का काम है। पुराणों और अनेक स्मृतियों में ऐसी ही अनर्गल बातें भरी पड़ी हैं। इस पर दोनों पौराणिक मित्र कुछ बिगड़कर बोले—आर्य भूषण जी! आप लोग ऐसे ही बिना सिर पैर की बातें कहकर लोगों को बहकाते रहते हैं। भला व्यास जैसे विद्वान् के बनाये पुराणों में ऐसी बातें कैसे हो सकती हैं?

आर्य भूषण—भाइयो! पुराण व्यासजी ने नहीं बनाये अपितु पौराणिक साम्प्रदायिक स्वार्थी विद्वानों ने अपने-अपने सम्प्रदाय के प्रचार और पुष्टि के लिए बनाये हैं। इसीसे इनमें एक दूसरे के सम्प्रदाय और देवताओं को खूब दिल खोलकर कोसा गया है। उनकी पूजा को अनेक दुःखों और नरक का कारण बताया गया है।

दोनों पौराणिक मित्र—इसमें कोई प्रमाण?

आ० भू०—प्रिय मित्र प्रमाण—एक दो नहीं जितने चाहें लीजिए। सुनिये, मेरे हाथ में महर्षि हारीत के नाम से किसी वैष्णव पंडित को बनाई यह वृहद हारीत स्मृति है जो आनन्द आश्रम पूना में शालि वाहन शकाब्द १८५१ (१९२९) में छपी है।

इसके अध्याय ११ के श्लोक २६१ और २७६ प्रस्तुत करता हूँ, जिनका पाठ इस प्रकार है—

वैष्णवः पुरुषो यस्तु शिव ब्रह्मादि देवतान् ।
प्रणमेतार्चयेद् वापि विष्ठायां जायते कृमिः ।। वृ० हा० स्मृ० ११।२६१
अवैष्णवः स्याद् यो विप्रो बहु शास्त्र श्रुतोऽपिवा ।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतः श्वानोऽभि जायते ।। वृ० हा० स्मृ० ११।२७६

अर्थात्—जो वैष्णव पुरुष शिव ब्रह्मा, भवानी, गणेशादि देवताओं को प्रणाम करे या उनकी पूजा करे तो वह इस कार्य के फलस्वरूप) मर कर टट्टी का कीड़ा बनेगा। २६१।। जो ब्राह्मण बहुत से शास्त्रों का विद्वान् होते हुए भी यदि वैष्णव नहीं है तो वह जीते हुए तो चाण्डाल है और मर कर अगले जन्म में कुत्ता बनता है।

ऐसी कड़वी बात सुनकर शैव कब चुप रहने वाले थे, उन्होंने भी ईंट का उत्तर पत्थर के रूप में देते हुए इस प्रकार लिखा है कि—

तेन तुल्यो यदा विष्णुर्ब्रह्मा वा यदि उच्यते ।
षष्ठी वर्ष सहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः ।।१७।।
यदि पाप रतः क्रूरः स्वाश्रमाचार वर्जितः ।।६।।
वैष्णवानां सहस्त्रेभ्यः शिव भक्तो विशिष्यते ।
श्वपचोऽपि मुनि श्रेष्ठाः शिव भक्तो द्विजाधिकः ।
शिव भक्ति विहीनस्तु द्विजोऽपिश्वपचाधमः ।।४३।।

आनन्द आश्रम पूना में शालिवाहन शकाब्द १८४६ (१६२४ ई०) में छपे सौर पुराण अ० ४० का श्लोक १७ तथा अ० ११ का श्लोक ६ एवं अध्याय ४७ श्लोक ४३।

अर्थात्—यदि कोई मनुष्य विष्णु या ब्राह्मादि देवताओं को शिव के समान कहता है तो वह साठ हजार वर्ष तक टट्टी का कीड़ा बनता है ।।१७।। [चाहे पाप कर्मरत, क्रूर कर्मा आश्रम धर्म रहित हो तो भी ऐसा शैव हजारों वैष्णवों से अच्छा है ।।६।।

हे श्रेष्ठ मुनियो! शिव भक्त श्वपच भी ब्राह्मण से श्रेष्ठ है और शिव भक्ति रहित ब्राह्मण भी नीच श्वपच है।

शैव जन की यह बात सुन वैष्णव चुप न रह सका और बोला कि सुन रे पाखण्डी—

अवैष्णवास्तु ये विप्राः पाषण्डास्ते नराधमाः ।
तेषां तु नरके वासः कल्प कोटि शतै रपि ।। वृ० हा० स्मृ० १।२३

अर्थात्—जो ब्राह्मण वैष्णव नहीं हैं वे नराधम पाखण्डी हैं। उनका सैकड़ों कल्पों तक नरक में वास होगा। क्योंकि तामसी देवताओं की पूजा का यही फल है और शिव आदि सब तामसी देवता हैं। यथा—

रुद्रः काली गणेशश्च कूष्माण्डा भैरवादयः ।
मद्य माँसाशिनश्चान्ये तामसाः परिकीर्तिताः ।। वृ० हा० स्मृ० ११।२६८

अर्थात्—रुद्र (शिव) काली, गणेश तथा भैरव आदि कूष्माण्डगण के देवता और भी जो मद्य पीने एवं माँस खाने वाले देवता हैं वे सब तामसी हैं।

वैष्णव की बात का उत्तर देते हुए शैव ने शिव पूजा का महात्म्य बतलाते हुए कहा कि—

यस्तु लिंगार्चनं त्यक्त्वा देवानन्याँश्च पूजयेत् ।

रत्नं विहाय मूढात्मा यथा काचमपेक्षते ।। सौर पुराण ६४।३६

जो शिव लिंग की पूजा को छोड़कर ब्रह्म विष्णु आदि अन्य देवों की पूजा करता है वह मूढात्मा मानो रत्न को छोड़कर काँच की कामना करता है।

शैव जन की यह बात सुनकर वैष्णव ने क्रुद्ध हो अपना लम्बा व्याख्यान इस प्रकार आरम्भ किया सुन रे पाखण्डी शैव ! तू क्या जाने विष्णु भगवान् की महिमा और क्या जाने इन शिव आदि तामसी देवों की पूजा से हानियाँ। देख हमारे वैष्णव शास्त्र क्या कहते हैं।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा वैष्णवः पुमान् ।

अर्चयित्वेतरान् देवान् निरयं यान्त्यसंशयम् ।। वृ० हा० स्मृ० ११।२९८

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र जन वैष्णव होकर शिव, काली, गणेश आदि दूसरे देवों के पूजने से निश्चय ही नरक में जाते हैं। महाराज हारीत आगे कहते हैं कि—

रुद्रार्चनं त्रिपुण्ड्रस्य धारणं यत्र दृश्यते ।

तच्छूद्राणां विधिः प्रोक्तो न द्विजानां कदाचन ।। वृ० हा० स्मृ० २।४४

अर्थात्—शास्त्र में जहाँ शिव का पूजन और त्रिपुण्ड्र शैवों का (तिलक) धारण का विधान दीखता है, वह शूद्रों के लिए है द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों) के लिए कभी नहीं। इसलिए जो द्विज शिवलिंग पूजा करते हैं, वे निश्चय ही शूद्र हैं। करो शिवलिंग पूजा और बनो शूद्र। महाराज हारीत इसका और अधिक स्पष्टीकरण करते हुए आगे फिर लिखते हैं कि—

रुद्रार्चनाद् ब्राह्मणस्तु शूद्रेण समतां व्रजेत् ।

यक्षभूतार्चनात् सद्यश्चाण्डालत्वमवाप्नुयात् ।। वृ० हा० स्मृ० २।४७

न भस्मधारयेद् विप्रः परमापद् लयोऽपिवा ।

मोहाद् वै बिभृयाद् यो वै स सुरापोभवेद् ध्रुवम् ।। वृ० हा० स्मृ० २।४८

तिर्यकपुण्ड्र धरं विप्रं पट्टाकार धरं तथा ।

श्वपाकमिव नेक्षेत न संभाषेत कुत्रचित् ।। वृ० हा० स्मृ० २।४९

रुद्र अर्थात् शिव की पूजा करने से ब्राह्मण शूद्रतुल्य हो जाता है, और यक्ष तथा भूतों की पूजा करने से (यक्ष और भूत शिवजी के गण विशेष हैं) तत्काल चाण्डाल बन जाता है ।।४७।। ब्राह्मण बड़ी से बड़ी आपत्ति में भी भस्म धारण न करे यदि कोई मोह-वश धारण कर ले तो निश्चित ही सुरापन के दोष से युक्त हो जावेगा ।।४८।।

त्रिपुण्ड्र या पट्टाकार तिलक धारण करने वाले ब्राह्मण को श्वपच की तरह न तो उसे देखे और न ही किसी भी अवस्था में उसके साथ बातचीत करे ।।४८।। इसके पश्चात् वैष्णव जन ने कहा कि अभी क्या हुआ है, आज मैं तेरे देवता और उनके गणों की अच्छी

तरह कलई खोलूंगा। विष्णु भगवान् को छोड़ तुम लोग जिन तामसी देवताओं के पीछे पड़े हो, देखो उनकी असलियत—

बुद्ध रुद्रौ तथा वायु दुर्गा गणप भैरवाः।
यमः स्कन्दो नैर्ऋतश्च तामसा देवताः स्मृताः ॥ बृ० हा० स्मृ० ७।१७८
रुद्रः काली गणेशश्च कूष्माण्डा भैरवादयः।
मद्य माँसाशिनश्चान्ये तामसाः परिकीर्तिताः ॥ बृ० हा० स्मृ ११।१६१
यक्षाणाँ पिशाचानाँ तामसानां दिवौकसाम्।
निवेदितान्नं योऽश्नाति पूय शोणितभुग्भवेत् ॥
पद्म पुराण उत्तर खं० २८०।९९।१००

अर्थात्—बुद्ध, शिव, वायु, दुर्गा, गणेश, भैरव, यम, स्कन्दस्वामी, नैर्ऋत ये तामसी देवता हैं ॥१७८॥ शिव, काली, गणेश, भैरव आदि कूष्माण्ड गण के देव तथा अन्य मद्य पीने एवं माँस खाने वाले सब तामसी देवता हैं ॥१६१॥ इसलिए यक्ष, पिशाच तथा शिव आदि तामसी देवताओं को भोग लगाये हुए अन्न को (प्रसाद के रूप में) जो भी खाएगा वह राध और खून का खाने वाला होगा। यह है तुम्हारे तामसी देवताओं की असलियत, जिनके पीछे तुम अकल की आँख मूंद कर पड़े हुए हो।

शैव ने वैष्णव की इन कड़वी बातों को सुन उत्तर के रूप में पुनः इस प्रकार कहना आरम्भ किया कि देखो पुराणों में शिवनैवेद्य का प्रसाद खाने का कितना बड़ा पुण्य लिखा है। इस प्रकार अण्ड-बण्ड बकते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती। देखो लिखा है कि—

प्रसादं भक्षयेन्मर्त्यः स्वयं शंकरता प्रजेत् ॥ म० मा० अ० ८१।२१

अर्थात्—शिव का प्रसाद खाने वाला मनुष्य स्वयं भी भगवान् शंकर हो जाता है। वैष्णव शैव की यह बात सुन करारा उत्तर देते हुए फिर बोला कि भाई क्यों भ्रम में पड़े हो, सुनो महादेव का प्रसाद खाने वाले की दुर्दशा होती है।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखा है कि एक बार सनतकुमार बैकुण्ठ में गये उस समय नारायणजी भोजन कर रहे थे। सनतकुमारजी ने भगवान् की स्तुति की तो श्री नारायण ने प्रसन्न होकर अपना शेष भोजन प्रसाद के रूप में सनतकुमारजी को दे दिया। वे वहाँ से अपने गुरु श्री महादेव जी के आश्रम में आये और वह नारायण का प्रसाद उन्हें दे दिया। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ उसे अकेले ही खा लिया। जब पार्वतीजी को इसका पता लगा तो वे बड़ी अप्रसन्न हुई और महादेवजी को शाप दिया कि—

अद्य प्रभृति ये लोका नैवेद्यं भुंजते तव।
ते जन्मैकं सारमेया भविष्यन्त्येव भारते ॥

अर्थात्—आज से लेकर भविष्य में जो लोग तुम्हारा नैवेद्य लगा पदार्थ (प्रसाद रूप में) खाएँगे वे निश्चित ही अगले जन्म में भारतवर्ष में कुत्ते बनेंगे। लो करो पूजा महादेव की, खाओ प्रसाद और बनो अगले जन्म में कुत्ते। वैष्णव ने शैव को सम्बोधित करके फिर कहा कि—

न जातु वै स्त्रिया कार्यं शालग्रामस्य पूजनम्।
भर्त्तृ हीनाऽथ सुभगा स्वर्ग लोक हितैषणी ॥

स्त्री पाणि मुक्त पुष्पाणि शालग्राम शिलोपरि।
सर्वेभ्योधिक पापानि वदन्ति ब्राह्मणोत्तमाः ॥२५॥
चन्दनं विष पंकाशं कुंकुमं वज्र सन्निभम्।
नैवेद्यं काल कूटाभं भवेद् भगवतः कृतम् ॥२६॥

पद्म पुराण पाताल खं० अ० २०

स्वर्ग लोक की कामना करने वाली स्त्री चाहे विधवा हो या सधवा उसे कभी भी शिव की पूजा नहीं करनी चाहिए ॥२२॥ स्त्री को अपने हाथ से शिव की पिण्डी पर फूल चढ़ाना, ब्राह्मण जन सब से अधिक पाप कर्म बताते हैं ॥२५॥ स्त्री के अपने हाथ से लिंग पर चढ़ाया गया चन्द्रन विष के समान, कुंकुं (रोरी) वज्र के समान तथा नैवेद्य लगाना कालकूट नामक विष के समान है अभी और सुनिये—

सकृदेव हियोऽश्नाति ब्राह्मणो ज्ञान दुर्लभः ॥९७॥
निर्माल्यं शंकरादीनांस चाण्डालो भवेद् ध्रुवम्।
कल्प कोटि सहस्राणि पच्यते नरकाग्निना ॥

९८ पद्म पु० उ० ख० अ० २८२

अर्थात्—जो नादान ब्राह्मण एक बार भी शंकर, काली, गणेश, भैरव आदि देवताओं का प्रसाद खा लेता है, वह निश्चित ही चाण्डाल बन जाता है और हजारों-करोड़ों कल्पों तक नरक अग्नि में पड़ा पकता रहेगा। यह तो ब्राह्मण की दशा है, अन्य वर्णस्थ लोगों की क्या होगी इसका तो ठिकाना ही नहीं।

वैष्णव सतस्थ की ये खरी-खरी बातें सुनकर शैव बोला—

शिव निन्दा करं दृट्वा घातयित्वा प्रयत्नतः।
हत्वाऽऽत्मानं पुनर्यस्तु स याति परमांयतिम् ॥ सौर पुराण ३६।३२
शिव निन्दारतं हन्तुमशक्तो यःस्वयं मृतः।
सद्य एवं प्रमुच्येत त्रिः सप्त कुल संयुतः ॥ शिव पुराण ॥

यदि शैव जन दूसरे किसी मनुष्य को शिव की निन्दा करता देखे तो जिस किसी भी प्रकार से उसे मार कर खुद आत्महत्या कर ले तो वह परम गति अर्थात् मोक्ष को पा जाता है यदि शिव निन्दक को मारने में अशक्त होने से उसके साथ लड़कर स्वयं मर जावे तो अपनी २१ पीढ़ियों सहित वह तत्काल मुक्त हो जाता है।

यह सुनकर वैष्णव ने आवेश में आकर उसे कहा, अच्छा तो तू मुझे मारेगा। आ दिखाऊँ तुझे हाथ। ऐसा कह दोनों आपस में लड़ने लगे।

आर्यभूषणजी ने कहा—प्यारे मित्रो, यह है पौराणिक तान्त्रिक सम्प्रदायों के पारस्परिक झगड़ों का नमूना। आर्यभूषणजी की यह बात सुन कर उनके दोनों मित्रों ने कहा कि भाई हमें तो इन बातों का आज तक पता ही नहीं था। आज आपकी बातें सुनकर सचमुच हमारी आँखें खुल गयी हैं। अब हम जान गये हैं कि ये सब पौराणिक सम्प्रदाय वेद विरोधी, नास्तिक, कल्पित और सर्वथा अर्वाचीन हैं। इन्हें सनातन धर्म कहना अपने

आपको एवं जनता को धोखे में डालना है। और इस बहुदेवतावाद तथा विविध पाखण्डों का मूल है—मूर्तिपूजा, इसलिए आज हम इस निर्णय पर पहुँच सके हैं कि मूर्तिपूजा ही नरकधाम (सब प्रकार के दुःखों) का महापथ है।

अन्त में आर्यभूषणजी ने चर्चा समाप्त करते हुए कहा कि प्रभु की पवित्र वाणी वद ही एक मात्र हमारा धर्म ग्रन्थ है। वेदों में मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए बिना किसी भी प्रकार के पक्षपात के सबके लिए समान रूप से उपदेश है। अतः यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं तो निःसंकोच आज ही वैदिक धर्म की शरण में आकर मनुष्य जन्म को सफल बनाइये। अन्त में तीनों मित्रों ने एक स्वर में कहा—जो बोले सो अभय—वैदिक की जय—



पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन ७.००

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल १५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय ४५.००

सत्यार्थ सरस्वती २५.००

ईश्वर प्रत्यक्ष ६.००

प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

प्रो० विष्णुदयाल (मौरिशस)

वेद भगवान बोले ६.००

वेदों के अनुपम विचार ६.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथिवी सूक्त) १.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए०

यज्ञ की महिमा १.५०

नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ७.५०

सु-राज्य की रूपरेखा ०.५०

पं० बिहारीलाल शास्त्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल के रहस्य १.५०

श्री रामशरण वशिष्ठ

पशुहिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००

वेदों में मूल प्रकृति विज्ञान १.५०

वेदार्थ विज्ञान १.००

वेद और आत्मा २.००

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली ८.००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

रामचन्द्र देहलवी लेखावली १०.००

वेद व्यावहारिक है १.००

शंका-समाधान १.००

पूजा क्या क्यों कैसे ? १.००

ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई १.००

वेद का इस्लाम पर प्रभाव १.००

महात्मा नारायण स्वामी

कर्तव्यदर्पण ४.००

प्राणायाम विधि १.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.००

कई पुरस्कृत लेखों का संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश २५.००

आर्योद्देश्यरत्नमाला ०.२५

व्यवहारभानु १.००

बालोपयोगी

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार ०.६०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.५०

स्वामी श्रद्धानन्द १.५०

गुरु विरजानन्द १.५०

पं० लेखराम १.५०

पं० गुरुदत्त १.५०

स्वामी दर्शनानन्द १.५०

स्वामी दर्शनानन्द

बालशिक्षा-धर्मशिक्षा १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.६०

नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.६०

नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.००

नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.५०

नैतिक शिक्षा पंचम भाग १.५०

नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग १.५०

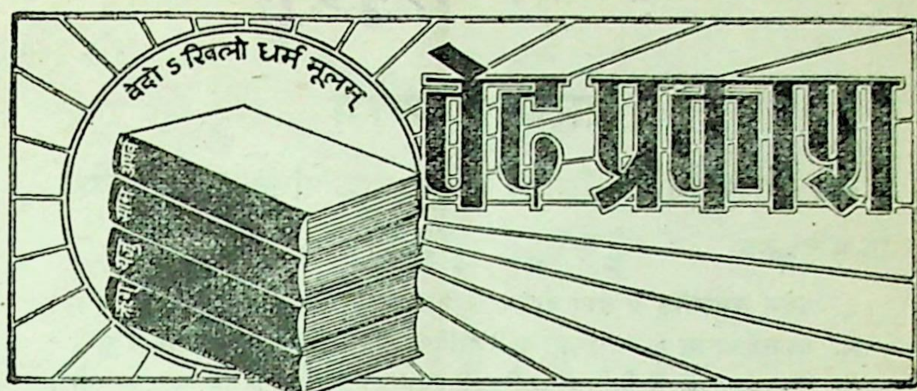
नैतिक शिक्षा सप्तम भाग १.५०

नैतिक शिक्षा अष्टम भाग १.५०

नैतिक शिक्षा नवम भाग २.००

नैतिक शिक्षा दशम भाग २.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।



अनमोल वचन

जानुनी च करौ यस्य पित्रोः प्रणमतः शिरः ।
निपतन्ति पृथिव्यां च सोऽक्षयं लभते दिवम् ।।

—पद्म० सृष्टि० ४७।२-१४

माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओं का स्वरूप है, अतः सब प्रकार से यत्नपूर्वक माता-पिता का पूजन करना चाहिए। जो माता-पिता का पूजन करता है उसके द्वारा सातों द्वीपों से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी की परिक्रमा हो जाती है। माता-पिता को प्रणाम करते समय जिसके हाथ, घुटने और मस्तक पृथिवी पर टिकते हैं वह अक्षय स्वर्ग को प्राप्त होता है।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ।।

—अथर्व० ३।३०।२

पुत्र पिता का आज्ञाकारी हो, माता के प्रति प्रेम और समान मनवाला हो। पत्नी पति से मिठास-भरी और शान्त वाणी में वार्तालाप करनेवाली हो।

सत्यार्थप्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची।
२. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची।
३. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची।
४. सत्यार्थप्रकाश के १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश (जैसे हारून का Haron)।
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य।
६. सत्यार्थप्रकाश की आधार-ग्रन्थ-सूची।
७. सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा।
८. अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण-सूची।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी-संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च-स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्त जी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी-संस्करण में दी गई है।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास-अनुसार।

बढ़िया कागज। १६ प्वाइंट के मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५·००।

सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण का आर्ट पेपर पर छपा राज-संस्करण भी तैयार है। बहुत ही आकर्षक प्लास्टिक कवर के साथ कपड़े की हरी जिल्द।
विवाह आदि के अवसर पर भेंट देने योग्य। मूल्य १०१.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३१, अंक ७] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपये [फरवरी, १९८२

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ईश्वरीय ज्ञान

लेखक श्री पण्डित वाचस्पति जी एम० ए०, बी० एस० सी०,
विद्यावाचस्पति, लाहौर

मनुष्य को ज्ञानवान् प्राणी कहा गया है। मनुष्य और पशु में एक बड़ा भारी भेद यह है कि जहाँ भूख मिटाने के लिए पशु भी खाता है और मनुष्य भी, परन्तु पशु को यह ज्ञान नहीं कि यह चारा मेरे बच्चे के लिए है, यदि मैं इसे खा जाऊँगा तो मेरा बच्चा भूखा रहेगा वा मर जाएगा। मनुष्य यह जान सकता है कि कौन-सा कार्य उचित है और कौन-सा अनुचित। वह अपनी बुद्धि से विचार सकता है और शास्त्र को पढ़कर भी जान सकता है। धर्मा-धर्म जानने के अनेक साधन शास्त्र ने बताए हैं। महर्षि व्यास लिखते हैं :—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषान्न समाचरेत्॥ महाभारत॥

अर्थात् धर्म का सर्वस्व यह है कि जो व्यवहार तुम्हें अपने लिये बुरा प्रतीत होता है, उसका आचरण दूसरों के लिये मत करो। धर्म को निश्चय करने में यह साधन बहुत सहायक है। यदि धोखे से कोई तुम्हारा धन हर ले तो तुम्हें दुःख होता है, इसलिए यह पाप है, अतः तुम्हें भी दूसरों का धन नहीं हरना चाहिए। कई अवस्थाओं में यह साधन धर्म के जानने में सहायक नहीं भी होता, जैसे यदि एक शराबी वा अफ़ीमी दूसरों को भी शराब वा अफ़ीम का सेबन करा देवें, तो दूसरे के प्राण हरने का वह पापी भी हो सकता है। क्योंकि यह काम उसे अपने लिए अच्छे लगते हैं, इसलिए ये धर्म नहीं बन गए। शास्त्र ने धर्म को जानने के लिए एक साधन यह बताया है कि अपनी

आत्मा (conscience) की आवाज के अनुसार जो कार्य किया जाए वह धर्म होगा। जिन लोगों की आत्मा शुद्ध होती है, वे तो इस साधन से धर्माधर्म का निर्णय कर सकते हैं, परन्तु एक कसाई की, आत्मा की आवाज़ दब चुकी है, वह जब पशुओं को मारता है तो उसे इसमें पाप प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार से जिन लोगों की आत्मा की आवाज़ दब चुकी हो, उनको यह साधन सहायता नहीं दे सकता। इसलिए शास्त्र ने बताया कि महापुरुषों के आचार का अनुकरण करना चाहिये। यह साधन धर्म का निश्चय करने में सहायक हो सकता है। परन्तु हो सकता है कि कभी महापुरुषों में भी कोई त्रुटि हो। इसलिए शास्त्र ने कहा कि जो स्मृति में बताया है वह धर्म है, क्योंकि स्मृतियाँ ऋषियों की बनाई हुई हैं। परन्तु स्मृतियें विशेष देश और काल के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं। इसलिए शास्त्र ने बताया कि, क्योंकि वेद ईश्वरीय ज्ञान है, अत: वह सब देशों और कालों के लिए समान है। वेद की शिक्षाओं पर आचरण करने से मनुष्य का कल्याण होता है। इसी बात को मनु महाराज ने इन शब्दों में कहा है :—

वेदः स्मृति सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

कुछ लोग तो ऐसे हैं कि जो मानते हैं कि संसार की कोई भी पुस्तक ईश्वरीय ज्ञान नहीं है, सब पुस्तकें मनुष्यों की बनी हुई हैं, दूसरे लोग वे हैं जो ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता तो स्वीकार करते हैं, परन्तु वेद को नहीं, अपितु अन्य ग्रन्थों—जैसे बाईबल, कुरान आदि को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं।

पहली श्रेणी के लोगों का कहना है कि सृष्टि के आदि में ज्ञान बहुत कम था, शनै:-शनै: उन्नति होती गई, ज्ञान में वृद्धि होती गई तो मनुष्य ज्ञान की उस अवस्था को प्राप्त हो गया जो आज है, जबकि मनुष्य परमाणु बम (Atom Bumbs) तक बनाने लगा है, जिससे एक क्षण-भर में सहस्रों मनुष्यों का नाश किया जा सकता है। क्रमोन्नति या विकासवाद का सिद्धान्त इस समय पश्चिमी विचार का सार है। इस सिद्धान्त ने विज्ञान को, साहित्यकला को तथा अन्य प्रत्येक विद्या को प्रभावित किया है। प्रत्येक लेखक बिना ननु नच किये विकासवाद के सिद्धान्त की स्वीकार कर के चलता है। केवल पश्चिम में ही नहीं अपितु इस देश में भी विकासवाद का प्रचार बहुत है। अंग्रेज़ी शिक्षित लोग इसको स्वत: सिद्ध सिद्धान्त स्वीकार करने लगे हैं। परन्तु वास्तविक तथ्य यह है कि यह हमारी सभ्यता और पश्चिमी सभ्यता में मौलिक भेद हैं। यहाँ पता लगता है कि जो व्यक्ति विकासवाद को मानता है वह हमारी संस्कृति से (Poles assunder) सर्वथा दूसरे सिरे पर है। उसका विश्वास कभी ईश्वरीय ज्ञान पर नहीं हो सकता। हम तो यह मानते हैं कि प्रभु ने सारा ज्ञान सृष्टि के आदि में ही दे दिया, पर विकासवादी यह मानता

है कि आदि में ज्ञान नहीं था, शनैः-शनैः उन्नति करता हुआ मनुष्य उन्नत होता गया और अब ज्ञान के उच्च शिखर पर पहुँच चुका है।

विकासवाद का सिद्धान्त क्योंकि इतना प्रभावशाली है, इसलिए आगे बढ़ने से पूर्व इस सिद्धान्त पर विचार करना अत्यन्तावश्यक है।

विकासवाद (Evolution theories) तीन हैं। इनमें से वह वाद जोकि सबसे पहले क्षेत्र में आया और वैज्ञानिक लोग उसे मानते रहे वह लैमार्क का चलाया हुआ था।

लैमार्क (Lamark) के अनुसार प्राणियों के वे अंग जो काम में अधिक आते हैं, बढ़ जाते हैं, शनैः-शनैः उन्नति करते-करते इस स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं कि कुछ अंग बहुत बढ़ जाते हैं, और कुछ जो काम में नहीं आते, वे निकम्मे होते जाते हैं, इस प्रकार वे छोटे होते-होते सर्वथा उत्पन्न ही नहीं होते। पीढ़ियों तक इस प्रकार की बात चलती जाती है। कई पीढ़ियों के पश्चात् कुछ अंग बहुत बढ़ गए और कुछ सर्वथा नहीं उगे। परिणाम यह हुआ कि नई प्रकार के प्राणी उत्पन्न हो गए। जैसे जिराफ़ जिसको ग्रीवा (गरदन) बहुत लम्बी होती है, उसके पूर्वज घोड़े की आकृति के प्राणी थे (या घोड़े ही थे)। वे ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से पत्ते खाने का यत्न करते रहे। गरदन खिचती गई और थोड़ी-थोड़ी बढ़ती गई। इस प्रकार से कई पीढ़ियों के पश्चात् जिराफ़ उत्पन्न हो गए। कई फूल ऐसे हैं जिनकी एक पत्ती शेष पत्तियों की अपेक्षा बहुत लम्बी और चौड़ी होती है। इसका कारण लैमार्क के विचारानुसार यह है कि ऐसे फूलों के पूर्वजों के तो वस्तुतः सब पत्तियाँ एक जैसी थीं, परन्तु एक पत्ती पर कीड़े और शहद की मक्खियाँ आकर शहद चूसने के लिए बैठती रहती थीं। उनके बोझ से वह पत्ती कुछ लम्बी हो गई और उससे अगली पीढ़ी में वह पत्ती कुछ और लम्बी हो गई और उससे अगली पीढ़ी में वह कुछ और लम्बी उत्पन्न हो गई। फिर उस पर शहद की मक्खियाँ बैठती रहीं, अतः वह कुछ और लम्बी हो गई और शेष छोटी रह गईं। शनैः-शनैः कई पीढ़ियों के पश्चात् वह पत्ती बहुत बढ़ जाती है, और शेष छोटी रह जाती हैं। एक और उदारहण से लैमार्क अपने विचार को व्यक्त करता है। एक साधु अपने एक हाथ को सदा खड़ा रखता है। परिणाम यह होता है कि वह हाथ सर्वथा शक्तिहीन और निकम्मा होकर सूख जाता है। लैमार्क का यह कथन है कि जब मनुष्य अपने जीवन-काल में ही एक हाथ को काम में न लाकर सर्वथा निकम्मा कर के सुखा सकता है तो सहस्रों वर्षों में प्रकृति इस प्रकार जो अंग काम में आते हैं, उनको बढ़ाकर और जो काम में नहीं आते उनको घटाकर नये प्राणी क्यों नहीं उत्पन्न कर सकती। लैमार्क का यह वाद बहुत समय चलता रहा।

लैमार्क के पश्चात् डार्विन (Darwin) का वाद क्षेत्र में आया। इस वाद का इतना प्रचार हुआ कि विकासवाद और डार्विनवाद को पर्यायवाची

समझा जाने लगा। साधारण पढ़े-लिखे लोग तो यही समझते हैं कि डार्विन के वाद के सिवाय और कोई विकासवाद न है और न हुआ है। डार्विन ने लैमार्क का खण्डन किया और कहा कि लैमार्क के ढंग से नये प्राणी सर्वथा पैदा नहीं हो सकते। यह ठीक है कि मधुमक्खी फूल की पत्ती पर बैठती है, और वह पत्ती कुछ बढ़ भी सकती है, इसी प्रकार से अन्य प्राणियों के वे अंग जो काम में आते हैं बढ़ जाते हैं, और जो काम में नहीं आते निर्बल हो जाते हैं, परन्तु इस प्रकार से बढ़ने और घटने की एक सीमा होती है और वह बढ़ाव और घटाव अगली पीढ़ी में नहीं जाता और यदि कुछ थोड़ा-बहुत जाता भी है तो इतना नहीं कि शनैः-शनैः इकट्ठा होकर नये प्रकार के प्राणी उत्पन्न कर दे। वह साधु जिसने अपने हाथ को खड़ा रखकर सुखा दिया, उसके अगले कुल में सूखा हुआ हाथ उत्पन्न नहीं होता। डार्विन एक और युक्ति यह देता है कि सदियों से मुसलमानों और ईसाईयों में सुन्नत होती रही है। शरीर में मांस का उतना भाग इस प्रकार से सर्वथा निकम्मा हो गया है। लगभग २००० वर्ष व्यतीत हो गए, जब से यह प्रथा चली हुई है, परन्तु ऐसा कभी नहीं देखा गया कि कोई बच्चा ऐसा उत्पन्न हो जाए जिसके सुन्नत जन्म से ही हुई हो, अर्थात् मांस का तथा कथित भाग उसके उत्पन्न ही न हो। इसलिए लैमार्क के ढंग पर नये प्राणी नहीं उत्पन्न हो सकते। कोई अंग जितना बढ़ता वा घटता है, वह बढ़ाव वा घटाव अगली पीढ़ी में पुनः लौट पड़ता है, और पहली अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

डार्विन का विचार यह है कि संसार में एक (Struggle for existence) जीवित रहने का संघर्ष (जद्दोजहद) चल रहा है। उस Struggle (जद्दोजहद) में जो योग्यतम सिद्ध होता है, उसकी विजय होती है, यह जीवित रहता है, और शेष प्राणी नष्ट हो जाते हैं (Survial of the fittes)। इस जीवन-संग्राम के लिए जो अंग वा जो शक्ति अधिक उपयोगी है, वह जिनमें अधिक होती जाती है, वे प्राणी जीवित रहते हैं, वह शक्ति भी उनमें बढ़ती जाती है। इस प्रकार से उन्नत होते-होते वे प्राणी जिनमें वे शक्तियाँ बहुत अधिक होती हैं वे उत्पन्न होते जाते हैं और इसी क्रम से नये प्राणी पशु जगत् और वनस्पति (उद्भिद्) जगत् में उत्पन्न हो जाते हैं। इस वाद को व्यक्त करने के लिये कुछ उदाहरण डार्विन ने दिए हैं। जीवन-संग्राम के सम्बन्ध में वह कहता है, कि संसार में इतने प्राणी हमारे सामने उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। सबसे कम बच्चे देने वाला पशु हाथी है। यदि हिसाब लगाकर देखा जाए तो पता लगेगा कि शायद लगभग ८०० वर्षों में सारी पृथ्वी पर हाथी ही हाथी होंगे और अन्य किसी के रहने के लिए कोई स्थान नहीं बचेगा। परन्तु ऐसा नहीं होता, हाथियों की संख्या इतनी नहीं बढ़ती। इसी प्रकार से अन्य प्राणियों का हिसाब लगाया जाय तो थोड़े काल में ही वे प्राणी इतने बढ़ जाते हैं कि सारी पृथ्वी उन्हीं से ही भर जाए। मक्खियाँ इतना शीघ्र बढ़ती हैं कि कहा

गया है यदि दो मक्खियाँ (नर और मादा) यदि एक मरे हुए घोड़े पर आ बैठें तो वे घोड़े को शीघ्र समाप्त कर देंगी और एक शेर को उस घोड़े के खाने में अधिक समय लगेगा। क्योंकि जब मक्खियों को खाना मिलता रहता है तो वे धड़ाधड़ अण्डे देती हैं, और बच्चे उत्पन्न होते जाते हैं और उनकी संख्या बढ़ती जाती है। परन्तु संसार में किसी भी प्राणी की संख्या इतनी नहीं बढ़ती कि एक ही प्राणी से सारी पृथ्वी भर जाए। इसका कारण क्या है ? कारण यह है कि संसार में खाना सीमित है, प्रणियों की खाना प्राप्त करने की शक्तियाँ सीमित हैं, गर्मी-सर्दी सहने की शक्तियाँ सीमित हैं, तथा शत्रुओं का मुकाबला करने की शक्तियाँ सीमित हैं। जिनमें शक्तियाँ अधिक होती हैं, वे जीवित रहते हैं, शेष नष्ट हो जाते हैं। वे शक्तियाँ बढ़ती जाती हैं और प्राणी जीवन संग्राम के अधिक योग्य बनता जाता है। शनैः-शनैः इस प्रकार के नये प्राणी उत्पन्न होते जाते हैं जो जीवन संग्राम में अधिक सफल हो सकते हैं। जैसे एक खरगोश का जोड़ा है, उसके आठ बच्चे हैं। हम यह देखते हैं कि उनमें दो जीवित रहते हैं और छः मर जाते हैं। उन दो का जीवित रहना और छः का मर जाना अकस्मात् नहीं हो जाता। ऐसा होना सकारण है। कारण यही है कि उन छः की खाना प्राप्त करने की, सर्दी-गर्मी आदि सहने की, और शिकारी कुत्तों, शिकारी मनुष्यों तथा अन्य शत्रुओं का मुकाबला करने की शक्तियाँ कम थीं, इसलिए वे जीवन-संग्राम में सफल नहीं हुए और जिन दो में शक्तियाँ अधिक थीं, वे सफल हो गए। वे शक्तियाँ अगले कुल में चली गईं। उस कुल में फिर आठ बच्चे उत्पन्न हुए, और २-३ जीवित रहे और शेष मर गए। इन दो-तीन में वा एक में वे शक्तियाँ कुछ और बढ़ गईं और अगले कुल में बढ़ी हुई शक्तियों वाले बच्चे उत्पन्न हुए। उनमें से फिर जिनमें वे शक्तियाँ और अधिक थीं वा जो जीवन संग्राम में विजयी होने के अधिक योग्य थे वे जीवित रहे और शेष मर गए। इस प्रकार से वे शक्तियाँ बढ़ती गईं और एक समय आया कि जब एक नया प्राणी उत्पन्न हो गया जोकि जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने में खरगोश की अपेक्षा अधिक योग्य है। इसको अंग्रेजी में Natural Selection, Survival of the fittest और Weaker must go to the wall कहते हैं।

इस वाद के अनुसार संसार के सब प्राणियों-पशुओं वा वृक्षों का पूर्वज एक सैल वाला प्राणी (Uni-Callular) अमीबा (Amoeba) था। अमीबा ने जब चलना होता है तो वही सैल पाओं का काम देती है। जब खाना होता है तो वही सैल मुँह का काम देती है; खाना पचाने के लिए वही सैल आमाशय वा आंतड़ियों का काम करती हैं। इसी प्रकार से अमीबा सब काम एक ही सैल से करता है। अमीबा से उन्नति हुई और दो सैल का प्राणी हाईड्रा (Hydra) बना, इसी प्रकार से उन्नति होते-होते चार सैल के प्राणी बने, आठ के बने। शनैः-शनैः मछलियाँ बनीं, मेंढक बने। ऊपर बताये सिद्धान्तों के

अनुसार ही जीवन-संग्राम में सफल होने के लिए ज्यों-ज्यों शक्तियाँ बढ़ती गईं और नये-नये प्रकार के पशु और पक्षी उत्पन्न हो गए, बन्दर उत्पन्न हो गए। इस क्रम में बन्दर मनुष्य के समीपतम है। अन्त में मनुष्य उत्पन्न हुए जो कि जीवन संग्राम में विजयी होने के सबसे अधिक योग्य हैं। मनुष्यों ने ज्ञान में उन्नति करते-करते अनेक प्रकार की कलें बना दीं, नाशक यन्त्र बना दिए, इस प्रकार के परमाणु बम बना दिए जिनसे क्षण-भर में सहस्रों प्राणियों का नाश किया जा सकता था। इसी प्रकार से विज्ञान में सूक्ष्म कलाओं के सब क्षेत्रों में मनुष्य ने उन्नति की।

अपने वाद को व्यक्त करने के लिए डार्विन ने कबूतरों का उदाहरण दिया कि कबूतर पालने वाले साधारण जंगली कबूतर से ही उसमें दूसरों से कुछ भिन्न रंग वा भिन्न गुण वाले कबूतरों को चुनकर उससे अगले कुल में उन गुणों वा रंगों को बढ़ा लेते हैं, इस प्रकार से वे कबूतरों की कुछ पीढ़ियों के पश्चात् नये प्रकार के कबूतर उत्पन्न कर लेते हैं।

इसी प्रकार से कुछ फूलों पर परीक्षण (Experiments) किये गए हैं। मटरों के एक रंग के फूलों से भिन्न-भिन्न रंगों के फूल उत्पन्न कर लिए गए हैं।

डार्विन युक्ति देता है कि यदि मनुष्य अपने जीवन-काल में नये प्रकार के कबूतर और नये रंगों के फूल विशेष गुणों को चुनकर बढ़ाकर उत्पन्न कर लेता है, तो प्रकृति (नेचर) लाखों वर्षों में इसी चुनाव (Natural Selection) से नये प्रकार के प्राणी जो कि जीवन संग्राम में विजयी होने के अधिक योग्य हों, क्यों नहीं उत्पन्न कर सकती? यह है संक्षेप में डार्विन के विकासवाद का सार। इस वाद पर सैकड़ों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। हमारे अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग भी इसके प्रभाव के नीचे दबे हुए हैं। परन्तु अब वैज्ञानिकों ने स्वयं इस वाद का खण्डन कर दिया है। हमारे बाबू अब भी इसे ही मानते चले जा रहे हैं; क्योंकि उन्होंने अपने घर का तो कुछ पढ़ना ही नहीं, पश्चिम की जूठन ही खानी है।

डार्विन के इस वाद के विरुद्ध डीव्रीज (De Vries) ने कहा कि यह ठीक है कि एक प्राणी शनैः-शनैः उन्नति करता है, परन्तु वह उन्नति वाले गुण जो उसमें बढ़ते हैं एक विशेष सीमा तक रहते हैं। उस सीमा के पश्चात् या तो उन्नति रुक जाती है या लौट पड़ती है। इस शनैः-शनैः उन्नति से नये प्राणी उत्पन्न (Origin of species) नहीं हो सकते। डीवरीज़ के वाद के अनुसार नये (At a stem) एकदम उत्पन्न होते हैं। उसने अपने परीक्षण (Experiments) हालैण्ड में एक बड़े खेत में किये। वहाँ उसने एक पौदा ऊनोथरा लैमार्कियाना (Oenothera Lamarkiana) बो दिया। खेत को सर्वथा साफ़ कर दिया गया था। इन अनुभवों में उसने देखा कि सर्वथा नये प्रकार के पौदे उत्पन्न होते गए जो कि पहले वनस्पति शास्त्र के ज्ञाताओं को अज्ञात थे।

इस प्रकार से बार-बार अनुभव करने से कुछ नये प्रकार के पौदे उत्पन्न होते गए। इसलिए उसने कहा कि नये प्रकार के प्राणी (origin of new species) शनैः-शनैः उन्नति से नहीं उत्पन्न होते अपितु एकदम उत्पन्न होते हैं।

कुछ अन्य युक्तियाँ विकासवाद के विरुद्ध दी गई हैं, वे ये हैं—

१. परिस्थिति, जलवायु आदि के अनुसार जीवन संग्राम के अधिक योग्य बनाने के लिए जो शरीर आदि में अन्तर हो सकता है वह इतना ही है जितना कि एक भारतवासी, चीनी, पठान, अंग्रेज़ वा रैड इण्डियन की आकृति में है, वा वैलर, अरब और कच्छी घोड़े में है, परन्तु परिस्थिति तथा जलवायु आदि मछली से ऊँट नहीं बना सकती।

२. एक सैल के अमीबा में स्त्री-पुरुष दो भेद होना असम्भव प्रतीत होता है।

३. यदि एक सैल वाले अमीबा से दो सैल वाला हाइड्रा बनता है तो उत्तरोत्तर सब योनियाँ दूने परिमाण से बढ़नी चाहियें, परन्तु विकासवाद के क्रम में ऐसा होना नहीं दिखाया गया।

४. विकासवाद के अनुसार पक्षधारी प्राणी सर्पण शीलों के बाद होने चाहियें थे, परन्तु कृमियों में भी पक्ष उत्पन्न हो जाते हैं।

५. घोड़े के स्तन नहीं होते, बैल के होते हैं, और पुरुषों के स्तन होते हैं। ये स्तन बैल को और पुरुषों को जीवन संग्राम में क्या सहायता देते हैं, और घोड़े में स्तनों का अभाव उसे क्या हानि पहुँचाता है, इसका उत्तर विकासवादी कुछ नहीं दे सकता।

६. विकासवाद का सिद्धान्त लुप्तजन्तुशास्त्र पर बहुत निर्भर है। विकासवादी कहते हैं कि पृथ्वी की तहों में ऐसे प्राणियों की अस्थियाँ मिली हैं, जो कि विकास की जंजीर की कड़ियाँ हैं, परन्तु साथ ही विकासवादी यह भी स्वीकार करते हैं कि बहुत-सी कड़ियाँ नहीं मिलीं। इस सम्बन्ध में मि० डे० कार्टर फेगस अपनी पुस्तक Les Evules de Darwin पृ० ७६ पर यही बात कहते हैं :—

"From one stage to another there is sometimes too broad a gulf."

इसी विषय में एक और वैज्ञानिक सर० जे० डबल्यु० डासन अपनी पुस्तक Modren Ideas of Evolution पृ० ११९ पर लिखते हैं—

"Such geneologies are not of the nature of scientific evidence."

७. विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार पहले बिना हड्डी के प्राणी थे, उनसे हड्डी वाले प्राणी उत्पन्न हो गये। इसके सिद्ध करने के लिए वे प्रमाण यह देते हैं कि पृथ्वी की निचली तहों में हड्डियाँ नहीं मिलती और ऊपर की तहों में प्राणियों की हड्डियों के पंजर मिलते हैं परन्तु P. geddeo अपनी

Evolution नामक पुस्तक पृ० १२६ पर लिखते हैं कि पृथ्वी के दबाव से निचली तहें पिघल जाती हैं और साथ ही हड्डियाँ भी पिघल जाती हैं। इस लिए निचली तहों में हड्डियाँ न होने से यह सिद्ध नहीं हो सकता कि पहले बिना हड्डी वाले प्राणी थे और पीछे उनसे हड्डी वाले प्राणी बन गए।

८. विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार जिन प्राणियों के शरीर जीवन संग्राम में अधिक सफल होते हैं, वे जीवित रहते हैं, शेष नहीं। शनैः-शनैः उन्नति करते-करते इस प्रकार के प्राणी बनते जाते हैं जिनके शरीर जीवन-संग्राम में अधिक सफल हो सकते हैं। विकासवाद के अनुसार पृष्ठवंशधारियों (Vertebrates) में सर्पणशील प्राणियों की श्रेणी है, सर्पणशीलों से विकसित होकर पक्षी बने, पक्षियों से विकसित होकर स्तनधारी हुए। अब जरा देखें कि इनके शरीर जीवन संग्राम में कितना काम देते हैं। सर्पणशीलों में कछुआ १५० वर्ष और सर्प १२० वर्ष जीता है। पक्षियों में कबूतर ८ वर्ष जीता है। स्तनधारियों में शशक ८ वर्ष, कुत्ता १४ वर्ष, घोड़ा ३२ वर्ष, बन्दर २१ वर्ष, और मनुष्य १०० वर्ष जीता है। मनुष्य विकासवाद के अनुसार सबसे अधिक उन्नत है, फिर भी बड़े कम मनुष्य* १०० वर्ष की आयु तक भी पहुँचते हैं, कछुए की आयु तक मनुष्य नहीं पहुँचता। इन सब प्राणियों को विकसित होकर अच्छी मशीन मिली, जो मृत्यु के अधिक समीप पहुँचा दिया।

९. यदि इस बात को माना जाए कि पहले प्राणी जीवन संग्राम के योग्य नहीं थे। जो जीवन संग्राम में अधिक योग्य सिद्ध होते हैं वे ही जीवित रहते हैं, शेष मर जाते हैं। इससे तो यह सिद्ध होता है कि पहली श्रेणियों के प्राणी अब तक रहने ही नहीं चाहिए थे, वे सहस्रों वर्ष पूर्व से सर्वथा नष्ट हो जाने चाहिये थे। एक खरगोश के ८ बच्चों से ६ जो जीवन-संग्राम के कम योग्य हैं, वे मर जाते हैं, और जो जीवन-संग्राम में सफल होते हैं वे ही जीवित रहते हैं, इसी युक्ति से यह भी तो होना चाहिये कि प्राणियों की वे सब श्रेणियाँ अब तक नष्ट हो जातीं जो कम विकसित हैं। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। अब तक एक सैल का अमीबा भी मौजूद है और दो सैल का हाईड्रा भी, फंगस आदि वनस्पतियाँ भी और बड़े-बड़े वृक्ष भी हैं, साँप भी हैं, कबूतर हैं, कुत्ते भी हैं और मनुष्य भी हैं।

१०. विकासवाद के खण्डन में बहुत-सी युक्तियाँ हैं, परन्तु विस्तार भय से केवल एक बात इस विषय में कहकर विकासवाद को यहीं छोड़ दिया जायगा। इन पंक्तियों का लेखक जिन दिनों कालिज में पढ़ता था और जब बाटनी (Botany) पढ़ते समय उसे विकासवाद पढ़ाया गया तो माने हुए और बाटनिस्ट डा० कश्यप और डा० बीरबल साहनी से उसने एक बात पूछी कि यह तो आप कहते हैं कि आरम्भ में एक सैल के जीवित प्राणी थे, उनसे उन्नति करके बड़े-बड़े प्राणी बन गये, आप यह भी कहते हैं कि आरम्भ में संसार में बहुत थोड़ा-सा ज्ञान था, शनैः-शनैः उन्नति होते-होते ज्ञान इस

अवस्था को प्राप्त कर गया, जिसको आज विज्ञान आदि पहुँचे हुए हैं। आप यह तो बताइये कि "Where did the life come from in the very beginning and where from did the Knowledge come in the very beginning." अर्थात् आरम्भ में जीवन कहाँ से आया और आरम्भ में ज्ञान कहाँ से आया, क्योंकि विज्ञान, शून्य से जीवन उत्पन्न हो गया या शून्य से ज्ञान उत्पन्न हो गया, ऐसा नहीं मान सकता। मेरे इस प्रश्न का उत्तर मुझे सदा यही दिया जाता रहा कि "With this we are not concerned as to where from the life came in the very beginning or where from the knowledge came in the very beginning. We are to take it from granted that there was some life in the beginning of the world and a little knowledge in the beginning of the world and by slow progress it increased." अर्थात् इसके साथ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं कि आरम्भ में जीवन कहाँ से आया वा ज्ञान कहाँ से आया। हम इस बात को स्वीकार करके चलते हैं कि आरम्भ में जीवन था और कुछ थोड़ा-सा ज्ञान भी था और वह शनैः-शनैः उन्नति करके बढ़ गया। इससे स्पष्ट है कि विकासवाद, जिसका इतना शोर सुना जाता है जिसका प्रभाव विश्वव्यापी है, जिसको हमारे अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे बाबू भी आँख बन्द करके मानते चले जाते हैं, युक्ति के सामने सर्वथा नहीं ठहर सकता। विकासवाद इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता कि आरम्भ में ज्ञान कहाँ से आया। परन्तु हमारे पास इसका उत्तर है।

एक युक्ति दी जाती है कि परमातमा ने मनुष्य को स्वाभाविक ज्ञान दिया है। इससे मनुष्य सारे काम कर सकता है, पुस्तकें भी लिख सकता है, अतः वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानने की क्या आवश्यकता है? परन्तु यह युक्ति तनिक भी विचार के आगे नहीं ठहर सकती। क्योंकि उस स्वाभाविक ज्ञान से मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। मनुष्य का बच्चा जब तक अपने माता-पिता से, बहन-भाइयों से, समाज से तथा गुरुओं से कुछ सीखे न, उसे कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता। यदि मनुष्य के बच्चे को ऐसे स्थान पर रखा जाए जहाँ उस पर समाज का कोई भी प्रभाव न पड़ने दिया जाए और उसे कुछ भी सिखाया न जाए, जैसाकि कहा जाता है कि शायद अकबर ने ऐसा किया था, तो वह बच्चा न बोल सकेगा, न पढ़ सकेगा, न लिख सकेगा, खाने-पीने तक का ढंग उसे नहीं आता होगा। बहुत वर्षों की बात है कि एक लड़की भेड़िये की माँद से बरेली अनाथालय में लाई गई। वह मनुष्य की तरह से चलना नहीं जानती थी, खाना-पीना आदि नहीं जानती थी और भेड़ियों की तरह ही काटने को दौड़ती थी। अनाथालय में रहकर उसने सब सीखा। इसी प्रकार से हम जानते हैं हमने अपने गुरुओं से, समाज से, अपने माता-पिता आदि से सीखा, हमारे गुरुओं और माता-पिता ने अपने गुरुओं और माता-पिता आदि से सीखा, और उन्होंने अपने गुरुओं और माता-पिता आदि से

इसी प्रकार से चलते-चलते यह परम्परा सृष्टि के आदि तक पहुँच जाती है। सृष्टि के आदि में जो मनुष्य थे उनको ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ ? इसका उत्तर है—

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनावनच्छेदात् ।। योग० ।।

अर्थात् उनका गुरु वही परमात्मा है जिस पर काल का भी कोई प्रभाव नहीं। वही सृष्टि के आदि में अपना ज्ञान देता है। अब प्रश्न यह है कि वेद को ही क्यों ईश्वरीय ज्ञान माना जाए, कुरान बाइबल आदि को क्यों न माना जाए ? एक मौलवी साहिब ने एक लेख में प्रश्न किया कि ईश्वरीय ज्ञान के लक्षण ये हैं कि अलहामी पुस्तक में मुलहिम का नाम होना चाहिए, अलहाम का दावा होना चाहिए, अलहाम का स्थान होना चाहिए और अलहाम का समय होना चाहिए। यदि वेद ईश्वरीय ज्ञान है तो वेद में यह लक्षण घटाकर दिखाओ। इसके उत्तर में मैंने यह लिखा था कि जिस पुस्तक में ये लक्षण हों वह पुस्तक आवश्यक नहीं कि ईश्वरीय ज्ञान हो। जैसे मैं एक पुस्तक लिख दूँ, उसमें यह दावा कर दूँ, कि यह अलहामी पुस्तक है, अलहाम वाचस्पति को २५ फरवरी १९४६ प्रातः आठ बजे रामनगर लाहौर में हुआ। उस पुस्तक में आपके बताए सब लक्षण घट गए। अलहाम का दावा भी हो गया, मुलहिम का नाम भी आ गया, समय और स्थान भी आ गया। तो क्या आप उस पुस्तक को अलहामी मान लेंगे। उसके उत्तर में मौलवी साहिब ने लिखा कि आप ऐसी पुस्तक लिखकर देखें, उसके धुर्रे उड़ा दिए जाएँगे। मैंने लिखा बहुत अच्छा, आपने स्वीकार किया कि जिस पुस्तक में आपके बताए सब लक्षण घटते हैं, उसके धुर्रे उड़ाए जा सकते हैं, वह अलहामी नहीं है, अर्थात् आपके बताए लक्षण ठीक नहीं हैं। मैंने लिखा कि लीजिए हम लक्षण बताते हैं, और वेद से ही बताते हैं—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ।।

ऋ० १०।७१।१।।

अर्थ—हे बृहस्पते ! नाम रखने की शक्ति वालों ने आदि में जो वाणी का उच्चारण किया, उसमें वह ज्ञान है जो सारे दोषों से शून्य है और सबसे बढ़कर उत्तम है। वह ऋषियों के प्रेम से प्रकाशित हुआ, जो कि पहले गुफ़ा में रक्षित था।

१. आदि में उच्चारण—ऊपर बताया जा चुका है कि बिना सिखाये मनुष्य को कोई ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। जैसे ऊपर भेड़िये की माँद में मिली हुई लड़की और बच्चों के उदाहरण से स्पष्ट कर दिया गया है। अपने अपने माता-पिता और गुरुओं से सीखते-सीखते यह परम्परा सृष्टि के आदि तक चलती है—उस समय

सः पूर्वेषामपि गुरुःकालेनानवच्छेदात् । योग० ।

सृष्टि के आदि में मनुष्यों का गुरु वह परमात्मा था, उसी ने ज्ञान दिया।

अन्य कुरान, बाइबल, जिन्द अवस्था आदि अलहाम का दावा करने वाली पुस्तकें कोई १३००, कोई २००० वा कोई ५००० वर्ष तक जाती हैं। सृष्टि के आदि में उनका ज्ञान आया, ऐसा उनके अनुयायी दावा ही नहीं करते।

२. वाणी का मूल—संसार की भाषाएँ ईश्वरीय ज्ञान से ही निकलनी चाहिएँ। यदि कुरान, बाईबल आदि वाणी के मूल होते तो उनसे पहले संसार में कोई भाषा नहीं होनी चाहिए थी, परन्तु यह बात सर्वसम्मत है कि इनसे पहले संसार में अनेक भाषाएँ थीं। सृष्टि के आदि में कोई भाषा नहीं थी।

कुरान में सूरतुलबकर में लिखा है कि—"और आदम को सब नाम बता दिए" प्रश्न यह है कि वे नाम कहाँ हैं, इस विषय में कुरान में कुछ नहीं बताया। इसी प्रकार बाईबल के उत्पत्ति अध्याय में बताया है—

"पहले सारी पृथ्वी पर एक ही बोली थी और सब लोग एक ही सम्प्रदाय के थे।"

यहाँ यह प्रश्न है कि वह बोली कौन-सी थी, और वह सम्प्रदाय कौन-सा था, इस विषय में बाईबल चुप है।

इस प्रश्न का उत्तर मनु ने दिया कि—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ १।२१॥

अर्थात्—आदि में सब नाम आदि वेद के शब्दों से रखे गए थे। कई लोग इस बात को भूलकर जब वेद में एक नाम देखते हैं और उसी नाम का कोई राजा वा ऋषि सुनते हैं तो कह उठते हैं कि वेद में उसका नाम या इतिहास है। बात वास्तविक यह है कि उसने वेद के शब्द से अपना नाम रख लिया। जैसा इस समय गणपति, वाचस्पति आदि शब्द वेद से लेकर लोग अपना नाम रख लेते हैं।

३. निर्दोष है—वह (ईश्वरीय) ज्ञान भ्रम, प्रमाद और विप्रलिप्सा आदि दोषों से रहित हैं। उसमें किसी प्रकार का दोष नहीं होना चाहिए। जैसे कि कुरान में लिखा है कि सूर्य एक कीचड़ के गढ़े में डूब जाता है, ख़ुदा के तख़्त को फरिश्तों ने उठाया हुआ है। या बाईबल में लिखा है कि ख़ुदा की रूह पानियों पर तैरती थी। उसने छः दिन में सृष्टि बनाकर सातवें दिन आसमान पर आराम किया। आदम की पसली हव्वा को बनाया, इत्यादि।

४. सबसे बढ़कर उत्तम—वह धर्म की सारी आवश्यकताओं को पूरा करने वाला हो, लोक और परलोक का मार्ग बताने वाला हो। जैसे वेद में गृहस्थ धर्म के पालन के उपदेश हैं, आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में आध्यात्मिक उपदेश हैं तथा रोगों की निवृत्ति के लिए उपदेश और औषध

हैं। संसार की अन्य पुस्तकों में पूर्ण उपदेश नहीं हैं। कुरान में आत्मा के सम्बन्ध में केवल इतना लिखा है कि "रूह हुकमे रब्बी है।" इससे आत्मा का ज्ञान कुछ भी नहीं हो सकता। बाईबल में लिखा है कि ऊँट सूई के नाके में से गुज़र सकता हैं, परन्तु एक धनी मनुष्य स्वर्ग के द्वार में से नहीं गुजर सकता। वेद कहता है कि गृहस्थ खूब धन कमाये, सौ हाथों से कमाये और हजार हाथों से बाँटे।

"वयं स्याम पतयो रयीणाम्"। "शतहस्तं समाहर सहस्रहस्तं समाकिर"।

हम धनों के स्वामी बने। धन खूब कमाओ और परोपकार में लगा दो। वेद बताता है कि पिता-पुत्र, भाई-बहन, पति-पत्नी आदि सब का क्या व्यवहार होना चाहिए, इत्यादि।

५. ऋषियों के प्रेम से प्रकाशित हुआ—पहले कल्प में यह चुनाव कर्मानुसार हुआ। मनमाना न था। लायलपुर में एक मौलवी साहिब ने मुझ पर प्रश्न किया था कि यदि अलहाम की दावेदार छः रूहें हो जाएँ, तो परमात्मा कैसे चार वेदों का ज्ञान देगा। हमारे पास तो उत्तर हैं कि अलहाम केवल दावा करने से नहीं हो जाता है, अपितु जो चार सर्वश्रेष्ठ आत्माएँ पहली सृष्टि से ऐसे संस्कार लेकर आई थीं, उनके प्रेम के कारण उनको वेद का ज्ञान दिया गया। परन्तु कुरान में या बाईबल में कहीं इसका उत्तर नहीं कि हज़रत मुहम्मद वा हज़रत ईसा को क्यों अलहाम दिया गया।

६. गुफ़ा में रक्षित था—सृष्टि के आदि में यह ज्ञान ऋषियों पर प्रकट होने से पूर्व गुफ़ा में रक्षित था, छिपा हुआ था, परदे में था अर्थात् संसार में कहीं भी नहीं था। वस्तुतः होना भी ऐसा ही चाहिए। यदि ईश्वरीय ज्ञान आने से पहले संसार में वह ज्ञात हो तो उस अलहाम के प्रकट होने का क्या लाभ। कुरान में कोई भी ऐसी नई बात नहीं जो कि संसार को अब से १४०० वर्ष पूर्व ज्ञात न हो। इसी प्रकार से बाईबल में कोई भी ऐसी बात नहीं है जिसका ज्ञान अब से २००० वर्ष पूर्व लोगों को न हो। वेद का ज्ञान क्योंकि सृष्टि के आदि में हुआ इसलिए उससे पूर्व वस्तुतः संसार में ज्ञान नहीं था।

ऊपर की पंक्तियों में पाठकों के सामने यह सिद्ध करने का यत्न किया गया है कि ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है और परमात्मा सृष्टि के आदि में ज्ञान देता है। विकासवाद जोकि इस सिद्धान्त में बाधक कहा जाता है, युक्ति के आगे ठहर नहीं सकता और संसार में वेद के सिवाय और कोई ईश्वरीय ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए वेद के पठन-पाठन और प्रचार से ही संसार का कल्याण हो सकता है।



वेद ईश्वर प्रोक्त हैं

श्री पं० हरिदत्त जी वेदालंकार, उपाध्याय आर्यसिद्धान्त
गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद समूचे वैदिक वाङ्मय के शीर्षस्थान में विराजमान हैं। ये चारों संहितायें वैदिक साहित्य का मूल स्रोत हैं। अज्ञान के संताप का हरण करने वाली कल्याणमयी ज्ञानरूपा जाह्नवी की निर्मल धारा इन्हीं संहिताओं से प्रादुर्भूत हुई है। पाश्चात्य विद्वान् भले ही वेदों को गड़रियों के गीत या बच्चों की बिलबिलाहट कहें किन्तु इस विषय में वे सब एकमत हैं कि विश्व के वाङ्मय में ये गीत प्राचीनतम हैं। प्रसिद्ध विद्वान् श्री मैक्समूलर कहा करते थे। कि संसार के पुस्तकालय में सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। सहस्रों शताब्दियों से भारतवर्ष वेदों के ज्ञान से अपने ऐहिक अभ्युदय एवं पारलौकिक निःश्रेयस की सिद्धि करता आया है। उसके ज्ञान, प्रेरणा, शक्ति, श्रद्धा, विश्वास का मूल वेद ही रहा है। भारतवर्ष के आर्यों की यह धारणा रही है कि वेद ईश्वर प्रोक्त हैं।★ सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा ने मनुष्यों की शिक्षा, मार्ग प्रदर्शन और लोककल्याण के लिए वेदों का ज्ञान दिया। किन्तु वर्तमान समय में पाश्चात्य विद्वानों ने इस विषय में अनेक संदेह उत्पन्न कर दिये हैं। यहाँ पर इन संदेहों की विवेचना करते हुए, यह बताने का प्रयत्न किया जायगा कि वेद ईश्वर प्रोक्त हैं। वेद के ईश्वर प्रोक्त होने के सम्बन्ध में वेद की तथा परवर्ती साहित्य की साक्षी उपस्थित की जा सकती हैं। किन्तु हम उसे यहाँ विस्तार से उपस्थित नहीं करेंगे। क्योंकि वह साक्षी हमारे विश्वासों को पुष्ट कर सकती है किन्तु संदेहों का निराकरण नहीं कर सकती। इस प्रकार की साक्षी जन्दावस्ता, बाईबल व कुरानशरीफ आदि ग्रन्थों में भी विद्यमान है। अतः यहाँ वेद की अपौरुषेयता के आक्षेपों पर मुख्यरूप से विचार किया जायगा और अन्त में गौण रूप से पौरुषेयता के पोषक प्रमाणों का उल्लेख होगा।

वेदों के ईश्वरीय होने के सम्बन्ध में सबसे जबर्दस्त आक्षेप विकासवाद के समर्थकों की ओर से है। विकासवादी प्रकृतिवादियों का यह कथन है कि वर्तमान काल में पाये जाने वाले मनुष्य आदि प्राणी एक लम्बी-चौड़ी विकास की प्रक्रिया का परिणाम हैं। लाखों वर्ष पहले एक कोष्ठ वाले अमीबा का जन्म हुआ। इसी से क्रमशः अनेक कोष्ठों वाले जीव विकसित हुए। उन्हीं जीवों का चरम विकास हमें मनुष्य के रूप में दिखाई देता है। इसी विकास के साथ-साथ मानसिक विकास हुआ। मनुष्य ने शनैः-शनैः अपनी बुद्धि का

★बृहदारण्यक उपनिषद् २।४।१०, सांख्य दर्शन ५।४१, वेदान्त दर्शन २।१।२७, महाभारत शान्तिपर्व २३३।२४.

विकास किया। प्राकृतिक घटनाओं पर विचार किया। उनसे शिक्षा प्राप्त की तथा अपनी ज्ञान वृद्धि की। मनुष्य शुरू में बिल्कुल जंगली जानवरों की तरह रहता था। उसकी आजीविका का मुख्य साधन शिकार था। इसके बाद वह क्रमशः पशुपालक, कृषक और अन्त में यन्त्रों का उपयोग करके सभ्य बना। उसका भौतिक उत्कर्ष और मानसिक उन्नति साथ-साथ होती रही। इन दोनों के लिए किसी विशेष प्रकार के ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। अतः वेद या बाईबल आदि किसी भी ईश्वरीय ज्ञान को मानना निरर्थक है।

विकासवाद के सिद्धान्त पर प्रबल अक्षेप किये गये हैं। कई वैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त को उपर्युक्त रूप में स्वीकार करने से इन्कार किया है। इस बहस में पड़ना अप्रासंगिक है। इस विषय पर इतना कहना पर्याप्त है कि विकासवाद के सिद्धान्त को भौतिक क्षेत्र में भले ही सत्य माना जाय किन्तु मानसिक क्षेत्र में उसे सत्य नहीं स्वीकार किया जा सकता। विकासवाद के प्रबल समर्थकों ने इस तथ्य को स्पष्ट रूप से माना है कि मानसिक क्षेत्र में ज्ञान की क्रमशः उत्तरोत्तर वृद्धि नहीं होती। डाक्टर वालेस ने श्री डार्विन के साथ ही विकासवाद के सिद्धान्त को प्रतिष्ठापित किया था। उन्होंने 'सामाजिक परिस्थिति व नैतिक उन्नति' (सोशल एनवायरनमेंट एण्ड मारल प्रोग्रेस) नामक निबन्ध में बौद्धिक विकास के पहलू पर विस्तार से विचार किया है। वे मिश्र, यूनान व मेसोपोटेमिया की प्राचीन कलाओं को आधुनिक कलाओं से हीन नहीं मानते। उन्होंने लिखा है कि भूतकाल का इतिहास ऐसी पर्याप्त साक्षियाँ देता है कि उस समय के धार्मिक विचार और सदाचार आजकल के धार्मिक विचारों और सदाचार से कम न थे। धार्मिक सुधारकों के उदाहरणों से भी यह बात पुष्ट होती है। सुकरात, अफलातून, कन्फूशस, बुद्ध, होमर और इनसे भी प्राचीन महाभारत का कर्त्ता व्यास, ये सब ऐसी मानसिक तथा आत्मिक उच्चता की साक्षी देते हैं जो सर्वथा हमारे जैसी हैं (पृ० ८)। इसी प्रकार के अनेक तथ्यों पर विचार करने में बाद वालेस ने यह परिणाम निकाला है कि—'अतः इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि बौद्धिक शक्ति निरन्तर उन्नत होती है (वह पुस्तक पृ० २६)। श्री बैंजमिन किड ने सामाजिक विकास (सोशल इवोल्यूशन) नामक पुस्तक में लिखा है कि विकास का सिद्धान्त मानसिक क्षेत्र में लागू नहीं होता। मानसिक दृष्टि से, हम यूनानी आदि प्राचीन जातियों से बढ़कर नहीं हैं, बल्कि कम हैं।

यदि हम केवल ईश्वर विषयक विचारों के विकास को देखें तो हमें यह प्रतीत होगा कि इस क्षेत्र में विकास के स्थान पर ह्रास का नियम दृष्टिगोचर होता है। वैदिक संहिताओं में ईश्वर के विमल स्वरूप का वर्णन है (ऋ० १०।१२१।१—१०, अथर्व ४।१६।१—६)। उसके एकत्व, सर्व-

व्यापित्व, सर्वज्ञता, अनादित्व आदि गुणों का बड़ा विशद प्रतिपादन किया गया है। ईश्वर के सम्बन्ध में, मानवबुद्धि आज तक आदर्श रूप से जिन बातों का विचार कर सकी है, वे सब वैदिक संहिताओं में पायी जाती हैं। किन्तु वैदिक धर्म के बाद के अन्य धर्मों के ईश्वर सम्बन्धी विचारों का अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि विकास से उन विचारों में उत्कृष्टता आने के स्थान पर भ्रष्टता आती गयी है। ईश्वर के उदात्त विचारों की दुर्गति जन्दावस्ता, बाईबल और कुरान शरीफ में उत्तरोत्तर बढ़ती गयी है। इस्लाम विश्व के छः महान धर्मों—वैदिक धर्म, पारसीमत, यहूदी धर्म, ईसाइयत और इस्लाम में अर्वाचीनतम है। मुसलमान इसे स्वयं स्वीकार करते हैं। वे अपने पैगम्बर को अन्तिम पैगम्बर (स्वातिमुल मुरसलीम) कहते हैं। विकासवाद की दृष्टि से उनके धर्म में ईश्वर का विचार सबसे ऊँचा होना चाहिये क्योंकि वह सब से बाद का है किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। कुरान शरीफ में, ईश्वर एक स्वेच्छाचारी सम्राट् प्रतीत होता है। 'वह जिसे चाहता है, उसे बुरे मार्ग की ओर ले जाता है (सूर ६), काफ़िरों को शाप देता है, उनसे युद्ध करता है (सूर ४६), शपथें खाता है (सूर ३७, ४२, ७९, ९१)। संभवतः उन्हीं सब तथ्यों को दृष्टि में रख कर डाक्टर फ्लिण्ट ने लिखा है—'यद्यपि इस्लाम सबसे पीछे प्रकट हुआ है, तथापि वह सबसे कम उन्नत और सबसे कम परिपक्व है। उसने ईश्वर का विचार दूसरों से ग्रहण किया है। इस विचार को उन्नत एवं उत्कृष्ट बनाने के स्थान पर इस्लाम ने उसे दूषित और अस्तव्यस्त कर डाला है, (थीइज्म पृ० ४४)।

महाकवि अकबर ने ईश्वर के संबन्ध में एक बड़ी मनोरंजन उक्ति लिखी है—

सदियों तक फलसफे की चुनां और चुनीं रही।
मगर खुदा की बात जहाँ थी, वहीं रही॥

इस रोचक उक्ति में एक गम्भीर दार्शनिक सत्य छिपा पड़ा है। ईश्वर के संबन्ध में, मनुष्य पूरा प्रयत्न करने के बाद आज उतना ही जानता है जितना आज से हज़ारों वर्ष पुराने वैदिक परम्पराओं के ज्ञाता ऋषि जानते थे। मनुष्य ने अपनी बुद्धि द्वारा अनेक अदृष्टपूर्व और अश्रुत पूर्व वस्तुओं का आविष्कार किया है। आकाश में सैकड़ों मील की गति से उड़ने वाले वायुयान, तूफ़ानों की परवाह न करते हुए समुद्र की दुस्तर जलराशि को पार करने वाले जलपोत, स्थल पर विद्युद् वेग से भागने वाली रेलगाड़ियाँ और मोटरें मनुष्य की आविष्कारिणी प्रतिभा के चमत्कार हैं। आकाशवाणी (रेडियो) दूरदर्शन (टेलीविज़न) आदि से उसने देश और काल के व्यवधान का अन्त कर दिया है। कल्पनातीत परमाणु बम का आविष्कार करके, मनुष्य ने एक नयी दानवी शक्ति को जन्म दिया है। अपनी बौद्धिक शक्ति से, उसने अपनी सुखसमृद्धि तथा ध्वंस के साधनों को पिछली एक शती की

अपेक्षा आज सैकड़ों गुना अधिक बढ़ा लिया है। किन्तु ईश्वर के सम्बन्ध में वह एक भी नयी बात ईजाद नहीं कर सका। उसके संबन्ध में, वह हमारे ज्ञान भण्डार में अणुमात्र की भी वृद्धि नहीं कर पाया। महाकवि अकबर का यह कहना सोलहों आना सही है कि खुदा की बात जहाँ थी, वहीं रही है। अकबर ने यह बात व्यंग्य में कही है किन्तु जिन विद्वानों ने विविध धर्मों का गम्भीर अध्ययन किया है, वे भी इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि मानवजाति के विकास के साथ, उसके ईश्वर संबन्धी विचारों में कोई वृद्धि नहीं हुई है। वेदों की शिक्षा पाकर, प्राचीन आर्य जिन शब्दों में ईश्वर की स्तुति करते थे, आज तक हम उन्हीं शब्दों में भगवान् से प्रार्थना करते हैं। अन्य धर्मों ने भी परमात्मा के विशेषणों में कोई वृद्धि नहीं की। हज़ारों वर्ष पहले ईश्वर को सर्वशक्तिमान्, सर्वत्र, अनादि, अनन्त, अजन्मा, न्यायकारी आदि विशेषणों से युक्त बताया जाता था तो आज भी उसका यही स्वरूप है। मनुष्य ने भौतिक क्षेत्र में इतने अधिक चामत्कारिक आविष्कार किये हैं, वह इस क्षेत्र में कोई आविष्कार क्यों नहीं कर सका ?

सुप्रसिद्ध फ्रेंच दार्शनिक देकार्त्त (१५९६—१६५०) ने इस प्रश्न का उत्तर दिया है। वह कहता है—ईश्वर संबन्धी ज्ञान के बारे में मैं जितना अधिक सोचता हूँ, उतना ही मुझे यह निश्चय हो जाता है कि यह विचार मेरे मन से उत्पन्न नहीं हुआ। परमात्मा अनन्त है, मेरा आत्मा शान्त है। परमेश्वर स्वतन्त्र है, मेरा आत्मा परतन्त्र है। अतः यह स्पष्ट है कि मैं इस ज्ञान का उत्पादक नहीं हो सकता। जब हम इस तथ्य पर विचार करते हैं कि मनुष्य सहस्रों वर्षों में, इस ज्ञान में अणुमात्र की वृद्धि नहीं कर सका तो हमें देकार्त्त की इस स्थापना को स्वीकार करना पड़ता है कि ईश्वर सम्बन्धी विचार मनुष्य स्वतः उत्पन्न नहीं कर सकता। यदि मनुष्य इन विचारों को स्वतः उत्पन्न करने में असमर्थ है तो मानवजाति में इन विचारों का उदय किस प्रकार हुआ ?

इसके उत्तर में प्रायः सभी धर्म सहमत हैं। वे कहते हैं कि परमात्मा ने मनुष्य के हृदय पर, इन विचारों की छाप लगायी है। भारतीय अनुश्रुति में यह कहा गया है कि अग्नि वायु आदित्य और अंगिरा को परमात्मा ने चारों वेदों का ज्ञान दिया। यहूदियों का विश्वास है कि हज़रत मूसा ने पंजनामा ईश्वरीय प्रेरणा से लिखा। मुसलमान यह मानते हैं कि रमज़ान के महीने में कुरानशरीफ को सबसे ऊँचे आसमान से उतार कर, सबसे निचले आसमान पर लाया गया था। जिब्राइल फरिश्ता आवश्यकतानुसार हज़रत मुहम्मद को इस आसमान से ईश्वरीय ज्ञान पहुँचाते रहे। ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता मानते हुए भी प्रत्येक धर्म अपने धर्मशास्त्र को ईश्वरीय कहता है। अतः यहाँ पर यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि वेद

को ही ईश्वरप्रोक्त क्यों माना जाय ? अन्य ग्रन्थों को ईश्वरीय क्यों न माना जाय ?

ईश्वरीय ज्ञान के सम्बन्ध में हमें कुछ कसौटियाँ निश्चित करनी चाहियें। इन कसौटियों पर कसने से खरे खोटे का ज्ञान हो जायगा। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना बड़ा आसान है। प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म को श्रेष्ठ और दूसरे के धर्म को हेय करता है। उसकी सम्मति को आँख मूँद कर स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस सम्मति की जाँच करने के लिए कुछ निर्धारक मापदण्डों की आवश्यकता है। ईश्वरीय ज्ञान के संबन्ध में निम्न कसौटियाँ हैं—

(१) ज्ञान का सृष्टि के प्रारम्भ तथा प्राचीनतम काल में होना।
(२) ज्ञान का त्रिकालाबाधित एवं सनातन होना।
(३) ज्ञान का विज्ञान सम्मत होना।

जो पुस्तक इन सब कसौटियों पर खरी उतरे केवल उसे ही ईश्वरीय ज्ञान माना जा सकता है।

पहली कसौटी—

ज्ञान का सृष्टि के प्रारम्भ में होना

ऊपर यह दिखाया जा चुका है कि बौद्धिक एवं मानसिक क्षेत्र में विकासवाद का सिद्धांत लागू नहीं होता। यह भी बताया जा चुका है कि मनुष्य ने ईश्वर के संबन्ध में एक भी नया तथ्य नहीं खोजा है। मनुष्य को यह ज्ञान ईश्वर से ही प्राप्त हुआ है। ईश्वर से इस ज्ञान के प्राप्त होने में यह एक आवश्यक शर्त है कि यह ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में ही प्राप्त होना चाहिये। ईश्वरीय ज्ञान का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को विशेष रूप से ईश्वर के संबन्ध में तथा सामान्य रूप से अन्य सब बातों का ज्ञान कराना है। यह ज्ञान सृष्टि के शुरू में ही दिया जाना चाहिये। यदि सृष्टि पैदा होने के सैकड़ों वर्षों के बाद यह ज्ञान दिया जाता है तो परमात्मा पर पक्षपाती और अन्यायी होने का दोषारोपण किया जायगा। ईश्वरीय ज्ञान दिये जाने से पहले होने वाले लोगों ने क्या अपराध किया है, जो उन्हें परमात्मा की कृपा से वंचित रखा जाय। कुछ लोगों को यह ज्ञान देना तथा दूसरों को इस ज्ञान से वंचित रखना अनुचित पक्षपात और घोर अन्याय का सूचक है। परमात्मा कभी अन्यायी और पक्षपाती नहीं हो सकता। फिर, उस ज्ञान की स्वाभाविक आवश्यकता सृष्टि के प्रारम्भ में ही है। बालक अपने माता पिता गुरु तथा चारों ओर की परिस्थिति से शिक्षा ग्रहण करके समझदार बनता है। इनमें गुरु या शिक्षा देने वाले का विशेष महत्त्व है। ऐसे अनेक परीक्षण किये गये हैं कि बच्चों को जन्म के बाद जंगल में रख दिया जाय। कोई शिक्षादाता

न हो। ऐसे बच्चे अपने मस्तिष्क से बौद्धिक विकास नहीं कर सके। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बच्चे के मस्तिष्क में वह शक्ति अवश्य विद्यमान थी किन्तु उस शक्ति को विकसित करने वाला कोई गुरु नहीं था। अत: वह शक्ति दबी पड़ी रह गयी। असीरिया के राजा असुरबैनीपाल, पवित्र रोमन साम्राज्य के राजा फ्रेडरिक द्वितीय (११९४-१२५०) जेम्स चतुर्थ (१४७३-१५१२) अकबर (१५४२-१६०५) ने नवजात शिशुओं को पृथक् मकानों में रखवाया, उनका पालन-पोषण करने वाली दाइयाँ उनको किसी प्रकार की शिक्षा नहीं देती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि वे बच्चे बड़े होकर बहरे, गूँगे ही रहे। बिना शिक्षा के ज्ञान असंभव है। सृष्टि के शुरू में इस प्रकार का ज्ञान अवश्य होना चाहिये।

यदि यह माना जाय कि परमात्मा सृष्टि शुरू होने के बाद समय-समय पर ज्ञान भेजता रहता है तो इसमें अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। पहला दोष तो यह है कि इससे ईश्वरीय ज्ञान की अपूर्णता सिद्ध होती है। परमात्मा सर्वज्ञ तथा पूर्ण है। उसके सामने मानवजाति का सारा भविष्य हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष है। वह जानता है कि किस समय मनुष्यों को क्या आवश्यकता पड़ेगी। उन सब आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर वह सृष्टि के शुरू में मनुष्यों को ज्ञान देता है। उस ज्ञान की बार-बार पुनरावृत्ति परमात्मा की सर्वज्ञता पर कलंक लगाने वाली है।

इस कसौटी पर यदि विभिन्न धर्मों की पुस्तकों को कसकर देखा जाय तो यह प्रतीत होगा कि वेद ही ईश्वर प्रोक्त हैं। काल क्रम की दृष्टि से वैदिक संहितायें प्राचीनतम हैं। हज़रत मुहम्मद (५७०-६३२ ई०) ने सातवीं शती की दूसरी दशा में इस्लाम का प्रचार प्रारम्भ किया। इसी समय कुरान शरीफ की रचना हुई। हज़रत ईसामसीह का धर्म १९४६ वर्ष पुराना है और हज़रत मूसा ने १५७१ ई० पू० में जन्म ग्रहण किया था। भारतीय अनुश्रुति के अनुसार वेदों का आविर्भाव सृष्टि के प्रारम्भ में माना जाता है। यह संभव है कि इस उक्ति पर कोई अविश्वास करे किन्तु वेद में श्रद्धा न रखनेवाले पाश्चात्य विद्वानों को भी यह मानना पड़ा है कि वेदों से प्राचीनतर कोई पुस्तक नहीं है। मैक्समूलर की सम्मति का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। उसने लिखा है कि ऐसी कोई पुस्तक नहीं है, जो हमें मानवीय इतिहास में वेदों से प्राचीनतर समय की ओर पहुँचावे।

प्राय: यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि समय-समय पर ईश्वर की ओर से विकृत धार्मिक दशा का संशोधन करने के लिए महापुरुषों का आविर्भाव होता है। ईसाई यह मानते हैं कि ऐसे महापुरुषों की परम्परा ईसा के साथ समाप्त हो गयी और मुसलमानों का मत है कि इस शृंखला की अन्तिम कड़ी हज़रत मुहम्मद थे। यदि हज़रत ईसा या हज़रत मुहम्मद के समय तक इलहाम होते रहे तो उनके बाद क्यों नहीं हुए? धर्म की दशा

इन महात्माओं के आविर्भाव के बाद की शतियों में अत्यधिक शोचनीय एवं जघन्य रही है। ईसाई कहलाने वाले राष्ट्र आज ईसा के सिद्धान्तों के सर्वथा प्रतिकूल आचरण कर रहे हैं। इस समय कोई नया आत्मा क्यों नहीं अवतीर्ण होता ? यदि अन्तिम इलहाम हज़रत मुहम्मद को ही हुआ और उसके बाद किसी इलहाम की आवश्यकता नहीं रही तो ऐसा इलहाम सृष्टि के आदि में सर्वज्ञ परमात्मा की ओर से भी हो सकता था। बार-बार इलहाम मानने में न केवल अनवस्था दोष है अपितु ईश्वर के स्वरूप पर अपूर्णता, असर्वज्ञता आदि के लांछन लगते हैं। अतः ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के शुरू में होना चाहिये। बाईबल आदि अन्य धर्मग्रन्थ सृष्टि प्रारम्भ होने के बहुत बाद में हुए। वे ईश्वरीय ज्ञान नहीं हो सकते। केवल वेद ही इस कसौटी पर खरे उतरते हैं कि वे मानव जाति के उषाकाल में आविर्भूत हुए। अतः वेद ही ईश्वर-प्रोक्त हैं।

दूसरी कसौटी—

ज्ञान का त्रिकालाबाधित तथा सनातन होना

ईश्वरीय ज्ञान की दूसरी कसौटी यह है कि उसमें सनातन सत्यों का उल्लेख होना चाहिये। किसी देश विशेष का इतिहास या भूगोल नहीं होना चाहिये। ईश्वर का ज्ञान का भूमण्डल के सब प्रणियों के लिए है। वह सृष्टि के आदि में होता है। अतः उसमें स्वाभाविक रूप से भूगोल तथा इतिहास का अभाव होना चाहिये।

बाईबल के पुराने अहदनामे में यहूदी जाति के प्राचीन इतिहास का ही विस्तार से उल्लेख है। उसमें आदम के बाद होने वाले पैग़म्बरों की वंशावलियाँ हैं तथा उनमें से महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की जीवन कथा के महत्वपूर्ण कार्यों का वर्णन है। कुरान शरीफ में भी यही कथायें हैं। हज़रत मुहम्मद के विरोधी उन पर यह आरोप लगाते थे कि वे केवल किस्से सुनाकर लोगों का मनोरंजन करते हैं। उनके किस्सों से अधिक रोचक दूसरे किस्से हैं। अतः इन ग्रन्थों में अनित्य इतिहास होने से इनको ईश्वरप्रोक्त नहीं माना जा सकता।

कहा जाता है, वेद में सिन्धु, गंगा, यमुना, सरस्वती, शतद्रु, परुष्णी, असिकी वितस्ता आदि २५ नदियों के नाम है। गन्धार, पुरु, तुर्वशु, यदु, अनु द्रुह्य आदि जातियों का उल्लेख है। इस सम्बन्ध में एक पृथक निबन्ध में विस्तार से विचार किया गया है। यहाँ इस विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि जिस प्रकार वर्तमान समय में अंग्रेज, डच, जर्मन जातियों ने अमेरिका आस्ट्रेलिया आदि की बस्तियाँ बसाते हुए, नयी बस्तियों के नाम अपनी मातृभूमि के शहरों के नामों के अनुसार रखे, उसी प्रकार प्राचीन काल में आर्यों ने अपने सब नाम वैदिक शब्दों के आधार पर ही रखे। यही बात वेदान्त

भाष्य (१।३।२८) में दोहरायी गयी है। अतः वेदों में इतिहास या भूगोल का निर्देश समझना भ्रमपूर्ण है। वेदों में इस प्रकार का कोई इतिहास या भूगोल नहीं है।

तीसरी कसौटी—

ज्ञान का विज्ञान सम्मत होना

जो ईश्वर प्रोक्त ज्ञान होगा, वह विज्ञान तथा पदार्थ विद्या के सिद्धान्तों के सर्वथा अनुकूल होगा। परमात्मा सर्वज्ञ तथा पूर्ण है, उसका ज्ञान अधूरा और दोषयुक्त कैसे हो सकता है? यदि वह ज्ञान विज्ञान विरोधी है तो वह ईश्वरीय नहीं हो सकता। ईश्वरीय ज्ञान की इस कसौटी पर भी वेद ही खरे उतरते हैं।

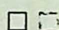
आजकल विद्यालय की प्राथमिक कक्षाओं में अध्ययन करने वाला विद्यार्थी भी यह जानता है कि पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है किन्तु मध्यकाल के सभी ईसाई १४वीं १५वीं शती तक यह मानते थे कि बाईबल के अनुसार सूर्य पृथिवी के चारों ओर घूमता है। पृथिवी सारे विश्व का केन्द्र है। जिन वैज्ञानिकों ने सर्व प्रथम जनता को यह बताना चाहा कि पृथिवी सूर्य का परिभ्रमण करती है, उन्हें भीषण यातनायें सहनी पड़ीं। ब्रूनो (१५४९—१६००) को इस प्रकार का सिद्धान्त प्रचारित करने के अपराध में ज़िन्दा जलवाया गया। गैलेलियो (१५६४—१६४२) को इसी विश्वास के कारण अपनी वृद्धावस्था बन्दीगृह में काटनी पड़ी। बाईबल के अनुसार आज से छः हज़ार वर्ष सृष्ट्युत्पत्ति हुई है। विज्ञान यह मानता है कि इस पृथिवी की उत्पत्ति हुए करोड़ों वर्ष बीत चुके हैं। यदि वास्तव में बाईबल ईश्वरीय ज्ञान है तो उसमें ये विज्ञान विरोधी बातें क्यों पायी जाती हैं?

यही दशा कुरान शरीफ की है। एक सूर में सूर्य को कीचड़ के समुद्र में डूबने वाला बताया गया है। सूर्य न तो कीचड़ के समुद्र में डूबता है और न किसी क्षीर सागर में। पृथिवी को अपने अक्ष पर परिभ्रमण करने से सूर्य उदय और अस्त होता हुआ प्रतीत होता है। इसी तरह एक जगह यह बताया गया है कि पहाड़ पृथिवी पर इसलिए रखे गये हैं कि पृथिवी हिल-डुल न सके किन्तु स्थिर रहे। पहाड़ों को पेपर वेट का उद्देश्य पूरा करने वाला समझना विज्ञान के प्रतिकूल है।

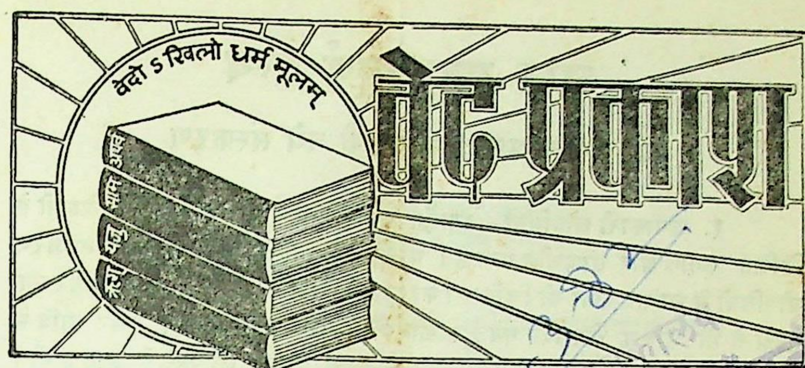
वेद में इस प्रकार की एक भी विज्ञान विरोधी बात नहीं है। वेद में कहा गया है कि परमात्मा ने विश्व को संचालित करने के नियम बनाये। वेद में इन्हीं नियमों का बीज रूप से निदर्शन है। उदाहरणार्थ, पृथिवी के सूर्य के चारों ओर भ्रमण का उल्लेख यजुर्वेद ३।६ ऋग्वेद (८।२।१०।१) में है। अतः ईश्वरीय ज्ञान के विज्ञान सम्मत होने की कसौटी पर वेद ही खरे उतरते हैं।

हमारे देश में यह एक पौराणिक परिपाटी है कि भागीरथी के मुहाने गंगासागर से उसके मूल गंगोत्तरी तक तीर्थ यात्रा की जाती है। यदि हम विभिन्न धर्मों की भागीरथी के मूलस्रोत की यात्रा करें तो हम यह देखेंगे कि इस्लाम की धारा ईसाइयत से निकली है, ईसाइयत यहूदी धर्म व बौद्ध धर्म की शाखा है, बौद्ध धर्म प्राचीन वैदिक धर्म से प्रादुर्भूत हुआ है और यहूदी धर्म पारसी धर्म से। पारसी धर्म का मूल वैदिक धर्म है। इन सब धर्मों के ईश्वरीय माने जाने वाले ग्रन्थों का अन्तिम स्रोत वेद है यह प्रश्न हो सकता है कि वेद का स्रोत क्या है? चारों ओर हिमाच्छादित शिखरों तथा हिमानियों से आवृत प्रदेश में पहुंचकर जब कोई यात्री यह प्रश्न करता है कि गंगोत्तरी की यह धारा कहाँ से प्रवाहित हो रही है तो उसे यही उत्तर दिया जाता है कि आकाश से गिरने वाले हिम से ही इस जाह्नवी का उद्भव हुआ है। इसी प्रकार वेद का उद्भव भी सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वरीय वाणी से हुआ। उसका मूल अन्यत्र नहीं खोजा जा सकता है। परमपिता परमात्मा ही उसके आदि मूल हैं। महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में इसी महान् सत्य को अभिव्यक्त करते हुए कहा है—

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।१।१।२६॥



प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।





वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

श्री पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार को इस कृति पर राजा जी शताब्दी समिति का दस हजार रुपये का पुस्कार घोषित हुआ है। इससे पूर्व इस कृति पर उन्हें ११००-०० का गंगाप्रसाद उपाध्याय पुरस्कार २५००-०० का उत्तर प्रदेश राज्य का पुरस्कार…डालमिया पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

वर्ष १९८१ में पंडित जी को उनकी संस्कृत सेवाओं के कारण राष्ट्रपति का पाँच हजार रुपये वार्षिक का सम्मान भी प्राप्त हुआ है।

५ मार्च १९८२ को पण्डित जी ८४ वर्ष पूरे कर ८५वें वर्ष में पदार्पण किया।

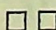
हम वेदप्रकाश परिवार की ओर से उनके शतायु होने की कामना करते हैं।



श्रीकृष्ण चरित

वर्ष १९८१ का १२००-०० रुपये का श्रीकृष्ण चरित पर गंगाप्रसाद उपाध्याय पुरस्कार डॉ० भवानीलाल भारतीय को प्राप्त हुआ है।

वेदप्रकाश परिवार की ओर से उन्हें बधाई।



चार महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

दो नवीन प्रकाशन, दो के नये संस्करण

१. **चमत्कारी ओषधियाँ**—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती की लौह लेखनी से लिखित पठनीय और संग्रहणीय ग्रन्थ है। 'घरेलू ओषधियाँ' की भाँति इसमें भी साधारण ओषधियों से भयंकर रोगों की चिकित्सा का विधान किया गया है। २५० रोगों पर एक सहस्र से भी अधिक रोग दिये गये हैं। कोयले की राख, बड़, पीपल, गूलर आदि में परमात्मा ने कैसी शक्तियाँ भर दी हैं—यह बात इस पुस्तक को पढ़ने से ज्ञात होगी। अपने घर पर बैठे हुए ही आप अपने और अपने परिवार के सदस्यों की चिकित्सा कर सकते हैं। मूल्य ५-०० रुपये मात्र।

२. **भक्ति संगीत शतकम्**—भक्तिरस के १०० भजनों का अनूठा संकलन है। प्रभुभक्ति के इतने भजनों का एक स्थान पर अन्य संकलन मिलना कठिन है। इसमें श्री नाथूराम 'शंकर', महता अमीचन्द, 'केवल', 'चन्द्र', प्रकाश चन्द्र कविरत्न, पं० बुद्धदेव आदि अनेक मूर्धन्य कवियों के भजनों का संकलन किया गया है। भजनों को गाते-गाते पाठक भी भक्तिरस में विभोर हो उठेंगे। ग्रन्थ के संकलनकर्त्ता हैं स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती। मूल्य केवल ३-०० रुपये।

३. **आदर्श परिवार**—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती जी द्वारा लिखित यह ग्रन्थ बहुत दिनों से अप्राप्त था। पाठकों की निरन्तर माँग पर इसे पुनः प्रकाशित किया गया है। हमारे घर कैसे हों, पिता में कौन-से गुण होने चाहिएँ, माता के क्या कर्त्तव्य हैं, पुत्र कैसा होना चाहिए, भाई-बहनों का व्यवहार कैसा हो, विवाह-संस्कार का महत्त्व और रहस्य, पतिव्रता नारी की शक्ति कैसी होती है, विदुर जी के अनुसार गृहस्थ कैसा हो, गृहस्थ के सुमनगुच्छ, आंगल साहित्य में विवाह और विवाहित जीवन—आदि अनेक विषयों का संकलन इस ग्रन्थ में है। यह ग्रन्थ प्रत्येक परिवार में रखने योग्य है। विवाह के अवसर पर वर और वधू को भेंट करने योग्य है। मूल्य केवल ८-०० रुपये।

४. **योगोपनिषत्**—वैदिक साहित्य के महान् मनीषी स्वर्गीय स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ ने लाहौर में यह ग्रन्थ लिखा था। इस ग्रन्थ में वेदों से योग-सम्बन्धी १० मन्त्रों की व्याख्या की है। प्रमाण रूप में उपनिषद्-वाक्यों की झड़ी लगा दी है। योग क्या है, योग कैसे करें, कहाँ करें, क्यों करें आदि सभी प्रश्नों का समाधान इस ग्रन्थ के पारायण से मिल जाएगा। अन्त में सम्पूर्ण 'योग दर्शन' भी संक्षिप्त व्याख्या-सहित दे दिया है। ४३ वर्ष के पश्चात् इस ग्रन्थ-रत्न का दूसरा संस्करण छपा है। इस ग्रन्थ का मूल्य लगभग २ रुपये पचास पैसे है।

सभी पुस्तकों के गैट-अप अत्यन्त सुन्दर, छपाई अत्युत्तम और अशुद्धियों से रहित है। शीघ्र मँगाएँ।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३१, अंक ८] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपये [मार्च, १९८२

सम्पा० : **विजयकुमार** आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

ऋग्वेद-सूक्तिसुधा

संकलनकर्त्ता—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

१. अग्निमीळे।—१।१।१

मैं ज्ञानवान् तथा प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की स्तुति करता हूँ।

२. अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो:।—१।१।२

प्रकाशस्वरूप परमेश्वर श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा भी उपासनीय है।

३. स देवाँ एह वक्षति।—१।१।२

वह प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ही इस ब्रह्माण्ड में सूर्यचन्द्र आदि दिव्य पदार्थों को धारण करता है।

४. अग्निना रयिमश्नवत्।—१।१।३

मनुष्य प्रकाशस्वरूप परमेश्वर से ऐश्वर्य प्राप्त करता है अथवा मनुष्य पुरुषार्थ के द्वारा धन प्राप्त करे, धन कमाये।

५. देवो देवेभिरागमत्।—१।१।५

प्रकाशस्वरूप परमेश्वर विद्वानों के द्वारा प्राप्त किया जाता है अथवा आनन्दप्रद परमेश्वर दिव्य गुणों द्वारा प्राप्त किया जाता है अथवा सर्वप्रकाशक और आनन्दप्रद परमेश्वर दिव्यताओं के साथ हमें प्राप्त हो।

६. दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यति।—१।१।६

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! तू आत्मसमर्पण करने वाले का निश्चय ही कल्याण करेगा।

७. नमो भरन्त एमसि ।—१।१।७

प्रकाशस्वरूप प्रभो ! हम नमस्कार की भेंट लेकर तेरे समीप चले आ रहे हैं ।

८. अग्ने सूपायनो भव ।—१।१।९

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू हमें सरलता से प्राप्त हो ।

९. सचस्व नः स्वस्तये ।—१।१।९

हे प्रभो ! आप हमें इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण के साथ संयुक्त कीजिए ।

१०. जरन्ते त्वामच्छा जरितारः ।—१।२।२

हे शक्तिशाली प्रभो ! उपासक लोग तेरी खूब स्तुति करते हैं ।

११. इन्द्रा याहि चित्रभानो ।—१।३।४

हे ऐश्वर्यशालिन् ! अद्भुत दीप्तियुक्त । तू हमें प्राप्त हो, हमारे हृदय-मन्दिर में साक्षात् दर्शन दे ।

१२. पावकाः न सरस्वती ।—१।३।१०

सरस्वती=विद्या, ज्ञानशक्ति हमें पवित्र करनेवाली है ।

१३. यज्ञं वष्टु धियावसुः ।—१।३।१०

बुद्धिमान मनुष्य शुभकर्म करने की ही कामना करे ।

१४. यज्ञं दधे सरस्वती ।—१।३।११

सरस्वती=विद्या यज्ञ को धारण करती है, अर्थात् लोगों को उत्तम कर्मों में नियुक्त करती है । अथवा वेदवाणी मनुष्यों में यज्ञ की भावना को भरती है ।

१५. मा नो अति ख्य आ गहि ।—१।४।३

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! तू हमारा त्याग मत कर, हमारी उपेक्षा मत कर अपितु, हमारे पास आ, हमें प्राप्त हो ।

१६. पृच्छा विपश्चितम् ।१।४।४

यथार्थ, सत्य कहनेवाले ज्ञानी मनुष्य के पास जाकर उससे पूछ, अपने सन्देह की निवृत्ति कर ।

१७. निदो निरन्यतश्चिदादात् ।—१।४।५

निन्दक लोग दूर देश में चले जाएँ ।

१८. उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुः ।—१।४।५

हमारे शत्रु भी हमें सौभाग्यशाली कहें ।

१९. स्यमेदिन्द्रस्य शर्मणि ।—१।४।६

हम सदा परमेश्वर की ही शरण में रहें ।

२०. प्रावो वाजेषु वाजिनम् ।—१।४।८

हे सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! तू संग्रामों, जीवन संघर्षों में वीर पुरुषों की रक्षा कर ।

२१. तस्मा इन्द्राय गायत ।—१।४।१०

उस ऐश्वर्यशाली प्रभु की स्तुति-गान करो ।

२२. इन्द्रमभि प्र गायत सखायः ।—१।५।१

हे मित्रो ! प्रभु की स्तुति करो, प्रभु के गीत गाओ।

२३. इन्द्रं सोमे सचा सुते ।—१।५।२

ब्रह्मानन्दरस में तृप्त होकर परमेश्वर की स्तुति करो।

२४. त्वां वर्धन्तु नो गिरः ।—१।५।८

हे परमेश्वर ! हमारी वाणियाँ तुझे बढ़ाएँ, तेरी ही महिमा के गीत गाएँ।

२५. मा नो मर्ता अभिद्रुहन् ।—१।५।१०

शत्रुलोग हमसे द्रोह=ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध न करें।

२६. ईशानो यवया वधम् ।—१।५।१०

तू शक्तिशाली बनकर शत्रुओं के शस्त्र को अथवा हिंसा=घात-पात को परे हटा दे।

२७. रोचन्ते रोचना दिवि ।—१।६।१

चमकने वाले आकाश में चमकते हैं।

२८. इन्द्र वाजेषु नोऽव ।—१।७।४

हे परमेश्वर जीवन संग्राम में तू हमारी रक्षा कर।

२९. इन्द्रमर्भे हवामहे ।—१।७।५

हम छोटे संघर्षों में भी परमैश्वर्यशाली परमेश्वर का आह्वान करते हैं।

३०. सत्रादावन्नपा वृधि ।—१।७।६

हे अभीष्टफलदातः ! तू हमारे लिए ज्ञान और ऐश्वर्य के द्वार खोल दे, जिससे हमें ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त हो।

३१. अस्माकमस्तु केवलः ।—१।७।१०

हे परमेश्वर ! हमारे तो केवल आप ही हो। हमें केवल उस प्रभु का ही सहारा हो। May we trust in God and do the right.

३२. जयेम सं युधि स्पृधः ।—१।८।३

हम युद्ध में स्पर्धा करनेवालों को जीतें अथवा हम युद्ध में शत्रुओं के हृदयों को जीतें।

३३. सासह्याम पृतन्यतः ।—१।८।४

हे परमेश्वर ! हम सेना लेकर आक्रमण करने वाले शत्रुओं को पराजित करें अथवा हम आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को निरन्तर पराजित करें !

३४. महाँ इन्द्र परश्च नु ।—१।८।५

सचमुच इन्द्र=परमेश्वर महान् और श्रेष्ठ है।

३५. चोदयेन्द्र राये रभस्वतः ।—१।९।६

हे परमेश्वर ! कर्म करने में समर्थ हम लोगों को ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए उत्तम मार्ग से चला।

३६. विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ।—१।९।७

प्रभो ! हमें रोग रहित, पुष्टियुक्त और सौ वर्ष की पूर्णायु प्रदान कर।

३७. अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ।—१।९।८

हे प्रभो ! हमें महान् यश, अन्न और बल प्रदान कर।

३८. गायन्ति त्वा गायत्रिणः ।—१।१०।१

प्रभो ! सामगान करनेवाले तेरा ही ज्ञान करते हैं, तेरी महिमा के गीत गाते हैं।

३९. अर्चन्त्यर्क मर्किणः ।—१।१०।१

हे परमेश्वर ! वेदज्ञ अर्चना करने योग्य तेरी ही उपासना करते हैं।

४०. इन्द्र यज्ञं च वर्धय ।—१।१०।४

हे परमेश्वर ! हमारे देवपूजा, संगतिकरण और दानरूप यज्ञ को बढ़ा।

४१. तमित् सखित्व ईमहे ।—१।१०।६

हम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर से ही मित्रता के लिए याचना करते हैं।

४२. इन्द्र त्वादातमिद्यशः ।—१।१०।७

हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तेरे द्वारा प्रदत्त धन ही वस्तुतः यश है।

४३. गवामप व्रजं कृधि ।—१।१०।७

हे प्रभो ! गुरो ! तू ज्ञानेन्द्रियों के आवरण को खोल दे, हटा दे।

४४. कृणुष्व राधो अद्रिवः ।—१।१०।७

हे शक्तिशालिन् ! तू हमें ऐश्वर्य, धन प्रदान कर और साधना योग्य ज्ञानोपदेश कर।

४५. सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ।—१।१०।८

हे परमेश्वर ! तू हमारे लिए ज्ञान-रश्मियों की सम्यक् प्रेरणा कर।

४६. आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवम् ।—१।१०।९

भक्तों की प्रार्थना सुननेवाले प्रभो ! हमारी प्रार्थना भी सुन।

४७. नू चिद् दधिष्व मे गिरः ।—१।१०।९

प्रार्थना सुननेवाले इन्द्र ! मेरी प्रार्थनाओं को शीघ्र ग्रहण कर, शीघ्र सुन।

४८. नव्यमायुः प्र सु तिर ।—१।१०।११

हृदय-मन्दिर में निवास करनेवाले इन्द्र ! तू हमें नवीन आयु [नव-जीवन[अथवा कर्मशक्ति प्रदान कर।

४९. जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ।—१।१०।१२

हे स्तुति के योग्य प्रभो ! तेरे द्वारा स्वीकार की गई स्तुतियाँ हमारा आनन्द बढ़ानेवाली हों। अथवा हमारी प्रीतियाँ प्रीतियुक्त हों।

५०. मा भेम शवसस्पते ।—१।११।२

हे बल के स्वामी परमेश्वर ! हम भयभीत न हों।

५१. त्वामभि प्र णोनुमः ।—१।११।२

प्रभो ! हम तुझे बारम्बार प्रणाम करते हैं।

५२. पूर्वीरिन्द्रस्य रातयः ।—१।११।३

ऐश्वर्यशाली परमेश्वर के दान सनातन हैं।

५३. अग्निं दूतं वृणीमहे ।—१।१२।१

हम प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को दूत के रूप में स्वीकार करते हैं।

५४. सदा हवन्त विश्पतिम् ।—१।१२।२

सदा प्रजाओं के पालक परमेश्वर की उपासना करो, सदा उसी को पुकारो।

५५. अग्ने देवां इहा वह । १।१२।३

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू दिव्य गुणों को यहाँ के [उपासक के जीवन में] ले आ, उपासक के जीवन में धारण कर। अथवा हे तेजस्विन् ! तू विद्वान् पुरुषों को प्राप्त कर।

५६. असि होता न ईड्यः ।—१।१२।३

प्रभो ! तू हमारा प्रशंसनीय दाता है।

५७. देवैरा सत्सि बर्हिषि ।—१।१२।४

प्रभो ! तू दिव्यताओं के साथ हमारे हृदय-मन्दिर में विराज।

५८. प्रतिष्म रिषतो दह ।—१।१२।५

हे तेजस्विन् ! तू हिंसक शत्रुओं को एक-एक करके जला डाल।

५९. अग्निनाग्नि समिध्यते ।—१।१२।६

एक ज्योति से दूसरी ज्योति जलती है, जीवन-से-जीवन प्रकाशित होता है।

६०. कविमग्निमुप स्तुहि ।—१।१२।७

क्रान्तदर्शी, बुद्धि से परे विद्यमान् ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की स्तुति [गुणगान] कर।

६१. असि होता मनुर्हितः ।—१।१३।४

परमेश्वर सब सुखों का देने वाला, सब का आश्रय, विद्वानों से जानने योग्य और सबका हितकारी है।

६२. प्र दातुरस्तु चेतनम् ।—१।१३।११

दाता को उत्साह प्राप्त हो।

६३. स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय ।—१।१३।१२

परमेश्वर के लिए आत्मसमर्पण रूपी यज्ञ का अनुष्ठान करो।

६४. मध्वः सुजिह्व पायय ।—१।१४।७

हे उत्तम एवं मधुर वाणी से युक्त प्रभो ! तू हमें मधुर रस का पान करा।

६५. इन्द्र सोमं पिब ऋतुना ।— १।१५।१

हे ऐश्वर्यसम्पन्न आत्मन्। तू श्रेष्ठ आचरण के साथ सोमपान कर, योगाभ्यास द्वारा भक्तिरस का आस्वादन कर।

६६. पोत्राद् यज्ञं पुनीतन ।—१।१५।२

पवित्रता से यज्ञ को पवित्र करो।

६७. अभि यज्ञं गृणीहि नः ।—१।१५।३

प्रभो ! हमारे यज्ञ तो प्रशंसनीय बना।

६८. त्वं हि रत्नधा असि ।—१।१५।३
प्रभो ! तू निःसन्देह रत्नों का धारक है।

६९. पिबा सोममृतूँरनु ।—१।१५।५
हे जीवात्मन् ! तू ऋतु के अनुसार सोमपान कर।

७०. तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ।—१।१५।५
हे परमेश्वर ! तेरी मैत्री अटूट है, वह कभी नष्ट नहीं होती।

७१. द्रविणोदाः पिपीषति । —१।१५।९
धन-प्रदाता सोमपान की इच्छा करता है।

७२. जुहोत प्र च तिष्ठत ।—१।१५।९
यज्ञ करो और प्रतिष्ठा, यश पाओ।

७३. अघ स्मा नो ददिर्भव ।—१।१५।१०
हे धन प्रदातः ! अब तू हमारे लिए निरन्तर धन का दान करने वाला हो।

७४. अश्विना पिबतं मधु ।—१।१५।११
हे अध्यापक और उपदेशक ! तुम दोनों मधु=मधुविद्या अथवा सोमरस का पान करो।

७५. देवान् देवयते यज ।—१।१५।१२
देवत्व प्राप्ति के इच्छुक को विद्वानों का संग और उनका आदर-सत्कार करना चहिए।

७६. इन्द्रं प्रातर्हवामहे ।—१।१६।३
प्रभातवेला में हम ऐश्वर्यशाली प्रभु को पुकारते हैं, उसका स्मरण करते हैं।

७७. सुते हि त्वा हवामहे ।१।१६।४
सोमयाग में हम तुझे [प्रभु को] ही पुकारते हैं।

७८. स्तवाम त्वा स्वाध्यः ।—१।१६।९
ध्यानशील योगी लोग तेरी [प्रभु की] स्तुति और उपासना करते हैं।

७९. युवाकु सुमतीनाम् ।—१।१७।४
हम विद्वानों का सतसङ्ग करें।

८०. भूयाम वाजदाव्नाम् ।—१।१७।४
हम अन्नदान करनेवालों में प्रमुख बनें।

८१. स नः सिषक्तु यस्तुरः ।—१।१८।२
शीघ्रकारी परमेश्वर हम पर सदा कृपा करता रहे। अथवा शीघ्रकारी परमेश्वर हमें अपने साथ संयुक्त करे।

८२. अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।—१।१८।३
हिंसक मनुष्य की विनाशकारी शक्ति सर्वथा नष्ट हो जाए।

८३. रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ।—१।१८।३
हे ब्रह्माण्ड के स्वामी परमेश्वर ! तू हमारी रक्षा कर।

८४. स घा वीरो न रिष्यति।—१।१८।४

वीर पुरुष कभी हिंसित नहीं होता।

८५. सोमो हिनोति मर्त्यम्।—१।१८।४

सोम मनुष्य को बढ़ाता, उन्नत करता है।

८६. दक्षिणा पात्वंहसः।—१।१८।५

पृथिवी [पृथिवी निवासीजन] मनुष्य को पाप से बचाएँ।

८७. मेधामयासिषम्।—१।१८।६

मैं परमेश्वर से मेधाबुद्धि की याचना करता हूँ।

८८. स धीनां योगमिन्वति।—१।१८।७

(सदसरपतिः=हृदय-मन्दिर का स्वामी परमेश्वर) हमारे धारणा-योग को प्रेरित करे। अथवा हमारी बुद्धियों को प्रेरित करे।

८९. मरुद्भिरग्न आ गहि।—१।१९।१

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! तू आनन्दघनों सहित आ, हृदय-मन्दिर में दर्शन दो।

९०. तिरः समुद्रमोजसा।—१।१९।८

हे मानव! तू अपने बाहुबल से समुद्र को लाँघ जा, समुद्र को भी तुच्छ बना।

९१. सृजामि सोम्यं मधु।—१।१९।९

मैं मधुर सोमरस का निष्पादन करता हूँ।

९२. इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम्।—१।२१।५

सेनापति और राजा दुष्ट पुरुषों, राक्षसों को दबा दें, झुका दें, उनके क्रूर कर्मों को छुड़ाकर उन्हें सरल स्वभाव वाले बना दें।

९३. अप्रजाः सन्त्वत्रिणः।—१।२१।५

प्रजा को लूट-खसोटकर खाने वाले सन्तान रहित हों।

९४. दाता राधांसि शुम्भति।—१।२२।८

दानशील मनुष्य न की, ऐश्वर्यों की शोभा बढ़ाता है।

९५. देवा अवन्तु नः।—१।२२।१६

विद्वान् लोग अथवा दिव्य गुण हमारी रक्षा करें।

९६. विष्णोः कर्माणि पश्यत।—१।२२।१९

हे मनुष्य! सर्वव्यापक परमेश्वर के सृष्टि-उत्पत्ति, पालन आदि कर्मों को देखो।

९७. इन्द्रस्व युज्यः सखा।—१।२२।१९

सर्वव्यापक परमेश्वर जीवात्मा का योग्यतम सखा है।

९८. वायो तान् प्रस्थितान् पिब।—१।२३।१

हे परमेश्वर! तू अपनी ओर गति करने वाले मुक्ति के अभिलाषियों की रक्षा कर, उन्हें अपनी शरण में ले।

९९. हत वृत्रं सुदानव ।—१।२३।९

हे उत्तम वेतन प्राप्त करनेवाले सैनिकों ! आप लोग राष्ट्र को घेर लेनेवाले शत्रु को मारो।

१००. मा नो दुःशंस ईशतः ।—१।२३।९

दुष्ट, पाप-प्रशंसक हम पर शासन न करे ।

१०१. यच्छुभं याथना नरः ।—१।२३।११

हे नरो ! जो शुभ है, जो सुखप्रद पदार्थ हैं, उन्हें प्राप्त करो।

१०२. मरुतो मृळयन्तु नः ।—१।२३।१२

धीर, वेगवान् सैनिक हमारी रक्षा करें और हमें सुखी करें।

१०३. अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् ।—१।२३।१९

जल के भीतर अमृत है, औषधि है ।

१०४. देवा भवत वाजिनः ।—१।२३।१९

हे मनुष्यो ! तुम दिव्यगुणयुक्त और शक्तिशाली बनो।

१०५. रसेन समगस्महि ।—१।२३।२३

हम परस्पर प्रेमपूर्वक मिलें।

१०६. सं माग्ने वर्चसा सृज ।—१।२३।२४

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! मुझे तेज से संयुक्त कर।

१०७. मनामहे चारु देवस्य नाम ।—१।२४।१

हम सर्वप्रकाशक और आनन्दप्रद परमेश्वर के सुन्दर नाम 'ओ३म्' का चिन्तन् मनन और स्मरण करें।

१०८. सदावन् भागमीमहे ।—१।२४।३

हे सर्वदा रक्षा करनेवाले देव ! हम तुझसे उपभोग के लिए धन माँगते हैं।

१०९. मूर्धानं राय आरभे ।—१।२४।५

हम धन के शिखर पर चढ़कर महान् कर्तव्यों को आरम्भ करें।

११०. अस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ।—१।२४।७

हमारे अन्तःकरण में ज्ञान रश्मियाँ फैली हुई हों।

१११. बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः ।—१।२४।९

हे प्रभो ! तू अपनी कृपा से दुःख, संकट, आपत्ति, दुर्गति और पाप प्रवृत्ति को दूर ही रोक दे।

११२. कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ।—१।२४।९

देव ! किये हुए पाप-अपराध को हमसे दूर हटा दे (हम पुनः पुनः उस पाप को न करें) अथवा मुझे पापमय जीवन से ऊपर उठाइए।

११३. अदब्धा नि वरुणस्य व्रतानि ।—१।२४।१०

पाप-निवारक परमेश्वर के नियम अटूट हैं।

११४. उरुशंस मा न आयु प्र मोषीः ।—१।२४।११

बहुतों द्वारा प्रशंसित देव ! हमारी आयु को मत घटा, हमारी आयु=जीवन को बर्बाद मत होने दे ।

११५. अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ।—१।२४।१२

वरणीय एवं पाप निवारक परमेश्वर हम सब को बन्धनमुक्त करे ।

११६. राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ।—१।२४।१४

हे दीप्तिमान् राजन् ! परमेश्वर ! तू हमारे किए हुए पापों को शिथिल करके विनष्ट कर ।

११७. अनागसो अदितये स्याम ।—१।२४।१५

मोक्ष-प्राप्ति के लिए हम निष्पाप बने ।

११८. वेदा य उपजायते ।—१।२५।८

जो जानता है, वही प्राप्त करता है ।

११९. वेदा य अध्यासते ।—१।२५।९

जो जानते हैं, वे ही मानते हैं ।

१२०. इमं मे वरुण श्रुधी ।१।२५।१९

हे वरणीय प्रभो ! मेरी इस टेर, निवेदन, प्रार्थना को सुन ।

१२१. नो अध्वरं यज ।—१।२६।१

हे शक्तिशालिन् ! तू हमारे यज्ञ का सञ्चालन कर, हमारे जीवन यज्ञ को भली भाँति संगत कर ।

१२२. प्रियो नो अस्तु विश्पतिः ।—१।२६।७

प्रजाओं का पालक, ब्रह्माण्डनायक परमेश्वर हमारा प्रिय, प्रीतिपात्र हो ।

१२३. मिथः सन्तु प्रशस्तयः ।—१।२६।९

भक्त और भगवान् हम दोनों की परस्पर प्रशंसाएँ हों । अथवा हम लोग परस्पर एक-दूसरे के प्रशंसक हों ।

१२४. पाहि सदमिद्विश्वायुः ।—१।२७।३

हे समस्त विश्व में व्यापक, पूर्णायु प्रदाता परमेश्वर ! तू सदा हमारी रक्षा कर ।

१२५. यजाम देवान् यदि शक्नवाम ।—१।२७।१३

यदि हम सशक्त तथा सामर्थ्यवान् हों तो जितना भी हो सके हम देवों=विद्वानों का सङ्ग करें ।

१५६. मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ।— १।२७।१३

हे विद्वानो ! मैं अपनों से बड़ों कीं कीर्ति को न काटूँ, कीर्ति को नष्ट न करूँ। अथवा मैं अपनों से बड़ों का आदर करना कभी न छोड़ूँ ।

१२७. द्युमत्तमं वद ।—१।२८।५

हे उपदेशक ! तू ओजस्वी भाषण कर ।

१२८. आ तू न इन्द्र शंसय।—१।२९।१

हे ऐश्वर्यशाली प्रभो। अब तो तू हमें प्रख्यात कर दे।

१२९. ससन्तु त्या अरातयोः।—१।२९।४

अदानशील, शत्रुगण अचेत होकर सोये रहें।

१३०. बोधन्तु शूर रातयः।—१।२९।४

हे शूरवीर ! दानशील प्रजाएँ सदा जागरूक, सावधान रहें।

१३१. समिन्द्र गर्दभं मृण।—१।२९।५

हे इन्द्र ! राजन् ! तू मूर्खता को, कर्णकटु बोलनेवाले निन्दक और गधे के समान मूर्ख एवं नीच मनुष्य को परे भगा, मसल डाल। अथवा हे इन्द्र ! तू हमारी मूर्खता को कुचल डाल।

१३२. सर्वं परिक्रोशं जहि।—१।२९।७

हे राजन् ! तू आक्रोश करनेवाले दुष्ट पुरुषों को नष्ट कर। अथवा शक्तिशाली इन्द्र ! आत्मन् ! तू सब रोना-धोना बन्द कर। अथवा तू सब प्रकार के मात्सर्य का परित्याग कर।

१३३. जम्भया कृकदाश्वम्।—१।२९।७

हे राजन् ! तू हिंसकों, दुःख देनेवाले और डाकूओं को मिटा दे।

१३४. मंहिष्ठ सिञ्च इन्दुभिः।—१।३०।१

प्रभो ! दानशील पुरुष को ऐश्वर्यों से सींच, बढ़ा।

१३५. विभूतिरस्तु सूनृता।—१।३०।५

ऐश्वर्य सुसत्य हो, ऐश्वर्य मधुरवाणी से युक्त हो अर्थात् ऐश्वर्य के साथ जीवन में माधुर्य और सत्य भी हो।

१३६. त्वा वयं विश्ववाराऽऽशास्महे।—१।३०।१०

हे सबके द्वारा वरणीय प्रभो ! हम आप से आशीर्वाद माँगते हैं।

१३७. सनिता सनये स नोऽदात्।—१।३०।१६

ऐश्वर्यों का दाता वह परमेश्वर हमें दान देने के लिए धन प्रदान करे।

१३८. अस्ये रयिं नि धारय।—१।३०।२२

हे उषा देवी ! तू हमें स्वास्थ्य, सौन्दर्य और सम्पत्तिरूपी धन प्रदान कर।

१३९. देवो देवानामभवः शिवः सखा।—१।३१।१

आनन्दप्रद परमात्मा विद्वानों का कल्याणकारी मित्र है।

१४०. मरुतो भ्राजदृष्टयः।—१।३१।१

शत्रुहन्ता वीर पुरुष चमचमाते शस्त्रों से युक्त हों, क्षत्रिय तीक्ष्णायुधों से सम्पन्न हों।

१४१. त्वमग्ने प्रथमः।—१।३१।३

हे तेजस्विन् ! तू अग्रगामी बन।

१४२. अजयो महो वसो।—१।३१।३

हे ब्रह्मचारिन् ! ज्ञानिन् ! तू अपने से बड़ों का सत्सङ्ग किया कर।

१४३. यशसं कारुं कृणुहि।१।३१।८

प्रभो ! तू कर्मशील शिल्पी को यशस्वी बना। अथवा तू हमें यश और कर्म करने का सामर्थ्य प्रदान कर।

१४४. ऋध्याम कर्मापसा नवेन।—१।३१।८

हम सदा नये-नये प्रयत्न और उत्साह से अपने उद्देश्य को प्राप्त करें।

१४५. कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे।—१।३१।६

हे मङ्गलमय प्रभो ! तू कर्मशील जीव के लिए सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला है।

१४६. त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नः।—१।३१।१०

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तू विशेष ज्ञानी है और तू हमारा पिता है।

१४७. त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम्।—१।३१।१०

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू जीवन और बलप्रदाता है तथा हम सब जीवगण तेरे बन्धु हैं।

१४८. त्वमग्ने यज्यवे पायुः।—१।३१।१३

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! तू यज्ञशील, उपासक और भक्तजन की रक्षा करनेवाला है।

१४६. सोम्यानां भृमिरसि।—१।३१।१६

हे परमेश्वर ! आप शान्त स्वभाववाले भक्तों को अधर्म से धर्म की ओर घुमानेवाले हैं।

१५०. अग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व।—१।३१।१८

हे ज्ञानिन् ! तू वेदज्ञान और बल से बढ़, समृद्ध बन।

१५१. प्र णेऽध्यभि वस्यो अस्मान्।—१।३१।१८

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! हमें उत्तम धनैश्वर्य प्राप्त करा।

१५२. सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या।—१।३१।१८

हे परमेश्वर ! तू हमें उत्तम मति, बुद्धि तथा ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त कर।

१५३. इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचम्।—१।३२।१

मैं सूर्य के समान तेजस्वी राजा के पराक्रमपूर्ण कर्मों का वर्णन करता हूँ।

१५४. अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः।—१।३२।२

प्रत्यक्षतः जल-प्रवाह वेग से समुद्र की ओर जाते हैं।

१५५. इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा।—१।३२।१५

परमेश्वर चेतन और जड़, चलनेवाले और स्थिर सभी पदार्थों का एकमात्र राजा है।

१५६. मा पणिर्भूः।—१।३३।३

हे मानव ? तू वणिक्—बनिया मत बन।

१५७. वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेन।—१।३३।४

तू धनैश्वर्ययुक्त दस्यु को घन [आघातकारी शस्त्र] से मार डाल।

१५८. अयज्वानः सनका प्रेतिमीयुः ।—१।३३।४

यज्ञ न करनेवाले, अधार्मिक, परस्पर द्रोही, दूसरों का माल हड़प करनेवाले क्षुद्र मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हों।

१५९. उग्र निरव्रतां अधमो रोदस्योः ।—१।३३।५

हे प्रचण्ड राजन् ! तू सदाचाररहित, प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवाले शत्रुओं को पृथिवी और आकाश—दोनों में से सर्वथा नष्ट कर दे।

१६०. शत्रूयतामधरा वेदनाकः ।—१।३३।१५

हे राजन् ! तू शत्रुता करनेवाले द्रोहियों को अत्यधिक पीड़ित कर।

१६१. प्रायुस्तारिष्टम् ।—१।३४।११

हे स्त्री-पुरुषो ! तुम दोनों अपनी आयु को खूब बढ़ाओ।

१६२. नी रपाँसि मृक्षतम् ।—१।३४।११

हे स्त्री-पुरुषो ! तुम मलों, दोषों और पापकृत्यों को सर्वथा दूर करो।

१६३. सेधतं द्वेषम् ।—१।३४।११

हे स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों द्वेष=वैरभाव को मार भगाओ।

१६४. महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयः ।—१।३६।३

सत्यनिष्ठ महात्माओं का तेज चारों ओर फैलता है।

१६५. यक्षि देवान्त्सुवीर्या ।—१।३६।६

प्रभावशाली देवों का अर्चन=सत्कार करो।

१६६. सं सीदस्व महाँ असि ।—१।३६।९

हे देव ! तू महान् है, तू सभाआदि में सम्यक् तथा अधिकारपूर्वक यथास्थान बठ।

१६७. रायस्पूर्धि स्वधावः ।—१।३६।१२

हे अन्नादि ऐश्वर्य के स्वामी प्रभो ! हमें भरपूर ऐश्वर्य प्रदान कर।

१६८ नो मृळ महाँ असि ।—१।३६।१२

प्रभो ! तू महान् है, सबसे बड़ा है, अतः हमें सुखी कर।

१६९. ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता ।—१।३५।१३

ऊँचे उठकर अर्थात् समृद्ध बनकर अपने आश्रितों के अन्नदाता बनो।

१७०. ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसः ।—१।३६।१४

हे प्रकाशस्तम्भ प्रभो ! सर्वतो महान् तू हमें पाप से बचा।

१७१. विश्वं समत्रिणं दह ।—१।३६।१४

प्रभो ! लूट-मार कर खानेवाले काम-क्रोध आदि समस्त राक्षसों को भस्म कर दो।

१७२. कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे ।—१।३६।१४

प्रभो ! धर्माचरण और दीर्घजीवन की प्राप्ति के लिए तू हमें उन्नत कर। अथवा हमें उन्नत कर ताकि हम संसार में सम्मानपूर्वक जी सकें।

१७३. **पाहि नो अग्ने रक्षसः।**—१।३६।१५

हे प्रभो ! राजन् ! हमें राक्षसों=दुष्ट पुरुषों से बचा।

१७४. **पाहि धूर्तेरराव्णः।**—१।३६।१५

हे तेजस्वरूप प्रभो ! तू हमें कंजूस धूर्तों से बचा।

१७५. **घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णः।**—१।३६।१६

हे राजन् ! तू अदानशील शत्रुओं को चारों ओर से ऐसे नष्ट कर दे जैसे घन से पत्थर तोड़ते हैं।

१७६. **मा नः स रिपुरीशत।**—१।३६।१६

पापी शत्रु हम पर कभी प्रभुता या शासन न करे।

१७७. **देवत्तं ब्रह्म गायत।**—१।३७।४

हे मनुष्यो ! तुम परमेश्वर द्वारा प्रदत्त महान् वेदज्ञान का गान करो।

१७८. **को वो वर्षिष्ठः।**—१।३७।६

हे मनुष्यो ! आप लोगों में सबसे बड़ा कौन है ? तुम लोगों में सबसे बड़ा 'कः' प्रजापति परमेश्वर ही है।

१७९. **नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः।**—१।३७।६

हे नरो ! तुम द्युलोक और भूलोक को भी कँपानेवाले हो।

१८०. **प्र यात शीभमा शुभिः।**—१।३७।१४

हे विद्वान् लोगो ! आप शीघ्रगामी यानों द्वारा वेगपूर्वक गमन करो।

१८१. **क्वो विश्वानि सौभगा।**—१।३८।३

हे विद्वज्जनो ! आपका समस्त सौभाग्य, सुखप्रद ऐश्वर्य कहाँ है ?

१८२. **मिमीहि श्लोकमास्ये।**—१।३८।१४

तू अपने मुख में वेद मन्त्रों को भर ले अर्थात् वेदवाणी को कण्ठस्थ कर ले।

१८३. **स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे।**—१।३९।२

हे सैनिको ! शत्रुओं को परे धकेलने के लिए तुम्हारे हथियार अचूक और सुदृढ़ हों।

१८४. **युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी।**—१।३९।२

तुम्हारा बल, शक्ति या सामर्थ्य प्रशंसनीय हो।

१८५. **असाम्योजो बिभृथा सुदानवः।**—१।३९।१०

शत्रुओं का मान भङ्ग करनेवाले वीर पुरुषो ! आप लोग पूर्ण बल, पराक्रम को धारण करो।

१८६. **उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते।**—१।४०।१

हे वेद की रक्षा करनेवाले ! सावधान होकर सबके हितार्थ प्रयत्न करो। अथवा उठो और वेदप्रचार करो।

१८७. **उप प्र यन्तु मरुतः।**—१।४०।१

विद्वज्जन, विद्या प्रचारक और वीर पुरुष आगे बढ़ें।

१८८. देवा यज्ञं नयन्तु नः।—१।४०।३
विद्वान् लोग हमारे यज्ञ का संचालन करें।
१८९. न दुरुक्ताय स्पृहयेत्।—१।४१।९
कटु, कठोर और कड़वा बोलनेवाले से प्रेम मत करो।
१९०. सं पूषन्नध्वनस्तिर।—१।४२।१
हे सर्वपोषक प्रभो ! आप हमें दुःख के मार्ग से पार कीजिए।
१९१. व्यंहो विमुचो नपात्।—१।४२।१
हे अविनाशी परमेश्वर ? आप हमें पाप से, रोगादि दुःखों से मुक्त कीजिए।
१९२. सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः।—१।४२।१
हे दिव्यगुणयुक्त प्रभो ! हमें जीवन-मार्ग में आगे बढ़ाइए।
१९३. पदाभि तिष्ठ तपुषिम्।—१।४२।४
हे राजन् ! प्रजा को सन्ताप देनेवाले दुष्ट अत्याचारी को पैर से कुचल दे।
१९४. धनानि सुषणा कृधि।—१।४२।६
धनों को सुख से सेवन करने योग्य बना।
१९५. सुगान सुपथा कृणु।—१।४२।७
हे पूषन् ! हमारे मार्ग को सरल और उत्तम बना।
१९६. पूषन्निह क्रतुं विदः।—१।४२।७
हे पूषन् हमें उत्तम ज्ञान, उत्तम संकल्प और उत्तम कर्म प्राप्त करा।
१९७. न पूषणं मेथामसि।—१।४२।१०
हम लोग सबके पोषण करनेवाले मनुष्य को न मारें।
१९८. वसूनि दस्म मीमहे।—१।४२।१०
हम दर्शनीय धनों को चाहते हैं।
१९९. वोचेम शं त मं हृदे।—१।४३।१
हम हृदय को अति शान्ति देनेवाले वचन बोलें।
२००. शंयोः सुम्नमीमहे।—१।४३।४
हम परमेश्वर से अति शान्तिदायक और दुःखनाशक परमसुख=मोक्ष की याचना करते हैं।
२०१. श्रेष्ठो देवानां वसुः।—१।४३।५
देवों=विद्वानों का ऐश्वर्य श्रेष्ठ होता है।
२०२. मारातयो जुहुरन्त।—१।४३।८
अदानशील कंजूस और शत्रु हमें न सताएँ, हमारा घात-पात न करें।
२०३. आ न इन्दो वाजे भज।—१।४३।८
हे दयालो ! हमारे कल्याण के लिए तू हमें युद्ध में, जीवन संघर्षों में, यज्ञ में नियुक्त कर।
२०४. अस्मे धेहि श्रवो बृहत्।—१।४४।२
हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू हमें महान् यश और विपुल धन प्रदान कर।

२०५. स्त विष्यामि त्वामहम् ।—१।४४।५
हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! मैं तेरा स्तवन=गुणगान करूँगा।
२०६. नमस्या देव्यं जनम् ।—१।४४।६
हे मनुष्य ! तू दिव्य गुणयुक्त विद्वानों का सदा आदर कर।
२०७, श्रुधि श्रुत्कर्ण ।—१।४४।१३
हे पुकार सुननेवाले ! मेरी प्रार्थना को सुन।
२०८. प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ।—१।४५।३
हे प्रभो ! तू अत्यन्त मेधावी जनों की प्रार्थना को सुन।
२०९. अर्वाञ्च दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः ।—१।४५।१०
हे विद्वन् ! समीप आये हुए दिव्य जनों का उत्तम भाषण के साथ आदरपूर्वक सत्कार करो।
२१०. अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया ।—१।४६।११
यज्ञ अथवा सत्य का मार्ग दुःख से पार जाने के लिए सबसे श्रेष्ठ है।
२११. युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।—१।४८।४
विद्वान् लोग अपने मन को धनादि का दान करने में लगाते हैं।
२१२. उषा उच्छदप स्रिधः ।—१।४८।८
उषा हिंसक शत्रुओं को दूर करती है।
२१३. उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण ।—१।४८।९
हे उषा ! तू आह्लाददायक प्रकाश से प्रकाशित हो।
२१४. उषो वाजं हि वंस्व ।—१।४८।११
हे कान्तिमति कमनीय कन्ये ! तू अन्न, ऐश्वर्य, बल और ज्ञान को प्राप्त कर।
२१५. उषा ददातु सुग्म्यम् ।—१।४८।१३
उषा हमें स्वास्थ्य, सौन्दर्य, दीर्घायु आदि सुखकारक धन प्रदान करे।
२१६. त्वं वरुण पश्यसि ।—१।५०।६
हे सर्वश्रेष्ठ एवं वरणीय परमेश्वर ! तू सब प्राणियों को अपनी कृपा दृष्टि से देख रहा है।
२१७. मो अहं द्विषते रधम् ।—१।५७।१३
मैं द्वेषी=शत्रु के प्रति भी अहित, बुराई न करूँ।
२१८. आवहो वसु ।—१।५१।३
हे परमेश्वर ! तू हमें धन प्राप्त करा।
२१९. त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः ।—१।५१।५
हे राजन् ! तू मायावियों, धोखेबाजों को माया [छल-कपट] द्वारा ही मार डाल।
२२०. वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ।—१।५१।७
हे राजन् ! तू शत्रु के सब बलों को निर्मूल कर दे।

२२१. **विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवः।**—१।५१।८

हे राजन् ! विद्वन् ! तू आर्य=श्रेष्ठ पुरुषों और दस्यु=चोर-डाकुओं को जान।

२२२. **शाकी भव।**—१।५१।८

हे मनुष्य। तू सामर्थ्यवान्, शक्तिशाली बन।

२२३. **वभ्रो वि जघान संदिहः।**—१।५१।९

अध्यवसायी सन्देहों को नष्ट कर देता है।

२२४. **इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति।**—१।५१।११

राजा कुटिल-से-कुटिल शत्रु पर भी शासन करता है।

२२५. **तव शर्मन्त्स्याम।**—१।५१।१५

हे प्रभो ! राजन् ! हम सदा तेरी ही शरण में रहें।

२२६. **इन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः।**—१।५२।१

मैं अपनी रक्षा के लिए हृदय-ग्राही स्तुतियों से परमेश्वर का वर्णन करता हूँ।

६२७. **स हि द्वरो द्वरिषु।**—१।५२।३

द्वारा में द्वार वह परमेश्वर ही है। अथवा इन्द्र शत्रुओं का कट्टर शत्रु है।

२२८. **निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम्।**—१।५२।६

हे राजन् ! तू विद्युत् के समान गर्जनकारी अस्त्र का प्रयोग करके प्रबल शत्रु-सेना पर प्रहार कर।

२२९. **त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः।**—१।५२।१२

हे प्रभो ! तू इस पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश के परे भी विद्यमान है।

२३०. **सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान्।**—१।५२।१३

प्रभो ! सचमुच यह सत्य है कि तुझ जैसा कोई दूसरा नहीं है, तू अद्वितीय है।

२३१. **न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते।**—१।५३।१

दानशील पुरुषों के सम्बन्ध में बुरे वचन कभी नहीं कहने चाहिएँ—दानी की निन्दा नहीं करनी चाहिए।

२३२. **संगृभ्याभिभूत आ भर।**—१।५३।३

हे ऐश्वर्य के स्वामिन् ! मैं तेरा आश्रय लेकर रहूँ और तू मुझे ऐश्वर्यों से पूर्ण कर।

२३३. **मा त्वयतो जरितुः काममूनयीः।**—१।५३।३

हे परमेश्वर ! तुझे चाहनेवाले अपने भक्त की अभिलाषा को तू कभी नष्ट मत होने दे, अपूर्ण न रहने दे, उसकी अभिलाषा को पूर्ण कर।

२३४. **समिन्द्र राया समिषा रभेमहि।**—१।५३।५

हे परमेश्वर ! हम अन्न, धन और प्रबल इच्छा से युक्त होकर कार्य आरम्भ करें। अथवा हम अन्न और धन से अच्छी प्रकार आनन्दित हों।

—(क्रमशः)

शोक समाचार

गत वर्ष अनेक महानुभाव हमसे बिछुड़ गये। 'वेदप्रकाश' परिवार की ओर से सभी के लिए श्रद्धांजलि समर्पित है। प्रभु दिवंगत आत्माओं को सद्गति और उनके परिवारों को दुःख-सहन की सामर्थ्य प्रदान करें—

१.	सर्वश्री बहादुर दत्त जी शास्त्री, फिजी	६-६-८१
२.	गोपालदत्त, शास्त्री, कोटद्वार	३०-८-८१
३.	ला० जगत् नारायण, लुधियाना	९-९-८१
४.	श्री भद्रपाल जी आर्य, भजनोपदेशक	२९-९-८१
५.	श्री महेन्द्रदेव शास्त्री, दिल्ली	
६.	श्री परम वेदालंकार, दिल्ली	१०-१०-८१
७.	श्री सुरेन्द्रकुमार कपूर (रामलाल ट्रस्ट), अमृतसर	२५-१०-८१
८.	श्री रामदयालु जी शास्त्री, अलीगढ़	२१-११-८१
९.	श्री दीपचन्द्र जी आर्य (आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट), दिल्ली	२८-१२-८१
१०.	श्री त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री, जालन्धर	२९-१२-८१
११.	स्वामी ओमाश्रित सरस्वती, दिल्ली	९-१-८२

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स (सेण्ट्रल) रूल्स १९५६ नियम ८ के अन्तर्गत 'वेदप्रकाश' पत्र के सम्बन्ध में स्वामित्व तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा

(फार्म ४)

१. प्रकाशन स्थान	:	दिल्ली
२. प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३. मुद्रक का नाम	:	विजयकुमार
४. प्रकाशक का नाम	:	विजयकुमार
५. सम्पादक का नाम	:	विजयकुमार
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	४४०८, नई सड़क, दिल्ली।
६. स्वामित्व	:	गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली।

मैं विजयकुमार एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

दिल्ली १ मार्च, १९८२। **प्रकाशक—विजयकुमार**

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल	१५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय	४५.००
सत्यार्थ सरस्वती	२५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष	९.००

प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था	८.००

प्रो० विष्णुदयाल (मौरिशस)

वेद भगवान बोले	६.००
वेदों के अनुपम विचार	६.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथिवी सूक्त)	१.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए०

यज्ञ की महिमा	१.५०

नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम	३५.००
सु-राज्य की रूपरेखा	०.५०

पं० बिहारीलाल शास्त्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल के रहस्य	१.५०

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान	१.००
वेद और आत्मा	२.००

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली	८.००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द	४.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	१.००
शंका-समाधान	१.००
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	१.००

महात्मा नारायण स्वामी

कर्तव्यदर्पण	५.००
प्राणायाम विधि	१.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय	१.००

कई पुरस्कृत लेखों का संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज	५.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश	२५.००
आर्योद्देश्यरत्नमाला	०.२५
व्यवहारभानु	१.००

बालोपयोगी

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार	०.६०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	१.५०
स्वामी श्रद्धानन्द	१.५०
गुरु विरजानन्द	१.५०
पं० लेखराम	१.५०
पं० गुरुदत्त	१.५०
स्वामी दर्शनानन्द	१.५०

स्वामी दर्शनानन्द

बालशिक्षा-धर्मशिक्षा	१.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	तृतीय भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	पंचम भाग	२.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ भाग	२.००
नैतिक शिक्षा	सप्तम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	अष्टम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	२.००
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	२.००

पाठकों के विशेष आग्रह पर

वर्षों बाद पुनः प्रकाशित

श्रीमद्दयानन्द चित्रावली

यह पुस्तक स्वामी दयानन्द जी के तपोनिष्ठ जीवन की एक अनूठी झाँकी प्रस्तुत करने के साथ, उनके जीवन की कुछ अविस्मरणीय घटनाओं के इकरंगे और बहुरंगे चित्रों से भी सुसज्जित है।

छपाई मोटे अक्षरों में और बढ़िया कागज़ पर कराई गई है। अधिक प्रतियाँ मँगवाने पर अधिक कमीशन दिया जाएगा।

मूल्य : आठ रुपये मात्र

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	५.००
तत्वज्ञान	१५.००
मानव और मानवता	२०.००
प्रभुमिलन की राह	१५.००
घोर घने जंगल में	१५.००
प्रभुभक्ति	५.००
महामन्त्र	४.००
आनन्द गायत्री-कथा	३.००
उपनिषदों का सन्देश	१०.००
एक ही रास्ता	४.००
मानव-जीवन-गाथा	५.००
सुखी गृहस्थ	४.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.५०
प्रभु-दर्शन	१२.००
दो रास्ते	१२.००
यह धन किसका है ?	१०.००
भक्त और भगवान्	४.५०
बोध कथाएँ	१२.००
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

आनन्द स्वामी जीवनी (उर्दू)	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	५०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
घरेलू ओषधियाँ	५.००
वैदिक विवाहपद्धति	४.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
कुछ करो कुछ बनो	६.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सामवेद सूक्ति-सुधा	३.००
यजुर्वेद-सूक्ति-सुधा	३.००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्यसत्संग गुटका	१.२५
वैदिक यज्ञप्रकाश	०.७५
पंचयज्ञ प्रकाशिका	३.००

भजन पुस्तकें

गीत भण्डार (संकलन)	४.००
गीत श्रद्धांजलि	१.५०

चित्र - चित्र - चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन	२० × ३०	३.००
महर्षि दयानन्द एक रंग	१८ × २२	२.००
गुरु विरजानन्द एक रंग	१८ × २२	२.००
स्वामी श्रद्धानन्द ,,	,,	२.००
स्वामी दर्शनानन्द ,,	,,	२.००
म० हंसराज ,,	,,	२.००

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन

आप क्या नहीं कर सकते ?	३.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ?	३.००
हँसते-हँसते कसे जियें ?	३.००
जो चाहें सो कैसे पायें ?	३.००
अपना खर्च कैसे घटायें ?	३.००
अवसर को पहचानो !	३.००
अपने आपको पहचानिए !	३.००
आप सफल कैसे हों ?	३.००
उन्नति कैसे करें ?	३.००
धनकुबेर कैसे बनें ?	३.००

मनहर चौहान

महाभारत	५.००
रामायण	५.००

गोपालकृष्ण कौल

पंचतन्त्र	१२.००

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भस्थिति प्रसव और शिशुपालन	१२.००

सुशीला कपूर

सुबोध मेक-अप	४.००

मीनाक्षी धींगड़ा

आधुनिक पाक-कला	१२.००
मिष्ठान्न कला	१२.००
शर्बत आइसक्रीम स्क्वैश	१२.००
अचार मुरब्बे चटनी	१२.००

हयात

रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक	६.००
सुबोध ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	५.००
सुबोध ट्रांजिस्टर गाइड	५.००

अनिल कुमार

अंग्रेजी बोलना कैसे सीखें	५.००

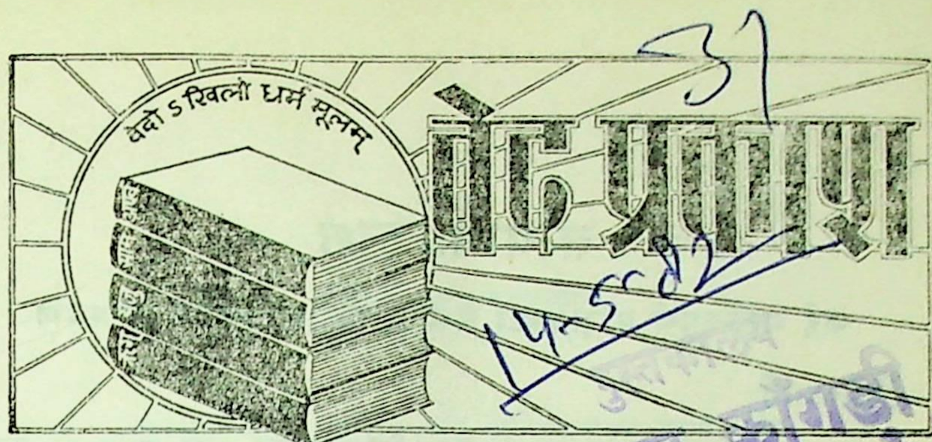
योगाचार्य भगवान्देव

स्वास्थ्य और योगासन	५.००

डा० समरसेन

घरेलू इलाज	१२.००
मोटापा कैसे घटायें	१२.००
योगासन से इलाज	८.००
प्राकृतिक चिकित्सा	१२.००
जूडो कुंगफू कराटे राजीव	६.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय ४४०८, नई सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।



प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार का अभिनन्दन

(गोविन्दराम हासानन्द संस्था के अध्यक्ष विजयकुमार जी द्वारा आयोजित)

गुरुकुल कांगड़ी के भूतपूर्व कुलपति तथा संसद सदस्य को इस वर्ष राष्ट्रपति द्वारा संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् के रूप में सम्मानित किया गया। पहली अप्रैल को चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचार्य की स्मृति में इसी वर्ष स्थापित राजाजी शताब्दी पुरस्कार प्रो० सत्यव्रत जी को उनकी पुस्तक 'वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार' ग्रन्थ पर मद्रास में दिया गया। उनकी इस रचना को १९७५ से १९८० तक की हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक रचना माना गया।

दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उनका सार्वजनिक अभिनन्दन पहली मई को कान्स्टीट्यूशन क्लब में आयोजित किया।

वैदिक विद्वान् श्री मनोहर विद्यालंकार ने गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक मण्डल की ओर से माला पहनाते हुए प्रो० सत्यव्रत जी का अभिनन्दन इन शब्दों में किया—वैदिक परम्परा में मनु के अनुसार नवग्व दशक में पहुँचने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ऋषि माना गया है। इस दृष्टि से पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार नवग्व ऋषि हैं, क्योंकि उनकी आयु ८५ वर्ष है। पण्डित जी राज्यसभा के मनोनीत सदस्य रहे हैं इसलिए उन्हें राजर्षि कहा जा सकता है और वैदिक विचारधारा अर्थात् ब्रह्म के वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करने के कारण वे ब्रह्मर्षि हैं। इस प्रकार से ऋषि, राजर्षि और ब्रह्मर्षि रूप में पं० सत्यव्रत जी का मैं अभिनन्दन करता हूँ।

भूतपूर्व संसद सदस्य श्री शंकरदयाल सिंह ने पण्डित जी की पुस्तक का हवाला देते हुए कहा कि विज्ञान एक लंगड़े के समान है, धर्म एक अन्धे के समान। बिना विज्ञान के धर्म अधूरा है और बिना धर्म के विज्ञान अधूरा है। लेखक ने ज्ञान और विज्ञान के सेतु के रूप में मनोविज्ञान को भी लिया है तभी मन, चेतन, ईश्वर, कर्म, शिक्षा, जीवन पुनर्जन्म और मृत्यु की मीमांसा पण्डित जी ने सफलता से की है।

केन्द्रीय लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष श्री पाडुरंग राव ने पण्डितजी को सम्मानार्थ शाल उढ़ाई। सभा में दिल्ली के गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। सार्वदेशिक, आर्य जगत्, आर्य सन्देश के सम्पादक, सार्वदेशिक सभा, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के अधिकारी, वरिष्ठ पत्रकार, कवि, समालोचक तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं की उपस्थिति से सभा शोभायमान थी।

—**सम्पादक**

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३१, अंक १०] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपये [मई, १९८२

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेद-सुधा

—श्री लालचन्द जी

त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेषु ऐरयत रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥

साम० उत्तर० ॥१०१९॥ ऋ० ९।१०२।३॥

यह सोम (अस्य त्रितस्य सुक्रतुः) इन तीनों ज्ञान, कर्म और भक्तियोग के समन्वय करनेवाले, सत्कर्मों को करने वाले साधक की (त्रीणि पृष्ठेषु) तीनों भूमिकाओं में (रयिम् ऐरयत) कान्तिमय ऐश्वर्य को प्रकट करता है और (योजना) समन्वय योग द्वारा (विमिमीते) विशेष प्रकार से निर्माण करता है ।

सोम, अर्थात् ज्ञानमय भक्तिभाव, किस साधक में उदय होता है ?

जो मनुष्य सत् ज्ञान प्राप्त करके सत्कर्म करता है और सम्पूर्णभाव से कर्तव्य में जुटा रहता है उसके अंतःकरण में सोम का उदय होता है, इसी प्रकार वह जो ज्ञान-कर्म-भक्तियोग की साधना कर रहा है उसकी तीनों भूमिकाओं में, ज्ञानतन्तुओं के केन्द्रों में, क्रान्ति होती है । उसका मस्तिष्क सही-सही सोचता है, उसके हृदय के भाव पवित्र होते हैं और उसमें अपने-आप में विश्वास होता है । ऐसे साधक का मस्तिष्क हृदय और वर्चस का केन्द्र पवित्र रहते हैं, इस समन्वय योग से सत् ज्ञानपूर्वक पूर्णसत्कर्म करने से उस श्रेष्ठ कर्म करने वाले व्यक्ति के लिए ज्ञानमय भक्तिभाव उसके अंतःकरण में उदय होकर उसमें निर्माण-शक्ति उत्पन्न करता है । सोम का विलक्षण प्रभाव है । शुद्ध अंतःकरण में यह उदय होता है, निर्मल बुद्धि द्वारा परिष्कृत किया जाता है, यह भक्तिभाव अन्धविश्वास में नहीं बदलता; अर्थात् यह ज्ञानमय बना रहता है और इससे मनुष्य को अपूर्व शक्ति, साहस, बल, वीर्य, तेज और ओज अपने में अनुभव होता है ।

यह सोम सारे केन्द्रों पर अपना प्रभाव डालता है। पर योगी जनों का अनुभव है कि तीन विशेष केन्द्रों पर इसका प्रभाव अधिक होता है। ब्रह्मइन्द्र चक्र, अनाहतचक्र और स्वाधिष्ठानचक्र अर्थात्, मस्तिष्क का ऊपर का भाग (ललाट) हृदय और वीर्य का केन्द्र। मनुष्य दृढ़ संकल्प, प्रेमयुक्त और तेजस्वी हो जाता है। जिसके अंतःकरण में ज्ञानमय भक्तिभाव उदय हो रहा है वह पराक्रमी, धैर्यवान् ऋताचारी होता है। उसके आठों चक्रों में द्युति, कान्ति और ज्योति चमकती है; उसका स्वाधिष्ठान चक्र तो विशेषतः कान्तिमय होता है। उसका वीर्य शुद्ध होता है। उसकी वर्चस-शक्ति अपने हित में तथा सबके हित में लगती है। उसके पवित्र हृदय में शुद्ध भाव ही उदय होते रहते हैं जो सशक्त विचारों में परिणत होकर सत्य शिव-संकल्प का रूप धारण करते हैं और सुन्दर कार्यों के कारण बनते हैं। इस प्रकार ज्ञानमय भक्तिभाव का प्रभाव ऐसा विलक्षण होता है कि ऐसे व्यक्ति की सभी साधना पूरी होती हैं, उसकी योजना विफल नहीं होतीं, उसमें अपने चरित्र-निर्माण की तथा अन्य जनों के चरित्र-निर्माण की क्षमता हो जाती है। इस प्रकार ज्ञानमय भक्ति-भाव-सम्पन्न व्यक्ति अपना, अपने परिवार का, तथा सारे समाज का परम हित करने में समर्थ होता है।

जिस व्यक्ति के शुद्ध अंतःकरण में पवित्र ज्ञानमय भक्तिभाव बहता रहता है वह प्रेमधारा आनन्द-रस के साथ मिल कर एक बड़े वेग से चलने वाला प्रवाह बन जाता है और ऐसे मनुष्य में आनन्दता वास करती है; वह सब ही से विश्वास, सौजन्य, सौहार्द और प्रेम का व्यवहार करता हुआ सदा प्रसन्न रहता है। ऐसा व्यक्ति भौतिक, दैहिक और आत्मिक ऐश्वर्य पाता है और उसे सर्व मंगल के कार्यों में लगाता है। ज्ञानकर्म और भक्ति योग का समन्वय मनुष्य में शक्ति-सामर्थ्य और दक्षता ले आता है और उसमें निःस्वार्थ जनसेवा की भावना उदय रहती है। यही यज्ञ-भावना है जिससे सबका अभ्युदय और कल्याण होता है।

आर्यसमाज का प्रथम नियम

—श्री चुन्नीलाल

सब सत्य विद्या और जो पदार्थ-विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

प्रस्तुत नियम श्री महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज द्वारा प्रतिपादित दर्शन तथा आर्यसमाज की मूल प्रतिष्ठा है। महर्षि ने इस नियम में मानो गागर में सागर भर दिया है। जीवन-जगत् के प्रति अपने दार्शनिक एवं व्यावहारिक विचारों तथा मन्तव्यों को आर्यसमाज के नियमों में संक्षिप्त किन्तु बड़ी उत्तमता से प्रस्थापित किया है। नियमों में प्रथम नियम की रचना सिद्धान्त की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस नियम की महत्ता तथा सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा को सुस्थिर रखने के लिए यह आवश्यक है कि नियम को ठीक-ठीक समझा जाये।

यह नामरूपात्मक जगत्, जड़ जगत् प्रकृति और चेतन जीवों, दो नित्य अनादि तत्त्वों के मेल का परिणाम है। किन्तु इन दोनों तत्त्वों का यथातथ्य सम्मिलन, नित्य

अनादि प्रकृति के द्वारा नित्य अनादि जीवों के लिए समस्त लोक-लोकान्तर, पिण्ड और ब्रह्माण्ड का रचयिता और नियामक है। सृष्टि-उत्पत्ति के इस अभिक्रम में ईश्वर, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी नक्षत्रादि लोक-लोकान्तरों की रचना करके वृक्षादि वनस्पतियों, कीट-पतंग, पशु-पक्षियों तथा सृष्टि के शिरमौर्य प्राणी मनुष्यों को उत्पन्न कर समस्त आत्म-अनात्म जगत् को जानना तथा उनसे यथावत् उपयोग लेने की साधनभूत सब सत्य विद्या विज्ञान-रूप वेदों को उत्पन्न करता है। इस प्रकार की अपेक्षा होती है। इन तीनों कारणों की व्याख्या में महर्षि लिखते हैं कि—'निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने। आप स्वयं बने नहीं, दूसरों को प्रकारान्तर बना देवे। दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं कि जिसके विना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर रूप होके बने, और बिगड़े भी। तीसरा साधारण कारण उसको कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो। निमित्त कारण दो प्रकार के हैं, एक—सब सृष्टि को कारण से बनाने, धारने और प्रलय करने तथा सबकी व्यवस्था रखने वाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा। दूसरा—परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेकविध कार्यान्तर बनाने वाला साधारण निमित्त कारण जीव। उपादान-कारण प्रकृति, परमाणु जिसको सब संसार को बनाने की सामग्री कहते हैं।' (स० प्र० समु० ८) जगत् के ये तीनों ही कारण शाश्वत, अनादि, परस्पर एक-दूसरे से भिन्न स्वरूप वाले हैं।

उपर्युक्त नियम में सबका आदिमूल परमेश्वर को बताया गया है। यद्यपि जगत् के बनने में ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों कारणों को महत्ता प्राप्त है, अर्थात् विना इन तीनों कारणों के जगत् बन ही नहीं सकता, तथापि आदि कारणता ईश्वर को ही प्राप्त है। इसका कारण यह है कि प्रकृति ज्ञानशून्य जड़ होने से स्वयं न तो बन सकती है और न बिगड़ सकती है। विज्ञान का यह एक नियम है कि प्रत्येक जड़ वस्तुएँ अपनी स्थिर या गतिशील अवस्था में ही बनी रहना चाहती हैं, जब तक कि उस पर कोई बाह्य बल लग कर उसको अपनी अवस्था-परिवर्तन के लिए बाध्य न करे। अभिप्राय यह है कि जड़ प्रकृति और उसके कार्य-पदार्थों में स्वयमेव कोई ऐसी इच्छा नहीं होती जिससे कि वह अपनी अचल अथवा चल अवस्था में कोई परिवर्तन कर सके। अतः सृष्टि के आरम्भ में प्रकृति के इस अवस्था-परिवर्तन तथा कार्य सृष्टि के रूप में आने के लिए सर्वसामर्थ्य-सम्पन्न चैतन्य बल की अपेक्षा हुआ करती है। जीवात्मा एकदेशीय, अल्पज्ञ तथा अल्प सामर्थ्य वाला होने से सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रकृति-परमाणुओं को ग्रहण कर उनके द्वारा चित्र-विचित्र सृष्टि की रचना करने में सर्वथा असमर्थ है। केवल परमात्मा ही अपनी सर्वज्ञता, सर्व-व्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता तथा स्वाभाविक ज्ञान-बल-क्रिया के द्वारा प्रकृति-परमाणुओं से दृश्य-अदृश्य सम्पूर्ण नाम रूपात्मक सृष्टि की रचना, स्थिति और संहार करने में पूर्ण समर्थ है। वह स्वयं गति में न आकर सबको गतिमान बना देता, निश्चित नियमों के अन्तर्गत संयुक्त और वियुक्त करता तथा स्वयं अपरिवर्तित रह अपनी अनन्त क्रिया के द्वारा जड़ प्रकृति को कारण से कार्यरूप में परिणत कर देता है। इस प्रकार परमेश्वर इस दृश्य और अदृश्य नामरूपात्मक कार्य-जगत् का आदिकारण है।

ईश्वर को आदिकारणता प्राप्त होने के हेतुओं का ऊपर उल्लेख किया गया।

अब 'पदार्थ विद्या' पद पर कुछ प्रकाश डालना अपेक्षित है। नियम में इस पद का प्रयोग उपर्युक्त सिद्धान्त को यथातथ्य स्थिर रखने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पदार्थ-विद्या से लोकविद्या अथवा समस्त भौतिक विद्या-विज्ञानों को ग्रहण किया हुआ है, जैसा कि महर्षि के ही मन्तव्यों से प्रकट होता है। परन्तु प्रायः देखा जाता है कि 'पदार्थ' शब्द 'विद्या' शब्द से पृथक् लिखा जाता तथा लगता है। पाठक भी उसे वैसे ही पृथक् 'जो' शब्द के साथ पाठ करते तथा अर्थ समझते हैं। यथा—"सब सत्य विद्या और विद्या से जो पदार्थ जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।" 'पदार्थ' शब्द का यह प्रयोग पाठ और अर्थ-सिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल है, वह इसलिए कि आत्म और अनात्म तथा कार्य और कारण-जगत् का ज्ञान विद्या द्वारा ही हुआ करता है। जैसाकि विद्या शब्द की व्याख्या में महर्षि ने स्पष्ट उल्लेख कर दिया है कि—'वेत्ति यथावत्तत्त्वपदार्थस्वरूपं यया सा विद्या।'—अर्थात् जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह विद्या कहाती है। 'जिससे पृथिवी से ले के परमेश्वर-पर्यन्त यथार्थ ज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना हो—वह विद्या है।' (स० प्र० समु० ९, ८ क्रम से)। इस दृष्टि से जब 'पदार्थ' शब्द को 'विद्या' शब्द से पृथक् 'जो' शब्द के साथ पाठ और अर्थ करेंगे तो इस प्रयोग का जो अर्थ निष्पन्न होगा उसका अभिप्राय यह होगा कि ईश्वर नामरूपात्मक भौतिक कार्यजगत् का ही नहीं अपितु इसके कारणजगत् प्रकृति-परमाणुओं तथा चेतन जीवात्माओं का भी कारण है। इस प्रकार 'पदार्थ' शब्द के अपने उचित स्थान से हट जाने पर अर्थ का भयंकर अनर्थ उत्पन्न करता है, जो सारे सिद्धान्तों को धराशायी कर देता है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि नियम में इसके प्रयोग लेखन, प्रकाशन, पाठ और अर्थ करने के प्रति सावधानी वर्तें।

नियम में 'पदार्थ विद्या' पद के औचित्य को मानने के लिए 'सब सत्य विद्या' पद को भी समझ लेना आवश्यक है। तीसरे नियम में महर्षि की यह सुनिश्चित योजना है कि 'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है।' वेदों में सन्निहित विद्याओं को मुण्डकोपनिषद् में अपरा और परा दो भागों में बाँटा गया है। अपरा विद्या जिसके द्वारा विनाशी कार्यरूप सृष्टि तथा उसमें विद्यमान पदार्थों एवं परस्पराश्रित कार्य-कारणता का ज्ञान होता है। इसी विद्या का निर्देश नियम में 'पदार्थ विद्या' से किया हुआ है—और दूसरी; पराविद्या जिसके द्वारा अक्षर-अनात्म भेद से दो विभाग हैं। एक तो चेतन आत्मतत्त्व ईश्वर और जीव, दूसरा अनात्म तत्त्व जड़ प्रकृति। प्रकृति कार्यरूप से क्षर-विनाशी और कारणरूप से अक्षर-अविनाशी है। पराविद्या अन्तःप्रेक्षण की प्रक्रिया से आत्म-अनात्म तत्त्वों का भेद ज्ञात होकर आत्मज्ञान से सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् परमात्मा-तत्त्व की उपलब्धि होती है। अतः इस विद्या को अध्यात्म-विद्या वा ब्रह्म-विद्या के नाम से भी कहा जाता है। वेदों के प्रतिपाद्य विषय ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान का निर्देश करते हुए महर्षि 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' में लिखते हैं कि—"विज्ञान उसको कहते हैं कि जो कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों से यथावत् उपयोग लेना और परमेश्वर से लेके तृण-पर्यन्त पदार्थों का साक्षात् बोध का होना, उनसे यथावत् उपयोग का करना, सो भी दो प्रकार का है—एक तो परमेश्वर का ज्ञान और उसकी आज्ञा का बराबर पालन करना,

और दूसरा यह कि उसके रचे सब पदार्थों के गुणों को यथावत् विचार के उनसे कार्य सिद्ध करना, अर्थात् ईश्वर ने कौन-कौन पदार्थ किस-किस प्रयोजन के लिए रचे हैं।" इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्या-विज्ञान के दोनों विभागों परा विद्या=आत्मविज्ञान और अपरा विद्या=पदार्थविज्ञान अथवा भौतिक विज्ञान को, जिसके अन्तर्गत वेद की विविध विद्याओं का समावेश है, 'सब सत्य विद्या' पद से सम्बोधित किया हुआ है। चूँकि वेद परमात्मा का ज्ञान होने से नित्य और सत्य है, इसलिए वेद की सब विद्याएँ भी नित्य और सत्य हैं। ऐसा महर्षि का सुनिश्चित मन्तव्य है।

नियम की व्याख्या संक्षेप में इन शब्दों में की जा सकती है कि—सब सत्य विद्या (अर्थात् चारों वेद) और दृश्य-अदृश्य नामरूपात्मक कार्यसृष्टि—जो पदार्थ-विद्या अथवा भौतिक विज्ञान से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल अथवा मुख्य निमित्त कारण परमेश्वर है।

पञ्च महायज्ञ

—श्री विश्वबन्धु

आर्य-धर्म की विशालता का यह एक लक्षण है कि उसमें मनुष्यों को पढ़ने वाले बालकों के समान समझ कर उनके साथ यथायोग्य व्यवहार किया गया है। दशमी श्रेणी का विद्यार्थी जिस बात को साधारण प्रयत्न से समझ जाता है, वह आठवीं वाले के लिए अति कठिन होती है। तीसरी और चौथी वालों के लिए वह पत्थर के समान होती है और प्रथमा वालों की तो यहाँ गिनती ही नहीं। परन्तु पत्थर पड़ें उस अध्यापक की बुद्धि पर जो केवल उस एक बात की कसौटी पर सारे लड़कों की परीक्षा लेने का साहस ही नहीं करता, वरन् जो ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सकते, उन्हें बाहर निकालने की मूर्खता भी करता है। लोग उस अध्यापक की निन्दा करते हैं और उसे विद्यालय से निकलवाने का यत्न करते हैं। वे उस शिक्षक को पसन्द करते हैं जो बड़े, छोटे, सब लड़कों को उनकी कक्षा के अनुसार पाठ पढ़ाता और परीक्षा में बिठाता है। हाँ, कोई-कोई बात ऐसी भी हो सकती है, जिसे सबको जानना चाहिए। जैसे, इन्स्पेक्टर साहब के आने पर प्रत्येक कक्षा पंक्ति बाँधे खड़ी हो। जो-जो विद्यार्थी, चाहे वे किसी कक्षा के हों, चपलता करेंगे और पंक्ति को बिगाड़ेंगे, अध्यापक उन सबको डाँटेगा और कभी-कभी चुपके से चपेट भी लगा देगा।

प्राचीन आर्य ऋषि इस अच्छे अध्यापक के समान थे। वर्णाश्रम-धर्म का उपदेश करके उन्होंने प्रकाशित कर दिया है कि वे मनुष्यों के आपस में सूक्ष्म भेदों को समझते हैं और प्रत्येक कोटि के साधक के साथ प्रेम करने को तैयार हैं। हाँ, प्रत्येक मानव-कक्षा के अपने-अपने अधिकार और कर्तव्य निश्चित हैं। जहाँ राजा को अश्वमेध यज्ञ करने का अधिकार है, वहाँ प्रजा-पालन का कर्तव्य-भार भी इसके सिर पर है। एक जुलाहा दिन-भर परिश्रम कर पाँच-सात गज कपड़ा बुनकर आराम से रात को अपने परिवार में बैठ कर भोजन करता और निश्चिन्त होकर लेट जाता है, पर राजा और उसके मन्त्री

चिन्तातुर हो रहे हैं कि शत्रु ने आक्रमण की तैयारी कर दी है और दूत ने अभी आकर सारा समाचार सुनाया है।

परन्तु धार्मिक दृष्टि से जुलाहा, राजा और उसके ब्राह्मण मन्त्री, सभी आर्य-धर्म के आवश्यक अंग हैं। जो धर्मोपदेशक इस तत्त्व को न समझ कर थोड़ी योग्यता वाले लोगों को दुत्कारेगा, वह निश्चय रूप से, अपने ही पाँव पर आप कुल्हाड़ी चलायेगा। भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रजा मिलकर ही एक राष्ट्र की शोभा है। वह किसान मूर्ख गिना जाता है जो बछड़ों को इसलिए नहीं पालता कि वे बड़े बैलों की तरह हल चलाने में असमर्थ हैं। आज आर्य-धर्म की नौका भँवर में क्यों चकरा रही है? विचारशील लोग अनुभव कर रहे हैं कि हमने अपने पूर्वजों की गहरी नीति को भुलाकर एक ही धर्म के अनुयायियों के मध्य में उच्चता और नीचता के पहाड़ खड़े कर दिए हैं। भला, कहीं और भी यह दुर्घट घटना देखी है कि एक ही धर्म के मानने वाले परस्पर स्पर्श या छायामात्र से अपवित्र हो जाते हों? आए दिन की मन्द अवस्था का मूल कारण यही हमारी अपनी बेसमझी है।

सनातन आर्य-धर्म के अनुसार विशेष लोग विशेष कर्म अपने-अपने ढंग पर करें, परन्तु कुछ ऐसे भी नित्य-कर्म बतलाए गए हैं जिन्हें सभी गृहस्थ प्रतिदिन किया करें, धनी हो या निर्धन, बड़ा हो या छोटा, प्रत्येक के लिए आवश्यक होने से उन नित्य यज्ञों का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। वे मनुष्य मात्र के समान कर्म हैं। इसलिए उन्हें महायज्ञ कहते हैं। अपनी-अपनी अवस्थानुसार, वे दो पैसे में भी और दो रुपए में भी किए जा सकते हैं। खर्च का प्रश्न मुख्य नहीं, प्रतिदिन कर्तव्यपरायण होकर, श्रद्धापूर्वक करना ही मुख्य गुण है। जो ठीक-ठीक पालन करता है वह आर्य है और प्राचीन प्रथानुसार उसे कोई जन समाज से बहिष्कृत न कर सकता था। परन्तु आज निराली ही अन्ध-व्यवस्था चल रही है। इस धर्म का स्वयं पालन न करने वाले, शेष सारे लोगों को बाहर धकेलने की शपथ खाए बैठे हैं। प्रभु इस जाति को इन बुद्धि के धनियों से छुट्टी दिलाएँ! ये महायज्ञ पाँच हैं—१. ब्रह्मयज्ञ, २. देवयज्ञ, ३. पितृयज्ञ, ४. अतिथियज्ञ और ५. भूतयज्ञ।

१. **ब्रह्मयज्ञ**—प्रतिदिन प्रातः तथा सायंकाल प्रभु के चरणों में उपस्थित होकर, अपने विनय तथा प्रेम का प्रकाश करना और परम पिता के गुणों की आराधना करना ब्रह्मयज्ञ का एक भाग है। स्वाध्याय अर्थात् मोक्ष-शास्त्रों का अध्ययन करना दूसरा भाग है। स्वाध्यायशील मनुष्य सदा ऋषियों का सत्संग करता है। शास्त्रों को पढ़ने तथा उनकी बातों पर आचरण करने से, उनकी सचाई का अनुभव होता है और धर्म में श्रद्धा बढ़ती है—

"यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते॥" (यजु० ४।२०॥)

अर्थ—(यथा यथा) ज्यों-ज्यों (पुरुषः) पुरुष (शास्त्रम्) शास्त्र को (सम्-अधि-गच्छति) समझता जाता है, (तथा तथा) त्यों-त्यों (वि-जानाति) विशेष जानता जाता है (च) और (अस्य) उसको (विज्ञानम्) विज्ञान (रोचते) रुचिकर होता है।

स्वाध्याय करने वाला आत्मा के स्वरूप से भली-भाँति परिचित होकर ठीक-ठीक

चिन्तन करना सीख जाता है। अन्यथा, ज्ञानरहित भक्तिमार्ग समय पाकर अनेक अन्ध-विश्वासों तथा मिथ्या रीतियों का मूल स्रोत बन जाता है। स्वाध्याय करने से योग के वास्तव मार्ग पर चलना आ जाता है और संध्योपासना-योग द्वारा आत्मिक मर्मों के मनन का अभ्यास हो जाता है। जब स्वाध्याय तथा भक्तियोग दोनों में सम्पन्न हो जाता है, तो प्रभु के प्रकाश का पात्र बनता है।

**"स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते॥"**

अर्थ—(स्वाध्यायात्) स्वाध्याय से (योगम्) योग को (आसीत) धारण करे (योगात्) योग से (स्वाध्यायम्) स्वाध्याय को (आमनेत्) मनन करे (स्वाध्याय-योग-सम्पत्त्या) स्वाध्याय और योग, दोनों को पा लेने पर (परमात्मा) प्रभु (प्रकाशते) प्रकाश करते हैं।

जीवित महात्माओं का सत्संग बड़ा लाभदायक होता है। परन्तु, प्रथम तो ऐसे सज्जनों का सर्वत्र मिलना ही कठिन है। और फिर, चाहे कोई कितना ही उन्नत क्यों न हो, उसमें दोषों की भी सम्भावना है। कई बार जो दूर से श्रद्धा होती है, वह समीप आने पर भागने लगती है। कोई-कोई साधक ही मधुमक्खी की नाईं आक और धतूरे में से भी मधु निकाल सकता है। साधारण जनों में यह सामर्थ्य नहीं होती और कुछ दूसरे पामर लोग उन्हें बहका भी देते हैं। जहाँ प्रत्येक साधक को गुणग्राही होना चाहिए, वहाँ विशेष रूप से प्राचीन ऋषियों के चरणों में बैठकर, अपना चित्र देखने का अभ्यास करना चाहिए। धन्य हैं वे महर्षि, जो सहस्रों वर्षों से मर्त्य भौतिक देह को छोड़ चुके हैं, पर अपने विचारों के देह द्वारा अब भी हमारे पास विराजमान हैं। उनकी यशोध्वजा भारत के माथे का भूषण बन रही है। हमारे लिए यह बड़ा लाभदायक होगा कि हम अपने घरों में उनके ग्रन्थों का संग्रह करें और प्रतिदिन थोड़ा-बहुत समय उनकी सेवा में व्यतीत करें।

२. **देवयज्ञ**— इस प्रकार ब्रह्म अर्थात् ईश्वर और वेद के सत्संग से पवित्र हो कर मनुष्य को चाहिए कि देवताओं का सत्संग करे। वह घर आर्य घर नहीं, जहाँ नित्य अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास, चातुर्मास्य तथा अन्य यज्ञ नहीं होते रहते। देव का अर्थ परमात्मा है। प्राकृतिक ज्योतियों, शक्तियों और विभूतियों को भी देव कहते हैं। समाज में चमकने वाले विद्वान् जनों को भी देव कहते हैं। संक्षेप यह है कि आर्य लोग 'देव' शब्द वहाँ प्रयुक्त करते हैं, जहाँ प्रकाश, बल तथा परोपकार के भावों का विकास पाया जावे। इसी कारण से उपर्युक्त पदार्थों को देव कहते हैं।

साधक को उचित है कि ब्रह्मयज्ञ में विशेष रूप से प्रभु के आन्तरिक प्रकाश को देखने के लिए उत्सुक हो कर अन्तर्मुख होने का अभ्यास करे। देवयज्ञ में उसकी बाह्य विभूतियों और चमत्कारों का ध्यान करता हुआ, उसके विराट् स्वरूप का चिन्तन करे। प्रत्येक भौतिक देवता में प्रभु के प्रकाश की रेखा को देखने का अभ्यास करे। प्रतिक्षण, उसके रचे हुए यज्ञ का चिन्तन करता हुआ, अपने अन्दर से स्वार्थ तथा तुच्छता के बीजों और अंकुरों को बाहर उखाड़ फैंकने का प्रयत्न करता रहे। एक प्रकार से देवयज्ञ सारे छोटे-बड़े यज्ञों का बोधक है, परन्तु प्रयोगवश, अब नित्य अग्निहोत्र के कृत्य को ही इस शब्द से स्मरण करते हैं।

३. पितृयज्ञ—प्रतिदिन अपने माता-पिता तथा अन्य आश्रित सम्बन्धियों की सेवा तथा तृप्ति का ठीक-ठीक प्रबन्ध करना ही इस यज्ञ का तात्पर्य है। माता-पिता, अपने सन्तान के लिए जो-जो कष्ट उठाते और अपना आराम छोड़ कर, अपने बच्चों के लिए जो कुछ करते हैं, उसका चुका सकना असम्भव है। यह प्रभु की महिमा ही समझो कि प्रत्येक माता-पिता के अन्दर, बिना प्रत्युपकार की आशा के, सन्तति के पालन-पोषण का भाव स्वाभाविक रूप से ही विद्यमान रहता है। यह वृत्ति पशुओं में भी पाई जाती है। परन्तु मनुष्य का बच्चा अधिक सावधानी से तथा चिरकाल तक माता-पिता के ध्यान की अपेक्षा करता है। जिन बालकों के सिरों से छोटी आयु में ही उनका, विशेषकर माता का, हाथ उठ जाता है, वे जब तक जीते हैं, उस त्रुटि को अनुभव किया करते हैं। आर्य-धर्म में कुलों की मर्यादा की रक्षा करना धर्म का अंग माना गया है। यह तभी हो सकता है, जब वृद्ध माता-पिता के प्रति सन्तान अपने कर्त्तव्य का पालन करे। जैसे वे स्वभाव से अपने बच्चों के पालन तथा शिक्षण का प्रबन्ध करते हैं, ऐसे ही सन्तान को भी चाहिए कि बड़े होकर घर को सँभालें और वृद्धों की पूजा तथा सेवा करते रहें।

४. अतिथियज्ञ—यह चौथा महायज्ञ वहीं हो सकता है, जहाँ पितृयज्ञ की प्रतिष्ठा हो। जब कोई विद्वान्, सदाचारी, संन्यासी, महात्मा, अनुभवी, सज्जन हमारे यहाँ आ पहुँचे, तो हमारा द्वार उसका स्वागत करने के लिए सदा खुला रहना चाहिए। वेदादि शास्त्रों में ऐसे ही अतिथियों का वर्णन किया गया है। अपने इष्ट, मित्र तथा सम्बन्धिवर्ग की सेवा करना ही अतिथियज्ञ नहीं हो सकता। वे तो अपने-अपने अधिकारों से ही सेवा करा लेंगे। उनका सत्कार करना कुल-मर्यादा की रक्षा में निमित्त होने के कारण पितृयज्ञ का ही एक अंग समझना चाहिए। अतिथि से तात्पर्य तो ऐसे महात्माओं से है, जिनके आने-जाने के विषय में हमें विशेष ज्ञान नहीं होता। वे सामाजिक मर्यादा की रक्षार्थ प्रचार करते हुए सदा देशाटन करते रहते हैं। कुल-मर्यादा के पीछे ही देश अथवा समाज की मर्यादा का प्रसंग आ सकता है। इसलिए यह बात स्वतःसिद्ध है कि जो लोग पितृयज्ञ की महिमा भूल चुके हों, वे आर्य-धर्म की नीति के अनुसार अतिथियज्ञ की महिमा का भी अनुमान नहीं कर सकते।

आर्य-धर्म की यह व्यवस्था थी कि जो लोग उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए सब बन्धनों से मुक्त हो जाएँ, जिन्हें न पुत्र-पौत्र की लालसा, न धन-सम्पत्ति की तृष्णा और न यश और कीर्त्ति की कामना अब सताती हो अर्थात् जो व्यक्तिगत उन्नति की अवधि से ऊपर उठ कर प्रभु के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हों, वे संन्यासी बन, देश-देशान्तर तथा द्वीप-द्वीपान्तर में घूम-घूम कर धर्म-पथ पर लोगों को चलाते रहें। इसीलिए इन्हें परिव्राजक कहते हैं। अब भी साधु-महात्मा सारा वर्ष तीर्थाटन और देशाटन करते रहते हैं। जो साधु होकर एक स्थान पर डेरा डाल कर बैठ जाता है, सम्प्रदाय में उसकी निंदा होती है। यह और बात है कि अधिकांश साधु घूमने को ही साध्य समझ रहे हैं और धर्मोपदेश का कार्य शिथिल पड़ चुका है। जब यह मर्यादा स्थापित थी, तो वैतनिक प्रचारक रखने की प्रथा अनावश्यक थी। वस्तुतः धर्म-प्रचार की यह रीति अब आ कर दूसरों से नकल की गई है। अभी तक आर्य जाति के स्वभाव ने इसे पूर्णतया नहीं अपनाया।

परन्तु प्राचीन व्यवस्था भी नहीं रही। परिणाम यह है कि धर्म की मर्यादा स्थिर नहीं रही। जातीय और धार्मिक संगठन को दृढ़ करने के लिए पुरानी परिपाटी को पुनर्जीवित करना अत्यावश्यक है। सच्चे साधु-महात्माओं को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। जो ब्राह्मण गृहस्थ होता हुआ भी इस पवित्र कार्य में अग्रसर हो सकता है, वह धन्य है। परन्तु प्रचारकों का उत्साह तब अधिक बढ़ेगा, जब गृहस्थ लोग अपना आतिथ्य और सेवा-भाव जागृत करेंगे।

५. **भूतयज्ञ**—पाँचवें महायज्ञ द्वारा प्राणिमात्र से सहानुभूति प्रकट करने का उपदेश है। ब्रह्मयज्ञ में महान् प्रभु का ध्यान कर, साधक महान् बनना चाहता है, क्योंकि जिस प्रकार के संकल्पमय आदर्श हमारे सम्मुख होते हैं, हम वैसे ही ढलते जाते हैं। देवयज्ञ में वह भौतिक देवताओं में प्रभु की ज्योति को अनुभव करता हुआ, उनके समान उपकारी बनने का यत्न करता है। पितृयज्ञ पारिवारिक एकता का बढ़ाने वाला है। अतिथियज्ञ जातीय प्रेम तथा संगठन का अभ्यास-क्षेत्र है। और अन्त में सब संकोच का त्याग सिखाने के लिए भूतयज्ञ आता है। जैसे ब्रह्म सबके हृदय में निवास करता है, ऐसे ही साधक भी प्राणिमात्र के हृदय में प्रविष्ट होकर उस ब्रह्म का अनुभव प्राप्त करे। किसी के हृदय में निवास करना हो, तो उसके साथ सच्चा प्रेम और उसकी सदा सहायता करो। जब घर में भोजन तैयार हो, तो अपने-आप ही न खाने बैठ जाया करो। कोई पापरोगी, कुष्ठी, पंगु, कंगला द्वार पर खड़ा हो या भूखा पास ही किसी अन्नदाता की प्रतीक्षा करता हो, तो जाओ, प्रथम उसका पेट भरो! इसी प्रकार कुत्ता, बिल्ली, चिड़िया, कौआ आदि प्राणियों का पालन करो।

आर्य जाति में इस पवित्र धर्म का अंकुर अभी तक विद्यमान है। लोग कीड़े-मकोड़ों के बिलों पर आटा बिखेरते हैं, मछलियों को अन्न डालते हैं और मण्डियों में पक्षियों के लिए दाना डाला जाता है। पशुओं के लिए लवण के बड़े-बड़े ढेले अब भी मार्गों पर रखे रहते हैं, परन्तु यह धर्म शनैः-शनैः कम हो रहे हैं। समय के वायुमण्डल में ही कुछ अन्तर है। यह रिवाज आर्यधर्म के विशाल देह के सुन्दर अंग हैं। आर्यधर्म को जागृत दशा में लाने के लिए इन्हें पुनर्जीवित करना होगा। इन सब धर्मों का पालन जातीय समृद्धि और ऐश्वर्य का एक चिह्न था और फिर भी वैसा ही बनेगा। अतः, मनु महाराज और व्यास जी के उपदेश के साथ इस प्रकरण का उपसंहार किया जाता है।—

"ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्॥—(मनु० ४।२१॥)

अर्थ—(यथाशक्ति) जहाँ तक हो सके (ऋषियज्ञं) ब्रह्मयज्ञम् (देवयज्ञम्) देवयज्ञ (भूतयज्ञम्) भूतयज्ञ (नृयज्ञम्) अतिथियज्ञ (च) और (पितृयज्ञम्) पितृयज्ञ को (न) (हापयेत्) छोड़े।

"अहन्यहनि ये त्वेतान्, अकृत्वा भुञ्जते स्वयम्।
केवलं मलमश्नन्ति ते नरा, न च संशयः॥

—महाभारत अश्व० १०४।१६।

अर्थ—(अहनि-अहनि) प्रतिदिन (ये) जो (एतान्) इन (महायज्ञों) को (अकृत्वा) किए बिना (स्वयम्) भुञ्जते खाते-पीते हैं, (ते) वे (नराः) नर (केवलम्) केवल (मलम्) मल (अश्नन्ति) खाते हैं, (च) वस्तुतः इसमें (संशयः) संशय (न) नहीं। □

जीवन का अनमोल धन सन्तोष

—रमाकान्त 'विक्षिप्त'

गो-धन, गज-धन, वाजि-धन और रतन-धन-खान।
जब आवत सन्तोष-धन, सब धन धूरि समान।।

सन्तोष के महत्त्व पर सभी ने बल दिया है। सभी विद्वानों ने एक स्वर से इसके गुण गाये हैं। इसकी अपनी एक अलग सत्ता है, जिसकी उपेक्षा करना स्वयं को धोखा देने के समान है।

सन्तोष तो एक ऐसा धन है, जो सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। इसकी प्राप्ति में ही मानव-जीवन का कल्याण व्याप्त है। इस धन का स्वरूप सात्विक है। सात्विकता की ओर ही यह मानव को प्रवृत्त होने की प्रेरणा देता है। संसार में और भी अनेक धन हैं, परन्तु यह उन सबके मध्य एक निरालापन लिये हुए उदात्त भावनाओं की अलौकिक किरणों को विकीर्ण कर आदि से ही सब पर अपना शासन करता चला आ रहा है। इसके समक्ष सब धन तुच्छ हैं ! फीके हैं !! उनमें कुछ सार है ही नहीं !! वे सब जीवन को जञ्जाल में फँसाने वाले हैं। तब भला कौन उन धनों पर अपने प्रिय प्राणों की बलि दे देगा, जो कि जीवन में अशान्ति की ज्वाला भड़काने को बने हों !

जिसे ईश्वर ने कुछ बुद्धि दी है, वह सद्-असद् की विवेचना करने के पश्चात् इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि सन्तोष ही एक ऐसा धन है, जिसको प्रसन्नतापूर्वक आँख मींच कर अपनाया जा सकता है, इसलिए कि इसको कलंक की कालिमा छू तक भी नहीं गई है। यह 'यथा नाम तथा गुण' को अपने अन्तर में समेटे हुए है। इस पर शान्ति के शाश्वत रुप की छाप लगी हुई है। यदि जीवन-डाली में सन्तोष की कलियाँ विकसित हो रही हों तो उसमें शान्ति की कलियाँ स्वयमेव प्रस्फुटित हो उठेंगी। उसके लिए कृतप्रयत्न होने की आवश्यकता नहीं। फिर जीवन-डाली दोगुना सौन्दर्य लेकर अपना सौरभ दिग्दिगन्त में छिटका कर सबके लिए आदर्श बन जायेगी। यही जीवन की महानता की चरम सीमा है। कितनों ही को उस आदर्श से प्रेरणा मिल सकती है, कितनी ही आत्मायें अवनति के गर्त से निकल कर उन्नति की उच्च भूमि पर खड़े होकर सुख की साँस ले सकती हैं।

जिस प्रकार रात के पश्चात् दिन अवश्य आता है उसी प्रकार सन्तोष के बल पर दुःख के बादल फट जाते हैं तथा जीवन में अजस्र आभा फूट पड़ती है। वह अजस्र आभा त्रयताप को हरने में समर्थ होती है।

सन्तोषी व्यक्ति की सरलता से देवताओं की श्रेणी में गणना की जा सकती है। उसका मुखमण्डल तेजोमय होता है। वह हर समय तृप्ति का ही आनन्द लेता रहा है। उसकी दृष्टि में कभी भी पाप का वास नहीं रहता। वह "वसुधैव कुटुम्बकम्" तथा "परद्रव्येषु लोष्ठवत्" आदि पूत भावनाओं को लेकर चलता है। वह तो सद्गुणों का सेवक होता है। दुर्गुणों की ओर दृष्टिपात करने का उसे अवकाश ही नहीं। सन्तोष ही उसका परम प्रिय धन होता है। दूसरे धनों को वह उतना महत्त्व नहीं देता। जो कुछ उसे ईश्वर की कृपा तथा अपनी सामर्थ्य से प्राप्त होता है, वह उसी में मस्त रहता है। वह किसी के

धन पर अपना घर भरने के लिए कुदृष्टि नहीं रखता, क्योंकि वह जानता है कि अन्य धनों के चक्र में पड़ना मृगतृष्णा के चक्र में ही पड़ना है। फिर तो जीवनभर निस्तार नहीं मिल सकता।

निस्सीम गगन की भाँति मृगतृष्णा का भी कोई अन्त नहीं। बस एक बार मृगतृष्णा जिसके सिर पड़ जाती है फिर तो उसे पागल बनाकर ही छोड़ती है। संसार में, सब धन के पीछे पागल बने हुए हैं। जिनके पास धन का भण्डार है, वह भी अनुदिन धन के लिए प्राणों की आहुति देते रहते हैं। उनका धर्म और ईमान चाँदी के इने-गिने टुकड़ों में बिक जाता है। कितनी लज्जाजनक बात है कि सदवृत्तियों की अपेक्षा दुर्गुणों की ओर संसार शीघ्र आकृष्ट होता है! परन्तु सन्तोषी के ज्ञान-चक्षु खुले रहते हैं। वह इसमें अपना अपमान समझता है। उसे मृत्यु का आलिंगन करना स्वीकार है वरन् नैतिकता से गिरना स्वीकार नहीं। वह मृगतृष्णा के चक्र से सदैव दूर रहना पसन्द करता है। कहा है—

अन्तोनास्ति पिपासायाः तुष्टिस्तु परमं सुखम्।
तस्मात् सन्तोषमेवेह धनं पश्यन्ति पण्डिताः॥

तृष्णा का अन्त नहीं है तो भी सन्तोष परम सुखकर है, इसलिए पण्डित लोग कांचन को धन न समझ कर सन्तोष ही को परम धन समझते हैं। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, गोपाल कृष्ण गोखले आदि इसके जीते-जागते उदाहरण हैं।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, विद्यालय में जो वजीफा पाते थे, उसका भी कुछ अंश अन्य सहपाठियों की सहायता में व्यय करते थे। किसी को पीड़ा हुई है, यह सुनने मात्र से ही वह चिकित्सा की व्यवस्था करते। स्वयं घर के चरखे से कते हुए सूत के बने हुए मोटे टाट-से कपड़े पहिन कर अपने पैसों से अन्य दरिद बालकों के लिए अपेक्षाकृत अच्छा वस्त्र खरीद देते। बाल्यावस्था में तो यह हाल था ही, युवावस्था में भी स्वार्थत्याग करके सन्तोष पाने में इनकी समानता सम्भवतः ही कोई कर सका हो। समग्र जगत् के इतिहास में तिल-तिल करके अनुसंधान करने पर भी ऐसे दरिद्र बालक के इस प्रकार से क्लेश और असुविधा के वातावरण में सन्तोषी रहकर पर-सेवा और स्वार्थ-त्याग के साथ ही आत्मोन्नति का ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण बहुत न्यूनता से दिखलाई पड़ता है।

गोपाल कृष्ण गोखले ने भी सन्तोष-पूर्वक अपनी निर्धनता से जूझ कर विद्याध्ययन किया। विद्या के इतने प्रेमी थे कि भूखों रहकर कालिज की शिक्षा प्राप्त की तथा अपने सहपाठियों में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करके मैरिट स्कॉलरशिप (merit scholarship) के अधिकारी बने। यह सब-कुछ सन्तोष का ही परिणाम था। फर्गुसन कालिज कलकत्ते के लिए अपना सर्वस्व त्याग कर सन्तोषी होने का और भी परिचय दिया।

सन्तोष का लोक ही विचित्र है। जो इस लोक में वास करता है, वह उसकी विचित्रताओं से भलीभाँति परिचित होता रहता है। इसमें तपःपूत भावनाओं की सृष्टि निहित है। जिसने इसे अपने जीवन का अंग बनाया, वह सदैव चिन्ताओं से मुक्त रहा है। बाधाएँ उसके जीवन-मार्ग को अवरुद्ध नहीं कर सकीं। ईश्वर ने भी उसकी सहायता मुक्तहस्त से की है। यह धन ही ऐसा है जो जीवन में पीयूष-वर्षा करता रहता है। जहाँ पीयूष-वर्षा हो रही हो वहाँ समस्त ऐश्वर्य निरर्थक हैं। फिर उनका कुछ भी मूल्य नहीं।

जो सुख चाहता है वह सन्तोषी बने, क्योंकि सुख का मूल सन्तोष है और दुःख का मूल असन्तोष है।

"सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्, सन्तोषमूलं हि सुखं दुखःमूलं विपर्ययः।" मनु महाराज ने भी सन्तोष की सत्ता को निस्संकोच स्वीकार किया है।

केवल समझ का फेर है। सन्तोष का तात्पर्य यह कदापि नहीं कि अपनी उन्नति मत करो। उन्नति करना तो प्रत्येक जीव का लक्ष्य होना चाहिए। अपनी उन्नति से कभी भी सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। इसके लिए तो जीतोड़ परिश्रम करना ही जीवन का मूल-मन्त्र होना चाहिए। तभी जीवन में सफलताओं की भारी भीड़ एकत्रित हो सकेगी। सन्तोष सद्वृत्तियों का पोषक है, पाप-पंक से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इस बात को ध्यान में रखकर ही अपने जीवन को आदर्श साँचे में ढालना हितकर है। इसकी अपेक्षा दूसरों को दुःख देकर, हानि पहुँचाकर अथवा इसी प्रकार के अन्य कुकृत्यों से अपनी उन्नति करना, उन्नति करना नहीं कहलाएगा। जो ऐसा करता है वह पामर तथा निकृष्ट श्रेणी का है। इससे तो यही उचित है कि वह जिस स्थान पर है वहीं बना रहे, क्योंकि कम-से-कम समाज को तो उसके कुकृत्यों का शिकार न होना पड़े। सुख-शान्ति का आधिपत्य छिन्न-भिन्न न हो सके।

मूर्खों के पल्ले ईर्ष्या ही पड़ती है। वे दूसरों की उन्नति को देखकर जलते हैं। वे, उनसे, जो उन्नति के शिखर पर चढ़े हुए हैं, होड़ लेने के लिए सद्-असद् का विचार भी नहीं करते। इसके विपरीत सन्तोषी सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझता है और अपनी उन्नति में सबकी।

आदर्श आज्ञा-पालक

—श्री अमरनाथ वैद्यशास्त्री

कई वर्ष की बात है—देहरादून छावनी में एक अंग्रेज कप्तान ने अपने द्वाररक्षक गोरखा सैनिक को यह कह रखा था कि रात के समय किसी को कोठी के अन्दर न आने देना; पहले मुझसे पूछो, जब मैं आर्डर दूँ तब आने देना।

एक दिन सायं समय वह कप्तान पत्नी-सहित बाहर चला गया; परन्तु द्वारपाल को सूचित करना भूल गया। जब रात को १२ बजे सिनेमा देख कर लौटा तो दूर से ही सैनिक ने चिल्लाकर कहा—

"तुम कौन हो ? ठहरो नहीं तो गोली मार दूँगा।" आने वाले ने कहा—"मैं कैप्टन साहब हूँ। फाटक खोलो, अन्दर जाएँगे।" फिर द्वारपाल ने बन्दूक सम्भाल कर कहा—"दूर ठहरो, आगे बढ़े तो फायर कर दूँगा। रात का टाइम है, हम तुमको नहीं पहचान सकता। जब अन्दर से साहब का आर्डर मिले तब फाटक खुल सकता है।" कप्तान ने कहा—"मैं ही तो इस कोठी वाला साहब हूँ। तुमको आर्डर देता हूँ फाटक खोलो।" सैनिक ने फिर उत्तेजित होकर कहा—"तुम तो बाहर हो, साहब का आर्डर अन्दर से मिलना चाहिए, मैं बाहर वाले साहब का आर्डर नहीं मानता, तुम चले जाओ।"

कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था···ठिठुरते हुए साहब ने कहा—"वैल, तुमने हमें कोठी में नहीं जाने दिया, कल तुम्हारा कोर्ट मार्शल होगा।" काँपती हुई मेम को साथ लेकर साहब किसी मित्र के बंगले में जाकर ठहरा। मन में क्रोध भरा हुआ था। उस अवज्ञा करने वाले सैनिक को कठोर दण्ड देने का विचार करते हुए सो गया।

प्रात: ५ बजे जब नींद टूटी तो मन में सात्त्विक भाव का उदय हो गया, यह सोचकर कि कैसी दृढ़ता से आज्ञा-पालन करने वाला द्वारपाल है जिसने मेरे आर्डर को मेरे समक्ष ही पूरा निभाया; मिलने वाले कठोर दण्ड की चिंता भी न की। वास्तव में आदर्श आज्ञा-पालक है, इसको दण्ड देना अन्याय होगा। सवेरे उठ कर मेम ने भी साहब से कहा कि उसको कठोर दण्ड देना चाहिए जिस काला मैन ने हमें रात को तंग किया। पर साहब के विचार में परिवर्तन हो गया था।

सवेरे कप्तान साहब अपनी कोठी पर गए। सैनिक ने अभिवादन किया। उसकी सूचना-पुस्तक पर यह आदेश लिखकर कि १० बजे परेड पर पहुँचो, तुम्हारा कोर्ट मार्शल किया जायेगा, साहब कोठी के अन्दर चले गये। दण्ड की बात जान कर भी सैनिक निर्भय रहा। उसके साथियों ने भी बहुत समझाया कि तुमने बुरा काम किया। अपने अपराध की साहब से क्षमा माँगो; पर वह अपने कर्त्तव्य पर दृढ़-अचल बना रहा।

१० बजे का समय है। शस्यश्यामल विशाल क्रीड़ांगन में गोरखा और गोरे सैनिक पंक्तिबद्ध परेड कर रहे हैं। साथियों की दृष्टि उस सैनिक की ओर लगी हुई है। उसको साहब क्या दण्ड सुनाएगा, यही चिन्ता सबके मन में थी। तभी कप्तान साहब ने उस सैनिक का नाम पुकारा। उसने सैनिक अभिवादन किया और छाती तान कर निडर-भाव से खड़ा हो गया। साहब ने सब सैनिकों को सम्बोधन कर रात की घटना सुनाई और उस वीर सैनिक को आदर्श आज्ञा-पालन के उपलक्ष्य में प्रशंसा-पत्र अपने हाथ से दिया। साहब की मेम ने भी ५० रु० का पुरस्कार प्रदान किया। तब विशाल क्रीड़ा-क्षेत्र तालियों की ध्वनि से गूँज उठा।

मानवता की मूर्ति : सन्त एकनाथ

—सुशील

महाराष्ट्र के सन्त एकनाथ जितने ज्ञानी थे, उतने ही भगवान् के भक्त। गृहस्थी थे, लेकिन भगवान् की भक्ति में उनके जैसा कोई और नहीं था। एक समय की बात है, गर्मी के दिन थे और दोपहर का समय; सूर्य की प्रचण्ड किरणें धरती को तपा रही थीं। उसी समय भगवान् का नाम जपते हुए सन्त एकनाथ नंगे पैरों नदी की ओर जा रहे थे। सहसा मार्ग में एक बड़ा ही करुण दृश्य दिखाई दिया। एक अछूत स्त्री नंगे पैर पानी भरने जा रही थी। उसके पैर जल रहे थे। इसलिए वह तेजी से चल पड़ी। लेकिन तभी चुपके से उसका बच्चा उसके पीछे हो लिया। उसे पता भी न लगा। कुछ दूर माँ-माँ पुकारता हुआ वह दौड़ता रहा, लेकिन तपती हुई धरती पर वह कितनी दूर चल सकता था! थोड़ी दूर ही चलकर वह तड़फड़ाया और वहीं गिर पड़ा। उसके मुँह और नाक से फेन निकलने लगा। सन्त एकनाथ ने यह दृश्य देखा तो उनका हृदय भर आया। बिना

किसी संकोच के गन्दे बालक को उन्होंने अपनी गोद में उठा लिया। अपने अंगोछे से उसका मैल साफ किया और फिर अपने उत्तरीय से ढककर उसे अछूतों की बस्ती में ले गए। बालक के पिता ने जब यह देखा तो वह गद्गद हो उठे। उसकी माता भी वहीं आ पहुँची और सन्त एकनाथ के रूप में मानवता के दर्शन पाकर कृतार्थ हो गई, क्योंकि उस समय अछूतों की छाया पड़ने पर भी ब्राह्मण को बार-बार स्नान करना पड़ता था।

सन्त एकनाथ जब तीर्थ-यात्रा कर रहे थे तो अपने कन्धे पर गंगा-जल की काँवर लिए हुए थे। त्रिवेणी का जल रामेश्वर पर चढ़ाया जाता है। धीरे-धीरे वह रामेश्वर के समीप आ पहुँचे। भगवान् का जाप करते हुए वह सबसे आगे चल रहे थे। उनके साथी काफी पीछे रह गए थे। तभी अचानक उन्होंने देखा, एक गधा प्यास से व्याकुल होकर तपती हुई बालू-रेत में पड़ा हुआ तड़प रहा है। सन्त एकनाथ जीव-मात्र में भगवान् की मूर्ति देखने वाले थे। वह यह दृश्य नहीं देख सके। कन्धे से काँवर उतारकर उसका गंगा-जल उन्होंने गधे को पिला दिया। पेट में पानी पहुँचते ही गधे को जैसे नव-जीवन मिला। हर्षध्वनि करता हुआ वह एक ओर चला गया। तबतक उनके साथी पास आ गए थे। यह दृश्य देखकर वे क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने कहा, "तुम्हारी यात्रा व्यर्थ हो गई। गधे का जूठा गंगा-जल रामेश्वर भगवान् को नहीं चढ़ाया जा सकता।"

सन्त बोले, "जिस कारण तुम यात्रा को असफल बता रहे हो, उसी कारण वह और भी अधिक सफल हुई है। भगवान् तो हर कहीं व्याप्त हैं। उन्होंने मार्ग में आकर ही मेरी सेवा स्वीकार कर ली है।"

इन सब कारणों से स्वार्थी और ईर्ष्यालु लोग उनसे बहुत जलते थे। उनकी साधुता, उनकी शान्ति, उनकी परोपकारवृत्ति, सभी की ईर्ष्या का कारण बनी हुई थी। एक गरीब ब्राह्मण अपनी कन्या कि विवाह के लिए धन की याचना करने उनके आवास को चल पड़ा। मार्ग में उसे कुछ और लोग मिल गए। उन्होंने कहा कि अगर तुम सन्त एकनाथ को क्रुद्ध कर सको तो हम तुम्हें दो सौ रुपये देंगे।

ब्राह्मण ने उनकी यह शर्त स्वीकार कर ली और जूते पहने ही वह एकनाथ के पूजा-मन्दिर में चला गया। यही नहीं, वह उनकी जाँघ पर जा बैठा। किन्तु सन्त एकनाथ तनिक भी विचलित नहीं हुए। प्रेमपूर्वक बोले, "आपका मेरे प्रति यह प्रेम बहुत विलक्षण है। ऐसा प्रेम कोई मर्यादा स्वीकार नहीं करता।"

ब्राह्मण बड़ा चकित हुआ, लेकिन निराश अब भी नहीं हुआ। सन्त एकनाथ ने उसके लिए भोजन की व्यवस्था की और जब वह खाने के लिए बैठे, तो सन्त एकनाथ की साध्वी पत्नी पत्तल में चीजें परोसने के लिए झुकी। उसी समय वह ब्राह्मण देवता उचक कर उसकी पीठ पर जा बिराजे। सन्त एकनाथ ने पत्नी से कहा, "देखो, सावधानी से परोसो। कहीं ब्राह्मण देवता गिर न पड़ें।"

पत्नी बोली, "आप चिन्ता न कीजिए। अपने बेटे को पीठ पर बैठाने का मुझे खूब अभ्यास है।"

यह शब्द सुनकर ब्राह्मण की लज्जा का पार न रहा। वह सन्त एकनाथ के चरणों में गिरकर बार-बार क्षमा माँगने लगा।

सन्त एकनाथ ने जब उसकी कहानी सुनी तो इनाम के रुपये खोने पर बड़ा दुःख प्रकट किया। कहा, "आप मुझसे पहले कह देते और मेरे क्रोध से आपको कोई लाभ होता तो मैं अवश्य क्रोध प्रकट करता।"

यह कहकर सन्त एकनाथ ने उस ब्राह्मण को लड़की की शादी के लिए काफी धन दिया। □

हैजा और उसका निदान

—डॉ० हीरालाल

हैजा एक अन्तरी का रोग है। इस रोग के आरम्भ में पतला दस्त होता है, लगातार उल्टी भी होती है और रोगी बहुत शीघ्र सुस्त पड़ने लगता है। नाड़ी धीमी चलने लगती है और २४ घंटे के अन्दर उसकी मृत्यु हो सकती है।

कारण—यह रोग बहुत ही सूक्ष्म कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश करने के कारण होता है, जिन्हें हम अपनी आँखों से बिना माइक्रोस्कोप की सहायता के नहीं देख सकते। इस रोग में रोगी के दस्त और कै में ये कीटाणु पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त गन्दे पानी, गन्दी या बासी खाद्य-सामग्री, गन्दे बर्तनों का संसर्ग तथा मक्खियाँ इस बीमारी को फैलाने में अत्यधिक सहायक हैं।

लक्षण—इस रोग के आरम्भ में लगातार पतला दस्त होता है पर पेट में दर्द नहीं होता। इसके साथ लगातार कै भी होती है। दस्त माड़ की तरह होता है। इस तरह रोगी के शरीर से काफी पानी निकल जाता है, जो शरीर के लिए आवश्यक होता है। शरीर सूखा दिखायी पड़ता है और ठण्डा हो जाता है। पैर में ऐंठन होती है और रोगी अधमरा की अवस्था में हो जाता है। ब्लडप्रेशर बहुत कम हो जाता है। यदि शीघ्र ही इस रोग की रोकथाम के लिए समुचित उपचार नहीं किया गया और सावधानी नहीं बरती गयी तो रोगी की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

उपचार—इस रोग के लिए अभी तक कोई उपयुक्त औषधि नहीं निकली है, जिससे कि उन कीटाणुओं को मारा जा सके। जो भी उपचार किया जाता है उसका मुख्य उद्देश्य है रक्त-प्रवाह को जारी रखना। इसके लिए कुछ तरल पदार्थ रोगी के मुंह के द्वारा यदि वह खाने की स्थिति में हो, अथवा नसों के द्वारा उसके शरीर में पहुँचाया जाता है। इस बीमारी में कभी जब गुर्दा का काम बन्द हो जाता है तो उस समय सम्भालना बड़ा कठिन काम हो जाता है।

रोग से बचाव—रोगी के दस्त और कै को घर से दूर किसी स्थान में गाड़ देना चाहिए। उसके कपड़ों को कीटाणु नाशक दवाओं से कीटमुक्त कर देना चाहिए। दूध और पानी को पीने के पहले उबाल लेना चाहिए। खाद्य-सामग्रियों को मक्खियों से बचाकर रखना चाहिए। मक्खियों को मारने के लिए कीटाणुनाशक दवाओं का प्रयोग करना चाहिए। भोजन करने के पहले हाथ को अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए। हैजा से पीड़ित रोगी को अलग कमरे में रखना चाहिए और बच्चों को उस कमरे में नहीं जाने देना चाहिए। केवल एक सेवा करने वाले व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य लोग भी उसमें न जायें तो अच्छा है।

टीका लेना—रोग के फैलने के समय और शुरू होने के पहले सभी लोगों को हैजे का टीका लेना चाहिए।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखने और पूर्ण सावधानी बरतने से इस रोग से बचा जा सकता है। □

मन्दिर में चोरी हो गई

—कविवर रत्नसिंह जी

दोहा— ब्रजभूमि विख्यात है जामें कामर गाँव।
मन्दिर में चोरी हुई चुरा लिये घनश्याम ।।

टेक—मोहन जी चले गये चोरी में ब्रज की शोभा घटगी।

कली—एक रोज दोष में भाई आगये चोर अन्यायी।
मन्दिर में लोट लगाई भगवान् के आगे पौरी में ।।
ब्रज की शोभा घटगी। मोहन०

छायी घन-घोर अन्ध्यारी, सब सो गये भगत पुजारी।
हुए निःशंक अत्याचारी, अब लग पड़े फोड़ा-तोरी में ।।
ब्रज की शोभा०

जो करते इनकी भक्ती, अब कहाँ गई सारी शक्ति।
लाई मोहन जी की चकती, आभूषण भर लिये झोरी में ।।
ब्रज की शोभा०

वहाँ देवतान की टोली देखत रही कछु ना बोली।
डरते जिभ्या न खोली, शिव जी भी घस गये मोरी में ।।
ब्रज की शोभा०

गये मोहनभोग बतासे, दुर्लभ हुए टुकड़ा बासे।
आज ये पानी के भी प्यासे, कभी गंगाजल पिये है कटोरी में ।।
ब्रज की शोभा०

ये चोर महा कट्ठियारे मोहन जी घोट के मारे।
इनको कोई लगे कहा रे, डोरी से कस लिये बोरी में ।।
ब्रज की शोभा०

ये जितने मठ मन्दिर हैं, प्रतिमा जिनके अन्दर हैं।
ये पूरे कलेश के घर हैं कहे रत्नसिंह स्टोरी में ।।
ब्रज की शोभा०



पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन ७.००

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल १५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय ४५.००
सत्यार्थ सरस्वती २५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष ९.००

प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

प्रो० विष्णुदयाल (मौरिशस)

वेद भगवान बोले ६.००
वेदों के अनुपम विचार ६.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथिवी सूक्त) १.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए०

यज्ञ की महिमा १.५०

नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ३५.००
सु-राज्य की रूपरेखा ०.५०

पं० बिहारीलाल शास्त्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल के रहस्य १.५०

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान १.००
वेद और आत्मा २.००

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली ८.००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है १.००
शंका-समाधान १.००
वेद का इस्लाम पर प्रभाव १.००

महात्मा नारायण स्वामी

कर्तव्यदर्पण ५.००
प्राणायाम विधि १.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.००

कई पुरस्कृत लेखों का संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश २५.००
आर्योद्देश्यरत्नमाला ०.२५
व्यवहारभानु १.००

बालोपयोगी

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार ०.६०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.५०
स्वामी श्रद्धानन्द १.५०
गुरु विरजानन्द १.५०
पं० लेखराम १.५०
पं० गुरुदत्त १.५०
स्वामी दर्शनानन्द १.५०

स्वामी दर्शनानन्द

बालशिक्षा-धर्मशिक्षा १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.६०
नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.६०
नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.००
नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.५०
नैतिक शिक्षा पंचम भाग २.००
नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग २.००
नैतिक शिक्षा सप्तम भाग १.५०
नैतिक शिक्षा अष्टम भाग १.५०
नैतिक शिक्षा नवम भाग २.००
नैतिक शिक्षा दशम भाग २.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्यसत्संग गुटका	१.२५
वैदिक यज्ञप्रकाश	०.७५
पंचयज्ञ प्रकाशिका	३.००

भजन पुस्तकें

भक्ति संगीत शतकम् (संकलन)	३.००
गीत श्रद्धांजलि	१.५०

चित्र - चित्र - चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन	२० × ३०	३.००
महर्षि दयानन्द एक रंग	१८ × २२	२.००
गुरु विरजानन्द एक रंग	१८ × २२	२.००
स्वामी श्रद्धानन्द ,,	,,	२.००
स्वामी दर्शनानन्द ,,	,,	२.००
म० हंसराज ,,	,,	२.००

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन

आप क्या नहीं कर सकते ?	३.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ?	३.००
हँसते-हँसते कैसे जियें ?	३.००
जो चाहें सो कैसे पायें ?	३.००
अपना खर्च कैसे घटायें ?	३.००
अवसर को पहचानो !	३.००
अपने आपको पहचानिए !	३.००
आप सफल कैसे हों ?	३.००
उन्नति कैसे करें ?	३.००
धनकुबेर कैसे बनें ?	३.००

मनहर चौहान

महाभारत	५.००
रामायण	५.००

गोपालकृष्ण कौल

पंचतन्त्र	१२.००

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भस्थिति प्रसव और शिशुपालन	१२.००

सुशीला कपूर

सुबोध मेक-अप	४.००

मीनाक्षी धींगड़ा

आधुनिक पाक-कला	१२.००
मिष्ठान्न कला	१२.००
शर्बत आइसक्रीम स्क्वैश	१२.००
अचार मुरब्बे चटनी	१२.००

हयात

रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक	६.००
सुबोध ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	५.००
सुबोध ट्रांजिस्टर गाइड	५.००

अनिल कुमार

अंग्रेजी बोलना कैसे सीखें	५.००

योगाचार्य भगवान्देव

स्वास्थ्य और योगासन	५.००

डा० समरसेन

घरेलू इलाज	१२.००
मोटापा कैसे घटायें	१२.००
योगासनों से इलाज	८.००
प्राकृतिक चिकित्सा	१२.००
जूडो कुंगफू कराटे राजीव	६.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

